प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

सजगता : स्वर्ग का द्वार

दसवाँ सूत्र

चिदग्नि स्वरूपं धूमः

स्वयं के भीतर चैतन्य की अग्नि कौ जलाना ही धूप है।

दर्शनशास्त्र के लिए बहुत-सी समस्याएँ हैं-अंत्तहीन। किन्तु घर्म के लिए सिर्फ एक ही समस्या है और वह समस्या है-स्वयं आदमी। ऐसा नहीं है किआदमी की समस्याएँ हैं, परन्तु आदमी स्वयं हो एक समस्या है। तब प्रश्न उठताहै कि आदमी समस्या क्यों है?

पशु समस्याएँ नहीं हैं। वे इतने मूच्छित्त हैं, आनन्दपूर्वक बेहोश हैं, अचेत हैं कि उनके लिए समस्याओं के प्रति सजग होने की कोई संभावना ही नहीं है। समस्याएँ तो हैं, किन्तु पशुओ को उसका कोई भी पता नहीं। देवताओं के लिए भी कोई समस्याएँ नहीं हैं क्योंकि वे पूर्णरूप से सजग हैं। जब मन पूर्णरूप सेजाग जाता है, तब समस्याएँ ऐसे ही विलीन हो जाती हैं जैसे कि प्रकाश होने पर अन्धकार। लेकिन आदमी के लिए पीड़ा है। आदमी का होना ही, उसका अस्तित्वही एक समस्या है, क्योंकि आदमी इन दो के बीच जीता है, वह पशु भी हैऔर देवता भी।

मनुष्य का होना एक सेतु है, इन अनंतताओँ के बीच अज्ञान की अनंत्तत्ताऔर ज्ञान की अनंतता ५ मनुष्य न तो पशु है और न दिव्य हुआ है। अथवा, कहेंकि मनुष्य दोनों है, पशु भी और दिव्य भी, और वही समस्या है। मनुष्य अधरमें लटकता हुआ अस्तित्व है कुछ अशुद्ध, जो कि अभी फूं। होने को हैय होनेकी प्रकिया में है अमी हुआ नहीं है।

पशु एक अस्तित्व है। मनुष्य ही रहा है। वह है नहीं, वह केवल हो रहा है। मनुष्य एक प्रक्रिया है होने की। और वह प्रक्रिया अमी अधूरी है। उसने अज्ञानका जगत तो छोड़दिया है, किन्तु अभी ज्ञान के संसार तक नहीं पहुँचा है। आदमी दोनों के मध्य में है। वही सारी समस्या, सारे संताप, सारे तनाव और निरंतर द्वंद्वकौ निर्मित करता है।

केवल दो ही मार्ग हैं शान्ति उपलब्ध करने के, समस्याओं के पार जाने के। एक तोवापस गिर जाएं, पीछे लौट जाएँ पशुओं के जगत में◌ः और दूसरा है पारचले जाएँ, अतिक्रमण कर जाएँ और दिव्यता के हिस्से हो जाएँ। या तो पशु होजाएँ या देवता हो जाएँ ये ही दो विकल्प हैं।

पीछे लौट जाना सरल है परन्तु वह स्थायी नहीं हो सकता। क्योंकि एकबार यदि आप विकसित हो गये तो स्थायीरूप से आप पीछे नहीं लौट सकतेआप क्षण भर के लिए पीछे गिर सकते हैं; पर फिर आप आगे को ओर धकेलदिये जायेंगे क्योंकि वस्तुतःपीछे लौटने का रास्ता है ही नहीं। वास्तव में पीछेलौटने की संभावना ही नहीं है। आप फिर से बच्चे नहीं हो सकते यदि आपयुवा हो चुके हैं। ओर यदि आप वृद्ध हो गये हैं तो आप पुनः युवा नहीं होसकते। यदि आप कुछ जानते हैं तो आप फिर से उसी अवस्था को नहीं पहुँचसकते जहां आपको कुछ भी

पता नहीं था। आप वापस नहीं लौट सकते परन्तुआप कुछ समय के लिए वर्तमान भूल सकते हैं और अपनी स्मृति, अपने मनमें ही अतीत को पुनः जी सकते हैं

आदमी पशुत्व के तल पर गिर सकता है। वह आनंदपूर्ण होगा, किन्तु अस्थायीयही कारण है कि नशीले पदार्थ, शराब आदि का इतना आकर्षण है। जब आपकिसी मादक द्रव्य के कारण बेहोशा हो जाते हैं तो थोडी देर के लिए आप पीछे गिर जाते हैं। थीड़े समय के लिए आप आदमी नहीं रह जाते, आप एक समंस्या नहीं होते। आप फिर से पशुओं के जगत के हिस्से हो गये, अचेतन अस्तित्व के हिस्से हो गये। तब आप आदमी नहीं हैं। इसलिए फिर वहां कोई समस्याभी नहीं हैं।

मनुष्यतासदा से कुछ-न-कुछ खोज़करती रही है-सोमरस से लेकर एल.एस.डी. तक ताकि वह भूल सके, पीछे लौट सके, बच्चों जैसा हो सके, पशुओं की निर्दोषिताको फिर से पा सके, बिना समस्या के हो सके, यानी बिना मनुष्यता के हो सके, क्योंकि-मनुष्यता का मेरे लिए अर्थ होता है एक समस्या। यह पीछे लोट जाना, यह गिर जाना संभव है लेकिन केवल अस्यायी रूप् से। तुम फिर लौट आओगे, तुम फिर से आदमी हो जाओगे और वहीसमस्याएँ तुम्हारे सामने खडी हुई होंगी, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होंगी। बल्कि पहले से भी ज्यादा गहरी होंगी। तुम्हारीअनुपस्थिति से ये विलीन होने वाली नहीं, वरन वे और भी जटिल हो जायेंगीऔर तब एक दुष्ट-चक्र का निर्माण होगा

जब तुम लौटकर आओगे और जागोगे तो तुम पाओगे कि तुम्हारी गैरहाजिरीके कारण समस्याएँ और भी अधिक जटिल हो गई। वे बढ़गईं और तब तुम्हेंबार-बार स्वयं को विस्मृत करना पड़ेगा और जितनी बार तुम भूलोगे और पीछेपिरोने, तुंम्हारी समस्याएं बढ़ती जायेंगी। तुम्हें अपनी मनुष्यता का बार-बार सामनाकरना पड़ेगा। कोई इस तरह बच नहीं सकता। कोई चाहे तो स्वयं को धोखादे सकता है, किन्तु इस तरह बच नहीं सकता।

दूसरा विकल्प अति कठिन है-विकसित होना; अपने चैतन्य को, बीइंग कोपा लेना। जब मैं कहता हूँ पीछे लौटना तो मेरा मतलब है बेहोशा होना; जो थोडीबहुत सजगता भी है उसे थी खो देना। जब मैं कहता हूँ होना-बीइंग तो मैरामलतब है बेहोशी को छोड़समग्र-सजगता को, पूर्ण चैतन्य को उपलब्ध होना।

जैसे हम हैं, हमारा केवल एक ही हिस्सा चेतन है। हमारे अस्तित्व का छोटा-सा द्वीप चेतन है, और पूरा प्रायःद्वीप, पूरी मुख्यभूमि अचेतन है। जब यह छोटा-सा हिस्सा भी मूच्छित हो जाता है तो तुम पीछे लौट गये, तुम पीछे गिर गयेयह अज्ञान क्री अवस्था आनन्दपूर्ण है क्योंकि अब तुम समस्याओँ से दूर हट गयेसमस्याएँ तो वहाँ अभी भी मौजूद हैं किन्तु तुम अब उनके प्रति सजग नहीं हो। इसलिए तुम्हारे लिए तुम्हें ऐसा लगता है कि जैसे वे समस्याएं नहीं हैं। यह शुतुरमुर्गकी विधि है, अपनी आँखें बंद कर लो ओर तुम्हारा शत्रु दिखाई नहीँ पड़ता क्योंकि-अब तुम उसे नहीं देख सकते--... यही बचकानी बुद्धि का तर्क कहता है कि जबतुम किसी वस्तु को नहीं देख सकते तो वह नहीं है। जब तक कि कोई चीज़तुम्हें दिखलाई नहींपड़ती वह नहीं है। इसलिए यदि तुम्हें समस्याएँ महसूस नहीं होतीं तो वे नहीं हैं।

जब मैं कहता हूँ "स्वयं का होना", मनुष्यता का अतिक्रमण कर जाता, दिव्यता को उपलब्ध हो जाना तो मेरा मतलब है पूर्ण चेतन हो जाना-एक द्वीपनहीं होना, बल्कि पूरा प्रायःद्वीप हो जाना। यह पूर्ण चेतनता भी तुम्हें सब समस्याओंके पार ले जायेगी क्योंकि समस्याएँ वस्तुतः हैं ही तुम्हारे कारण। समस्याएँ वस्तुगतसत्य नहीं हैं; वे विषयगत घटनाएँ हैं। तुम ही तुम्हारी समस्याओं के निर्माता हीतुम एक समस्या को सुलझाते हो और

उसे सुलझाने में दूसरो बहुत-सी समस्याओंको पैदा कर देते हो क्योंकि तुम तो वही हो। समस्याएँ वस्तुगत नहीं हैं। वे तुम्हारेही हिस्से हैं। तुम ऐसे हो इसलिए तुम ऐसी समस्याएँ उत्पन्न करते हो।

बिज्ञान समस्याओ को वस्तु की तरह सुलझाने का प्रयत्न करता है। औरविज्ञान सोचता है कि यदि समस्याएँ नहीं होंगी तो मनुष्य सुखी हो सकेगा। समस्याएँवस्तु की तरह सुलझाई जा सकती हैं, परन्तु मनुष्य सुखी नहीं होगा। क्योंकि मनुष्यस्वयं एक समस्या है। यदि वह एक समस्या का सामाधान खोजता है तो वह दूसरीपैदा कर देता है। वही उनका स्त्रष्टा है। यदि तुम एक इससे अच्छे समाज कानिर्माण कर लो तो समस्याएँ बदल जायेंगी किन्तु समस्याएँ तो रहेंगी। यदि अच्छास्वास्थ्य, अच्छी दवा प्रदान कर दो, तो समस्याएँ बदल जायेंगी, किन्तु समस्यायेंतो रहेंगी।

समस्याओँ का अनुपात सदा उतना ही रहेगा जितना पहले था क्योंकि आदमीवही का वही है; केवल परिस्थिति बदल देते है। आप परिस्थिति बदल देते हैं; पुरानी समस्याएँ नहीं होंगी, किन्तु तब नई समस्याएँ होंगी। और नई समस्याएँ औरभी जटिल होंगी बजाय पुरानी समस्याओँ के। क्योंकि तुम पुरानी समस्याओं सेपरिचित हो चुके हो। नईं समस्याओँ के साथ तुम्हें और भी अधिक तकलीफ होगी। इसलिए यद्यपि हमारे समय में हमने सारी परिस्थिति बदल डाली है, परन्तु समस्याएँतो है-और भी अधिक घातक, और थी अधिक चिन्ताजनक।

विज्ञान और धर्म में यही भेद है। विज्ञान सोचता है कि समस्याएँ वस्तुगतहै, कहींबाहर हैं, तुम्हें रूपान्तरित किये बिना उन्हें बदला जा सकता है। धर्मसोचता है कि समस्याएँ यहीँ कहीं भीतर ही मौजूद हैं, मुझ में ही... बल्कि मैंही एक समस्या हूँ। जब तक मैं नहीं बदलता, कुछ भी भेद पड़ने वाला नहीं। रूप बदल सकता है, नाम दूसरा हो सकता है, किन्तु मुख्य वस्तु तो वही रहेगी। मैं समस्याओ का दूसरा संसार खड़ाकर दूंगा, मैं नई-नई समस्याओं को उत्पन्तकर दूँगा।

यह आदमी जो कि स्वयं के प्रति ही मूंच्छित है, जिसे स्वयं का कोई भीफ्ता नहीं है, यही सारी समस्याओँ का स्त्रष्टा है। वह कौन है, वया है इन सबसेअनभिज्ञ, स्वयं से अपरिचित रहकर वह समस्याओँ को सृजन करता चला जाताहै। क्योंकि जब तक तुम स्वयं को ही नहीं जानते तुम यह नहीं जान सकते कितुम क्यों हो और किसलिए जी रहे ही; तुम नहीं जान सकते कि तुम्हें कहाँ जानाहै, तुम अनुभव नहींकर सकते कि तुम्हारी नियति क्या है। और तब हर बाततुम्हें विषाद की और धकेलती जायेगी। क्योंकि यदि तुम कुछ भी करो बिना यहजाने कि तुम क्यों हो और तुम क्या हो तो तुम्हें वह कभी भी गहरी तृप्ति नहीं दे पायेगी। यह असंगत है। मुख्य बिन्दु ही खो गया, तुम्हारा प्रयत्न विफल हो गया। और अन्ततः प्रत्येक व्यक्ति विषाद को उपंलब्ध होता है। क्योंकि जो सफलनहीं होते उन्हें अभी भी सफलता की आशा होती है, लेकिन जो सफल हो जाते हैं वे अब आशा भी नहीं कर सकते। उनकी दशा बडी निराशाजनक हो जाती है। इसलिए मैं कहता हूँ कि सफलता से बडी विफलता खोजनी मुश्किल है।

धर्म विषयगत विचार करता है, विज्ञान वस्तुगत सोचता है। वह कहता हैकि परिस्थिति कोबदल दो, आदमी को स्पर्श न करो। धर्म कहता है कि आदमीको रूपान्तरित करो, परिस्थिति असंगत है। कोईभी परिस्थिति क्यों न हो एकभिन्न मन, एक रूपान्तरित व्यक्ति सब समस्याओं के पार होगा। इसीलिए एकबुद्ध भिखारी होकर भी पूर्ण शान्ति में जी सके, और एक मिडास भारी परेशानीसे घिरा है जबकि उसके पास चमत्कारी शक्ति है। वह जो भी छूता है, सोना हो जाता है। मिडास की परिस्थिति स्वर्णिम हो गई है। उसके

स्पर्श करते-ही वस्तु सोना हो जाती है। किन्तु इससे कुछ भी हल नहीं होता, बल्कि मिडास और भीअधिक जटिल समस्यापूर्ण परिस्थिति में पड़ गया।

आंज हमारे जगत ने विज्ञान की मदद से एक मिडास की परिस्थिति उपस्थित कर दी है। अब हम कुछ भी छुए और वह सोने का हो जाता है। एक बुद्धभिखारी की तरह रहते हुए भी इतनी शान्ति और नीरवता मैं जीते हैं कि सम्राटों को भी ईर्ष्यों होती है। क्या है रहस्य? मनुष्य का अन्तरतम अधिक महत्त्वपूर्ण है, बाह्य परिस्थिति नहीं। इसलिए तुम्हें मनुष्य की आंतरिक अवस्था बदलनी होगी। और बदलाहट केवल एक हैः यदि तुम अपनी सजगता में बढ़ सकों तो तुम बदलते हो, तुम रूपान्तरित होते हो। यदि तुम अपनी सजगता में पीछे गिरे, तब भी तुमबदलते हो, रूपान्तरित होते हो परन्तु जब तुम्हारी चेतना कम हो जाती है तो तुमपशुतल पर गिर जाते हो। यदि तुम्हारी चेतना बढ़ जाती है तो तुम देवताओं कीओर बढ़ जाते हो।

धर्म के लिए यही एक मात्र कठिनाई है-कि अपनी सजगता को केसे बढाएँइसलिए धर्म सदैव से ही मादक पदार्थों के विरुद्ध रहा है। उसका कारण नैतिकनहीं है, और तथाकथित नैतिक लोगों ने सारी ज्ञात को ही एक बड़ा गलत रंगदे दिया। धर्मं के लिए यह कोई नैतिकता का प्रश्न नहीं है कि कोई शराब पीता है। यह कोई नैतिकता का सवाल नहीं है क्योंकि नैतिकत्ता का प्रारम्भ ही तबहोता है जब कि मैं किसी और से संबंधित होता हूँ। यदि मैं शराब पीता हूँ औरबेहोश हो जाता हूँ तो इसका किसी से कुछ लेना-देना नहीं। मैं जो कुछ कररहा हूँ स्वयं के साथ कर रहा हूँ।

हिंसा नैतिकता के लिए एक प्रश्न है, न कि शराब। यहाँ तक कि यदि मैंआपको किसी विशेष समय पर मिलने को समय दूँ और नहीँ मिलूँतो वह अनैतिकताकी बात हुई क्योंकि कोई और संबंधित है। शराब नैतिकता का एक प्रश्न हो सकताहै यदि उसमें दूसरा भी संलग्न हो, अन्यथा वह नैतिक सवाल बिल्कुल नहींयह तुम अपने साथ करते हो। धर्म के लिए यह कोई नैतिक सवाल नहीं हैधर्म के लिए यह और भी गहरा सवाल है। यह चेतना को कम करने और बढानेका सवाल है।

एक बार तुम्हारी आदत पीछे गिर कर अचेतन होने कोपड़ जाती है, तोतुम्हारी चेतना कोबढाना और भी कठिन हो जाता है। यह और भी मुश्किल होजाएगा क्योंकि तुम्हारा शरीर बढ़ती हुई सजगता में साथ नहीं देगा। वह तुम्हारीघटती हूई सजगता में साथ देगा। तुम्हारे शरीर की संरचनां तुम्हें अचेतन होने मेंसहायता देगी। वह तुम्हें सजग होने में सहायक नहीं होगी। और कोई भी चीजजो अधिक सजग होने में बाधा बनती हो वह धार्मिक समस्या है। वह कोई नैतिकसमस्या नहीं है।

इसलिए कभी-कभी एक शराबी अधिक नैतिक व्यक्ति हो सकता है बजायउसके जो कि शराब नहींपीता, किन्तु वह अधिक धार्मिक कभी भी नहींहोसकता। एक शराब पीने वाला व्यक्ति ज्यादा सहानुभूतिपूर्ण हो सकता है बजायराराब नहीं पीने वाले व्यक्ति के। वह ज्यादा प्रेम-पूर्ण, ज्यादा ईमानदार हो सकताहै लेकिन ज्यादा धार्मिक कभी भी नहीं हो सकता। और जब मैं कहता हूँ घार्मिकतो मेरा मतलब होता है कि वह कभी भी अधिक सज़ग, अधिक सचेतन व्यक्तिनहीं हो सकता। सजगता-में विकसित होना संताप पैदा करता है।

आदम ओर ईव की बाइबिल की पुरानी कहानी को समझना अच्छा होगाउन्हें स्वर्ग से निकाल दिया गया था, उन्हें ईडन के बाग से निष्कासित कर दिया गया था। यह एक बहुत गहरी मनोवैज्ञानिक कहानी है। परमात्मा ने उन्हें सिर्फएक फल को छोड़सारे फल खाने के लिए इजाजत दे दी थी। केवल एक वृक्षको नहीं छूना था और वह वृक्ष ज्ञान का वृक्ष था। यह बडी अजीब बात है किईश्वर अपने बच्चों को ज्ञान का फल खाने के लिए

मना करे। यह बड़ा विरोधाभासी लगता है। यह कैसा ईश्वर है? और यह केसा पिता है जो कि अपने ही बच्चोंके और अधिक बुद्धिमान व ज्ञानी होने के खिलाफ है। परमात्मा क्यों ज्ञान के लिए निषेध कर रहा है? हम तो ज्ञान को बहुत मूल्य देते हैं। परंतु उन्हें मनाकर दिया गया।

आदम व ईव पशु जगत में विचरण कर रहे थे। वे आनंद में थे, किन्तुउन्हें इसका कोई पता नहीं था। बच्चे बड़े आनंद में होते हैं किन्तु वे भी अनभिज्ञहोते हैं। और यदि बच्चों को विकसित होना हो तो उनके ज्ञान की वृद्धि होनीचाहिए। दूसरा कोई विकास का मार्ग नहीं है। यदि आप अज्ञानी हैं तो आप आनन्दपूर्णहो सकते हैं, परंन्तु आप अपने आनंद के प्रति सजग नहीं हो सकते

इसे समझ लेना चाहिएः तुम आनंदित हो सकते हो यदि तुम अज्ञान में हो, किन्तु तुम्हें अपने आनंद का कोई पता नहीं होगा। जैसे ही तुम्हें अपने आनन्दका अनुभव होना प्रारंभ होगा, तुम अज्ञान से बाहर होने लगो। ज्ञान ने प्रवेश किया, तुम एक जानने वाले बने। अतः आदम और ईव बिल्कुल पशुओं की भांति रहतेथे-समग्र-रूपेण अज्ञानी तथा, आनंदपूर्ण किन्तु यह स्मरण रखें कि इस आनन्दका उन्हें कोई पता नहीं था। वे केवल आनन्दमग्न थे बिना उसे जाने।

कहानी कहती है कि शैतान ने ईव को फल खाने के लिए ललचाया औरउसका कारया यह था कि उसने ईव से कहा कि यदि तुमने यह फल खा लियातो तुम देवताओँ के समान हो जाओगी। यह बहुत अर्थपूर्ण बात है। जब तकतुम ज्ञान का यह फल नहीं खाते हो तुम देवताओं के जैसे कभी भी नहीं होसकते। तुम पशु ही रहोगे। और इसीलिए परमात्मा ने उन्हें मना कर दिया था, निषेध कर दिया था कि उस वृक्ष को न छूएं, परन्तु फिर भी वे उसकी ओर आकर्षितहुए बिना नहीं रह सके।

यह शब्द "डेविल" (शैतान) बड़ा सुन्दर है और विशेषज्ञः भारतीयों के लिएइसका ईसाइयों से भिन्न ही महत्त्व है क्योंकि "डेविल" भी उसी शब्द से, उसीस्रोत से आया है जिससे कि "देव" या "देवता" बना है। दोनों उसी स्रोत से आयेहैं इसलिए ऐसा लगता है कि ईसाई कहानी ठीक बातन कह सकी, कहीं अधूरीरह गई। एक बात ज्ञात है कि "डेविल" स्वयं भी एक विद्रोही देवता था-एकविद्रोही देवदूत जिसने ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह किया था। परन्तु वह स्वयं भीदेवता था।

में यह क्यों कह रहा दूँ? क्योंकि मेरे लिए इस संसार में शैतान और देवताजैसी दोशक्तियाँ नहीं हैं। यह द्वैत झूठा है। केवल एक ही शक्ति है। और द्वैतदो दुश्मनों की तरह नहीं है बल्कि दोदुश्मनोंकी तरह काम कर रहा है क्योंकिजब तक शवित्त दोध्रवों की तरह काम न करेगी तब तक वह काम ही नहींकर सकती।

इसलिए मेरे लिए यह कहानी एक नया ही अर्थ रखती है। पत्मात्मा वे निषेधइसलिए किया क्योंकि आप आकर्षित तभी हो सकते हैं जब कि मना करें। यदिज्ञान के वृक्ष की चर्चा ही न की जाती तो यह संभव प्रतीत नहीं होता कि आदमऔर ईव ने उस विशेष वृक्ष के फल खाने की कल्पना-भी की होती। ईडन काबाग एक बहुत बड़ा बाग था। वहाँ अनगिनत वृक्ष थे; यहाँ तक कि हम उन वृक्षोंके नाम भी नहीं जानते हैं।

यह वृक्ष महत्त्वपूर्ण हो गया क्योंकि इसके लिए निषेध कर दिया गया। यहनिषेध ही निमंत्रण बन गया; यह मना ही आकर्षण का कारण बन गया। वस्तुतःकोई शैतान नहीं था जिसने कि उन्हें ललचाया। सर्वप्रथम ईश्वर ने उन्हें आकर्षितकिया। यह एक "मारी आकर्षण था-ज्ञान के वृक्ष के निकट भी मत जाना, उसकाफल मत खाना। केवल एक वृक्ष का निषेध है, अन्यथा तुम्हें स्वतन्त्रता है। "अचानकयह एक वृक्ष सारे बाग में महत्त्वपूर्ण हो गया और मैरे लिए "डेविल" (शैतान)दिव्यता का केवल दूसरा नाम है-दूसरा छोर, और उस डेविल ने ईव को

प्रलोभितकिया क्योंकि तब वह देवताओं जैसी हो सकती थी। यह वादा था। और कौनदेवताओं जेसा नहीं होना चाहेगा? कौन नहीं चाहेगा कि वह देवता हो जाये?

आदम और ईव लोभ में आ गये और तब वे स्वर्ग री निकाल दिए गये। परन्तु यह निष्कासन प्रक्रिया का एक हिस्सा है। वस्तुतः यह स्वर्ग एक पशुवतअस्तित्व था-जो कि आनन्दपूर्ण था किन्तु अनजाना। क्योंकि ज्ञान के वृक्ष केइस फल को खाने के बाद आदम और ईव मनुष्य हो गये। उसके पहले वे मनुष्यकतई नहींथे। वे अब मनुष्य हो गये और साथ ही समस्या भी।

ऐसा कहा जाता है कि पहले शब्द जो आदम ने स्वर्ग के दरवाजे से निकलनेपर कहे वे थे "कि हम एक बहुत ही क्रान्तिकारी समय से गुजर रहे हैं।" वहसचमुच एक क्रान्ति का काल था। मनुष्य का मन कभी भी इससे अधिक क्रान्तिसे नहीं गुजरेगा जैसा कि यह पशु जगत से उसका निकाले जाना था, आनन्द कीदुनिया से, अज्ञात अस्तित्व से निष्कासन। वह समय वास्तव में, बड़ा क्रान्ति कासमय था। दूसरी सारी क्रान्तियाँ उसके सामने कुछ भी नहीं हैं। वह एक सर्वाधिकबडी क्रान्ति थी-स्वर्ग से निष्कासन।

लेकिन उनको निकाला क्यों गया? जिस क्षण भी तुम जान लेते हो, जिस क्षण भी सजग होते हो, तो फिर तुम आनन्द में नहीं रह सकते। समस्याएँ उठेगी। और यदि तुम आनन्द में भी हो तो ये समस्याएँ तुम्हारे मन में आयेंगी कि मैंआनन्द में क्यों हूँ? क्यों? और तुम्हें सुख का कोई फ्ता नहीं चल सकता जब तक कि तुम्हें दुख का पता न चले क्योंकि हर एक प्रतीति बिना उसके विपरीतके संभव नहीं। तुम्हें सुख का पता भी तभी चलेगा जबकि तुम्हें दुख अनुभवमें आता हो; तुम स्वास्थ्य से तभी परिचित हो सकते हो जबकि तुम्हें बीमारी काअनुभव ही; तुम जीवन केप्रति सजग नहीं हो सकते जबतक कि तुम मृत्यु रोभयभीत न हो।

पशु भी जीते हैं किन्तु उन्हें इसका कोई पता नहीं है कि वे जीवित हैं क्योंकिउन्हें मृत्यु का कोई पता नहीं। मृत्यु की कोई समस्या उनके लिए नहीं है, इसलिए वे चुपचाप जीवन से गुजर जाते हैं। परन्तु वे इसी भाँति जीवित नहीं हैं जिस तरह कि आदमी। मनुष्य जीता है और उसे होश है कि वह जीवित है क्योंकिवह जानता है फि मृत्यु है। ज्ञान के साथ विपरीत का एहसास होता है और समस्याओँ का आविर्भाव होता है। तब फिर हर पल द्वन्द्व का होता है। तब तुम हर क्षणदो में बंटे हुए लटके हो। तब फिर तुम कभी एक न हो सकोगे। तुम लगातारद्वन्द्धों में बंटे हुए आंतरिक उलझनों में फंसे हुए रहोगे।

इसलिए सचमुच वह एक बडी क्रान्ति थी-महान क्रान्ति-आदम और ईवको निष्कासित कर दिया गया। सच ही यह कहानी बडी सुन्दर है। किसी ने उनकोनहीं निकाला किसी ने उन्हें बाहर जाने की आज्ञा नहीं दी। किसी ने नहीं कहाकि जाओ बाहर वे बाहर हो गये। जिस क्षण ही वे होश से भरे कि वे फिरबाग में होकर भी नहीं थे। यह यंत्रवत होगया। इस पर जरा विचार करें-एककुत्ता जो कि यहाँ बैठा हो, अचानक वह होश में आ जाये। तो वह बाहर हो गया। कोई उसे बाहर नहीं निकालता। परन्तु अब वह कुत्ता नहीं रहा। वह अपनीपशु-स्थिति से बाहर चला गया और अब वह वापस वहीँ नहीं हो सकता।

आदम और ईव ने भी पुनः प्रवेश करने को कोशिश की, परन्तु उन्हें वह दस्वाजा फिर नहीं मिला। वे चारों ओर चक्कर लगाते रहे परन्तु सदैव ही द्वार चूक जाते। कहीं कोई दरवाजा ही नहीं है। निष्कासन समग्र है और अन्तिम है, वे पुनः प्रवेश नहीं कर सकते क्योंकि ज्ञान एक मीठा और कड़वा फल दोनो है। मीठा है क्योंकि वह तुम्हें शक्ति देता है, और कड़वा है क्योंकि उसके कारण समस्याएँ खडी होती हैं। मीठा है क्योंकि पहली बार तुम एक अहंकार की स्थिति में होते हो और कड़वा, क्योंकि अहंकार के साथ दूसरी सारी बीमारियाँ भी तुम्हारी होंगी। यह एक दुधारी तलवार जैसा है।

आदम आकर्षित हुआ क्योंकि शैतान ने उससे कहा कि तुम देवताओं की तरह हो जाओगे। तुम शक्तिशाली हो जाओगे। ज्ञान भी एक शक्ति है, परन्तु यहतुम जानते हो तो तुम्हें सिक्के के दोनों पहलूजानने पड़ेंगे। तुम्हें जीवन की अधिकप्रतीति होगी, तुम अधिक आनन्दपूर्ण हो सकोगे किन्तु तुम मृत्यु के प्रति भी सजग हो जाओगे। तुमअधिक आनन्द का अनुभव करोगे, परन्तु तुम उसी अनुपात मेंअधिक संताप को भी अनुभव करोगे। यही एक समस्या है। यही है आदमी-एकगहरा संताप, एक गहरी खाई दो विरोधी ध्रवों के बीच।

तुम्हें जीवन की प्रतीति होगी, परन्तु जब मृत्यु सामने हो तो सबकुछ विषाक्त हो जाता है। जब मृत्यु है तो फिर हर क्षण हर चीज़ विषाक्त हो गई। तुम जीकैसे सकोगे जब कि मृत्यु सामने हो। तुम आनन्दित कैसे रहोगे जबकि पीड़ा भीघिरी हो। और यदि आनन्द का एक पल आता भी है तो वह भी भागता हुआ होता है। और जब वह क्या होता है तब भी तुम्हें पता ही हैं कि कहीं पीछेदुख खडा हैं, पीड़ा छिपी है। वह जल्दी ही प्रकट होगी। अतः एक आनन्द काक्षण भी आपकी सजगता के कारण विषेला हो जाता है कि कहीँ-न-कहीं दुखछिपा हुआ है, वह आता ही होगा। वह यहीं कहीं आसपास ही होगा, और तुम्हेंउससे साक्षात्कार करना पड़ेगा।

आदमी भविष्य के प्रति जाग जाता है, अतीत के प्रति सजग हो जाता है, जीवन के प्रति, भृत्यु के प्रति सचेतन हो जाता है। किर्किगार्ड ने इसे ही "संताप" कहा है-इस जानने को ही। तुम पीछे गिर सकते हो, परन्तु वह अस्थायी रूप से होगा। फिर तुम वापस लौट आओगे। इसलिए एक ही संभावना है कि तुमबढ़ो-ज्ञान में आगे बढ़ो। उस बिन्दु तक, जहाँ से कि तुम उसके भी बाहर छलांगलगा सको, क्योंकि छलांग केवल अन्तिम छोर से ही संभव है। एक छोर हमारेपास हैं कि वापस गिर जाओ। हम वह कर सकते हैं परन्तु वह असंभव है क्योंकि हम सदैव के लिए उसमें नहीं रह सकते। हमें बार-बार आगे की ओर फेंक दियाजाता है। दूसरी संभावना यह है कि हम हमारी चेतना में बढ़ते चले जायें। एकबिन्दु ऐसा आता है कि तुम पूर्ण सजग हो जाते हो और जहां से कि तुम अतिक्रमणकर सकते हो।

हमने जान लिया है, अब हमें इस जानने के, इस ज्ञान के भी पार जाना होगा। हम बाग के बाहर आ गये हैं ज्ञान के कारण और हम इस बाग में वापसप्रवेश कर सकते हैं जब हम ज्ञान को फेंक देंगे। परन्तु यह फेंकना पीछे गिरने से संभव नहीं है। जिस द्वार से आदम को बाहर निकाला गया था वह द्वार अब फिर से नहीं मिल सकता। हमें दूसरा द्धार मिल सकता है जिससे कि क्राइस्ट को, बुद्ध को निमंत्रण मिला था। हम इस ज्ञान को फेंक सकते हैं, हम इस सजगताको फेंक सकते हैं, किन्तु केवल उस चरम बिन्दु से जहाँ कि हम पूर्ण सजग हो जायें।

जब कोई पूर्णरूप से जागरूक हो जाए, जब यह भाव भी नहीं रहे कि मैंसजगहूँ जब कोईबिल्कुल पशु की तरह हो जाए प्रसन्न और आनन्दित। उन्हेंयह पता नहीं है कि जब तुम पूर्णरूप से सजग रहोगे या हो तो देवता हो जाते होयदि यह सजगता समग्र है तो तुम सजग होत बिना यह जाने कि तुम सजग होतब यह साधारण सजंगता ही प्रवेश की शुरुआत हो जाएगी-यही प्रवेश बन जायेगी।

तुम पुनः बाग में होओगे-पशुओं की भाँति नहीं, किन्तु देवताओं कौ भांति। और यह एक अनिवार्य प्रक्रिया है। यह आदम का निष्कासन ओर जीसस का प्रवेश एक अनिवार्य प्रकिया है। अपने अज्ञान में से बाहर निकलना ही होता है, यह प्रथम चरण है। और फिर अपने ज्ञान से भी बाहर निकलना होत्ता है, वह दूसरा चरण है।

यह सूत्र सजगता से संबंधित हैः

"स्वयं में सजगता की अग्नि को जलाना ही धूप है।"

स्वयं के भीतर होश की आग पैदा करना। पहली बात तो यह ठीक रो समझ लें कि होश से, सजगता से क्या मतलब है। तुम चल रहे हो; तुम बहुत-सी चीजोंके प्रति सजग हो-दूकानें हैं, लोग हैं जो पास से गुज़र रहे हैं,

भीड़ है आदि। तुम ऐसी बहुत-सी चीजों के प्रति सजग हो, केवल एक ही चीज के प्रति तुम्हारा ध्यान नहीं है-तुम्हारे अपने प्रति। तुम सड़क पर चल रहे हौः तुम्हारा ध्यानबहुत-सी चीजों के प्रति रहता है, केवल तुम अपने ही प्रति सजग नहीं हो। यहस्वयं के प्रति होगा, इसे ही गुरजिएफ सेल्फ रिमेम्बरिग कहता-है। गुरजिएफ कहताहै कि तुम कहीं पर भी होओ, सदैव, स्वयं का स्मस्या रखो।

उदाहरण, के लिए, जैसे कि तुम यहॉ मुझे सुन रहे हो, किन्तु तुम सुनने वाले के प्रति ही सजग नहीं हो। तुम्हें बोलने वाले का पता है, परन्तु तुम उस सुनने वाले के प्रति होश में नहीं हो। सुनने वाले के प्रति भी सजग रहो। स्वयंकी यहॉ उपस्थिति अनुभव करो। एक क्षण के लिए एक झलक आती है औरतुम पुनः भूल जाते हो। कोशिश करो।

जो कुछ भी तुम कर रहे हो करते समय एक बात का ध्यान सतत भीतरबना रहे कि वह तुम कर रहे हो। तुम भोजन कर रहे ही, स्वयं के प्रति सजग रहो। तुम चल रहे हो, स्वयं के प्रति सजग रहो। तुम सुन रहे हो, तुम बोल रहे हो, स्वयं के प्रति सजग रहो। जब तुमक्रोघित हो रहे हो, होश रहे कि तुम क्रोध में हो। यह स्वयं का सतत स्मस्ण एक सूक्ष्म शक्ति-को निर्मित कस्ता है। एकबहुत ही सूक्ष्म ऊर्जा तुम्हारे भीतर पैदा होने लगती है। तुम घनीभूत होने लगते हो।

साधारणतः तुम एक ढीलेढाले थैले की तरह होते हो, जिसमें कोई सघनता, कोई केन्द्र नहीं होता-केवल द्रव्यता होती है, खाली बहुत-सी चीजों का ढीलमढालामिश्रण होता है जिसमें कोई केन्द्र नहीं होता। एक भीड़ होती है जो कि लगातारयहाँ से वहाँ डोलती रहती है; जिसका "कोई मालिक नहीं। सजगता का अर्थ होता है कि मालिक बनो। और जब मैं कहता हूँ "मालिक बनो" तो मेरा मतलबहै कि उपस्थित हो जाओ-एक सतत उपस्थिति। जो कुछ भी तुम कर रहे हो, या नहीं कर रहे हो, एक बात तुम्हारे ध्यान में बनी ही रहे कि तुम हो।

यह साघारण स्वयं की अनुभूति कि कोई है, यह एक केन्द्र क्रो निर्मित करतीहै-एक थिरता का केन्द्र, एक मौन का केन्द्र, एक आंतरिक मालकियत का केन्द्र एक भीतरी शक्ति। और जब मैं कहता हूँ कि एक भीतरी शक्ति-तो में शब्दशः कह रहा हूँ-है। इसीलिए यह सूत्र कहता है कि सजगता की अग्नि। यह एक आग है, एक अग्नि है। यदि तुम सजग होना शुरू करो तो तुम अपने भीतर एक नई ऊर्जा को अनुभव करोगे-एक नई आग, एक नया जीवन। और इस नई अग्निनये जीवन, नई ऊर्जा के कारण बहुत सी चीजें जो कि तुम्हारे ऊपर अधिकार जमाये हुए हैं वे सब विलीन हो जाएंगी। तुम्हें उनसे लड़ना नहींपड़ेगा।

तुम्हें अपने क्रोध से, तुम्हारे लोभ से, तुम्हारे काम से, लड़ना पड़ता है क्योंकि तुम कमजोर हो। वास्तव में, काम, क्रोध, लोभ कोई समस्याएं नहीं हैं। कमजोरीही एक मात्र समस्या है। एक बार भी तुम भीतर मजबूत होना शुरू करो इस अनुभूतिके साथ कि तुम हो, तो तुम्हारी शक्तियॉ सघन होने लगती हैं, संगठित होने लगतीहैं भीतर एक बिन्दु पर और एक "स्व" का उदय होने लगता है। स्मरण रहे, इगोका, अहंकार का नहीं, बल्कि "स्व" का जन्म होगा। इगो"स्व" का झूठा भाव है। बिना किसी "स्व" के तुम ऐसा मानते चले जाते हो कि तुम्हारे भीतर "स्व" है वही अहं का भाव है। अहं का अर्थ होता है एक मिथ्या स्व। तुम स्व नहींहो, और फिर भी तुम्हें प्रतीत होता है कि तुम एक "स्व" हो।

मौलिकपुत्र जो कि एक सत्य का खोजी था, बुद्ध के पास आया। बुद्ध ने पूछा कि तुम क्या खोज रहे हो? मौलिकपुत्र ने कहा-मैं अपने स्व को खोजरहा हूँ। मेरी मदद करें। बुद्ध ने कहा कि तुम एक वादा करो कि जो कुछ भी तुम्हें कहा जाएगा, तुम करोगे। मौलिकपुत्र रोने लगा। उसने कहा कि मैं कैसे वादा कर सकता हूँ? मैं तो हूं ही नहीं। मैं तो अभी हूँ ही नहीँ, फिर वादाकेसे करूं? मुझेतो यह भी पता नहीं कि मैं मेरा कल वया होगा। मेरे

भीतर कोई स्व नहीं जो कि वादा कर सके, इसलिए मुझसे ऐसी असंभव बात के लिए मत कहें। मैं प्रयत्न करूँगा, इतना ही कह सकता हूँ कि मैं कोशिश करूँगा, परन्तुमैं ऐसा नहीं-कह सकता कि जो कुछ आप कहेंगे, वही करूँगा, क्योंकि कौन करेगा? मैं उसे ही तो खोज रहा हूँ जो कि वादा कर सके और उसे पूरा कर सके। मैं तो अभी हूँ ही नहीं।

बुद्ध ने कहा-माँ "मौलिकपुत्र यह सुनने के लिए ही मैंने तुमसे यह प्रश्न पूछा था। यदि तुमने वादा किया होता तो मैं तुम्हें यहाँ से जाहर निकाल देता। यदितुमने कहा होता कि मैं वादा करता हूँ तो मैं जान लेता कि तुम कोई"स्वं" कीखोज में नहीं आये हो क्योंकि एक खोजी को तो पता होना चाहिए कि अभीवह है ही नहीं। अन्यथा, खोज की जरूरत ही क्या है? यदि तुम हो ही, तो कोई आवश्यकत्ता नहीं है। तुम नहीं होयदि कोई इस बात को अनुभव कर सके, तो उसका अहंकार वश्प्पीभूत हो जाता है।

अहंकार एक झूठा ख्याल है ऐसी वस्तु का जो है ही नहीं। "स्व" का अर्थ होता है एक केन्द्र जो कि वादा-कर सके। यह केन्द्र तब निर्मित होता है जबकि कोई लगातार सजग रहे, सतत होश बनाये रखे। ध्यान रहे कि जब भी तुम कुछकर रहे हो, कि तुम बैठ रहे हो, कि अब तुम सोने जा रहे हो, कि अब तुम्हें नींद आ रही है, कि तुम अब नींद में डूब रहे हो, प्रत्येक क्षण में जागे रहनेका प्रयास करो और तब तुम्हें प्रतीत होगा कि एक केन्द्र तुम्हारे भीतर निर्मितहोने लगा, चीजें सघन होने लगी, एक केन्दीकरण होने लगा। अब प्रत्येक चीज़ केन्द्र से जुड़ने लगी।

हम बिना केन्द्र के ही हैं। कभी-कभी हमें केन्द्र की प्रतीति होती है, किन्तुवे क्षण ऐसे ही होते हैं जबकि परिस्थितिवश तुम सजग हो जाते हो। यदि अचानकऐसी परिस्थिति हो, कि कोई खतरा पैदा हो गया हो तो तुम्हें तुम्हारे भीतर केन्द्रकी प्रतीति होगी क्योंकि खतरें के समय तुम सजग ही जाते हो। यदि कोई तुम्हेंमार डालने वाला हो तो तुम उस क्षण विचार नहीं कर सकते, तुम उस क्षण ठोस हो जाते हो। तुम अतीत में नहीं गिर सकते, तुम उस क्षण ठोस हो जाते होतुम अतीत में नहीं गिर सकते, तुम भविष्य को भी नहीं विचार सकते। यह क्षणही सब कुछ हो जाता है। और तब केवल तुम घातक के प्रति ही होश से नहींमरत्ते बल्कि तुम अपने प्रति भी सजग हो जाते ही जो कि मारे जाने वाला है।

उस सूक्ष्म क्षण में तुम्हें अपने भीतर एक केन्द्र को प्रतीति होती है। इसीलिएखतरनाक खेलों के प्रति इतना आकर्षण है। पूछो किसी गौरीशंकर अथवा माउंट एवरेस्ट पर चढने वाले से। जब पहली बार हिलेरी वहाँ पहुँचा, तो उसे जरूरअपने भीतर एक केन्द्र का अनुभव हुआ होगा। और जज पहली दफा कोई चन्द्रमापर उतरा, तो अचानक एक गहरे केन्द्र की प्रतीति उसे अवश्य हुई होगी। इसीलिए खतरों का इतना आकर्षण है। तुम एक कार चला रहे हो और तुम उसकी स्पीडबढाते चले जाते हो और तब एक खतरनाक गति आ जाती है। तब तुम कुछभी नहीं सोच सकते, विचार रुक जाता है। उस खतरनाक क्षण में जब मौत कमीभी घटित हो सकती है तुम अपने भीतर एक केन्द्र का अनुभव करते ही। खतराआकर्षण का कारण है क्योंकि खतरे में कभी-कभी तुम्हें अपने भीतर उस केन्द्रको प्रतीति होती है।

नीत्से ने कहीं पर कहा है कि युद्ध चलते ही रहने चाहिए क्योंकि केवलयुद्ध में ही कभी-कभी "स्वं" की प्रतीति होती है-केन्द्र की प्रतीति-क्योंकि युद्ध खतरनाक है। और जब मृत्यु एक सत्य बन जाती है तो जीवन मैं सघनता आजाती है जब मृत्यु सामने ही हो तो जीवन सघन हो जाता हें और तुम अपने केन्द्र पर होते हो। परन्तु किसी भी क्षण जब भी तुम अपने प्रति जागे हुए हो तो तुम केन्द्र पर होते हो। परन्तु यदि वह स्थिति पर निर्भर है तो जब वह स्थिति चलीआयेगी तो वह भी चला जायेगा।

वह स्थितिजन्य नहीं होना चाहिए। वह आंतरिक ही हो। इसलिए सामान्य-से-सामान्य क्षण में भी सजग रहो। जब कुर्सी पर बैठो, तो भी इस बात का ध्यान रखो-बैठनेवाले के प्रति होश रहे। खाली कुर्सी का ही नहीं कमरे का ही नहीँ-चारोंओर के वातावरण का ही नहीं, वरन बैठने वाले का भी ध्यान रहे। अपनी आँखेंबन्द कर लें और स्वयं को महसूस करें, गहरे उतर जायें और स्वयं को अनुभव करें।

हेरीगेल एक जेन गुरु के पास ध्यान सीख रहा था। वह तीन वर्ष तक लगातार

धनुर्विद्या सीखता रहा। और गुरु सदैव कहता रहा कि ठीक है, जो भी तुम कर

रहे हो टीक है, परन्तु वह पर्याप्त नहीं है। हेरीगेल स्वयं एक बहुत अच्छा धनुविद हो गया। उसके सौ फीसदी निशाने ठीक लगते थे और फिर भी गुरु यही कहताकि तुम ठीक कर रहे हो, परन्तु इतना काफी नहीं है। "जब सौ प्रतिशत निशानेठीक लगते हैं तो इससे ज्यादा और क्या चाहिए? अब मैं आगे क्या करूँ? जबसौ प्रतिशत निशाने ठोक लगते हैँ तो इससे आगे मुझसे क्या आशा की जा सकती है?"

कहते हैं ज़ेन गुरु ने कहा, "मुझे तुम्हारे निशानों से अथवा तुम्हारी धनुर्विद्यासे कोईमतलब नहीं। मुझें तो तुम्हारे से मतलब है। तुम एक कुशल टेक्नीशियनबन गये हो। परन्तु जब तुम्हारा बाण धनुष से छूटता है तब तुम्हें अपना होश नहीं रहता। इसलिए यह बेकार है। तीर निशाने पर लगा या नहीं इस बात सेमेरा कोई संबंध नहीं है मेरा तो संबंध तुमसे है। जब तीर धनुष पर खिंचे तोतुम्हारे भीतर भी तुम्हारी चेतना का तीर खिंच जाये। और यदि तुम निशाना चुक भी जाते तो भी उससे कोई भेद नहींपढ़ता। परन्तु तुम्हारा भीतरी निशाना नहींचूकना चाहिए और तुम वही चूक रहे हो। तुम एक कुशल धनुबिद हो गये हो, किन्तु तुम खाली नकल करने वाले ही हो।" परन्तु पश्चिमी चित्त में था आधुनिकमन में, (और पश्चिमी चित्त ही आधुनिक चित्त है) यह बात ख्याल में आना बहुत ही कठिन है। यह उसको बकवास लगेंगी। धनुर्विद्या का संबंध ही इस बातसे है कि निशाने बिल्कुल ठीक लगते हों और उसमें एक विशेष कुशलत्ता हो।

धीरे-धीरे हैरीगेल हत्ताश हो गया, और एक दिन उसने कहा, "अब मैं छोड़कर जा रहा हूँ। यह तो असंभव मालूम पड़ता है। यह संभव नहीं जब तुमकिसी चीज पर निशाना लगा रहे हो, तो तुम्हारी चेतना उस बिन्दु पर चली जातीहै; उस चीज़ पर, और यदि तुम्हें एक सफल धनुर्धर बनना है तो तुम्हें अपनेकोबिल्कुलभूल ही जाना है। केवल निशाने को ही स्मरण रखना है, उस वस्तुको ही ख्याल रखना है और बाकी सब भूल जाता है। सिर्फ निशाना ही रह जाएपरन्तु जेन गुरु लगातार उसे भीतर भी एक निशाने का बिन्दु उत्पन्न करने के लिएकह रहा था। यह तीर दो-त्तरफा होना चाहिए-बाहर तो निशान के बिन्दु परलगा हुआ और भीतर भी सतत स्वयं की ओर सधा रहे, स्व की और।

हेरीगेल ने कहा, "अब मैं जाऊंगा। यह मेरे लिए असंभव है। तुम्हारी शर्तपूरी नहीं हो सकती, और जिस दिन वह जाने वाला था वह सिर्फ बैठा हुआ था। वह गुरु से छुदृटी लेने आया था, और गुरु किसी दूसरे बिन्दु पर निशाना लगा रहा था। कोई और शिष्य सीख रहा था और पहली बार हेरीगेल स्वयं इसमेंसंलग्न नहीं था। वह तो सिर्फ छुट्टी मांगने आया था और वह चुपचाप खाली बैठा था। जैसे ही गुरु खाली होगा, वह छुट्टी लेगा और चला जाएगा। पहलीबार वह उसमें संलग्न नहीं था।

तब अचानक उसे गुरु का ख्याल आया और उसकी दो-तरफा चेतना समझ में आई। गुरु निशाना लगा रहा था। तीन वर्ष तक वह उसी गुरु के पास था, परन्तु वह अपने ही प्रयास में लगा हुआ था। उसने इस आदमी को देखा ही नहीं था कि वह क्या कर रहा था। पहली बार उसने उसे देखा और उसे समझ मेंआया, और

अचानक स्वयंस्फूर्त वह उठा बिना किसी प्रयत्न के, और मास्टर के पास गया। उसके हाथ से उसने धनुष लिया, निशाना साधा और तीर छोड़ दियागुरु ने कहा-"ठीक पहली बार तुमने ठीक किया है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

क्या किया उसने? पहली बार वह अपने में केन्दित हुआ था। निशाने काबिन्दु था, परन्तु अब वह भी मौजूद था वहाँ। इसलिए जो भी तुम करो, चाहेकुछ भी करो-किसी धनुर्विद्या की जरूरत नहीँ जो भी तुम कर रहे हो, जब खाली बैठे भी होचेतना का तीर दो-तरफा हो-डबल-एरोड। स्मरण रहे कि बाहरक्या हो रहा है और यह भी याद रहे, कि भीतर कौन है।

लींची एक दिन सुबह प्रवचन कर रहा था कि किसी ने अचानक पूछ लिया-मेरे एक प्रश्न का उतर दो"मैं कौन हूँ?" लींची उठा और उस आदमी के पास गया। सारा हाल शान्त हो गया। वह क्या करने जा रहा था? यह एक साघारण-सा प्रश्न था। वह अपनी जगह से उतर दे सकता था। वह उस आदमी के पास पहुँचा। सारे हाल में स्तब्धता छा गई। लींची उस प्ररन पूछने वाले की आँखों में आँखें डाल कर देखने लगा। वह एक बड़ा गहरा क्षण था। सब कुछ ठहरगया। प्रश्नकर्ता तो पसीने-पसीने हो गया। खींची उसकी आँखों में घूरकर देख रहा था। और तब लींची ने पूछा-"मुझसे मत पूछो कि मैं कौन हूँ? भीतर जाओ और खोजो उसको जो कि पूछ रहा है। कौन हैँ भीतर ये-प्रश्न पूछने बालाइस प्रश्न का स्रोत दूंढ निकालो। भीतर गहरे उत्तर जाओ।

और ऐसा कहा जाता है कि उस आदमी ने अपनी आँखें बन्द कर लीं, मौनहो गया, और अचानक वह आत्म-ज्ञान को उपलब्ध हो गया। उसने अपनी आँखें खोली, हँसा और लींची के पैर छुए और कहा, "आपने मुझे उतर दे दिया। यहप्रश्न मैं बहुतों से पूछता रहा हूँ और बहुत से उतर मुझे दिए गये परन्तु कोई भी उत्तर सिद्ध साबित न हुआ। परन्तु आपने उत्तर दे दिया।"

"मैं कौन हूँ?" कैसे कोई इसका उत्तर दे सकता है। परन्तु उस विशेष परिस्थितिमैँ-एक हजार आदमी चुप बैठे हों, सुई गिरने को भी आवाज़ जहां सुनाईं पड़ जाये-लींची अपनी आँखों को गड़ा दे और फिर वह आज्ञा दे कि अपनी आँखों को बन्द-करो, भीतर जाओ और पता लगाओ कि यह प्रश्न पूछने वाला कौन है। उत्तर की प्रतीक्षा मत करो। पता लगाओ उसका जो कि पूछ रहा है। और उसआदमी ने आंखें बन्द कीं। क्या हुआ उस क्षण? वह केन्दित हो गया। अचानक वह केन्द्र पर पहुँच गया। अचानक वह अपने अंतरतम के आखिरी बिन्दु को जानगया।

इसे ही खोजना है। और सजगता का अर्थ होता है-वह विधि जिससे अन्तसके इस अन्तिम छोर को खोज लेना होता है। जितने तुम मूच्छित होते हो, उतने ही तुम स्वयं से दूर होते हो। जितने अधिक चेतन, उतने ही स्वयं के निकटयदि सजगता संपूर्ण हो जाये तो तुम अपने केन्द्र पर होते हो। यदि यह चेतना थोड़ी-सी होती है, तो तुम परिधि के पास ही होते हो। जब तुम मूच्छित होतेहो, तो तुम परिधि पर ही होते हो जहाँ कि केन्द्र बिल्कुल विस्मृत हो जाता। इसलिए ये दो संभव मार्ग हैं। तुम परिधि पर आ सकते हो, त्तब तुम मूच्छित होतेहो। कोई फिल्म देखते हुए, कहीं कोई संगीत सुनते हुए तुम अपने कोभूल सकते हो। तब तुम परिधि पर हो। मुझे सुनते वक्त भी तुम स्वयं को भूल सकते होतब फिर तुम परिधि पर हो। गीत्ता कुरान या बाइबिल पढ़ते समय भी तुम अपनेको विस्मृत कर सकते हो। तब तुम परिधि पर हो।

जो कुछ भी तुम कर रहे हो, यदि तुम स्वयं के प्रति सजग रह सको, तोतुम केन्द्र के निकट हो। तब अचानक कभी भी तुम अपने केन्द्र को पा लोगे। तब तुम्हारे पास ऊर्जा होगी। वह ऊर्जा यह सूत्र कहता है कि, अग्नि है। सारा जीवन, यह सारा अस्तित्व ही ऊर्जा है। अग्नि पुराना नाम है। अब उसे विद्युत कहते हैं। आदमी बहुत-बहुत नामों से उसे पुकारता रहा है, किन्तु अग्नि अच्छा नाम है। विद्युत कहना कुछ मृत लगता है, अग्नि

ज्यादा जीवन्त प्रतीत होता है। यह अंतरकी अग्नि, यह सूत्र कहता है कि यही धूप है। जब कोई पूजा करने के लिएजाता है तो वह अपने साथ धूप लेकर जाता है। वह धूप व्यर्थ है जब तक कितुम अपनी अन्तराग्नि को धूप की त्तरह नहीं लाये हो।

यह उपनिषद बाहरी संकेतों को उनके पीछे छिपे हुए भीतरी अर्थ दे रहा हैं। प्रत्येक संकेत का भीतरी हिस्सा भी होता है। बाह्य भी अपने में ठीक है, किन्तु वह काफी नहीं है। और वह केवल प्रतीकात्मक है, वह वास्तविक बात नहीं हैं। वह कुछ संकेत करता है, परन्तु वह वास्तविक नहीं है। तुमने धूप देखीहोगी, वह सब जगह मन्दिरों में जल रही है। वह अपने-आपमें ठीक है, परन्तु यह बाहरी संकेत मात्र है। एक भीतरी अग्नि चाहिए। और जैसे घूप सुगन्ध प्रदानकरती है उसी तरह आंतरिक अग्नि हमें वह सुगन्ध देती है।

ऐसा कहते हैं कि जब महावीर चलते थे तो हर एक को एक सूक्ष्म सुगन्धसे उनकी उपस्थिति का अनुभव होत्ता था। ऐसा बहुत से लोगों के लिए कहा जाता हैँ। यह संभव है। जितना अधिक तुम अपने भीतर केन्दित हो जाते हो उतनीही अधिक तुम्हारी उपस्थिति एक सुगंध बन जाती है। और जिनके पास भी ग्राहकताहोती है, उन्हें उसकी प्रतीति होती है। अतः मन्दिर में बाहरी धूप लेकर प्रवेशन करें, वरन आंतरिक धूप लेकर। और यह आंतरिक धूप केवल अवेयरनेस, केवलसजगता से ही उपलब्ध होती है। दूसरा कोई मार्ग नहीँ है।

जो भी करें होशपूर्वक करें। यह एक लम्बी और कठिन यात्रा है। और एकक्षण के लिए भी होश रखना बड़ा कठिन है। मन सत्तत्त चलता ही रहत्ता है। परन्तु यह असंभव नहीं है। यह अति कठिन है, बहुत श्रम चाहिए, परन्तु यह संभवहै। प्रत्येक के लिए यह संभव है। केवल श्रम चाहिए समग्र रूपेणा श्रम। कुछभी बाकी नहीं छूटना चाहिए, भीतरी कुछ भी अछूता नहीं छूटना चाहिए। सजगताके लिए हर चीज़ का बलिदान देना पड़ेगा। तभी केवल उस आंतरिक ज्योति को खोजा जा सकता है। वह वहाँ है। यदि कोई सब धर्मों में, जो कि हुए हैं औरजो कभी होंगे, एक अनिवार्य एकता को दूंढ़ना चाहत्ता ही तो यहशब्द सजगतासब में मिलेगा।

जीसस एक कहानी कहते हैं। एक बड़े घर का मालिक बाहर गया औरउसने अपने घर के सारे नौकरों को लगातार सजग रहने के लिए कहा-क्योंकिकिसी भी क्या वह वापस लौट सकता है। इसलिए चौबीस घंटे उन्हें सावघानरहना पड़ता है। किसी क्षण भी मालिक लौट सकता है। कोई क्षण, कोई भी दिननिश्चित नहीं है। यदि कोई तारीख तय हो, तो तुम सो सकते हो, तब तुम जोचाहो कर सकते हो, और तुम केवल उस निश्चित तारीख को ही सचेत रह सकतेहो, क्योंकि तब मालिक आ रहा होगा। परन्तु मालिक ने कहा है, मैं किसी भी क्षण आ सकता हूँ। रात और दिन तुम्हें मेरा स्वागत करने के लिए जागते हुएरहना है।

यही जीवन को कहानी है। तुम स्थपित नहीं कर सकते। किसी भी क्षणपरमात्मा आ सकता है, किसी भी क्षण मालिक लौट सकता है। सतत सजग रहने की जरूरत है। कोई तिथि निश्चित नहीं है, कुछ भी पक्का पता नहीं है कि वहअचानक घटना कब घटित होगी। केवल इतना ही कोई कर सकता है कि सजगरहे और प्रतीक्षा करे।

रवीन्द्रनाथ ने एक कविता लिखी है-दि किंग आँफ दि नाइट-रात का राजायह एक बहुत गहरी प्रतीकात्मक कहानी है। एक बहुत बड़ा मन्दिर था जिसमें कई सौ पुजारी थे। एक दिन मुख्य पुजारी ने सपना देखा कि दिव्य अतिथि उसरात्रि आने वाला है-वह दिव्य अतिथि जिसके लिए वे बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहे है। शताब्दियों से सारा मन्दिर उस राजा के लिए प्रतीक्षा कर रहा है-उस दिव्य राजा के लिए। मन्दिर का देवता आने वाला है। बहुत से लोग हंसे कियह केवल सपना है, इसलिए इस पर ध्यान देने की ज़रूरतनहीं है। मुख्य

पुजारीभी सन्देह से भरा आ, कि यह सपना ही तो है। और यदि यह केवल सपना हीसाबित हुआ, तो सब लोग उस पर हंसेंगे। परन्तु कौन जाने, सच ही हो। यहसूचना सच ही निकल जाये।

मुख्य पुजारी सोच में पड़ गया उसी दिन कि किसी को कहा जाये या नहीं। लेकिन फिर डर भी गया यह सच भी हो सकता है। त्तब दोपहर में उसने यहबात कह दी। उसने सारे पुजारियों को इकट्ठा किया, मन्दिर के सारे दरवाजे बन्दकिये और उसने कहा कि बाहर मत जाना और न ही किसी और से कुछ कहनायह केवल सपना भी हो सकता है, कौन जाने। परन्तु मैंने सपना देखा है, औरसपना इतना वास्तविक था। सपने में मन्दिर के देवता वे मुझे कहा था कि मैं आज रात आ रहा हूँ। तैयार रहना। इसलिए हमें सचेत रहना है। आज की रात हमसो नहीं सकते।

अतः उन्होंने सारे मन्दिर को सजाया, उन्होंने सारे मन्दिर को धोया. साफकिया, और उन्होंने अतिथि के स्वागत के लिए सारी तैयारियाँ की। और त्तब वे प्रतीक्षा करने लगे। तब धीरे-धीरे सन्देह पैदा होने लगा। फिर किसी ने कहा-यह सब व्यर्थ ही बात है। आधी रात बीत गई, तब और भी सन्देह बढ़ने लगा। तब किसी ने विद्रोह से भरकर कहा, मैं तो सोने जा रहा हूँ। "यह मूर्खता है, सारादिन व्यर्थ गया और अभी भी हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। कोई आने वाला नहीं है।

तब बहुत-से-लोगों ने उसका साथ दिया। तब मुख्य पुजारी भी झुक गयाऔर उसने कहा, हो सकता है कि वह मात्र सपना ही हो। मैं कैसे कह सकताहूँ कि वह सच था? हो सकता है हम मूर्खता की बात कर रहे हो कि एक सपने की बात के पीछे चल रहे हैं। अतः उन्होंने कहा कि सिर्फ द्वार पर जोआदमी है वह जगा रहे बाकी सब सो जायें। यदि कोई आता है तो वह हमेंखबर कर देगा।

निन्यानबे पुजारी सो गये और जो पुजारी इस काम के लिए नियुक्त किया गया था उसने कहा, जब निन्यानबे ऐसा सोचते हैं कि सपना था तो फिर मैं अपनीनींद खराब क्यों करूं? और यदि दिव्य अतिथि को आना ही हो तो आये। वहतो बहुत बडे रथ पर सवार होकर आयेगा, अतः उसका तो काफी शोरगुल होगाऔर सब लोग जान जायेंगे।

उसने द्वार बन्द किया और वह भी सो गया। तब रथ आया और रथ के पहियों की भारी आवाज हुई। तब कोई जो नींद में था बोला, लगता है कि राजाआ गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि रथ के पहिये भारी शोर मचा रहे हैं। कोईदूसरा जो कि सोने की तैयारी कर रहा था, उसने कहा, समय बर्बाद न करो, सो जाओ। कोई आने वाला नहीं है। यह रथ नहीं है। ये तो आकाश में धिरे बादल-है। और फिर दिव्य अतिथि द्वार पर आया और उसने दरवाजे पर दस्तक दी। फिर किसी ने नींद में ही कहा कि ऐसा लगता है कि कोई आया है और द्वार पर दस्तक दे रहा है। तब मुख्य पुजारी ने कहा कि अब सो जाओ, यारबार नींद खराब मत करो। कोई दरवाजे पर दस्तक नहीं दे रहा है, यह तो केवलहवा है।

सवेरे वे लोग रो रहे ये और चिल्ला रहे थे क्योंकि रात को रथ आया था। सड़क पर उसके चिह्नथे और दिव्य अतिथि द्वार तक आया था और उसने दस्तक दी थी। धूल पर निशान बने हुए थे और सीढियों पर उसके चिह्न थे।

ऐसी कितनी ही कहानियां हैं। महावीर और बुद्ध ने कितनी ही कहानियाँकही है जिसमें उन्होंने बतलाया है कि आत्म-ज्ञान कभी भी और किसी भी क्षण हो सकता हैं। यह संभव है। इसलिए बहुत सावधान सचेत और सजग रहने की आवश्यकता है। यह रात के राजा की कहानी मात्र कहानी नहीं है। यह सच है हम सभी चीजों कोइसी तरह लेते रहते हैं। और जितने भी अर्थ हम निकालतेहैं वे सभी हमारी नींद से आते हैं और नींद में ले

जाने वाले होते हैं। हम कहतेहैं, यह कुछ नहीं है, सिर्फ हवा का झोंका ही है। हम कहते हैं कि वहां कुछनहीं है सिर्फ बादल की गड़गड़ाहट है। तब हम आराम से सो सकते हैं। हमधर्म को मना करते चले जाते हैं, हम उन सभी चीजों को जो कि हमारी नींद तोड़ती है, मना करते चले जाते हैं। हम तर्क करते हैं कि कोई परमात्मा नहींहै, कि कोई धर्म नहीं है कि कुछ भी नहीं है, सिर्फ हवा है, सिर्फ बादल हैतब हम बडे मजे से सो सकते हैँ।

यदि परमात्मा है, यदि दिव्यता है, यदि हमसे कुछ भी उच्चतर की संभावनाहै तो फिर हम आराम से नहींसो सकते। तब हमें सजग होना पड़ेगा। जगानापड़ेगा और संघर्ष व श्रम करना पड़ेगा। तब फिर रूपान्तरण हमारी चिंता का कारणबन जाता है।

सजगता ही विधि है अपने को केन्दित करने के लिए-आंतरिक अग्नि को उपलब्धि के लिए। वह वहाँ छिपी है, उसे खोजा जा सकता है। और एक जारउसे खोजने के बाद ही हम प्रभु के मन्दिर में प्रवेश कर सकते है-उसके पहलेनहीं। पहले कभी भी नहीं।

परन्तु, हम अपने कोप्रतीकों से धोखा दे सकते हैं। प्रतीक हमें गहरी वास्तविकता की और इशारा करने के लिए किन्तु हम चाहें तो उनका प्रवंचनाकी तरह उपयोग कर सकते है। हम बाहरी धूप जला सकते हैं, हम बाहरी चीजोंसे पूजा कर सकते हैं, और तब हम मजे से कह सकते हैं कि हमने कुछ किया है। हम अपने को धार्मिक समझ सकते हैं बिना जरा भी धार्मिक हुए। यही हो रहा है। ऐसी ही तो मानवता हो गई है। प्रत्येक यही समझता है कि वह बड़ा घार्मिक है क्योंकि वे बाहरी प्रतीकों कोमान रहे हैं, बिना किसी आंतरिक अग्नि के।

प्रयत्न करते रहें। सफल न हों तब भी। शुरू-शुरू में ऐसा होगा। तुम बार-बार असफल हो जाओगे। परन्तु तुम्हारी असफलता भी मदद करेमी। जब तुम्हेंपता चलेगा कि तुम एक क्षण के लिए भी सजग नहीं हो सकते, तब तुम्हें पहलीबार मालूम पड़ेगा कि तुम कितने मूच्छित हो।

सड़क पर चलो और तुम कुछ कदम भी होशपूर्वक नहीं चल सकते। बार-बार तुम अपने को भूल जाते हो। तुम रास्ते पर लगे एक विज्ञापन कोपढ़ने लगतेहोऔर तुम अपने को भूल जाते को। कोई निकट से गुजरेगा और तुम उसे देखनेलगोगे, स्वयं को भूल जाओगे।

तुम्हारी असफलताएं भी सहायक होंगी। वे तुम्हें बतलाएंगी कि तुम कितने मूच्छित हो। और यदि तुम इतना भी जान सको कि तुम मूच्छित हो तो भी तुमनेथोड़ी सजगता तोपा ली। यदि कोई पागल इतना भी जान ले कि वह पागल है तो वह ठीक होनेके मार्ग पर चल पड़ा।

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

ज्ञानवृक्ष का निषिद्ध फल : काम

प्रश्न

1. ज्ञान के वृक्ष के फल के लिए निषेध का गहरा अर्थ क्या है?
2. केन्द्रित होने व आंतरिक रिक्तता में क्या संबंध है?

भगवान, ज्ञान के वृक्ष का फल खा लेने के बाद, आदम और ईव ने पहली बार अपनी नग्नता का अनुभव किया और लज्जित हुए। इस अनुभव के पीछे क्या गहरा अर्थ हैं? और, दूसरा, यह कहा जाता है कि ज्ञान के वृक्ष का निषेधित फल यौन का ही ज्ञान हैं, आपका इस संबंध में वया दृष्टिकोण है?

प्रकृति स्वयं अपने में निर्दोष हैँ, किन्तु जिस क्षण भी मनुष्य उसके प्रति जागता है बहुत-सी समस्याएँ उठ खड़ी होती है। और जो भी प्राकृतिक है और निर्दोष है, उसे अर्थ देने शुरू ही जाते हैं, तो फिर न वह प्राकृतिक रहता है और न ही निर्दोष। प्रकृति अपने-आप में निर्दोष है। परन्तु जब मनुष्यता होश से भरकर उसकी विवेचना करने लगती है, तो वह विवेचना ही बहुत-से दोषों, पापों, अनैतिकताओ के सिद्धान्त पैदा करने लगती है।

आदम और ईव की कहानी कहती है, जब उन्होंने ज्ञान के वृक्ष का फल खाया तो उन्हें अपनी नग्नता का पहली बार पता चला और वे लज्जित अनुभव करने लगे। वे नग्न थे ही किन्तु उन्हें उसका पता नहीं था। इसका पता होना कि वे नग्न हैं, एक अन्तराल पैदा करता है। जैसे ही तुम्हें किसी बात का पता चलता हैं, वैसे ही तुम निर्णय करने लगते हो। तब तुम उससे भिन्न हो जाते हो उदाहरणार्थ-आदम नग्न था। प्रत्येक बच्चा आदम की भांति ही नग्न पैदा होता है और बच्चों को अपनी नग्नता के बारे में कुछ पता नहीं होता। वे कुछ भी निर्णय नहीं कर सकते कि यह ठीक है या गलत है। उन्हें पता नहीं है इसलिए वे कोई निर्णय नहीं कर सकते। जब आदम को मालूम हुआ कि वह नग्न है तभी निर्णय प्रवेश कर गया कि यह नग्नता अच्छी है या बुरी।

आदम के इर्द-गिर्द जितने भी पशु थे, वे भी नग्न धे, परन्तु कोई भी पशु अपनी नग्नता के प्रति होश से नहीं भरा था। आदम को पता चल गया और इस पता चलने के साथ ही आदम अनूठा हो गया। अब नग्न रहना-पशु होना था और आदम सचमुच ही अब पशु होना पसन्द नहीं कर सकता। कोई भी आदमी नहीं चाहता कि पशु हो, हालांकि हैं सभी पशु।

जब पहली बार डार्विन ने कहा कि आदमी एक विकास है-एक विशेष जाति के जानवर का विकास है, तो उसका भारी विरोध किया गया क्योंकि आदमी तो सदा से अपने को ईश्वर का वंशज समझता रहा है-देवदूतों से थोड़ा ही छोटा और बन्दर को अपना पिता मानना बड़ा कठिन था, एक तरह असंभव था अब तक ईश्वर पिता था, और अचानक डार्विन ने उसे बदल दिया। ईश्वर को सिंहासन से उतार दिया। और उसकी जगह बन्दर को बैठा दिया गया। बन्दर अब पिता हो गया। डार्विन भी दोषी अनुभव करने लगा जैसे कि वह कोई अधार्मिक आदमी हो। यह एक दुर्भाग्य था कि तथ्य बतला रहे थे कि आदमी पशु से विकसित हुआ है, कि वह पशु जगत का एक हिस्सा है, कि वह पशुओं से भिन्न नहीं है।

आदम को लज्जा का अनुभव हुआ क्योंकि वह अपनी पशुओ से तुलना कर सकता था। एक तरह से अब वह उनसे भिन्न था क्योंकि उसे नग्नता का पता था। आदमी अपने को इसलिए ढंकता है ताकि स्वयं को पशुओं से भिन्न कर सकें। और हम उस सभी के प्रति लज्जा का अनुभव करते है जो कि पशुओं जैसा है और जिस क्षण भी कोई पशुओं जैसा कोई कृत्य करता है, हम कहते हैं-क्या कर रहे हो? क्या तुम पशु हो? हम किसी भी चीज की निन्दा कर सकते हैं, यदि हम उसे पशुओं जैसी सिद्ध कर दें। हम यौन को निन्दित करते हैं, क्योंकि वह पाशविक है। हम किसी भी बात को निन्दित कर सकते है यदि पशुओं से उसे जोड़ा जा सके।

होश के साथ निन्दा का भाव आया- पशुओं की निन्दा। और निन्दा ने ही हमारे सारे दमन को जन्म दिया, क्योंकि आदमी एक पशु हैं। वह उसके पार जा सकता है, वह दूसरी बात है। परन्तु वह पशुओं से ही आया है तो उनसे ऊपर उठ सकता है, परन्तु वह है तो पशु ही। एक दिन वह पशु नहीं हो सकता है, वह अतिक्रमण कर सकता है, परन्तु वह पशुओं का वंशज है, इसे मना नहीं कर सकता। वह पशुता मौजूद है। और एक बार यह खयाल आ गया कि हम पशुओं से भिन्न हैं, तो आदमी उस सब को दमन करने में लग गया जो कि पशु-वंश परम्परा का हिस्सा था। इस दमन ने विभाजन कर दिया और इसलिए आदमी दो में बंटा हुआ है-दो है। वह जो वास्तविक, बुनियादी है, पशु ही रहता है और उसका बौद्धिक, दिमागी हिस्सा सोचता रहता है झूठी काल्पनिक दिव्यता को-बातें अतः केवल एक हिस्सा ही तुम्हारे मन का तुमसे तादात्स्य जोड़े रखता है और बाकी सारा हिस्सा मना कर दिया जाता है।

शरीर में भी हमने विभाजन कर लिए हैं। शरीर के नीचे का हिस्सा निन्दित है। वह शारीरिक तौर से ही नीचे का नहीं है, वह मूल्यों के आधार पर भी नीचा है। ऊपर का हिस्सा खाली ऊपर का ही नहीं है, बल्कि वह ऊँचा है। तुम अपने नीचे के हिस्से के प्रति दोषी अनुभव करते हो। और यदि कोई पूछे कि तुम कहां स्थित हो तो तुम अपने सिर की ओर इशारा करते हो। वह दिमाग का, सिर का, बुद्धि का हिस्सा है। हम अपने को बुद्धि से जोड़ते है, न कि शरीर से। और यदि हमसे कोई बहुत ज्यादा आग्रह करे तो हम अपने को शरीर के ऊपरी हिस्से से जोड़ते है, नीचे के हिस्से से कभी नहीं। नीचे का हिस्सा निन्दित कर दिया गया है।

क्यों? शरीर तो एक है। तुम उसे बांट नहीं सकते। कहीँ कोई विभाजन नहीं है। सिर और पैर एक है, और तुम्हारा मस्तिष्क और जननेन्द्रियां एक हैं वे एक इकाई की भांति काम करते हैं। परन्तु यौन को मना करने के लिए, सेक्स की निन्दा करने के लिए हम रारीर के सारे निचले हिस्से को मना कर देते हैं।

आदम को पाप का अनुभव हुआ, क्योंकि पहली बार उसने अपने को पशुओं से भिन्न महसूस किया। और यौन सर्वाधिक पाशविक वृत्ति है। मैं "पाशविक" शब्द का उपयोग कर रहा हूँ एक तथ्य की तरह, बिना किसी प्रकार के निदा के स्वर के। सबसे अधिक पशुता की बात सेक्स ही होगी। क्योंकि यौन जीवन है और स्रोत है तथा उद्गम है। आदम और ईव सेक्स के प्रति सजग हो गये उन्होंने उसे ढंकने की कोशिश को। केवल बाहरी रूप से नहीं बल्कि उन्होंने उस तथ्य को अपनी भीतरी चेतना में भी छिपाने का प्रयत्न किया। उससे चेतन और अचेतन मन के बीच विभाजन हो गया।

मन भी एक है, जैसे कि शरीर एक है। परन्तु यदि तुम किसी बात की निन्दा करते हो तो वह हिस्सा अचेतन में चला जाता है। तुम इतना उसके प्रति निन्दा से भर जाते हो कि तुम भी उसे जानने से डरते हो कि वह तुम्हारे भीतर कहीं भी है। तुम एक रुकावट पैदा करते हो, तुम एक दीवाल खडी कर देते हो। और जो कुछ भी निन्दित है उसे तुम दीवाल के उस पार डाल देते हो और फिर तुम उसे भूल जाते हो। वह वहाँ पड़ा रहता है,

वह वहीं से काम करता रहता है, वह तुम्हारा मालिक बना रहता है। और अभी भी तुम अपने को धोखा दे सकते हो कि अब वह कहीं भी नहीं है।

वह निन्दित हिस्सा ही हमारा अचेतन बन जाता है। इसीलिए हम कभी ऐसा नहीं सोचते कि हमारा अचेतन मन हमारा ही है। तुम रात सपना देखते हो, तुम एक बहुत कामुकतापूर्ण सपना या बहुत भयानक सपना देखते हो, जिसमें तुमने किसी आदमी को हत्या कर दी हैं। जिसमें कि तुमने अपनी पत्नी की हत्या कर दी है। सुबह तुम्हें कोई अपराध का भाव नहीं लगता, तुम कहते हो कि वह तो केवल सपना था। वह केवल सपना नहीं था। कुछ भी यूं ही नहीं होता। वह तुम्हारा ही सपना था, किन्तु वह तुम्हारे अचेतन से संबंधित था। सवेरे तुम अपने को चेतन मन से जोड़ लेते हो और इसलिए तुम कहते हो कि यह सिर्फ सपना है। इससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं, यह तो बस हो गया। यह असंगत है, आकस्मिक है। तुम उससे कोई संबंध नहीं बना पाते। परन्तु वह तुम्हारा ही सपना था और तुमने ही उसे निर्मित किया था। और वह तुम्हारा ही मन था और तुमने ही कृत्य किया था। सपने में भी तुम्हीं ने हत्या की थी, बलात्कार किया था।

चेतन मन के इस निन्दा करने के कारण ही आदम और ईव डर गये, अपनी नग्नता से लज्जित हुए। उन्होंने अपने शरीर को ढंकने की कोशिश को। केवल अपने शरीर को ही नहीं बाद में अपने मन को भी ढंकने लगे। हम भी वहीं कर रहे हैं। क्या है अच्छा? क्या हैं "शुभ"? जो कि समाज के द्वारा अच्छा समझा जाता है, वही तुम अपने चेतन मन में रख लेते ही, और जो कुछ भी बुरा है, समाज द्वारा निन्दित है, उसे तुम अचेतन में फेंक देते हो। वह एक कचरे का थैला हो जाता है। तुम उसमें चीजें फेंकते चले जाते हो और वह वहीं पड़ी रहती है। गहरी जड़ों में, नीचे वे अपना काम करती रहती हैं। वे तुम्हें हर क्षण प्रभावित करती रहती हैं। तुम्हारा चेतन मन तुम्हारे अचेतन मन के समक्ष नपुंसक सिद्ध होता है क्योंकि तुम्हारा चेतन मन केवल समाज को उप-उत्पत्ति है और तुम्हारा अचेतन ही प्राकृतिक है, जैविक है। उसमें शक्ति है, उसमें ऊर्जा है। इसलिए तुम "भली" बातें सोचते रह सकते हो, किंतु तुम "बुरी" बातें करते चले जाओगे।

संत अगस्तीन बतलाते हैं- "हे परमात्मा, यही एक मात्र मेरे लिए समस्या है-जो कुछ भी मैं सोचता हूँ कि करने योग्य है मैं कभी नहीं करता, और जो कुछ भी मैं सोचता हूं कि नहीं करना है वही मैं सदैव करता हूं।" यह समस्या संत अगस्तीन के लिए ही नहीं है, यह समस्या प्रत्येक के लिए है, जो भी चेतन और अचेतन में बंटे हैं लज्जित अनुभव करने के कारण ही आदम दो में बंट गया। वह अपने प्रति ही लज्जा से भर गया। और जिस हिस्से के प्रति वह लज्जित अनुभव करने लगा, वह हिस्सा उसके चेतन मन से कट गया। तब से आदमी एक बंटा हुआ, खण्डित जीवन जी रहा है। और उसे लज्जा क्यों अनुभव हुईं? वहां कोई भी तो नहीं था। न कोई उपदेशक था, न ही धार्मिक चर्च था, जिसने उसे शरम करने के लिए कहा हो।

जिस क्षण भी तुम सजग होते हो, अहंकार प्रवेश करता है। तुम एक परीक्षक हो जाते हो। बिना होश के तुम मात्र एक हिस्से होते हो- बड़े विराट जीवन के हिस्से। तुम अलग और भिन्न नहीं होते। यदि एक लहर होश में आ जाये तो उसका अहंकार खडा हो जायेगा और उसी क्षण वह सागर से भिन्न हो जायेगी यदि लहर होश में आ सके और सोचे कि मैं हूं तो लहर अपने को सागर से एक नहीं समझ सकती, दूसरी लहरों से एक नहीं मान सकती। वह भिन्न हो जाती है, और अपने को अलग मानने लगती है। अहंकार पैदा हो गया। ज्ञान अहंकार निर्मित करता है।

बच्चे बिना अहंकार के होते हैं, क्योंकि उन्हें कोई ज्ञान नहीं होता। वे निर्दोष होते हैं, और निर्दोषिता में अहंकार प्रवेश नहीं कर सकता। जितने तुम विकसित न होते हो, इतने ही अधिक तुम अहंकार में भी बृद्धि करते

हो। बूढ़ों के पास बड़ा सघन व गहरा अहंकार होता है। यह स्वाभाविक है। उनका अहंकार सत्तर अस्सी वर्ष तक जिया है। उनके पास लम्बा इतिहास है।

तुम्हें आश्चर्य होता है यह जान कर कि तुम याद क्यों नहीं रख पाते-अपने बचपन की। यदि तुम अपनी स्मृति में पीछे लौटकर जाओ, तो तुम तीन या चार वर्ष के अधिक पीछे नहीं जा सकते। ज्यादा-से-ज्यादा तुम पाँचवे या चौथे या तीसरे वर्ष की कोई बात याद कर सकते हो परन्तु पहले तीन वर्ष बिल्कुल खाली हैं। वे वर्ष भी थे तो जरूर और बहुत-सी घटनाएँ हुईं भी थीं किन्तु हम उनको याद क्यों नहीं कर पाते? क्योंकि उस समय कोई अहंकार निर्मित नहीं हुआ था, इसलिए समस्या आना कठिन है। एक प्रकार से तुम नहीं थे, इसलिए तुम याद कैसे कर सकते हो? तुम होते, तो तुम याद भी रख लेते, परन्तु तुम नहीं थे।

तुम याद नहीं कर सकते। स्मृति तभी बनती है जबकि अहंकार अस्तित्व में आ गया होता है। यदि तुम नहीं हो, तो स्मृति कहां खडी होगी। तीन साल तो बडी बात है, एक बच्चे के लिए तो प्रत्येक क्या ही एक घटना होती है। वास्तव में उसे अघिक याद होना चाहिए। उसे प्रारंभिक वर्ष अधिक स्मरण होने चाहिए जीवन के शुरू के दिन, क्योंकि तब हर चीज़ रंगीन थी, हर बात अपूर्व थी। जो कुछ होता था, नवीन था। परन्तु उसकी कोई स्मृति नहीं है। क्यों? क्योंकि अहंकार नहीं था। स्मृति को लटकने के लिए अहंकार की खूंटी की आवश्यकता होती हैं।

जैसे ही बच्चा अपने को दूसरों से भिन्न समझने लगता है उसे लज्जा अनुभव होती है। उसे वही शर्म मालूम होतीं है जो कि आदम को हुईं थी। आदम ने अपने को नग्न पाया-पशुओं की तरह नग्न, हर चीज की तरह नग्न। तुम्हें भिन्न होना चाहिए, अपूर्व होना चाहिए तुम्हें दूसरों के जैसा नहीं होना चाहिए। तभी केवल तुम्हारा अहंकार बढ़ सकता है। पहला कृत्य तो नग्नता को ढंकने का था अचानक आदम भिन्न हो गया। वह पशु नहीं रहा। आदमी आदम की तरह और उसकी लज्जा के साथ पैदा होता है। आदम की लज्जा की प्रतीति के साथ ही मनुष्य पैदा होता है। एक बच्चा आदमी नहीं होता। वह आदमी तभी होने लगता है जबकि वह अपने को भिन्न, दूसरों से अलग अनुभव करे-जबकि वह एक अहंकार हो जाए। इसलिए ध्यान रहे, धर्म तुमको दोष का भाव नहीं देता। बल्कि वह तुम्हारा ही अहंकार होता है। धर्म इस भाव का शोषण करता है-वह दूसरी बात है। हर पिता उसका शोषण करता है, वह भी दूसरी बात है। हर पिता अपने बेटे से कहता है, क्या कर रहे हो, पशुओं की तरह व्यवहार कर रहे हो? हंसो मत, चिल्लाओ मत, यह मत करो, वह मत करो, दूसरों के सामने यह मत करो। क्या कर रहे हो, पशुओं की तरह आचरण कर रहे हो। और यदि बच्चा सोचता है कि वह पशु है तो उसके अहंकार को चोट लगती है। अपने अहंकार को तृप्ति के लिए, वह अनुकरण करता है, वह भी पंक्ति में चलने लगता है।

पशु होना बड़ा आनन्दपूर्ण है, क्योंकि तब स्वतंत्रता है-एक गहरी स्वतंत्रता-चलने की, करने की। परन्तु इगो को, अहंकार को यह पीड़ा देता है इसलिए चुनाव करना पड़ता है। यदि तुम स्वतंत्रता को चुनते हो तो तुम पशुओं की भांति हो जाओगे निन्दित। इस संसार में भी और उस संसार में भी तुम निन्दित हो जाओगे। समाज तुम्हें नर्क में फेंक देगा। इसलिए तुम्हें आदमी होना है, पशु की तरह नहीं होना। तभी अहंकार की तृप्ति होती है।

तब कोई अहंकार के इर्दगिर्द जीने लगता है। वह वही करता है जो कि इगो-फुलफिलिंग है, अहंकार को मारने वाला है। परन्तु तुम प्रकृति को पूर्णतः झुठला नहीं सकते। वह तुम्हें प्रभावित करती रहेगी। तब कोई दो जीवन जीने लगता है, एक आदम के पूर्व को जिन्दगी, दूसरी आदम के बाद की जिन्दगी तब कोई दो जीवन जीने लगता-है, कोई दो मन के साथ, डबल माइंड के साथ जीने लगता है। तब एक चेहरा निर्मित होता है जो कि समाज को दिखाने के लिए होता है। एक निजी चेहरा होता है और एक सामाजिक चेहरा। परन्तु तुम अपने

निजी चेहरे ही हो। और प्रत्येक मनुष्य आदम ही है-नग्न पशु की तरह परन्तु तुम उसे समाज को नहीं दिखा सकते। समाज को तुम आदम के बाद का चेहरा दिखलाते हो-साफ-सुथरा; हर एक बात समाज के अनुसार। जो कुछ भी तुम दूसरों को दिखाते हो वह वास्तविक नहीं होता, बल्कि अपेक्षित होता है जो है वह नहीं, जो होना चाहिए वह।

इसलिए हर मनुष्य को एक चेहरे से दूसरा चेहरा सतत बदलते रहना पड़ता है। निजी चेहरे से सामाजिक चेहरा बदलते रहना पड़ता हैं। यह एक बड़ा तनाव है। इससे बहुत उर्जा व्यय होती है। परन्तु मैं पशुओं की भांति हो जाने के लिए नहीं कह रहा हूं। वह अब तुम हो भी नहीं सकते। निषेधित फल वापस नहीं लौटाया जा सकता। तुमने उसे खा लिया है, वह तुम्हारी हड्डी और रक्त हो गया है। उसे फेंकने का कोई मार्ग भी नहीं, उसे वापस करने का भी कोई रास्ता नहीं कि हम परमात्मा के पास जाएं और कहें-मैं इसे वापस करता हूं- इस ज्ञान के निषेधित फल को। मुझे क्षमा करें। कोई रास्ता नहीं। वापस लौटने का कोई रास्ता नहीं। अब वह तुम्हारा रक्त बन गया है। हम वापस नहीं लौट झुकते। हम केवल आगे जा सकते हैं। वापस लौटना होता ही नहीं। हम ज्ञान के नीचे नहीं जा सकते। हम केवल ज्ञान के पार जा सकते हैं केवल एक मन की निर्दोषिता संभव है-संपूर्ण जागरूकता की निदोंषिता।

दो तरह की निर्दोषितायें है-एक ज्ञान के नीचे की है-बच्चों को, आदम के पूर्व की, पशुओं जैसी। ज्ञान के नीचे तुम, तुम नहीं होते। अहंकार नहीं होता, वह उपद्रवी नहीं होता। तुम इस समग्र ब्रह्म के हिस्से होते हो। तुम नहीं जानते कि तुम उसके एक हिस्से हो, तुम किसी ब्रह्म को नहीं जानते। तुम कुछ भी नहीं जानते। तुम होते हो, बिना कुछ जानते हुए। सचमुच तब कोई दुख नहीं होता क्योंकि बिना ज्ञान के दुख असंभव है। दुख को भोगने के लिए भी किसी को सजग होना पड़ता है। तुम दुख को केसे भोगीगे, यदि तुम्हें उसका पता नहीं है।

तुम्हारा ऑपरेशन किया जा रहा है। एक शल्य-चिकित्सक तुम्हारा ऑपरेशन कर रहा है। यदि तुम होश में हो तो तुम्हें पीडा होगी। यदि तुम बेहोश हो तो तुम्हें पीड़ा नहीं होगी। पांव पूरा काट दिया गया है और फिर भी कोई पीड़ा नहीं है। पीड़ा का कुछ पता नहीं चलता है। तुम बेहोश हो, तुम बेहोशी में पीड़ा नहीं भोग सकते। तुम्हें पीड़ा होगी यदि तुम होश में हो। जितने अधिक सचेतन, उतनी ही अधिक पीड़ा होगी। इसीलिए जितना अधिक आदमी का ज्ञान बढ़ता है उतना ही वह अधिक पीड़ा को अनुभव करता है।

पुराने आदिम लोग इतने दुखी अनुभव नहीं करते थे, जितने कि तुम करते हो। इसका कारण यह नहीं कि वे अच्छे लोग थे बल्कि इसलिए कि उन्हें पता ही नहीं था। आज भी, गांव के रहने वाले लोग आधुनिक जगत के हिस्से नहीं हुए है और वे एक सरल, निर्दोष ढंग से रहते हैं। वे इतने दुखी नहीं है। इसके कारण बहुत-सी भ्रांत धारणाएँ विचारकों के खयाल में आई है। रूसो या टॉल्सटॉय या गाँधी : वे सोचते है कि चूंकि गाँव के लोग ज्यादा आनन्दपूर्ण हैं, अच्छा होगा यदि सारा संसार ही पुनः आदिम युग में पहुँच जाए, वापस जंगल में लौट जाए, प्रकृति में वापस पहुँच जाए। परन्तु वे गलत हैं क्योंकि जो आदमी सभ्यता से भरे शहर में रह चुका उसे गाँवों में कष्ट होगा। उस भाँति कोई भी गाँव का आदमी दुःखी नहीं होगा।

रूसो लगातार प्रकृति में वापस लौट जाने की बात करता चला जाता है और पेरिस में रहता जाता है। वह स्वयं गाँव में रहने नहीं जाएगा। वह गाँव के जीवन के संगीत की बात करता है, वहाँ के सौंदर्य की, वहाँ की सरलता की बात करता हैं परन्तु वह स्वयं गाँव नहीं जायेगा। और यदि वह वहाँ चला जाता है तो उसको इतना कष्ट होगा जितना कि किसी गाँव के रहने वाले को कभी नहीं होगा, क्योंकि यदि एक बार चेतना विकसित ही

गई तो तुम उसे उतार नहीं सकते। वह "तुम" हो। वह कुछ ऐसी-बात नहीं है जिसे कि तुम उतार सको, वह तुम्ही हो। केसे तुम स्वयं को उतार सकते हो? तुम्हारी चेतना ही तुम हो।

आदम लज्जा से पीड़ित हुआ, उसे अपनी नग्नता का बोध हुआ; उसका कारण है अहंकार। अहंकार एक केन्द्र है। आदम ने एक केन्द्र को पा लिया। यद्यपि वह मिथ्या ही था, परन्तु फिर भी केन्द्र तो था। अब आदम सारी समष्टि से भिन्न था। वृक्ष थे, तारे ये, सब कुछ था परन्तु आदम अपने में एक द्वीप बना पीड़ित हो रहा था। अब उसका जीवन इसका ही था, न किनारे ब्रह्म का एक हिस्सा और जैसे ही तुम्हारी जिन्दगी तुम्हारी हो जाती है, संघर्ष का प्रवेश होता है। तुम्हें एक-एक इंच संघर्ष करना पड़ता है जीने के लिए, बचने के लिए।

पशु संघर्षरत नहीं है। यद्यपि वे हमें अथवा डार्विन को संघर्षरत दिखाई पड़ते हैं, वे संघर्ष में नहीं है। वे डार्विन को लड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं क्योंकि हम अपने ही विचार प्रक्षेपित करते रहते है। वे संघर्ष में नहीं हो सकते। वे हमें संघर्षरत दिखाई पड़ सकते हैं क्योंकि हमारे लिए सभी कुछ संघर्ष है। ऐसा दिखलाई पड़ सकता है कि वह संघर्ष में डूबे है, परन्तु वस्तुतः वे संघर्ष में नहीं डूबे हैं। वे तो इस समष्टि की एकता में बह रहे हैं। यहाँ तक कि यदि वे कुछ भी कर रहे हैं तो उसके पीछे भी कोई कर्ता नहीं है। वह एक प्राकृतिक घटना है।

यदि एक शेर अपने किसी शिकार को खाने के लिए मार रहा है, तो उसके पीछे थी कोई कर्ता नहीं है, कोई हिंसा नहीं है। वह एक साधारण घटना है केवल भूख के लिए भोजन। वहाँ कोई भूखा नहीं है, पर सिर्फ भूख है। एक भोजन पाने को यांत्रिक व्यवस्था, न कि हिंसा। केवल आदमी हिंसक हो सकता है, क्योंकि केवल आदमी ही कर्ता हो सकता है। तुम बिना भूख के भी मार सकते हो, किन्तु एक शेर बिना भूख के कभी नहीं मार सकता। क्योंकि शेर में उसकी भूख किसी को मारती है, न कि शेर। एक शेर खेल में कभी नहीं मार सकता। शेर के लिए शिकार जैसा कोई खेल नहीं होता। वह सिर्फ मनुष्य के लिए ही होता है। तुम खेल में भी हत्या कर सकते हो- सिर्फ मजे के लिए। यदि शेर तृप्त हो गया है, तो फिर कोई हिंसा नहीं होगी, कोई खेल नहीं होगा। वह तो सिर्फ भूख की घटना है। वहाँ कोई करने वाला नहीं है।

प्रकृति एक गहन वैधिक प्रवाह है। इस प्रवाह में आदम अपने प्रति जाग जाता है। और इसलिए सजग हो जाता है कि उसने ज्ञान के वृक्ष का निषेधित फल खा लिया था। ज्ञान निषिद्ध था। "ज्ञान के वृक्ष के फल मत खाता।" ऐसा आदेश था। आदम ने उसकी अवज्ञा की, और तब फिर वह वापस नहीं लौट सकता था। और बाइबिल कहती है कि आदम के विद्रोह के लिए सभी को दुःख उठाना पड़ेगा क्योंकि प्रत्येक आदमी एक तरह से पुनः आदम ही है।

परन्तु तुम उसके लिए दुःख नहीं मानोगे। तुम उसके लिए दुख केसे मानोगे जो कि किसी और ने कभी किया हो? परन्तु यह इतिहास प्रति दिन सतत पुनः होता रहता है। हर बच्चे को ईडन के बाग से निष्कासित किया जाता है। प्रत्येक बच्चा आदम की तरह पैदा होता है, और तब उसे निकाल दिया जाता है। इसी कारण कवियों में, कलाकारों में, साहित्यिक लोगों में नोसल्जिया-अतीत के प्रति इतना लगाव होता हैं। इन सभी लोगों में जो कि व्यक्त कर सकने की युक्ति जुटा सकें। अतीत के प्रति भारी लगाव होता है। वे सोचते हैं कि बचपन एक सुनहरा युग था।

प्रत्येक यह सोचता है कि बचपन बहुत सुन्दर था, स्वर्ग था, और हर एक बचपन में वापस लौटना चाहता है। यहाँ तक कि एक बूढ़ा भी जो मरण शैय्या पर पड़ा है, अपने बचपन के बारे में उसी तरह से सोचता है कि बचपन बड़ा सौन्दर्य से भरा था, आनन्द था, फूल थे, तितलियाँ थीं, परियों के सपने थे। प्रत्येक अपने बचपन में एक वण्डरलैण्ड में रहता है, खाली अलाइस ही नहीं, बल्कि प्रत्येक बच्चा! यह छाया हमारे साथ-साथ चलती है।

आखिर बचपन इतना सुन्दर, इतना आनन्दपूर्ण क्यों है? क्योंकि तुम तब समष्टि के बहाव के साथ एक होते हो, बिना किसी दायित्व के पूर्ण स्वतन्त्रता में, बिना किसी अन्तःकरण के, बिना किसी बोझ के। तुम इस तरह जिये-जैसे कुछ भी करने के लिए नहीं। तुम्हें कुछ भी तो नहीं करना था, बस जो जैसा था, स्वीकृत था। और तब अहंकार आता है, और तब आते हैं संघर्ष और द्वंद्व। तब हर बात एक दायित्व हो जाती है। और सारी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है और हर क्षण एक बन्धन बन जाता है।

मनौवैज्ञानिक कहते हैं कि धर्म इसी नोसल्जिया को, इसी बचपन को वापस लौट जाने की इच्छा को प्रतिबिम्बित करता है। और वे इससे भी आगे चले जाते हैं-वे कहते हैं कि अन्त में प्रत्येक की मनोकामना फिर से माँ के गर्भ में पहुँच जाने की होती है, क्योंकि जब तुम गर्भ में थे तो तुम इस समिष्ट के हिस्से थे। यह समष्टि ही तुम्हें भोजन दे रही थी। श्वास लेने की भी आवश्यकता न थी माँ ही तुम्हारे लिए श्वास ले रही थी। तुम्हें माँ की कोई खबर नहीं थी। तुम्हें अपना भी कुछ होश नहीं था। तुम बिना किसी होश के थे।

गर्भ ही ईडन का बाग है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य आदम की भांति ही जन्म लेता है और प्रत्येक को ज्ञान का निषेधित फल खाना पड़ता है, क्योंकि जैसे-जैसे तुम बड़े होते हो तुम्हारा ज्ञान भी बढ़ता है। वह अनिवार्य है, वह होगा ही; अतः ऐसा नहीं है कि आदम ने विद्रोह किया हो। विद्रोह विकास का हिस्सा है। वह ओर कुछ भी नहीं कर सकता उसे फल खाना ही पडेगा। हर बच्चे को विद्रोह करना ही पड़ता है, फल खाना ही पड़ता है। हर बच्चे को विद्रोही होना ही पड़ता है। जिन्दगी की ज़रूरत है। उसे माँ से दूर जाना ही पडेगा, पिता से अलग होना ही पड़ेगा। वह उसकी कामना करेगा, स्वप्न देखेगा। परन्तु फिर भी दूर जायेगा। यह एक अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसे टाला नहीं जा सकता।

पूछा गया है कि इस भाव के पीछे क्या गहरा अर्थ छिपा है? यही अर्थ हैं कि ज्ञान अहंकार प्रदान करता है, अहंकार तुममें तुलना को, निष्कर्ष को, व्यक्तित्व को पैदा करता है। तुम अपने को पशु नहीं मान सकते। मनुष्य ने इस तथ्य को छिपाने के लिए कि वह "पशु है, सभी कुछ किया है। हम पशु हैं, इसे छिपाने के लिए हम हर रोज़ कुछ-न-कुछ कर रहे हैं। परन्तु हम पशु हैं, और इस तथ्य को छिपाने से तथ्य नष्ट नहीं हो जाता। बल्कि यह एक विकृत तथ्य हो जाता है। इसलिए जब यह ढंका हुआ तथ्य प्रकट होता है, तब आदमी और भी अधिक पशु साबित होता है। यदि तुम हिंसक होते हो, तो कोई भी पशु तुमसे प्रतियोगिता नहीं कर सकता। कैसे कर सकता है? किसी पशु ने कभी किसी हिरोशिमा, किसी वियतनाम को नहीं जाना। केवल मनुष्य ही हिरोशिमा को पैदा कर सकता है उसकी कोई तुलना नहीं है

सारे इतिहास में पशु सिर्फ कठपुतलियों से खेल रहे हैं- हिरोशिमा की तुलना में। उनकी हिंसा ना-कुछ है। यह इकट्ठी कर ली गयी हिंसा है- छिपी हुई, एकत्रित। हम छिपाते चले जाते हैं और वह जितनी इकट्ठी कर लेते है, इतनी ही हमें लज्जा लगती है, क्योंकि हम जानते हैं कि भीतर क्या छिपा है। हम उससे बच नहीं सकते।

एक मनोवैज्ञानिक छिपे हुए तथ्यों के बारे में प्रयोग कर रहा था, जिन्हें कि तुम कितना ही चाहो छिपा नहीं सकते। उदाहरण के लिए, यदि कोई कहे कि वह स्त्रियों के प्रति आकर्षित नहीं होता, तो वह उसका अभ्यास कर सकता है और वह स्वयं को व दूसरों को भरोसा भी दिला सकता है कि वह आकर्षित नहीं होता। परन्तु आदम तो ईंव के प्रति आकर्षित होगा ही, ईव आदम की ओर आकर्षित होगी हो। वह मनुष्य की प्रकृति का हिस्सा है, जब तक कि कोई पार नहीं चला जाये, जब तक कि कोई बुद्ध न हो जाए।

किन्तु तब बुद्ध नहीं कहते कि मैं स्त्रियों के प्रति आकर्षित नहीं होता, क्योंकि ऐसा कहने के लिए भी तुम्हें आकर्षण और विकर्षण की भाषा में सोचना पड़ता है। वे नहीं कहेंगे कि मैं स्त्रियों से विकर्षित होता हूँ, क्योंकि

जब तक कोई आकर्षित नहीं होता, कोई विकर्षित भी नहीं होता। यदि तुम उनसे पूछो, तो वे इतना ही कहेंगे कि स्त्रियाँ व पुरुष दोनों ही मेरे लिए असंगत हैं। मैं दोनों ही नहीं. हूँ। यदि मैं पुरुष हूँ तो स्त्री कहीं-न-कहीं छिपी होगी। यदि में स्त्री हूँ तो पुरुष कहीं-न-कहीं छिपा होगा

एक मनोवैज्ञानिक ने अभी एक आदमी पर प्रयोग किया जो कि कहता था-मैं स्त्रियों से प्रभावित नहीं होता। और वह नहीं होता था, जहाँ तक ऊपरी बातों का संबंध है। उसे कभी किसी के प्रति आकर्षित होते नहीं देखा गया। तब इस मनोवैज्ञानिक ने उसे तस्वीरें दिखाईं-दस तस्वीरें अलग-अलग चीजों की। केवल एक तस्वीर उसमें एक नग्न स्त्री की थी। मनोवैज्ञानिक यह नहीं देख रहा था कि वह आदमी कौन-सी तस्वीर देख रहा है। वह तो उसकी आँखें देख रहा था। तस्वीर का उलटा हिस्सा मनोवैज्ञानिक की तरफ था। वह उस आदमी को तस्वारें दिखाता था और उसकी आँखों मैँ देखता था। उसने कहा कि यदि तुम आकर्षित नहीं होते, तो मुझे पता चल जाएगा। अन्यथा केवल तुम्हारी आँखें देखकर मैं तुम्हें बता दूंगा कि कब तुम नग्न स्त्री की तस्वीर देख रहे हो। मैं तस्वीर नहीं देख रहा हूँ।

तस्वीरें दिखलाई गई और इस बार मनस्विद कहता है कि अब तुम नग्न स्त्री को तस्वीर देख रहे हो, क्योंकि जिस क्षण भी नग्न चित्र सामने होगा, आँखें फैल जायेंगी-और वह अनैच्छिक कृत्य हैँ। तुम उस पर काबू नहीं कर सकते तुम कुछ भी नहीं कर सकते। यह एक रिफलेक्स-ऐक्शन है। आँखें जैविक रूप से वैसी बनी हैं। वह आदमी कहता है कि मैं आकर्षित नहीं होता, परन्तु वह केवल चेतन मन है। अचेतन तो हर बार आकर्षित होता है।

जब तुम किसी तथ्य को छिपाते हो तो वे तुम्हें प्रेरित करते ही चले जाते हैं और तुम ज्यादा-और ज्यादा लज्जा का अनुभव करते हो। जितनी ऊँची सभ्यता और संस्कृति होगी, उतने ही अधिक लोग ज्यादा लज्जित अनुभव करेंगे। जितने तुम यौन के प्रति लज्जित होते हो उतने ही तुम अधिक सभ्य होते हो। पर तब सभ्य आदमी विक्षिप्त होकर रहेगा ही-खण्डित, विभाजित होगा ही। यह विभाजन शुरू हुआ आदम के साथा

और दूसरी बात पूछी गई है कि ज्ञान का निषेधित फल यौन का ही फल है। आपका इस बारे में क्या दृष्टिकोण है?

सचमुच, ऐसा ही है। परन्तु इतना ही नहीं है। यौन पहला ज्ञान है, और यौन ही अन्तिम ज्ञान है। जब तुम मनुष्यता में प्रवेश करते हो, तो पहली चीज़ जो कि तुम अनुभव करते हो, और सजग होते हो वह है यौन; और आखिरी चीज़ जबकि तुम मनुष्यता के पार जाते हो, तब भी यौन ही होती है-पहली और अन्तिम। क्योंकि सेक्स बहुत बुनियादी है, वह प्रथम बार होगी ही। वह अल्फा और वही ओमेगा है।

एक बच्चा सिर्फ बच्चा ही है, जब तक कि वह काम की दृष्टि से परिपक्क नहीं हो जाता। जैसे ही वह काम की दृष्टि से परिपक्क हो जाता है, वह आदमी हो जाता है। काम परिपक्कता के साथ ही सारा संसार भिन्न हो जाता है। वह संसार फिर वही नहीं रह जाता, क्योंकि तब तुम्हारा दृष्टिकोण, तुम्हारी पकड़, तुम्हारा चीजों को देखने का सारा ढंग ही बदल जाता है। जब तुम स्त्री के प्रति सजग होते हो, तुम आदमी होने लगते हो।

वस्तुतः पुरानी बाइबिल की पुस्तक में, "नोलेज" शब्द का हिब्रू भाषा में यौन के अर्थ में ही प्रयोग किया गया है। उदाहारण के लिए ऐसे वचन हैँ कि "वह दो वर्षों तक अपनी पत्नी के पास नहीं जाता"। "ही डू नॉट "नो" हिज वाइफ फॉर टू इयर्स"। इसका अर्थ है कि दो वर्षों तक उनमें कोई यौन-सम्बन्ध नहीं थे। उसने अपनी पत्नी को पहली बार उस दिन जाना- हि "न्यू" हिज वाइफ फॉर दि फर्स्ट टाइम ऑन दैट डे। इसका अर्थ होता है कि

पहली बार यौन संबंध हुआ। "नोलेज" का हिब्रू भाषा में अर्थ हैं सैक्स। नोलेज यौन का ज्ञान। इसलिए यह सही बात है कि आदम और ईव वह विशेष फल खाने के बाद ही सेक्स से परिचित हुए।

यौन-सेक्स सर्वाधिक आधारभूत बात है। बिना यौन के जीवन नहीं हो सकता। जीवन प्रकट होता है-सेक्स के कारण ही और सेक्स के कारण ही खो भी जाता हैं। इसीलिए बुद्ध और महाबीर कहते हैं कि जब तक तुम यौन के पार नहीं चले जाते तुम बार-बार जन्मते रहोगे। तुम जीवन के पार नहीं जा सकते क्योंकि भीतर अगर काम-वासना है, तो तुम फिर से जन्म ले लोगे। अतः सेक्स किसी अन्य को पैदा करने के लिए नहीं है, अन्ततः यह तुमको भी जन्म देता है। यह दोहरा काम करता है। तुम काम के द्वारा किसी और को जन्म देते हो, किन्तु वह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। तुम्हारी काम वासना के कारण ही तुम्हारा फिर जन्म होता है। तुम अपने को ही बार-बार जन्म देते रहते ही। आदम अपने काम के प्रति सजग हो गया, वह पहली सजगता थी। परन्तु यह काम सिर्फ प्रारंभ था। उसके बाद शेष सब पीछे-पीछे आयेगा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि प्रत्येक जिज्ञासा एक तरह से यौन-संबन्धी है इसलिए यदि कोई आदमी नपुंसक पैदा हो, तो उसे कोई जिज्ञासा नहीं होती-सत्य के लिए भी नहीं। क्योंकि जिज्ञासा बुनियादी रूप से सेक्सुअल ही होती है किसी छिपी चीज को खोजना, किसी अनजानी बात को जानना, अज्ञात को जानना-काम-संबंधी बात ही है। बच्चे एक दूसरे के साथ खेल खेलते हैं कि एक दूसरे के विभिन्न अंगों को जानें। यह जिज्ञासा की शुरुआत है, और सारे विज्ञान का प्रारंभ है-जो छिपा है उसे खोजना, जिसका पता नहीं है-उसे जानना।

वास्तव में, जितना कोई व्यक्ति कामुक होता है, उतना ही अधिक आविष्कारक हो सकता है। जितना अधिक कोई व्यक्ति कामुक होता है उतना ही बुद्धिमान होता है। कम काम-ऊर्जा के साथ कम बुद्धि होती है; क्योंकि यौन एक गहरा तथ्य है जिसे कि उघाड़ना है-केवल शरीर में ही नहीं, केवल विपरीत लिंगी-शरीर में ही नहीं-बल्कि सभी छिपी हुई वस्तुओं में।

अतः यदि समाज बहुत अधिक सेक्स की निन्दा से भरा है तो वह कभी भी वैज्ञानिक नहीं हो सकता, क्योंकि तब वह जिज्ञासा को ही निन्दित कर देता है। पूरब वैज्ञानिक नहीं हो सका क्योंकि वह यौन के प्रति अत्याधिक विरोध से भरा था। और पश्चिम भी वैज्ञानिक नहीं हो पाता यदि ईसाईयत की पकड़ उस पर बनी रहती। यह केवल तभी संभव हो सका जब कि वेटीकन विलीन-सा होने लगा, जबकि रोम अधिक महत्त्वपूर्ण न रहा। केवल इन तीन सौ सालों में ही पश्चिम वैज्ञानिक हो सका, जबकि ईसाईयत का महल धूल-धूसरित हो गया और विलीन हो गया। काम-ऊर्जा के मुवत होने से ही अनुसंधान का द्वार खुल गया।

यौन की दृष्टि से मुक्त एक समाज वैज्ञानिक होगा औरयौन को निषेध करने वाला एक समाज गैर-वैज्ञानिक होगा। सेक्स के साथ ही हर चीज़ जीवन्त होने लगती है। यदि तुम्हारा बच्चा, जबकि वह परिपक्व होने लगता है, यौन की दृष्टि से परिपक्व, तो वह विद्रोही होने लगता है। तब उसे भूल जाओ। वह बहुत प्राकृतिक बात है। उसको नसों में नई ऊर्जा के आने से, एक नये जीवन के प्रादुर्भाव की वजह से वह विद्रोही होगा ही। वह विद्रोह सिर्फ एक हिस्सा है। वह अवश्यमेव अविष्कारक होगा। वह नई चीजों की खोज करेगा, नये मार्गों की, नये ढंगों की, जीवन के नये तरीकों की, नये समाज की। वह नये सपने देखेगा, वह नये जगत के बारे में सोचेगा। यदि तुम सेक्स को निन्दित कर देते हो, तब फिर युवकों में कोई विद्रोह नहीं होगा। सारे संसार में युवकों का विद्रोह यौन स्वतन्त्रता का ही एक हिस्सा है।

पुरानी सभ्यता में कोई विद्रोह नहीं थो। चूंकि काम की इतनी अधिक निदा की गई थी कि ऊर्जा बुरी तरह दब गई। उस ऊर्जा के दमन के साथ ही हर तरह का विद्रोह भी दब गया। यदि तुम काम-ऊर्जा को स्वतन्त्रता देते हो, तो फिर सब प्रकार का विद्रोह होगा, सारा विद्रोह सामने आयेगा।

ज्ञान का यौन संबंधी आयाम भी होता है। इसलिए एक तरह से यह बात सही है कि आदम यौन के प्रति सजग हो गया-यौन के आयाम के प्रति। किन्तु उस आयाम के साथ हौ वह दूसरी भी बहुत-सी चीजों के प्रति सजग हो गया यह ज्ञान का सारा फैलाव, यह ज्ञान का विस्फोट, यह अज्ञात की खोज, यह चन्द्रमा तथा दूसरे नक्षत्रों को यात्रा यह सब सेक्स की, काम की प्यास है। और यह ज्ञान की खोज और-और दूरी तक होगी, क्योंकि एक नईं ऊर्जा का प्रादुर्भाव हुआ हैं। और अब यह ऊर्जा नये रूप लेगी तो नये साहस के काम करेगी।

यौन व यौन की सजगता के साथ, आदम एक लम्बी यात्रा पर निकल गया। हम सभी उस पर हैं, प्रत्येक उस यात्रा पर है। क्योंकि यौन केवल तुम्हारे शरीर का ही हिस्सा नहीं है। वही तुम हो। तुम यौन से ही पैदा होते हो, और यौन के नष्ट हो जाने पर तुम नष्ट हो जाते हो। तुम्हारा जन्म भी यौन का जन्म है और तुम्हारी मृत्यु ही यौन की मृत्यु है। इसलिए जैसे ही तुम्हें लगे कि काम-ऊर्जा समाप्त हो गई, जानें कि मृत्यु निकट है।

पैंतीस वर्ष शिखर के वर्ष हैं। काम-ऊर्जा शिखर पर होती है, और उसके बाद हर चीज़ नीचे की और जा रही है और व्यक्ति बूढा होने लगता है-मृत्यु की राह पर सत्तर या उसके करीब मृत्यु की उम्र है। यदि पचास की उम्र पर काम-ऊजां शिखर पर होगी तो व्यक्ति की सामान्य आयु सौ वर्ष हो जायगी। पश्चिम जल्दी ही औसत सौ वर्ष को उम्र प्राप्त कर लेगा, क्योंकि पचास साल का आदमी भी अब लड़कों की तरह व्यवहार करता है। यह अच्छा है। इससे पता चलता है कि समाज जिन्दा है। यह इस बात को बतलाता है कि जिन्दगी लम्बी ही गई है।

यदि सौ-साल का आदमी लड़कों की तरह व्यवहार करने लगे तो जिन्दगी दो सौ वर्ष की हो जायेगी, क्योंकि काम-ऊर्जा ही आधारभूत ऊर्जा है। काम-ऊर्जा के कारण ही तुम युवा हो, और काम-ऊर्जा के कारण ही तुम बूढे हो जाओगे। सेक्स के कारण ही तुम पैदा होते हो, और सेक्स के कारण ही तुम मर जाओगे। और इतना ही नहीं, बुद्ध, महावीर और कृष्ण कहते हैं किं कामवासना के कारण ही तुम फिर से पैदा होते हो। यह शरीर तो तुम्हारा काम से चलता ही है, बल्कि तुम्हारे सारे शरीर भी लगतार कामवासना से संचालित हैं।

सचमुच जब आदम पहली बार सचेत हुआ तो वह काम के प्रति ही सजग हुआ। यह एक बहुत बुनियादी तथ्य है। परन्तु ईसाईयत ने इसे गलत ही अर्थ दे दिया और तब बहुत नासमझी की बातें उसके पीछे आईं। ऐसा कहा गया कि चूँकि आदम सेक्स के प्रति सजग हो गया और उसे लज्जा अनुभव हुई इसलिए सेक्स बुरा है और पाप है- ओरिजनल सिन- प्रथम बुनियादी पाप- ऐसा नहीं है। यह ओरिजनल लाइट है- प्रथम प्रकाश है। वह इसलिए नहीं लज्जित हुआ कि यौन बुरा है, बल्कि इसलिए कि उसने देखा कि यौन तो पशुता का हिस्सा है और उसने सोचा कि मैं पशु नहीं हूं। इसलिए यौन से लड़ना पड़ेगा। उसे काटकर फेंकना पड़ेगा। किसी भी तरह काम रहित होना पड़ेगा। यह गलत अर्थ है। यह ईसाईयों द्वारा कहानी को गलत अर्थ देना है। अतः काम से लड़ो। धर्म काम के खिलाफ एक युद्ध हो गया। यदि धर्म काम के विरोध में युद्ध है तो फिर धर्म जीवन के खिलाफ भी एक युद्ध हो गया।

वस्तुतः धर्म काम के खिलाफ युद्ध नहीं है, वह सिर्फ एक प्रयास है- काम के पार जाने का, खिलाफत में नहीं। यदि तुम विरुद्ध हो गये तो तुम उसी तल पर रहोगे। तब तुम कभी पार नहीं जा सकोगे।

इसलिए ईसाई सन्त और रहस्यवादी मृत्यु-शैय्या पर पहुँचने तक सैक्स के खिलाफ ही लड़ते रहते हैं। तब आकर्षण पैदा होता है, और हर क्षण वे आकर्षित होते हैं। वहाँ उन्हें आकर्षित करने के लिए कोई भी नहीं है।

उनका अपना दमन ही उनके आकर्षण का निर्माता होता है। वे अपने अन्तर्मन में सतत अपने से ही लड़ते हुए एक बहुत ही कष्टप्रद जीवन बिताते रहे हैं।

धर्मं पार जाने के लिए है, न कि लड़ने के लिए। यदि तुम्हें पार जाना है तो तुम्हें सेक्स के पार जाना होगा। अतः काम-ऊर्जा को अतिक्रमण करने के लिए प्रयोग में लाना पड़ेगा। तुम्हें उसके साथ चलना है न कि उससे लड़ना है। तुम्हें उसे अधिकाधिक जानना है। अज्ञान में रहना अब असंभव है। तुम्हें उसे और अधिक समझना है। ज्ञान ही मुक्ति है। यदि तुम उसे जानते ही चले जाओ, जानते ही चले जाओ-अधिकाधिक तो एक घड़ी आती है जब तुम समग्र रूप से सजग ही जाते हो और तब काम विलीन हो जाता है। अब उसी ऊर्जा का तुम्हारे पास एक भिन्न ही आयाम होता है।

काम समतल होता है। जब तुम पूर्ण सजग हो जाते हो, तो काम ऊर्ध्व हो जाता है, लम्ब की भांति होता है। और वे सेक्स की ऊपर की ओर गति ही कुण्डलिनी है। यदि सेक्स समतल रेखा में चले तो तुम दूसरों को और अपने को उत्पन्न करते चले जाते हो। यदि ऊर्जा ऊपर की और लम्ब को भाँति गति करती है तो तुम उसके बाहर हो जाते हो-अस्तित्व के चक्र के बाहर-जैसा कि बौद्ध कहते है कि जीवन के चक्र के बाहर यह एक नया जन्म होगा-नये शरीर में नहीं, बल्कि अस्तित्त्व के नये ही आयाम में। इसे बौद्धों ने निर्वाण कहा है। तुम उसे मोक्ष भी कह सकते हो अथवा जो भी तुम कहना चाहो कह सकते हो। नाम का कोई अर्थ नहीं है।

इसलिए दो मार्ग हैं। आदम अपने काम के प्रति सजग हो गया। अब वह उसे दबा सकता था। वह समतल रेखा में गति कर सकता था उससे सतत लड़ते हुए संताप से भरा और जानता रहता कि पशु भीतर छिपा है। और सदैव यह बहाना करता रहता कि वह वहाँ नहीं है। यही पीड़ा है। और कोई चाहे तो जन्मों समतल रेखा में चलता रह सकता हैं-बिना कहीं भी पहुँचे, क्योंकि वह घूमता हुआ चक्र है। इसीलिए हम उसे चा-चक्र कहते है-एक घुमता हुआ चक्र। तुम चाहो तो इस चक्र से बाहर छलाँग लगा सकते हो। दमन से वह छलांग नहीं लगेगी, वह अधिकाधिक ज्ञान से ही संभव होगी। अतः मैं कहूँगा कि तुमने निषेधित वृक्ष का फल तो खा लिया है, अब पूरा वृक्ष ही खा जाओ। वही केवल एक मात्र मार्ग है। अब वृक्ष ही खा जाओ। एक पत्ता भी पीछे न बचे। पीछे वृक्ष मचे ही नहीं, उसे पूरा ही खा जाओ। तभी केवल तुम ज्ञान से मुक्त हो पाओगे उसके पहले कभी भी नहीं।

और जब मैं कहता हूँ कि पूरा वृक्ष ही खा जाओ, तो मेरा मतलब होता हैं कि अब तुम जब जान ही गये हो, तो पूरा ही जान लो। खण्डित, टूटी-फूटी सजगता ही समस्या है। या तो पूर्णतः अनजान रहो अथवा पूरी तरह सजग हो जाओ। समग्रता ही आनन्द है। पूरी तरह अज्ञानी हो जाओ। तब भी तुम आनन्द में होते हो। तुम्हें उसका पता नहीं होता, परन्तु तुम आनन्द में होगे। जैसे कि तुम जब पूरी तरह नींद में. डूबे हो, कोई सपना भी नहीं चल रहा है, पर केवल नींद में डूबे हो, मस्तिष्क की कोई गति भी नहीं है, तो तुम आनन्द में हो, परन्तु तुम उसे अनुभव नहीं कर सकते। तुम सवेरे इतना ही कह सकते हो कि रात्रि नींद बडी मधुर थी। परन्तु तब उसका कोई फ्ता नहीं था, जब कि वह थी उसका अनुभव तब हुआ जबकि तुम उसमें से बाहर आ गये। जब ज्ञान प्रवेश करता हैं, सजगता आती है। तब तुम कह सकते हो कि रात्रि बडी आनन्दपूर्ण थी।

या तो पूर्णरूप से अज्ञानी हो जायें, जो कि असंभव है, अथवा समग्र रूप से जान लें। समग्रता के साथ ही आनन्द होता है। समग्रता ही आनन्द है। अतः फल को खा लें जड़ के साथ और जाग जाये। एक जागे हुए पुरुष का यही अर्थ होता है, एक बुद्ध का, एक ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति का यही अर्थ होता है कि उसने पूरा वृक्ष को खा लिया। अब कोई सजग होने को भी पीछे नहीं बचा, मात्र एक साधारण जागरूकता ही बची। यह मात्र सजगता-जागरूकता ही ईडन के जाग में पुनः प्रवेश है। तुम दोबारा से वही पुराना रास्ता नहीं खोज सकते, यह

तो हमेशा के लिए खो गया। परन्तु तुम एक नया मार्ग खोज सकते हो, तुम फिर से प्रवेश कर सकते हो। और वास्तव मैँ जो कुछ भी शैतान ने आदम को वादा किया था पूरा हो जायेगा, तुम दिव्यस्वरूप हो जाओगे। वह एक तरह से सही है। यदि तुम ज्ञान का फल खा लेते हो तो देवताओं के समान ही जाओगे।

हम हमारी वर्तमान मनःस्थिति में इस बात को नहीं समझ सकते, क्योंकि हम नर्क में पड़े हैं। हम बीच में लटके हैं दो चीजों के, सदैव बंटे हुए पीड़ा में, संताप में। ऐसा लगता है कि शैतान ने हमें धोखा दिया आदम को धोखा दिया यह समग्र बात नहीं है, इतिहास अभी अधूरा है। तुम उसे पूरा कर सकते हो, और तभी केवल तुम यह कह सकते हो कि जो कुछ शैतान ने कहा था, यह सही था या गलत। सारे वृक्ष को ही खा जायें और तुम देवताओं के जैसे हो जाओगे

एक व्यक्ति जो कि पूर्णतः जागरूक हो गया वही दिव्य हो गया। वह अब मानव नहीं है। मानवता तो एक प्रकार का रोग है मेरा मतलब है, एक डिजीज, एक बेचौनी, एक सतत तनाव। या तो पशु जैसे हो जाओ और तुम स्वस्थ हो जाओगे. अथवा देवतास्वरूप हो जाओ और तब भी तुम स्वस्थ हो जाओगे-स्वस्थ, क्योंकि तुम समग्र हो गये, एक समग्रता ही हो गये।

अंग्रेजी का शब्द "होली" बड़ा अच्छा है। इसका मतलब सिर्फ पवित्र ही नहीं होता। वस्तुतः इसका अर्थ होता है-"होल"-समग्र। और जब तक तुम समग्र नहीं हो जाते, तुम "होली" पत्रित्र नहीं हो सकते। और केवल दो ही प्रकार की समग्रताएँ हैं-एक पशुओं जैसी और दूसरी है देवताओं के समान।

भगवान, आपने कहा कि जागरूकता, अवेरयनेस व केन्दोकरण से सघनता निर्मित होती हैं, लेकिन मुझे तो लगता हैं कि जागरूकता मेरे भीतर एक गहरी शून्यता का भाव पैदा करती है। कृपया, केन्दीकरण व आंतरिक शून्यता के संबंध को समझायें।

जैसा मनुष्य है, वह बिना किसी केन्द्र के है-बिना एक वास्तविक, एक प्रामाणिक केन्द्र के। यूँ कहने के लिए केन्द्र है उसके पास, किन्तु वह एक झूठा केन्द्र है। वह केवल सोचता है कि उसके पास केन्द्र है। अहंकार एक झूठा केन्द्र है। तुम्हें प्रतीत होता है कि वह है, परन्तु वह है नहीं। यदि तुम उसे खोजने जाओ, तो तुम उसे कहीं भी नहीं खोज सकोगे।

बुद्ध के ग्यारह सौ वर्षों बाद बोधिधर्म चीन गया। वह स्वयं भी बुद्ध हो गया था। वहाँ का सम्राट बू स्वयं उसके स्वागत के लिए आया। जब वहाँ कोई नहीं था, तो उसने बोधिधर्म से पूछा-"मैं" बहुत अधिक परेशान हूँ। मेरा मन कभी शान्त नहीं रहता। मुझे बतायें कि मैं क्या करूँ? मेरा मन शान्त कर दें। उसे बेचौनी से मुक्त कर दें। मैं एक गहरे द्वन्द्ध में पड़ा हूँ। भीतर सदैव संघर्ष चलता रहता है। अतः कुछ करें।" बोधिधर्म ने कहा, "मैं अवश्य कुछ करूँगा। तुम कल सवेरे चार बजे आ जाना, लेकिन अपने स्वयं को साथ लाना-स्मरण रखना।"

सम्राट ने सोचा कि या तो यह आदमी पागल है अथवा मैं इसकी बात नहीं समझ पाया। उसने कहा कि हाँ, मैं अवश्य आऊँगा। मैं अपने स्वयं के सहित ही आऊँगा। बोधिधर्म ने फिर से जोर देकर कहा कि देखो, भूलना मत। अपने स्वयं को भी साथ लाना, अन्यथा मैं शान्त किसे करूँगा?

सारी रात सम्राट सो भी नहीं सका। वह बात ही कुछ ऐसी अजीब थी बिल्कुल विचित्र बात लगती थी। इस आदमी का मतलब वया है। और तब सम्राट सोच में पड़ गया कि इस आदमी से मिलने जाये या नहीं, और वह भी सवेरे इतनी जल्दी-चार बजे ही। और बोधिधर्म ने अकेले ही बुलाया था-"तुम्हारे साथ तुम अकेले ही आना, दूसरा कोई और नहीं।" अतः कोई नहीं कह सकता था कि वह क्या करने चाला था। और फिर वह आदमी पागल भी दिखलाईं पड़ता था। मामला खतरनाक लगता था। किन्तु, फिर भी उसको आकर्षण पैदा हूआ। यह

अरदमी कुछ भिन्न प्रकार का था। वह खींचता था। वह चुम्बकीय था। इसलिए सम्राट महल में रुक नहीं सका और वह आया।

जब वह निकट आया तो बोधिधर्म ने उससे कहा-"आ गये तुम। परन्तु तुम्हारा स्वयं कहाँ है. तुम्हारा मैं कहाँ है? बू ने कहा "तुम तो मुझे पागल किये दे रहे हो। मैं सारी रात नहीं सो सका। तुम्हारा मेरे स्वयं रो मतलब क्या है? मैं यहाँ मौजूद।" अतः बोधिधर्म ने कहा-"तुम्हारा स्वयं बता दो। मैं उसे शान्त कर दूंगा, विश्राम में पहुँचा दूँगा। अपनी आंखें बन्द करो और खोजो कि वह कहाँ है। उसे मुझे बता दो और मैं उसे पूरी तरह गायब कर दूँगा. और फिर दोबारा कोई समस्या नहीं होगी।"

अतः सम्राट बू ने बन्द कर लीं और बोधिधर्म के सामने बैठ गया सुबह बिल्कुल शान्ति थी। वहाँ कोई भी नहीं था। उसे अपनी श्वास की आवाज भी सुनाई दे रही धो, उसे अपनी हदृय की धड़कन भी सुनाईं पड़ रही थी। और बोधिधर्म वहाँ सामने ही बैठा उसे बार-बार कह रहा था-"भीतर चले जाओ और खोजों कि वह कहाँ है। और यदि तुम उसे नहीं खोज सकते तो फिर में वया कर सकता हूँ?" और वह खोजता रहा, ढूंढता रहा भीतर-घंटों तक। उसके बाद उसने अपनी आँखें खोली और तब वह दूसरा ही आदमी हो चुका था।

उसने कहा-"मुझे वह कहीं भी नहीं मिलता। भीतर सब कुछ शून्य कोई स्वयं कोई "मैं" नहीं हैं।" "बोधिधर्म ने कहा-"यदि भीतर कोई "मैं" नहीं है और केवल शून्य ही तब भी क्या तुम्हें बेचौनी हो रही है? क्या भीतर कोई अशान्ति हैं? अब वह पीड़ा कहाँ है जिसकी कि तुम बात कर रहे थे? तुम उसकी इतनी चर्चा कर रहे थे, अब वह कहाँ है?" बू ने जबाब दिया वह अब कहीं भी नहीं है, क्योंकि वह आदमी ही चला गया, फिर बिना उसके अशान्ति कैसे हो सकती है? मैंने उसे खोजने की बहुत कोशिश की परन्तु उसका तो पता नहीं चलता। मैं भी धोखे में था। मैं तो सोचता था कि भीतर। मैंने उसे ढूंढा परन्तु वह तो कहीं भी नहीं है। केवल शून्य है-एक रिक्तता, एक खालीपन अतः बोधिधर्म ने कहां अब तुम घर जाओ। और जब कभी तुम्हें ऐसा लगे कि तुम्हें अपने साथ कुछ करने की जरूरत है, तो पहले उसे खोजना कि वह कहाँ है।"

यह एक झूठा अस्तित्व है। चूंकि हमने कभी उसे खोजा नहीं इसलिए हमें लगता है कि वह है। हम कभी भीतर नहीं गये है, इसलिए हम केवल "मैं" की बात करते रहते हैं। वह कहीं भी नहीं हैं। इसलिए पहली बात जो कि समझ लेनी है वह यह है कि यदि तुम ध्यान में जाओगे, यदि तुम शान्त होओगे, तो तुम्हें शून्य का अनुभव होगा, क्योंकि तुम अहंकार को नहीं खोज सकते। तब अहंकार के ही साथ कमरे में फर्नीचर भी था, अब फर्नीचर खो गया। तुम केवल एक कमरे हो-बल्कि एक कमरापन। यहाँ तक कि दीवारें भी विलीन हो गई। वे भी तुम्हारे अहंकार का ही हिस्सा थीं। सारा ढाँचा ही गिर गया, इसलिए तुम्हें शून्य का अनुभवं होगा।

यह पहला चरण है जब कि अहंकार विलीन हो जाता है। अहंकार एक झूठी बात है, वह है नहीं। सिर्फ लगता है कि वह है, और तुम सोचते चले जाते हो कि वह है। वह सिर्फ तुम्हारे विचार का हिस्सा है-न कि तुम्हारे "होने" का वह तुम्हारे मन से संबंधित है, न कि तुम्हारे अस्तित्व से। चूँकि तुम सोचते हो वह वहाँ है, इसलिए वह है। जब तुम उसे खोजने जाते हो तो वह कभी भी नहीं मिलता। तब तुम्हें शून्यता का अनुभव होता है, रिक्तता का। अब इस रिक्तता पर जोर दो, अब इस शून्य में रहो।

मन बड़ा चालाक है। वह खेल खेल सकता है। यदि तुम सोचना शुरू कर दो कि वह शून्य है, यदि तुम सोचने लगो कि यह शून्यता है तो तुमने उसे फिर भर दिया। यदि तुम इतना-सा ही कहो कि "यह शून्य है" तो भी तुम उसके बाहर हो गये-उसके बाहर जा चुके। शून्य खो गया। तुम बीच में आ गये। इस शून्यता में ही रहो। शून्य ही हो जाओ। विचार न करो। यह बहुत कठिन है, बड़ा भयानक है। उसमें सिर चकराने लगता है। वह एक

बड़ा खड्ड है, एक अनन्त खड्ड तुम नीचे, और नीचे गिरते ही चले जाते हो और नीचे की पेंदी कहीं नहीं आती ऐसे में कोई होश खोने लगता है और वह सोचने लगता है। जैसे ही तुम सोचने लगे, तुमने फिर से जमीन पकड़ ली। अब तुम शून्य में नहीं हो।

यदि तुम इस शून्य में रह सको-बिना भागे, बिना कुछ विचारे, तो अचानक वैसे ही यह शून्य थी विलीन हो जाएगा-जैसे अहंकार खो गया था वैसे, क्योंकि अहंकार के कारण ही शून्य प्रतीत होता है। अहंकार ही उसे भर रहा था। वही फर्नीचर था, और तब कोई शून्य नहीं था। अब अहंकार विलीन हो गया है। इसलिए तुम्हें शून्य की प्रतीति हो रही है। यह शून्य की प्रतीति इसलिए होती है, क्योंकि जो सदैव वहाँ था, अब वह वहाँ नहीं है।

अगर इस कुर्सी पर बैठे तुम मुझे देख रहे हो, तब अचानक यदि तुम मुझे इस कुर्सी पर न पाओ तो कुर्सी तुम्हें खाली लगेंगी-इसलिए नहीं कि कुर्सी खाली है, बल्कि इसलिए कि कोई यहाँ बैठा था और अब वह वहाँ नहीं है। इसलिए तुम्हें शून्य दिखाई पढ़ता है, न कि कुर्सी। तुम्हें शून्य मालूम होता है, किसी की अनुपस्थिति तुम्हें एक रिक्तता की तरह महसूस होती है। तुम अभी कुर्सी को नहीं देख रहे हो। तुम वहाँ पर एक व्यक्ति को. देख रहे थे, अब तुम उस व्यवित की अनुपस्थिति को देखते हो। परन्तु कुर्सी अभी भी दिखलाई नहीं पड़ रही है। इसलिए जब अहंकार विलीन हो जाता है, तुम्हें शून्य की प्रतीति होती है। यह तो मात्र प्रारंभ है क्योंकि यह शून्यता भी अहंकार का ही नकारात्मक हिस्सा है-दूसरा पहलू। यह शून्य भी विलीन हो जाना चाहिए।

रिंझाई-एक जेन गुरु के लिए ऐसा कहा जाता है कि जब वह अपने गुरु के पास सीख रहा था तो गुरु हमेशा इस बात पर जोर देता था कि उसे शून्य को उपलब्ध करना चाहिए। अतः एक दिन वह आया, उसने शून्य उपलब्ध कर लिया था। वह एक लम्बा श्रम था। अहंकार को गलाने में बहुत मेहनत करनी पढ़ती है। वह एक बडी लम्बी यात्रा थी-बहुत कठिन और कभी-कभी सचमुच सी असंभव-किन्तु फिर भी उसने उसे पा लिया था। इसलिए वह हँसता हुआ,-नाचता हुआ आया, आनन्द में डूबा। वह अपने गुरु के चरणों में गिरा और उसने काश, मैंने पा लिया है, अब केवल शून्य ही। गुरु ने उसकी ओर बिना किसी सहानुभृति के देखा और कहा कि अब तुम जाओ ओर इस शून्य को भी फेंक कर आओ। उसे अपने साथ यहाँ मत लाओ। इस शून्य को भी फेंक दो। इस स्थितता को भी गिरा दो, क्योंकि यदि तुम्हारे पास खालीपन भी है, तो भी यह कूछ होने जैसा हो जायेगा। शून्य भी कुछ तो है। यदि तुम उसे भी अनुभव कर सको, तो वह भी कुछ है। यदि तुम उसे भी जान सको. तो वह भी कुछ है। यदि तुम उसे देख सको तो वह भी कुछ है। कुछ नहीं भी कुछ हो जाता है, यदि वह भी तुम्हारे हाथ में है।

इसलिए गुरु ने कहा, "इस शून्य को भी फेंक दो। मेरे पास तभी आना जबकि यह "नथिंगनेस" (कुछ नहीं) भी नहीं हो।" रिंझाई तो रोने लगा। उसने ही यह बात क्यों नहीं देख ली? एक शून्य भी उपलब्धि है, वह भी कुछ है। यदि तुमने कुछ नहीं भी पा लिया तो फिर वह कुछ हो जाता। जब तुम इस शून्य में गहरे डूबते हो बिना किसी विचार के. बिना मन में जरा-भी कंपन लाये-यदि तुम इसी में ठहर जाते हो, तो अचानक शून्य भी विलीन हो जाता है और तब "स्व" का बोध होता है। तब तुम केन्दित हुए। तब तुम असली केन्द्र पर आये।

एक तो झूठा केन्द्र है, और फिर उस झूठे केन्द्र का खो जाना और तब असली केन्द्र का होना है। केन्दित होने से मेरा मतलब एक भृमि-तुम्हारे होने की वास्तविक भूमि। यह तुम्हारा केन्द्र नहीं है। क्योंकि तुम तो मिथ्या केन्द्र हो अतः यह तुम्हारा केन्द्र नहीं है। वही असली केन्द्र है-तुम्हारे अस्तित्व का केन्द्र। पूरा अस्तित्व ही इसमें केन्द्रित हो गया।

तुम तो झूठे केन्द्र हो, तुम तो खोओगे। परन्तु तुम्हारे खोने में भी यदि तुम इस शून्य से भरने लगो, तो भी अहंकार बड़े ही सूक्ष्म ढंग से लौट आया। बहुत ही सूक्ष्म तरीके से वह वापस आ गया। वह कहेगा कि मेंने इस शुन्य को पा लिया। इसका मतलब वह अभी भी है।

उसे वापस मत आने दो। इस शून्य में ही रहो। इस शून्य के साथ कुछ भी न करो, उसके बारे में सोचो भी मत, उसके बारे में कुछ महसूस भी मत करो। शून्य है, उसके साथ रहो, उसे रहने दो। वह चला जाएगा। वह सिर्फ नकारात्मक हिस्सा है। वास्तविक चीज़ तो खो गई, यह मात्र उसकी छाया है। इस छाया को मत पकडो, क्योंकि छाया थी तभी हो सकती है जबकि वास्तविकता कहीं-न-कहीं पास ही हो। तभी केवल छाया भी हो सकती है। अन्ततः शून्य भी विलीन हो जाता है, ओर तब केन्द्रीकरण-सेन्टरिंग होता है। तब पहली बार तुम "तुम" नहीं होते और फिर भी तुम होते हो-न कि स्वयं की तरह वरन एक शुद्ध अस्तित्व की भाँतिः बल्कि सर्व को भाँति। और इस बात को ठीक से समझ लें कि यह तुम्हारा केन्द्र नहीं है। यह सर्व का केन्द्र है।

अपने झूठे केन्द्र को भूल जाओ। भीतर जाओ और उसे खोजो। और तब वह विलीन हो जाता है। वह कमी भी नहीं मिलता। वह कहीं भी नहीं है इसलिए तुम उसे खोज नहीं सकते। उसके बाद और भी कठिन काम तुम्हें करना होता है-तुम्हें शून्य का सामना करना पड़ता है। यह बिल्कुल मौन होता है। अहंकार के जगत की तुलना में यह बिल्कुल शान्त होता है। तुम एक गहरी शान्ति में होते हो। परन्तु इससे ही सन्तुष्ट मत हो जाना। वह झूठी है। क्योंकि वह "भी अहंकार का ही हिस्सा है। यदि तुम सन्तुष्ट हो गये, तो अहंकार पुनः प्रवेश कर जाएगा। वह वापस लौट जायेगा। उसका एक हिस्सा अमी भी वहाँ मौजूद था। वह हिस्सा फिर से उस सारे को भीतर ले आएगा। बिना किसी विचार के इस शून्य के साथ रहो।

वह करीब-करीब मृत्यु जैसा है। जैसै कोई अपनी ही आँखों के सामने मर रहा होता है-एक गहरे खड्ड में विलीन हो रहा होता है। और जल्दी ही तुम खो जाओगे और केवल खड्ड ही रह जाएगा-उस खड्ड का जानने वाला भी, नहीं बचेगा, उस खाई को देखने वाला भी पीछे नहीं छुटेगा, बल्कि मात्र खड्ड ही रह जायेगा। तब तुम केन्दित हुए-केन्द्र में केन्दित। वह तुम्हारा केन्द्र नहीं है। पहली बार, तुम हो।

अब भाषा का दूसरा ही अर्थ हो जाता है। तुम नहीं हो और फिर भी तुम हो। यहाँ जाकर "हाँ" और "ना" के परम्परागत अर्थ, उनके रूढिगत भेद खो जाते हैं। तुम तुम्हारी तरह वहाँ नहीं होते। अब तुम वहाँ दिव्य की तरह होते हो-स्वयं ब्रहा की भाँति। यही अस्तित्वगत केन्द्रीकरण है-अस्तित्व में केन्दित होना।

आज इतना ही

तीसरा प्रवचन

सजगता के दीप

चैतन्य के सूर्य में स्थित होना ही एक मात्र दीपक है

एक दिन एक स्त्री मुल्ला नसरुद्दीन की पाठशाला में आई। उसके साथ उसका एक छोटा बच्चा भी था। उस स्त्री ने मुल्ला को उस लड़केको डराने के लिए कहा। वह लड़काबिगड़गया था और किसी की नहीं सुनता था। उसे किसी बड़ेअधिकारी के द्वारा डराने की जरूरत थी। मुल्ला वाकई अपने गाँव में एक बडा अघिकारी था। उसने एक बडी भयावह भाव-भंगिमा बनाई। उसकी आँखें बाहर निकल आईं और-उनसे आग निकलने लगी और वह स्वयं भी कूदने लगा, उस स्त्री ने देखा कि अब मुल्ला को रोकना असंभव है। वह तो बच्चे की जान ही लेने लगा

वह स्त्री तो बेहोश हो गई, लड़काअपनी जान बचाकर भागा, और मुल्ला खुद इतना डर गया कि वह भी स्कूल से बाहर भाग गया। वह बाहर ठहरा रहा और वह स्त्री वापस होश में आई। तब मुल्ला धीरे से, चुपचाप गंभीर होकर भीतर दाखिल हुआ। उस स्त्री से कहा, "मुल्ला गजब कर दिया! मैंने तुम्हें मुझे डराने केलिए तो नहींकहा था। "

मुल्ला वे जवाब दिया-"तुम्हें असली बात का पता नहीं। केवल तुम्हीं नहींडर गई बल्कि मैं भी अपने-आपसे डर गया। जब भय पकड़लेता है तो वह सब कुछ नष्ट कर देता है। उसे प्रारंभ करना सरल है, किन्तु उसे नियंत्रित करना कठिन है। जब मैंने उसे प्रारंभ किया तो मैं उसका मालिक था, लेकिल शीघ्र ही भय मुझ पर सवार हो गया, और वह मालिक हो गया और मैं उसका गुलाम, तब मैं कुछ नहीं कर सकता था। और, भय के कोई अपने नहीं होते। जब वह पोट पहुँचाता है, तो सबको ही पहुँचाता है।।"

यह एक बडी सुन्दर कहानी है जो कि मनुष्य के मन के बारे में एक बडी गहरी अंतर्दृष्टि बतलाती है। तुम हर चीज़के बारे में केवल प्रारंभ में सजग होते हो, और फिर बाद में अचेतन कब्जा ले लेता है। अचेतन अधिकार जमा लेता है और अचेतन ही फिर मालिक हो जाता है। तुम क्रोध शुरू कर सकते हो, परन्तु तुम उसे कभी खतम नहीं कर सकते। बल्कि क्रोध ही तुम्हें रामाप्त कर देत्ता है। तुम किसी भी बात को प्रारंभ कर सकते ही, लेकिन जल्दी या बाद में अचेतनअपना अधिकार कर लेता है और तुम्हारी छुट्‌टी हो जाती है। इसलिए केवल प्रारंभतुम्हारे हाथ में है, अन्त कभी भी तुम्हारे हाथ में नहीं है। और जो भी परिणामउससे होंगे, उसके तुम मालिक नहीं हो।

यह स्वाभाविक है, क्योंकि तुम्हारे मन का केवल एक बहुत छोटा-सा हिस्साही जागा हुआ है। वह मोटरकार में सिर्फ एक स्टार्टर की भाँति है। वह केवलस्टार्ट करता है, और उसके बाद वह किसी भी काम का नहीं है। उसके बादमोटर कब्जा। ले लेती हैं। उसकी जरूरत केवल चालू करने के लिए है। उसकेबिना चालू करना कठिन-है। लेकिन यह मत सोचो की चूँकि तुम किसी चीजको चालू करत्ते हो, तो तुम उसके मालिक हो। यही इस कहानी का रहस्य हैचूँकि तुमने चालूकर दिया, तुम सोचने लगते होकि तुम उसे बन्द भी कर सकते हो।

ऐसा हो सकता था कि तुम प्रारंभ ही न करते, वह दूसरी बात है। लेकिनएक बार प्रारंभ करने के बाद ऐच्छिक-अनैच्छिक ही जाता है और चेतन अचेतनही जाता है, क्योंकि चेतन केवल ऊपरी पर्त है-मन की ऊपरी

सतह और करीब-करीब सारा मन ही अचेतन है। तुम शुरू करो और अचेतन गति करने लगताहै और काम करने लगता है।

इसलिए मुल्ला ने कहा, "मैं बिल्कुल जिम्मेवार नहींहूँ। जो कुछ भी हुआ, उसके लिए मैं जिम्मेवार नहीं हूँ। मैं केवल प्रारंभ करने के लिए जिम्मेवार हूँऔर तुमने ही मुझे प्रारंभ करने के लिए कहा था। मैंने बच्चे को डराना प्रारंभकर दिया, और तब बच्चा डर गया और तुम मूच्छित हो गई, और तब मैं भीडर गया, और उसके बाद सब गड़बड हो गयी।

हमारे जीवन में भी सभी कुछ गड़बड़ है-इस चेतन मन के, प्रारंभ करनेके कारण और फिर अचेतन मन के उस पर अधिकार करने के कारण। यदि तुमइसे अनुभव नहीं कर सकते और यदि तुम इसे नहीं जान सकते-इस यांत्रिकताको, तो फिर तुम सदा के लिए गुलाम रहोगे। और यह गुलामी आसान हो जातीहै, यदि तुम सोचते रहो कि तुम मालिक हो। जानते हुए गुलाम होना कठिनहै। गुलाम होना सरल है, यदि तुम अपने को धोखा देते चले जाओ कि तुम मालिकहो, अपने प्रेम के, अपने क्रोध के, अपने लोभ के, अपनी ईर्ष्या के, अपनी हिंसाके, अपनी निर्दयत्ता के, यहाँ तक कि अपनी सहानुभूति व अपनी करुणा के।

मैं कहता हूँ-तुम्हारे, किन्तु यह "तुम्हारे" केवल प्रारंभ में ही है। सिर्फ क्षणभर के लिए, केवल एक चिनगारी ही तुम्हारी है। और तब तुम्हारी यांत्रिकता शुरूहो जाती है और तुम्हारी सारी यांत्रिकता मूच्छित है। ऐसा क्यों? यह चेतनऔर अचेतन में द्वन्द्व क्यों है? और द्वन्द्व है। तुम अपने बारे में पहले से कुछनहीं कह सकते। यहाँ तक कि तुम, तुम्हारे कृत्य भी तुम्हें पहले से पता नहींहै क्योंकि तुम नहीं. जानते कि क्या होने वाला है। तुम्हें पता ही नहीं कि तुमक्या करने वाले हो। तुम्हें यह भी मालूम नहीं कि दूसरे क्षण तुम क्या करने वालेहो क्योंकि करने वाला तो भीतर बहुत गहरे अचेतन में छिपा है। तुम कर्ता नहींहो। तुम केवल प्रारंभ करने वाले एक बिन्दु हो। जब तक कि तुम्हारा सारा अचेतनही चेतन न हो जाये तुम स्वयं अपने लिए भी एक समस्या ही रहोगे और एकनर्क बनोगे। सिवाय दुःख के और कुछ भी वहाँ न होगा।

जैसा कि मैं हमेशा जोर देता हूँ कि कोई दो ही तरीकों से समग्र हो सकताहे। पहला कि तुम अपनी आंशिक चेतना को भी खो दो, इस छोटे से चेतन केटुकडे को भी अचेतन में फेंक दो, उसमें मिला दो, और तब तुम समग्र हो जातेहो। लेकिन तब तुम एक पशु की तरह समग्र हो जाते हो, और वह असंभव हैतुम कुछ भी करो, वह संभव नहीं है। यह सोचा जा सकता है, किन्तु संभवनहीं है तुम बार-बार आगे की ओर फेंक दिये जाओगे।

वह छोटा-सा हिस्सा जो कि चेतन हो गया है, पुनः अचेतन नहीं हो सकतायह एक अण्डे को भाँति है जो कि मुर्गी हो गया है। अब मुर्गी वापस लौटकरअण्डा नहीं हो सकती। एक बीज जो कि अंकुरित हो चुका वह वृक्ष होने कीयात्रा में निकल गया। अब वह वापस नहीं लौट सकता। वह फिर लौटकर एकबीज नहीं बन सकता। एक बच्चा जो कि माँ के गर्भ से बाहर आ गया, अबबापस लौट कर नहीं जा सकता, चाहे गर्भ कितना ही आनन्दपूर्ण रहा हो।

पीछे लौटना कभी नहीं होता जीवन सदैव भविष्य में गति करता है, अतीतमें कभी भी नहीं। केवल आदमी अतीत की बात सोच सकता है। इसलिए मैंक्या हूँ कि यह सोचा जा सकता है, किन्तु इसे वास्तविक रूप नहीं दिया सकतातुम कल्पना कर सकते हो, तुम सोच सकते होतुम उसमें विश्वास कर सकतेतो, तुम उसमें लौटने का प्रयत्न भी कर सकते हो, किन्तु तुम लौट नहीं सकते वहबिल्कुल असंभव है। व्यक्ति को आगे ही बढ़ना पड़ता है। यह दूसरा मार्गहै समग्र होने का।

जाने या अनजाने, हर क्षण कोई आगे ही बढ़ रहा है। यदि तुम जानते हुएआगे बढ़ते हो, तो तुम्हारी गति बंढ़ जाती है। यदि तुम जानते हुए बढ़ रहे हो, तो फिर तुम समय और शक्ति नष्ट नहीं करते। तब वह बात एक जीवन में ही पूरी हो सकती है, जो कि लाखों जीवनों में भी पूरी नहीं होगी, यदि तुम बिना जाने बढ रहे हो। क्योंकि यदि तुम चिना जाने ही बढ रहे हो तो-तुम एक वर्तुल में ही बढ़ोगे। हर दिन तुम वही पुनरुवत करते हो, प्रत्येक जीवन में तुम वही-का-वही दोहराते हो। और जीवन मात्र एक आदत बन जाती है-एक यांत्रिकआदत, एक पुनरुक्ति।

यदि तुम जानते हुए, होशपूर्वक आगे बढ़ो तो तुम इस पुनरुक्ति की आदतको तोड़ सकते हो। इसलिए पहली बात तो यह ध्यान में लेने जैसी है कि तुम्हारीसजगता इतनी छोटी-सी है कि वह केवल प्रारंभ करने के लिए है। जब तककि तुम्हारे पास असजगता कम और सजगता ज्यादा न हो, अचेतना कम और चेतना ज्यादा न हो, सन्तुलन नहीं बदलेगा। उसमें क्या-क्या बाधाएँ हैं? ऐसी स्थिति क्यों है? यह तथ्य आखिर क्यों है? यह चेतन और अचेतन में द्वन्द्व क्यों है? इसे जानना पड़ेगा।

यह स्वाभाविक है। जो कुछ भी है वह स्वाभाविक है। मनुष्य लाखों वषों में विकसित हुआ है। इस विकास ने ही तुम्हें निर्मित किया है, तुम्हारे शरीर कोतुम्हारी संरचना को। यह विकास एक लम्बा संघर्ष रहा है। हजारों-लाखों सालोंकी विफलताओं, सफलताओं के अनुभव का। तुम्हारे शरीर ने बहुत कुछ सीखाहै। तुम्हारा शरीर लगातार बहुत कुछ सीखता जा रहा है। तुम्हारे शरीर का अथाहज्ञान उसकी कोषिकाओं में स्थित है, तुम्हारे मन में नहीं। वह अपने ही हिसाबसे अपना व्यवहार पुनरुक्त करता चला जाता है। यदि स्थिति भी बदल जाये तोभी शरीर वही रहता है। उदाहरण के लिए, जब तुम क्रोधित होते हो, तो तुमउसी भाँति अनुभव करते हो जैसे कि कोई भी आदम पुरुष। तुम उस वैसे हीमहसूस करते हो, जैसे कि कोई भी पशु। तुम उसे वैसे ही अनुभव करते हो जैसे कि कोई भी बच्चा। और यही यांत्रिकता है। जब तुम क्रोधित होते हो तब तुम्हारेशरीर का एक निश्चित ढंग है एक निश्चित क्रियाकाण्ड है।

जिस क्षण भी तुम्हारा मन कहता है "क्रोध"-उसी वक्त तुम्हारे शरीर में जो ग्रंथियां हैं, वे रक्त में रासायनिक द्रव्य छोड़देती हैं। एड्रीनल तुम्हारे रक्तमें छूट जाता है। इसकी जरूरत है क्योंकि क्रोध में तुम्हें या तो चोट करनी पडेगी, या विरोधी द्वारा तुम पर चोट पडेगी। तुम्हें अधिक रक्त-के दौरे की आवश्यकताहै और यह रासायनिक द्रव्य खून के दौरे कोतेज़करने में मदद करेगा। या तोतुम्हें लड़ने की जरूरत पडेगी, या तुम्हें मैदान छोड़कर भाग खड़ा होना पड़ेगादोनों ही स्थितियों में यह रसायन मदद करेगा। इसलिए जब भी कोई पशु क्रोधमें होता है, तो शरीर या तोलड़नेके लिए तैयार हो जाता है या फिर भागनेके लिए। और ये ही दो विकल्प हैं-यदि पशु सोचता है कि वह विरोधी सेज्यादा ताकतवर है, तो वह लडेगा, और यदि वह सोचता है कि वह कमजोरहै, तो वह भाग जायेगा। और यह यांत्रिकता बडी सरलता से चलती है।

परन्तु मनुष्य के लिए यह स्थिति बिल्कुलभिन्न हो गई है। जब तुम्हें क्रोधआ रहा है, तुम उसे चाहो तो व्यवत्त नहीं भी करो। पशु के लिए ऐसा करनाअसंभव है। यह स्थिति पर निर्भर है। यदि-वह तुम्हारे नौकरों के प्रति है, तोतुम उसे व्यक्त कर सकते हो लेकिन, यदि वह तुम्हारे मालिक के खिलाफ है, तो तुम उसे व्यक्त भी नहीं कर सकते। इतना ही नहीं बल्कि तुम हँस भी सकतेहो; मुस्करा सकते हो। तुम अपने मालिक कोफुसला सकते हो कि तुम क्रोधिततो हो ही नहीं, बल्कि तुम तो प्रसन्न हो। अब तुम शरीर की सारी यांत्रिकता को गड़बड़ किये दे रहे हो। शरीर तोलड़नेके लिए तैयार है, और तुम मुस्करा रहेहो। तुम सारे शरीर में एक भारी गडबडी

उत्पन्न कर रहे हो। शरीर नहीं समझसकत्ता कि तुम क्या कर रहे हो। क्या तुम पागल हो? वह दो में से एकबात करने के लिए तत्पर है जो कि स्वाभाविक है-लड़ना या भागना।

यह मुस्कराना एक नई बात है। यह प्रवंचना कुछ नई घटना है, शरीर केपास इसके लिए कोई मैकेनिज्म, कोई संयंत्र नहीं है। शरीर में तो प्रसन्नत्ता केकोई रसायन नहीं छूट रहे हैं, लेकिन फिर भी तुम ऊपर से मुस्कुराते हो। हँसनेके लिए अभी वहां कोई स्सायन नहीं है। तुम्हें जबरदस्ती मुस्कुराहट लानी पड़तीहैं-एक झूठी मुस्कुराहट, और शरीर ने लड़ने के लिए रक्त में स्सायन छोड़ दियाहैं। अब रक्त क्या करेगा? शरीर की अपनी ही भाषा है, जिसे वह भलीभाँतिसमझता है किन्तु तुम बड़े ही पागलपन का, विक्षिप्तता का व्यवहार कर रहे हो। अब तुममें और तुम्हारे शरीर में एक गैप, एक अन्तराल पैदा हो जाता है। शरीरकी यह यांत्रिकता अचेतन है, यह यांत्रिकता अनैच्छिक है। तुम्हारी इच्छा, तुम्हारीमर्जी की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम्हारी मर्जी, तुम्हारे संकल्प को समयकी आवश्यकता पड़ेगी और ऐसी स्थितियाँ होती हैं जिनमें कि समय ज़राभीनहीं खोया जा सकता।

एक चीते ने तुम पर हमला कर दिया है, अब सोचने के लिए तुम्हारे पाँच समय नहीं है। तुम विचार नहीं कर सकते कि तुम्हें क्या करना है। तुम्हें बिनामन से सलाह किये ही कुछ करना पड़ेगा। यदि बीच में मन आ जाये, तो तुमगये। तुम विचार नहीं कर सकते, तुम चीते से नहीं कह सकते कि "ठहरो, जरा मुझे सोच लेने दो कि मुझे वया करना चाहिए।" तुम्हें तुरन्त कुछ करना पड़ेगाबिना किसी सजगता के।

शरीर की अपनी एक यांत्रिकता है। चीता मौजूद है और मन जान रहा हैकि वह वहाँ है। शरीर की यांत्रिकता अपना कार्य करना शुरू कर देती है। वहकार्य करना मन पर-निर्भर नहीं है क्योंकि मन बहुत धीरे काम करने वाला है-बहुत ही अकुशल है संकटकालीन अवस्था में उस पर भरोसा नहीं किया जा सकत्ता, इसलिए शरीर अपना कार्य करने लगता है। तुम भयभीत होगये हो, तो तुम भाग जाओगे, तुम बच निकलोगे।

लेकिन वही बात तब भी होती है जबकि तुम मंच पर एक भारी भीड़को भाषण देने के लिए खड़े होते हो। वहाँ कोई भी चीता नहीं है, परन्तु तुम भारी भीड़ को देखकर डर गये हो। भय रूप लेने लगता है. शरीर को खबर पहुँच गई है। यह खबर कि तुम डर गये हो, यह स्वचालित है। शरीर रसायन छोड़नाशुरू कर देता हे-वे ही रसायन जो चीता आप पर हमला करने वाला हो तब छूटते हैं। वहाँ पर कोई शेर-चीत्ता नहींहै। वहाँ सचमुच कोई भी नहीं है जो कि आप पर आक्रमण कर रहा हो। परन्तु ऐसा लगता है जैसे कि श्रोत्ताओं की भीड़-तुम पर हमला कर रही है। वहाँ जो भी मौजूद है वे सब आक्रामक हैं, ऐसा प्रतीत होता है। इसलिए तुम भयभीत ही गये हो।

अब शरीर तैयार है, लड़ने के लिए अथवा भाग खड़े होने के लिए, परन्तुदोनों ही रास्ते बन्द हैं। तुम्हें वहाँ खड़ा होना है और बोलना है। अब तुम्हारे शरीर को पसीना छूटने लगता है, सर्द रात में भी। क्यों? तैयार है, लड़ने के लिए अथवाभागने के लिए। रवत तेजी से दौरा कर रहा है, गर्मी उत्पन्न हो गई है, और तुम वहाँखड़े हो। इसलिए तुम पसीने-पसीने होने लगते हो, और तब एक सूक्ष्म कंपकपीदौड़ने लगती है। तुम्हारा सारा शरीर कांपने लगता है।

यह ऐसे ही होता है जैसे कि तुम कार को चालू करो और एक्सीलेटर भीदबाओ और साथ ही ब्रेक भी लगाओ। इंजन गर्म हो गया है, गति कर रहा हैऔर तुम ब्रेक भी लगा रहे हो। कार को सारी बॉडी कांपने लगेगी। वही बाततब भी होती है जबकि तुम मंच पर खड़े होते हो। तुम्हें भय लगत्ता है, औरशरीर भागने के लिए तैयार है। एक्सीलेटर दबा दिया गया है, परन्तु तुम भागनहीं सकते। तुम्हें एकत्रित लोगों को भाषण देना ही होगा। तुम

नेता हो या कुछहो, तुम भाग नहीं सकते। तुम्हें सामना करना ही पड़ेगा और तुम्हें वहाँ मंच पर खड़ा होना ही पड़ेगा। तुम बच नहीं सकते।

अब तुम दोनों बातें एक साथ कर रहे हो जो कि बड़ी विपरीत हैं। तुमएक्सीलेटर पर भी पाँव रखे हो और ब्रेक भी दबा रहे हो। तुम भागते नहीं होऔर तुम्हारा शरीर भगाने के लिए तैयार है। तुम कांपने लगते हो और गर्मी पैदाहो जाती है। अब तुम्हारा शरीर बडी हैरानी में पड़ा है कि तुम यह कैसा व्यवहारकर रहे हो। शरीर को तुम्हारी बात समझ में नहीं आती, एक अन्तराल पैदा होगया। अचेतन एक काम कर रहा है, और चेतन कुछ और करता चला जाता है तुम बंट गये। इस अन्तराल को, इस गैप कोठीक से समझ लेना चाहिए।

प्रत्येक कृत्य मेंयह गैप पैदा हो जाता है। तुम एक फिल्म देख रहे हो, एक कामोत्तेजित करनेवाली फिल्म, तुम्हारा काम जाग गया है। . तुम्हारा शरीर यौन-अनुभव में उतरकर फूटने कौ तैयार है, परन्तु तुम केवल फिल्म देख रहे हो तुम एक कुर्सी पर बैठे हो, और तुम्हारा शरीर काम-कृत्य में उतरने को तैयारहै। फिल्म उसे और अधिक उत्तेजित करने में सहायक होगी, वह तुम्हें और धक्केदेगी। तुम उत्तेजना से भर गये हो, किन्तु तुम कुछ कर नहीं सकते। शरीर कुछकरने के लिए तैयार है, परन्तु स्थिति अनुकूल नहीं है, इसलिए एक गैप निर्मितहो जाता है। तुम अपने को भिन्न ही समझने लगते ही और तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच एक बाधा खडी हो जाती है। इस बाधा के कारण त्तथा इस बार-बार की उत्तेजना व साथ ही दमन के कारण, इस गति देने व रोकने के कारण, यह सतत विरोध ही तुम्हारा अस्तित्व हो गया है, और तुम रुग्ण होगये हो।

यदि तुम पीछे गिर सको और पशु हो सको, जो किं कभी भी नहीं होसकता, जो कि असंभव है, तब तुम समग्र और स्वस्थ हो जाओगे। यह एक बड़ा ही विचित्र तथ्य है कि पशु अपनी स्वाभाविक स्थिति में रुग्ण नहीं परन्तु उन्हेंप्राणी-संग्रहालय में रख दो और वे मनुष्यों की बीमारियाँलेने लगते हैं। कोई भीपशु अपने प्राकृतिक वातावरण में अपनी नैसर्गिक अवस्था में होमो सेक्सुअल(समलिंगी) नहीं होता, लेकिन उन्हें अजायब घर में रख दो और वे अजीब-अजीब मूर्खतापूर्ण कृत्य करने लगते हैं। वे समलिंगी संभोग करने लगते हैं। कोईभी पशु स्वाभाविक स्थिति में पागल नहीं होता, परन्तु अजायब घर में वे पागलहो जाते हैं। मनुष्य जाति के सारे इतिहास में ऐसा कभी उल्लेख नहीं किया गयाकि कभी किसी पशु ने आत्महत्या की हो लेकिन अजायब घर में पशु आत्म-हत्या करते हैं। यह बडी विचित्र बात है, परन्तु फिर भी वस्तुत्तः विचित्र नहींहैं, क्योंकि जैसे ही मनुष्य पशुओं को ऐसा जीवन जीने के लिए मजबूर करताहै, जो कि उनके लिए स्वाभाविक नहीं है, वे भीतर विभाजित हो जाते हैं। एकविभाजन निर्मित हो जाता है, एक गैप (अन्तराल) पैदा हो जाता है, और अखंडत्ताखो ही जाती है।

आदमी विभाजित है। आदमी विभाजित ही पैदा होता है। इसलिए फिर क्याकरें? कैसे इस अन्तराल को नहीं होने दें और कैसे शरीर के प्रत्येक कोष कोसजग करें? केसे शरीर के हर कोने को जगायें? कैसे जागरूकतालाये-यहीसारे धर्मों के लिए सारी समस्या है, सारे योग के लिए और सारी जागरण कीपद्धतियों के लिए कि कैसे इस सजगता-जागरूकता को तुम्हारे समग्र अस्तित्व तक ले जायें कि कुछ भी अचेतन न रह जाये।

बहुत-सी विधियों से प्रयत्न किया गया है, बहुत सी विधियाँ संभव है। अतः मैं कुछ विधियों पर बात करूँगा कि कैसे शरीर का प्रत्येक कोष सजग हो जाये। और जब तक कि तुम तुम्हारे समग्र रूप में जागरूक नहीं हो जाते, तुम आनन्दमैं नहीं हो सकते, तुम शान्ति में स्थापित नहीं हो सकते। तब तक तुम पागलखाना बने ही रहोगे।

तुम्हारे शरीर का प्रत्येक कोष तुम्हें प्रभावित कटता है। उसका अपना एककार्य है, उसका अपना एक प्रशिक्षण-अपना संस्कार है। जैसे ही तुम प्रारंभ करते हो, कोषअधिकार ले लेता हैऔर अपने ही तरीके से कार्य करने लगता है। तब तुम अशान्त हो जाते हो। तुम सोचते हो कि यह क्या हो रहा है? तुम्हें आश्चर्यहोता हैं कि ऐसा तो मेरा मतलब बिल्कुल नहीं था, ऐसा मैंने कतई नहीं सोचा था। और तुम सही हो तुम्हारी मर्जीबिल्कुल भिन्न रही हो सकती है। परन्तु एक बार तुम अपने शरीर को, उसके कोषों को कुछ करने के लिए दे देते हो तोअपनी ही तरह से उसे करते हैं-जैसी भी उनकी अपनी सिखावन है। इसीकारण से वैज्ञानिक-विशेषज्ञः रूसी वैज्ञानिक सोचते हैं कि हम आदमी को नहींबदल सकते जब तक कि हम उसके कोषों को नहीं बदल देते।

एक स्कूल है-बिहैवियरिस्टिक स्कूल-मनोवैज्ञानिकों का जो कि सोचताहै कि बुद्ध असफल हो गये, जीसस असफल होगये। वे असफल होंगे ही। उसमेंकुछ भी हैरानी की बात नहीं है क्योंकि बिना शरीर की संरचना को बदले, रासायनिकसंरचना को बदले, कुछ भी नहीं बदला जा सकता है कि बुद्ध असफल हो गये, जीसस असफल हो गये। वे असफल होंगे ही। उसमें कुछ भी हैरानी की बात नहीं है क्योंकि बिना शरीर की संरचना को बदले, रासयनिक संरचना को बदले, कुछ भी नहीं बदला जा सकता।

ये बिहैबियरिस्टिक-वाट्सन, पावलव, स्कोनर-कहते हैं कि यदि बुद्ध शांत हैं तो इसका मतलब यह है कि उनकी रासायनिक संरचना भिन्न है, और तो कोईबात हो नहीं सकती। यदि वे मौन हैं, यदि उनके चारों और शान्ति व्याप्त है, यदि वे कभी भी अशान्त नहीं होते, कभी क्रोधित नहीं होते तो इसका इतना हीमतलब है कि किसी भी तरह उनमें उन रसायनों का अभाव है जिनके कारणकि सारा उत्पात्त होता है, कि जो क्रोध को पैदा करते है। इसलिए स्कोनर कहताहै, आज नहीं कल हम रासायनिक तत्वों से बुद्ध को निर्माण कर लेंगे। किसीध्यान की कोई जरूरत नहीं है। किसी प्रकार की सजगता बढाने को कोई आवश्यकतानहीं है। केवल रसायनों को परिवर्तित करने की जरूरत है।

एक तरह से वह से सही हैं, किन्तु बहुत ही खतरनाक तरह से सहीहैं, क्योंकियदि तुम्हारे शरीर में से किन्हीं रसायनों को निकाल दिया जाये तो तुम्हारा व्यवहारबदल जायेगा। यदि किन्हीं विशेष हारमोन्स कोतुम्हारे शरीर में डाल दिया जाए, तो तुम्हारा व्यवहार बदल जाएगा। तुम पुरुष हो और तुम पुरुष की भाँति व्यवहारकरते हो। परन्तु यह तुम नहीं हो जो कि पुरुष की भाँति व्यवहार कर रहा हैयदि उन हारमोन्स को निकाल दिया जाये और दूसरे हारमोन्स जो कि स्त्री जाति के होते है, उन्हें डाल दिया जाये तो तुमस्त्री की तरह व्यवहार करने लगोगेइसलिए वस्तुतः यह तुम्हारा व्यवहार नहीं है, यह हारमोन्स के कारण है। ये तुमनहीं हो जो कि क्रोध करते हो, बल्कि एक विशेष हारमोन है तुम्हारे शरीर मेंऐसा नहीं है कि तुम शान्त हो और ध्यानी हो, बल्कि ये कुछ तुम्हारे भीतर हारमोन्स हैं।

स्कोनर कहता है-इसीलिए बुद्ध असफल हैं, क्योंकि वे उन बातों को कहतेचले जाते है, जो कि असंबद्ध हैं। तुम एक आदमी से कहते हो-क्रोध न करो, किन्तु वह ऐसे रासायनिक त्तत्वों से भरा है, हारमोन्स से, जो कि क्रोध पैदा करतेहैं। इसलिए एक बिहैबियरिस्ट के लिए यह ऐसा ही है-जैसे कि कोई आदमी तेज़बुखार में हो-एक सौ छह डिग्री बुखार-और आप उससे सुन्दर-सुन्दर बातेंकरते चले जाओ और कहो कि शान्त ही जाओ. ध्यान करो, बुखार को छोडो। यह बहुत अर्थहीन मालूम पड़ता है। वह आदमी क्या कर सकता है। जब तककि तुम उसके शरीर में कुछ परिवर्तन नहीं करते, बुखार रहेगा। ज्वर किसी वायरस के कारण है, किन्हीं रासायनिक तत्वों के कारण है। जब तक वह नहीं बदलजाता, जब तक कि उसको अनुपात में बदलाहट नहीं आती, वह ज्वर से पीडितरहेगा। और बात करने की कोई भी जरूरत नहीं है। यह बिल्कुल ही अर्थहीन है।

वही बात क्रोध के साथ है स्कोनर के लिए पावलव के लिए, वही बात सेक्स के साथ है। तुम ब्रह्मचर्य के बारे में बात करते चले जाते हो, और शरीरसेक्स की ऊर्जा से भरा है-सेक्स के कोषों से। वह सेक्स की ऊर्जा तुम परनिर्भर नहीं हैं, बल्कि तुम ही उस पर निर्भर हो। अतः तुम ब्रह्मचर्यं की बातें करते जाओ, लेकिन तुम्हारी इन बातों से कुछ भी न होगा। और वे लोग सहीहैं एक तहह से। लेकिन सिर्फ एक तरह से वे सहीं हैं, कि यदि रसायनों को बदल दिया जाये, यदि तुम्हारे शरीर से सारे सेक्स हारमोन्स को बाहर फेंक दिया जाये, तो तुम कामुक नहीं हो सकोगे। परन्तु तुम उससे बुद्ध नहीं हो जाओगेतुम केवल नपुंसक हो जाओगे, अयोग्य। तुममें कुछ कमी हो जायेगी।

बुद्ध में कुछ कमी नहीं हो गई है। बल्कि, इसके विपरीत, कुछ क्या और भी नवीन उनके जीवन में आ गया है। ऐसा नहीं है कि उनके सेक्स हारमोन्स नहीं हो गये हैं। वे उन में हैं। फिर क्या हो गया है उन्हें? उनकी चेतना गहरी होगयी है, और उनकी चेतना उनके सेक्स के कोषों में भी प्रवेश कर गई है। अब कामकोष तो हैं, किन्तु वे मनमानी नहीं कर सकते। जब तक केन्द्र उन्हें काम करने के लिए नहीं कहे, वे कुछ नहीं कर सकते, वे निष्क्रिय ही रहेंगे।

एक नपुसंक आदमी में काम-कोष नहीं होते। एक बुद्ध में वे मौजूद हैं औरक्या सामान्य आदमी से ज्यादा शक्तिशालीहैं-अधिक बलवान, क्योंकि वे कभी काम में नहीं लाये गये, बिना उपयोग किये पड़े हैं। उनमें ऊर्जा भरी है। उनमें ऊर्जा एकत्रित हो गईं है। परन्तु अब उनमें चेतना प्रवेश कर गई है। अब चेतनाआयल चालू करने वाला बिन्दु ही नहीं है बल्कि अब वह मालिक हो गई है।

आनेवाले समय में स्कोनर का प्रभाव हो सकता है। वेह एक बड़ी शक्ति बन सकता है। जैसे कि समाज की बाहरी अर्थ-व्यवस्था के लिए अचानक मार्क्स प्रभावशाली हो गया, उसी तरह किसी दिन भी पावलव-व स्कोनर भी आदमी के मन की भीतरी व्यवस्था के लिए शक्ति के केन्द्र हो सकते हैं। और वे जोभी कहते हैंउसे साबित कर सकते हैं। वे उसे सिद्ध कर सकते हैं। परन्तु इस घटना के दो पहलू हैं।

तुम एक बिजली का बल्ब देखते ही। यदि तुम बल्ब को तोड़ दो, तो प्रकाश विलीन हो जाएगा, न कि विद्युत चली जाएगी। वही बात तब भी होती है, जबकिगुण विद्युत के प्रवाह को काट देते हो-बल्ब तो साबुत होता है, किन्तु प्रकाश विलीन हो जाता है। अतः प्रकाश दो प्रकार से विलीन ही सकता है। यदि तुमबल्ब को तोड़ दो, विद्युत होगी. परन्तु तब कोई माध्यम के न होने के कारणजिसके द्वारा कि वह प्रकट होती है, वह प्रकाश नहीं बन पायेगी। यदि तुम्हारेकाम-कोषों को नष्ट कर दिया जाये, तब कामुकत्ता तो होगी, परन्तु कोई माध्यमनहीं होगा उसे प्रकट करने के लिए। यह एक पहलू है।

स्कीनर ने बहुत से पशुओं पर प्रयोग किये। किसी विशेष ग्रन्थि का आँपरेशनकरने से एक बहुत ही खूंखार कुत्ता बुद्ध की तरह शांत हो सकता है। वह चुपचापबैठ सकता है, जैसे कि ध्यानस्थ हो। तुम उसे फिर से खूंखार होने के लिए नहींउकसा सकते। तुम चाहे कुछ भी करो, किन्तु वह तुम्हारी ओर बिना किसी क्रोधके भाव के देखता रहेगा। ऐसा नहीं है कि कुता बुद्ध हो गया है, और न हीऐसी बात है कि उसका अन्तर्मन विलीन हो गया है। वह वैसा ही क्रोधी है, किन्तुअब माध्यम नहीं है जिसके द्वारा कि क्रोध व्यक्त हो सके। यह नपुसंकता है। माध्यम खो गया न कि वासना। यदि माध्यम को नष्ट कर दिया जाये, जैसे किबल्ब को तोड़ दिया जाये तो तुम कह सकते हो कि प्रकाश कहॉ है, और तुम्हारीविद्युत कहाँ है? वह विद्युत मौजूद है, परन्तु वह छिपी हुई है।

धर्म दूसरे ही मार्ग से काम करता रहा है। बल्ब को नष्ट करने की कोशिशनहीं करता है। वह मूर्खता की बात है, क्योंकि यदि तुम बल्ब को नष्ट कर दोगेतो तुम्हें उसके पीछे जो बिजली की घारा बह रही है उसका पता

नहीं चलेगाधारा को ही बदल दो, उसका रूपान्तरण कर दो, घारा को एक नये ही आयाममें गति करने दो। और तब बल्ब भी वहाँजैसे-का्र-तैसा मौजूद रहेगा, परन्तु उसमेंकोई प्रकाश नहीं होगा।

मैंने कहा कि स्कोनर प्रभावशाली हो सकता है क्योंकि वह एक बहुत सरल मार्ग बतलाता है। तुम क्रोधी हो, तुम्हारा आँपरेशन किया जा सकता है, तुम कामुकहो, और तुम्हारा आँपरेशन किया जा सकता है। तुम्हारी समस्या का समाधान तुम्हारेद्वारा न होगा बल्कि एक सर्जन के द्वारा किया जाएगा-किसी और के द्वारा। औरजब कभी भी कोई और तुम्हारी समस्या का समाधान करता है तो तुमने एक अवसरखो दिया, क्योंकि जब तुम स्वयं उसका समाघान करते हो, तो तुम विकसित होतेहो। जब कोई और उसका समाघान करता है तो तुम तो वही-के-वही रहते होसमस्या शरीर के द्वारा कर दी जायेगी और फिर कोई समस्या नहीं होगी। परन्तु तब तुम मनुष्य न रह जाओगे।

घर्म का सारा जोर चेतना को रूपान्तरित करने पर है। और पहली बात भीतर

चेतना को एक बडी शक्ति पैदा कर लेनी है ताकि उससे सजगता और अधिक

बढ़सके। यह सूत्र बडा ही अनूठा है। यह कहता है कि...

"चैतन्य के सूर्य में स्थित होना ही एक मात्र दीपक है।"

सूर्य हमेशा बहुत दूर है। प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में दस मिनट लगतेहै, और प्रकाश बहुत तेज़गति से चलता है-1, 86, 000 मील प्रति सेकंड की गति से। सूर्य को पृथ्वी तक पहुँचने में दस मिनट लगते है, वह बहुत दूर है। परन्तु सुबह सूर्य उगता है और वह तुम्हारे बाग में खिले फूल तक भी पहुँच जाता है।

पहुँचने का यहाँ भिन्न ही अर्थ है। केवल किरणें पहुँचती हैं, न कि सूर्य। इसलिए यदि तुम्हारी ऊर्जा तुम्हारे भीतर गहरे में केन्द्र पर सूर्य ही जाये-यदितुम्हारा केन्द्र सूर्य हो जाये, यदि तुम चैतन्य हो जाओ, केन्द्र पर सजग हो जाओ, यदि तुम्हारी जागरूकता बढ़ जाये, तो तुम्हारी चेतना की किरणें तुम्हारे शरीर केप्रत्येक अंग तक, प्रत्येक कोष तक पहुँच जाती हैं। त्तब तुम्हारी सजगता शरीरके हर एक कोष में प्रवेश कर जाती है।

यह ऐसा ही है जैसे कि सुबह सुरज उगता है और पृथ्वी पर सब चीजोंमें जीवन दौड़ पड़ता है। अचानक प्रकाश फैल जाता है, और नींद उड़ जातीहै, रात्रि का भारीपन खो जाता है। अचानक ऐसा लगता है कि जैसै हर चीज़ पुनर्जीवित हो गई। चिडियाँ गीत गाने लगती है और अपने परों को फैला आकाश में उड़ने लगती हैं, फूल खिल उठते हैं, और प्रत्येक चीज़फिर से जिन्दा होजाती है, सूर्य की गर्मी से, उसके स्पर्श मात्र से ही। इसलिए यदि जब तुम्हारेपास केन्दित चेतना होती है, तुम्हारे भीतर सजगता होती है, तो वह हर छिद्र मेंपहुँचने लगती है, शरीर के प्रत्येक रोयें-रोयें में, हर कोष में वह प्रवेश कर जातीहै। और तुम्हारे पास बहुत सारे कोष हैं-सात करोड़ कोष है तुम्हारे शरीर मेंतुम एक बहुत बड़ा शहर हो, सात करोड़ कोष और वे सारे मूच्छित हैं। तुम्हारीचेतना उन तक कभी भी नहीं पहुँची।

चेतना को बढाओ, और तब उसका हरएक कोष में प्रवेश हो जाता है। और जैसे ही चेतना कोष को स्पर्श करती है, वह भिन्न हो जाता है। उसका गुण ही बदल जाता है। एक आदमी सो रहा है, सुरज उगता है और वह आदमी जागजाता हैं। वया वह वही आदमी है जो कि सोते समय था? क्या उसका सोना और जागना एक ही है? एक कली बन्द है और मुझाई हुईं है, और फिर सूरजउग जाता है और कली खिल जाती है और फूल बन जाती है। क्या यह फूल वही है? कुछ नया उसमें प्रवेश कर गया है। एक जीवन्तता, एक बढ़ने व खिलनेकी क्षमता प्रकट हुई है। एक चिडियाँ सो रही थी, जैसै कि मृत हो, मृत पदार्थहो। परन्तु सुरज निकल आया है और

चिडियों अपने परों पर उड़ निकली हैं। क्या वह वही चिडियाँ हैं? यह अब एक नई ही घटना है। कुछ छू गया है, और चिडिया जीवित हो गई है। हर चीज़चुप थी और अब हर चीज़गीत गारही है। सुबह स्वयं एक गीत है।

वही घटना एक बुद्ध के शरीर के कोषों में घटित होती है। उसे हम "बुद्ध-काया" के नाम से जानते हैं-एक जागृत आदमी का शरीर। एक बुद्ध का शरीर। वह वही शरीर नहीं है, जैसा कि तुम्हारा है। न ही वह शरीर है जो कि बुद्धहोने के पहले गौतम काथा।

बुद्ध मरने के करीब हैं, तब कोई उनसे पूछता है-"वया आप मर रहे हैं मरने के बाद आप कहाँ होंगे?" बुद्ध ने कहा-जोशरीर पैदा हुआ था वह तो मरेगा। परन्तु एक और भी शरीर है-बुद्ध-कायर, बुद्ध का शरीर जो कि नतो कभी जन्मा था और न कभी मर सकता है। परन्तु मैंने वह शरीर छोड़ दिया है जो कि मुझें मिला था, जो कि मेरे माता-पित्ता ने मुझे दिया था। जैसे कि हरवर्ष सांप अपनी पुरानी केंचुली छोड़ देता है, मैंने भी उसे छोड़ दिया है। अबबुद्ध-कायाहै बुद्ध का शरीर है।

इसका वया अर्थ होता है? तुम्हारा शरीर भी बुद्ध का शरीर हो सकता हैजब तुम्हारी चेतना हर कोष तक पहुँचती है, तो तुम्हारे अस्तित्व का गुणघर्म-हीबदल जाता है, रूपान्तरित हो जाता है क्योंकि तब प्रत्येक कोष जीवन्त हो गया, जाग गया, बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया, पराधीनता समाप्त हुईं। तुम अपने मालिकहुए। मात्र केन्द्र के चैतन्य होने से तुम अपने मालिक हो जाते हो।

यह सूत्र कहता है-चैतन्य के सूर्य में स्थिर होना ही एकमात्र दीपक हैइसलिए तुम मन्दिर में मिट्टी का दीपक लेकर क्यों जा रहे हो? अंतर का दीपकलेकर जाओ। तुम वेदी पर मोमबत्तियाँ क्यों जला रहे हो? उनसे कुछ भी न होगाअन्तर की ज्योति जला लो। बुद्ध-काया को प्राप्त कर लो! अपनेशरीर के हरकोष को जागने दो, अपने शरीर के एक भी कोष को मूच्छित न रहने दो।

बौद्धों ने बुद्ध को कुछ अस्थियाँ बचा कर रखी हैं। लोग सोचते हैं कि यह अन्ध-विश्वास है। यह अन्ध-विश्वास नहीं है, क्योंकि वे अस्थियाँसाधारण हड्डिंयाँनहीं हैं। ये साघारण नहीं हैं। इन कोषों ने, इन टुकडों ने अस्थियों के इन-इलेक्ट्रॉन्सने कुछ ऐसा जाना है जो कि कभी-कभी ही होता है। कश्मीर में मुहम्मद काएक बाल संभाल कर रखा गया है। वह कोई साधारण बाल नहीं है। वह कोईअन्ध-विश्वास की बात नहीं है। उस बाल ने भी कुछ जाना है।

इसे इस भाँति समझने की कोशिश करें, एक फूल जिसने कि कभी सुरजका उगना नहीं जाना, और एक वह फूल जिसने जाना है, सूर्यं कासाक्षात्कारकिया है, वे दोनों एक नहीं हो सकते। दोनों एक नहीं है। एक फूल जिसने किकमी सूर्य का उगना न जाना होउसने अपने भीतर कभी प्रकाश को बढ़ते नहींजाना, क्योंकि वह तभी बढ़ता है, जबकि सुरज उगता है। वह फूल मरा हुआहै। उसने अपनी आत्मा कभी नहीं जानी। एक फूल जिसने सुरज के उगने केसाथ ही, अपने भीतर भी कुछ बढ़ते हुए अनुभव किया। उसने अपनी आत्मा कोजाना। अब फूल मात्र एक फूल नहीं है। उसने अपने भीतर एक गहरी क्रांतिको जाना है। भीतर कुछ सुगबुगाया है, कुछ उसके भीतर-जीवन्त हुआ है।

इसलिए मुहम्मद का बाल एक दूसरी ही बात है, उसका गुण-धर्म ही अलगहै। उसने एक आदमी को जाना। वह एक ऐसे आदमी के साथ रहा है जो किआंतरिक सूर्य ही हो गया, एक अंतर्प्रकाश ही बन गया। उस जाल ने एक गहरीडुबकी लगाई है किसी गहरे रहस्य में जो कि बडी मुश्किल से कभी घटता है। इस अन्तर्ज्योति में स्थापित होना ही एकमात्र दीया है जो कि परमात्मा की वेदीपर ले जाने योग्य है। उसके अलावा किसी और चीज़से कुछ भी न होगा।

इस चैतन्य के केन्द्र को कैसे निर्मित किया जाये? मैं बहुत-सी विधियों कीबात करूँगा, किन्तु चूंकि मैं बुद्ध कीतथा बुद्ध-काया की बात कर रहा था, अच्छाहोगा कि बुद्ध से ही प्रारंभ करूँ। बुद्ध ने एक विधि खोजी, एक बहुत ही आश्चर्यजनकविधि-एक बहुत ही शक्तिशाली पद्धति आँतरिक अग्नि क्रो जलाने के लिए चैतन्यके सूर्य का निर्मित करने के लिए। और न केवल उसे निर्मित करने के लिए बल्कि साथ-ही-साथ वह अन्तर्ज्योति शरीर के प्रत्येक कोष में भी प्रवेश करने लगतीहै। तुम्हारे सारे अस्तित्व में भी दौड़ने लगती है।

बुद्ध ने श्वास का विधि की तरह उपयोग किया-होशपूर्वक श्वास लेना। इस विधि को"अनापान-सतीयोग" के नाम से आता जाता है-भीतर आती वबाहर जाती श्वास के प्रति सजगता। तुम श्वास लेते हो परन्तु यह अचेतन बातहै। और श्वास ही प्राण है, श्वास ही "एलीन-वाइडल" है, मुख्य शक्ति है, प्राणऊर्जा है, आलोक है-और वही अचेतन है। तुम्हें उसका कोई भी होश नहींयदि तुम्हें श्वास लेना पड़े तो तुम किसी भी क्षण मर जाओगे क्योंकि तब बडामुश्किल होगीश्वास लेना।

मैंने कुछ मछलियों के बारे में सुना है जो कि छः मिनट से ज्यादा नहींसोती क्योंकि यदि वे इससे ज्यादा सोयें तो मर जायेंगी, क्योंकि वे नींद में श्वासलेना भूल जाती हैं। यदि उनको नींद गहरी हो जाये तो वे "श्वास लेना भूल जातीहैं, इसलिए वे मर जाती हैं। ये विशेष मछलियाँ छः मिनट से ज्यादा नहीं सोसकतीं। उन्हें समूह में रहना पड़ता है-सदैव समूह में। कुछ मछलियाँ सो रहीहैं, दूसरी मछलियों को ध्यान रखना पड़ता है कि वे ज्यादा देर तक न सोती रहेंजब उनका समय हो जाता है, वे उनकी नींद को तोड़ देती है, वरना सोती हुईमछलियाँ मर जायेंगी। वे फिर से नहीं जागेंगी।

यह वैज्ञानिक निरीक्षण है। यह तुम्हारे लिए भी एक समस्या हो जाये यदितुम्हें याद रखना पड़े कि तुम्हें श्वास लेना है। तुम्हें सतत याद रखना पड़े कितुम्हें साॅस लेना है, और तुम एक क्षण के लिए भी कुछ याद नहीं रख सकतेयदि एक क्षण भी भूल हो जाये तो तुम गये। इसलिए साँस अचैच्छिक क्रियाहै, वह तुम पर निर्भर नहीं है। यहाॅ तक कि यदि तुम महीनों तक बेहोशी कीहालत में पड़े रहो, तो भी तुम श्वास लेते रहोगे।

मैं कहता हूँ कि सचमुच ये मछलियों बहुत दुर्लभ है। और किसी दिन होसकता है कि आदमी को पता चले कि उनमें एक गहरी सजगता है जो कि आदमीके पास भी नहीं है क्योंकि सतत होशपूर्वक श्वास लेना एक बहुत ही कठिनबात है। हो सकता है उन मछलियों ने कोई विशेष सजगता उपलब्ध कर ली हो, जो कि हमारे पास नहीं है।

बुद्ध ने श्वास को दो कार्य एक साथ करने के लिए वाहन की भाँति काममें लिया-एक : चेतना पैंदा करने के लिए, और दूसरा : उस चेतना कोशरीरके हर एक कोष में प्रवेश करा देने के लिए। उन्होंने कहा-होशपूर्वक श्वासलो। यह कोई प्राणायाम नहीं है। यह सिर्फ श्वास को बिना बदले सजगता काविषय बनाने का प्रयास है। तुम्हें अपनी श्वास कीगति में कोई परिवर्तन नहींकरना है। उसे वैसा ही रहने देना-नैसर्गिक जैसी वह है-वैसी ही रहने देनाहैं। उसे परिवर्तित न करें। कुछ और करें। जब तुम श्वासको भीतर ले जाओंतो होशपूर्वक लेजाओ। भीतर जातीश्वास के साथ तुम्हारी चेतना भी भीतर चलीजाए। जब श्वास बाहर आती हो तो तुम भी उसके साथ बाहर चले जाओ। भीतर जाओ, बाहर आओ। श्वास के साथ होशपूर्वक चलो। तुम्हारा ध्यान श्वास पर होउसके साथ वही, एक श्वास भी विस्मृत न हो जाये।

बुद्ध ने कहा-बताते हैं कि यदि तुम एक घंटे भी श्वास के प्रति सजगरह सको तो तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये समझो। लेकिन एक श्वास भी नहींचूकनी चाहिए। एक घंटा काफी है। यह बहुत छोटा मालूम पड़ता हैं-केवल समय का एकटुकड़ा, किन्तु वह है नहीं। जब तुम प्रयास करोगे तो सजगता का एक घंटा लाखों साल जैसा

प्रतीत होगा क्योंकि साधारणतः तुम पाँच-छः सेकंड से ज्यादा सजग नहीं रह सकते, और वह भी जबकि कोई बहुत अधिक सावधान हो। अन्यथा तुम हर सेकंड पर चूक जाओगे। तुम शुरू करोगे कि श्वास भीतर जा रही हैं। श्वास भीतर चली गई है, और तुम कहीं और चले गये। अचानकतुम्हें याद आयेगा कि श्वास बाहर जा रही है। श्वास बाहर चली गई और तुम कहीं और जा चुके।

श्वास के साथ चलने का अर्थ होता है कि एक भी विचार को न चलनेदिया जाये क्योंकि विचार तुम्हारा ध्यान खींच लेगा, विचार तुम्हारे ध्यान को कहींऔर ले जाएगा। इसलिए बुद्ध कभी नहीं कहते कि बिचारों को रोको परन्तु वे कहते है-"हौशपूर्वक श्वास लो" विचार स्वतः ही रुक जायेंगे। तुम दोनों कामएक साथ नहीं कर सकते कि विचार भी करो और श्वास पर भी ध्यान रख सको।

एक विचार तुम्हारे मस्तिष्क में आता है और तुम्हारा ध्यान कहीं और चलाजाता है। एक अकेला विचार, और तुम अपनी श्वास की प्रक्रिया के प्रति मूच्छित हो जाते हो। इसलिए बुद्ध ने बहुत ही सरल विधि का प्रयोग किया पर एक बहुतही जीवन्त प्रक्रिया का। उन्होंने अपने भिक्षुओ से कहा कि तुम चाहे जो भी करो, किन्तु अपनी भीतर आती और बाहर जाती श्वास के प्रति होश बना रहे। उसकेसाथ ही गति करो, उसके साथ ही बहो। जितना आवक तुम प्रयत्न करोगे, जितनाज्यादा प्रयास करोगे उतना ही तुम उसके प्रति जाग सकोगे। सजगता एक-एकसेकंड करके बढेगी। यह बहुत कठिन है। बहुत मुश्किल बात है। लेकिन एकबार भी तुम उसे अनुभव कर लो तो तुम दूसरे ही आदमी ही जाओगे-एक भिन्नही व्यक्ति, एक भिन्न ही जगत के।

यह दो त्तरह से काम करती है : जब तुम होशपूर्वक भीतर श्वास लेते होओरबाहर छोड़ते हो, तो धीरे-धीरे तुम अपने केन्द्र पर आ जाते हो, क्योंकि तुम्हारीश्वास तुम्हारे होने के केन्द्र को स्पर्श करती है। हर बार जब श्वास भीतर जातीहै, तो वह तुम्हारे अस्तित्व के, बीइंग के केन्द्र को छूती है। शारीरिक-रूप सेतुम सोचते हो कि श्वास का काम तुम्हारे रक्त को साफ करने के लिए है, कि यह हृदय का एक कार्य है कि श्वास ले, कि वह शरीर की बात है। तुम सोचते हो कि श्वास लेना फेफडों का कार्य है, जो कि रक्त्त की सफाई के लिए एक पमिंपग स्टेशन है, जो कि रवत को, आँक्सीजन पहुँचाता है और कारबन-डाई-ऑक्साइडबाहर फेंकता है, जो कि बेकार हो चुकी और उसकी जगह त्ताजा आक्सीज़न भरता हैं।

परन्तु यह केवल शारीरिक बात है। यदि तुम अपनी श्वास के प्रति सजगक्या। शूरू करो, तो धीरे-धीरे तुम गहरे चले जाओगे-तुम्हारे हृदय से भी गहरे, और एक दिन तुम्हें अपने केन्द्र की प्रतीति होगी तुम्हारी नाभि के पास। यह केन्द्रकी प्रतीति तभी होगी जबकि तुम लगातार अपने श्वास के साथ चलते जाओ-क्योंकिफिराने निकट तुम अपने केन्द्र के पहुँचते हो, उतनी ही तुम्हारी चेतना खोने की पाठशाला है। तुम शुरू कर सकते हो भीतर श्वास लेने से, जबकि वह तुम्हारी नाक को स्पर्श करे, वही से तुम सावधान हो जाओ। जितनी अधिक भीतर जाये, उतनी ही चेतना कठिन हो जायेगी और एक विचार भी आ गया, या कोईआवाज़ अथवा कुछ भी हो गया और तुम वापस आ जाओगे।

यदि तुम अपने केन्द्र तक जा सको जहाँ कि एक क्षण के लिए श्वास रुक जाती है और एक अन्तराल आ जाता है तो छलांग लग सकती है। श्वास भीतर जाती है, श्वास बाहर आती है, इन दो के बीच में भी एक बहुत सूक्ष्म गैप है वह गैप ही तुम्हारा केन्द्र है। जब तुम श्वास के साथ चलते हो, तब कहीं बहुतश्रम के बाद तुम्हें उस गैप का पता चलता है-जबकि श्वास की कोई गति नहीं होती, जबकि श्वास न तो आ रही होती है और न ही जा रही होती है। दो श्वासोंके बीच एक बहुत ही बारीक-सा अन्तराल हैं-एक गैप है। उस अन्तराल मेंतुम अपनेंकेन्द्र पर होते हो।

इसलिए बुद्ध वे श्वास का प्रयोग किया केन्द्र के निकट, और अधिक निकटआने के लिए। जब तुम बाहर जाओश्वास के साथ, श्वास के प्रति सजग रहोफिर एक गैप है। सब मिलाकर दो गैप हैं-एक गैप भीतर और एक गैप बाहरश्वास भीतर जाती है, और श्वास बाहर जाती है, दोनों के बीच एक गैप है। श्वासबाहर जाती है, और श्वास भीतर जाती है : फिर एक गैप है। दूसरे गैप के प्रति सजग होना और भी ज्यादा कठिन है।

इस प्रक्रिया को देखो। तुम्हाराकेन्द्र भीतर आती श्वास और बाहरजातीश्वास के बीच में है। एक दूसरा भी केन्द्र है-कॉँस्मिक सेंटर-ब्रह्म-केन्द्र। तुमउसे परमात्मा कह सकते हो। जबकि श्वास बाहर जाती है और भीतर आती है, तब भी एक गैप है। उस गैप में ब्रह्म-केन्द्र है। ये दोनों केन्द्र दो भिन्न बातें नहीं हैं। परन्तु पहले तुम अपने आंतरिक केन्द्र के प्रति ही जागोगे और तब तुम अपने बाहर के केन्द्र के प्रति सजग हो जाओगे। और अन्ततः तुम जानोगे कि ये दोनोंकेन्द्र एक ही हैं। तब "भीतर" और "बाहर" का कोई अर्थ नहीं बचता।

बुद्ध कहते हैं कि सजगतापूर्वक श्वास लो और तब तुम चैतन्य का एककेन्द्र निर्मित कर सकोगे। और एक बार यह केन्द्र निर्मित हो जाये तो चेतना तुम्हारेश्वास के साथ तुम्हारेरक्त में, कार्यों में प्रवाहित होने लगेगी, क्योंकि प्रत्येक कोष को हवा की, ऑक्सीजन की आवश्यकता है, और प्रत्येक कोष श्वास लेता है-हरकोष। और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि लगता है कि यह पृथ्वी भी श्वासलेती है। और आइंस्टीन की संसार के फैलने की धारणा के अनुसार सैद्धान्तिकवैज्ञानिक ऐसा कहते है कि सारा जगत ही श्वास ले रहा है।

जब तुम श्वास भीतर लेते हो तो तुम्हारी छाती फैल जाती है। जब तुम श्वासबाहर निकालते हो तब तुम्हारी छाती सिकुड़ जाती है अब सैद्धान्तिक वैज्ञानिककहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि सारा विश्व ही श्वास ले रहा है। जब जगत भीतर श्वास भीतर लेता है तो वह फैल जाता है। जब वह श्वास बाहर निकालता हैतो सिकुड़ जाता है।

पुराने हिन्दू शारत्रों में ऐसा कहा गया है कि सृष्टि ब्रह्मा की भीतर आतीएक श्वास है-ओर प्रलय-बाहर जाती एक श्वास है।

बहुत ही सूक्ष्म ढंग से, बहुत ही आणविक तरीके से, वही तुम्हारे भीतरहो रहा है। जब तुम्हारी सजगता तुम्हारे श्वास के साथ बिल्कुल एक हो जातीहै, तब तुम्हारी श्वास तुम्हारी चेतना को हर कोष तक ले जाती है। अब किरणें प्रवेश कर जाती है और सारा शरीर बुद्ध-काया हो जाता है। वस्तुतः तब तुम्हारेपास कोई पदार्थगत्त शरीर नहीं होता। तुम्हारे चैतन्य का शरीर होता है। यही इससूत्र का अर्थ है-चैतन्य के सूर्य में स्थापित हो जाना-यही दीपक है।

जिस तरह हमने बुद्ध की विधि समझो, अच्छा होगा कि हम एक दूसरीभी विधि समझ लें-एक और विधि। तन्त्र ने यौन का उपयोग किया। वह भीबडी ही जीवन्त शक्ति है। यदि तुम्हारे भीतर तुम्हें गहरे जाता हो, तो तुम्हें बहुतजीवन्त शक्ति का उपयोग करना पडेगा-सर्वाधिक गहरी शक्ति का। तन्त्र यौनका उपयोग करता है। जब तुम यौन-कृत्य में लगे हो तब तुम सृजन के केन्द्र के बहुत ही निकट हो-जीवन के स्रोत के करीब। यदि तुम यौन-कृत्य में होशपूर्वकजा सको तो वह ध्यान हो जाता है।

यह बहुत ही कठिन है-श्वास से भी अधिक कठिन। तुम थोडी मात्रा मेंहीशपूर्वक श्वास ले सकते हो। वह तुम कर सकते हो। परन्तु सेक्स की घटनाही ऐसी है कि उसे तुम्हारी मूर्च्छा की आवश्यकता है। यदि तुम होश में हो जाओ तो तुम्हारी काम वासना खो जायेगी। यदि तुम जाग जाओं तो भीतर कोई काम-वासना नहीं बचेगी। इसलिए तन्त्र ने सर्वाधिक कठिन बात जगत में की। चेतना को जगाने के प्रयोगों के इतिहास में तन्त्र सर्वाधिक गहरा गया।

परन्तु सचमुच इसमें कोई अपने को धोखा भी दे सकता है, और तन्त्र केसाथ प्रवंचना बहुत सुगम है क्योंकि तुम्हारे अलावा कोई दूसरा नहीं जान सकताकि वास्तविकता क्या है। कोई भी नहीं जान सकता। किन्तु सौ में से एक व्यक्तितन्त्र को विधि में सफल हो सकता है क्योंकि सेक्स को मूर्च्छा की आवश्यकताहै। अतः एक तान्त्रिकको, तन्त्र के साधक को सेक्स पर काम करना पड़ता है, काम वासना के प्रति होश रखना पड़ता है जैसे कि श्वास पर रखते हैं। उसे उसकेप्रति सजग रहना पड़ता है। जब वस्तुतः ही वह यौन-कृत्य में जाये तो उसे होशको संभाले रखना पड़ता है।

तुम्हारा शरीर, तुम्हारी काम-ऊर्जा अपने शिखर पर आ गई है और विस्फोटित होने को है। तन्त्र का साधक होशपूर्वक शिखर पर पहुँचता है, और उसकी एकविधि है जानने की। यदि काम-ऊर्जा का स्खलन अपने-आप हो जाये और तुमउसके मालिक न रह पाओ तो फिर तुम उसके प्रति सजग नहीं थे। तब अचेतनने अधिकार ले लिया। यौन अपने शिखर पर हो, और तुम कुछ भी न कर सकोसिवाय स्खलित होने के, तब वह स्खलन तुम्हारे द्वारा न हुआ। तुम काम कीप्रक्रिया शुरू कर सकते हो, तुम उसे समाप्त नहीं कर सकते। अंत सदैव अचेतनके अधिकार में रहता है।

यदि तुम शिखर पर रुके रहो और वह तुम्हारा सचेतन कृत्य हो जाये कितुम चाहो तोस्खलन हो और तुम चाहो तो न हो, यदि तुम शिखर से वापसलौट सको बिना स्खलन के अथवायदि तुम शिखर पर घंटों ही रुक सको, यदिवह तुम्हारा जागृत कृत्य हो, त्तब ही तुम मालिक हो। और यदि कोई काम केशिखर पर पहुँच जाये-वीर्य-स्खलन के बिल्कुल किनारे ही-और उसे रोके रहसके और उसके प्रति जागरूक रह सके, तब अचानक वह अपने गहनतम केन्द्र के प्रति जागता हैं-अचानक। और ऐसा नहीं है कि वह अपने ही गहनतम केन्द्रको जान पाता है, बल्कि वह अपने साथी के भी गहरे से गहरे केन्द्र को अनुभवकर पाता है।

इसीलिए यदि कोई तन्त्र का साधक है और यदि वह पुरुष है तो वह सदैवअपने साथी की पूजा करेगा। उसका साथी मात्र यौन संबंध का विषय नहीं हैवह दिव्य है। वह एक देवी है। और वह कृत्य शारीरिक कतई नहीं है। यदितुम उसमें होशपूर्वक जा सको, तो वह गहरे से गहरा आध्यात्मिक कृत्य है। परन्तुहर गहनतम बात सदा ही असंभव जैसी होती है। इसलिए या तोश्वास का यासेक्स का उपयोग करो।

महावीर ने भूख का उपयोग किया। वह भी एक गहरी बात है। भूख भीतुम्हारे स्वाद की भूख नहीं है अथवा किसी और चीज़के लिए नहीं है। वहतुम्हारे जीवन के लिएज़रूरी है। महावीर ने भूख का-उपवास का-उपयोग किया जागरण के लिए। यह कोई तप नहीं है। महावीर कोई तपस्वी नहीं हैं। लोगोंने उन्हें बिल्कुल गलत समझा। वे कोई तपस्वी नहीं थे। कोई समझदार आदमीकभी तपस्वी नहीं होता। परन्तु वे भूख को, उपवास को जागरण के लिए एक वाहन की तरह उपयोग कर रहे थे।

शायद तुमने इस तथ्य पर कभी ध्यान दिया हो कि जब तुम्हारा पेट पूरा भरा हो तो तुम्हें नींद आने लगती है, तुम बेहोश होने लगते हो। तुम सोना चाहतेहो। परन्तु जब तुम भूखे हो, उपवास कर रहे ही तो तुम सो नहीं सकते। रात्रिमें भी तुम इघर-से-उघर करवटे लेते रहोगे। तुम उपवास में सो नहीं सकते। क्योंनहीं सो सकते। क्योंकि यह सोना तब जीवन के लिए खतरनाक है। अब नींदद्वितीय आवश्यकता है। पहली जरूरत भोजन की हैं-भोजन प्राप्त करने की। वहप्रथम आवश्यकता है। नींद अब कोई समस्या नहीं है।

परन्तु महावीर ने उसका बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से उपयोग किया। क्योंकिजब तुम उपवास कर रहे हो तो सो नहीं सकते। तुम चीजों को ज्यादा आसानीसे स्मस्या रख सकते ही। सजगता भी सरलता से आती. है। और महावीर ने उपवासका उपयोग चेतना के जागरण के विषय की भाँति किया। वे लगातार खड़े रहते।

तुमने बुद्ध की मूर्ति बैठी हुईं देखी होगी किन्तु महावीर की ज्यादातर मूर्तियाँखड़ी अवस्था में हैं। वे सदैव खड़े ही रहे थे। तुम्हें अपनी भूख का और भी अधिक अनुभव होगा यदि तुम खड़े हुए हो। यदि तुम बैठे हो तो तुम्हें वह कम मालूमहोगी और यदि तुम लेटे हुए हो तो वह और भी कम महसूस होगी। जब तुम खड़े हो तो सारा शरीर भूख महसूस करने लगता है। तुम्हें सारे शरीर में भूखको प्रतीति होगी। सारा शरीर बहने लगता है, वह भूख की एक सरिता हो जाताहै। पैर से सिर तक तुम भूखे हो जाते हो। केवल पेट ही नहीं बल्कि पाँव भी, यहाँ तक सारा शरीर भूख को अनुभव करने लगता है। और महावीर चुपचाप निरीक्षणकरते हुए खड़े रहेंगे, भूख के समय-साथ बहते हुए-जैसे कि कोईश्वास केसाथ करता है। ऐसा कहा जाता है कि उनके मौन के बारह साल के अर्से मेंउन्होंने करीब ग्यारह वर्षों तक उपवास किया। केवल तीन सौ साठ दिन ही उन्होंनेभोजन लिया। उपवास एक विधि था उनके लिए।

श्वास की तरह ही भोजन और यौन, ये भी सबसे अधिक गहरी चीजें है। जब तुम अपनी भूख के प्रति सजग होते चले जाते हो, केवल सजग होते जातेहो और कुछ नहीं करते हो, तो अचानक तुम केन्द्र पर फेंक दिये जाते हो, तुम्हारे "होने" तुम्हारे बीइंग पर सबसे पहले भूख ऊपरी परिधि पर होती है, यदि तुमपरिधि घर उसे न भरो, तो उससे गहरी पर्तें भूखी हो जाती हैं। और इस तरहचलता चला जाता है, और अन्ततः तुम्हारा सारा शरीर भूखा हो जाता है। जब सारा शरीर हो भूखा हो जाता है तुम केन्द्र पर फेंक दिये जाते हो।

जब तुम्हें भूख की प्रतीति होती है, तो वहं झूठी होती है। वास्तव में, वहमात्र एक आदत होती है, न कि भूख। यदि तुम दिन के एक खास वक्त परभोजन करते हो, मान लो कि एक बजे, तोठीक एक बजे तुम्हें भूख की प्रतीतिहोती है। यह भूख झूठी है जिसका कि शरीर से कोई संबंध नहीं है। यदि तुमएक बजे भोजन न करो, तो दो बजे तुम्हें लगेगा कि भूख चली गई। यदि वहप्राकृतिक थी तो दो बजे उसे बढ़ जाना चाहिए था। वह चली क्यों गई? यदि वहवास्तविक थी तो दो बजे वह और भी अधिक गुनगनी चाहिए और तीन बजे उससेभी ज्यादा, और चार बजे उससे भी ज्यादा। परन्तु वह खो गई। वो एक आदतथी-एक बहुत ही ऊपरी आदत।

यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति तीन सप्ताह तक उपवास करे, तभी केवल वहवास्तविक भूख तक आ सकता है। त्तब पहली बार वह जान सकेगा कि वास्तव में भूख वया होती है। अभी तुम यह कदापि नहीं जान सकते कि भूख भी इतनीशक्तिशाली जात है जितना कि यौन-परन्तु मैं वास्तविक भूख के लिए कह रहाहूँ। इसलिए ऐसा होता है कि जब तुम उपवास पर होते हो तो तुम्हारी काम-वासना मर जाती है, क्योंकि अब और भी अधिक आधारभूत। चीज़ दाँव पर है।

भोजन तुम्हारे जीवित रहने के लिए है, यौन मनुष्य जाति के जीने के लिएहै। यह एक दूर की घटना है जो कि तुम्हारे से संबंधित नहीं है। यौन जातिके लिए भोजन है, न कि तुम्हारे लिए। यौन के द्वारा मनुष्यता जी सकती हैइसलिए वह कोई तुम्हारी समस्या नहीं है। वह मानव जाति की समस्या है। तुमउसे छोड़ भी सकते हो, परन्तु तुम भोजन नहीं छोड़ सकते क्योंकि वह तुम्हारीअपनी समस्या है। वह तुमसे संबंधित है। यदि तुम उपवास करते चले जाओ तोशनैः-शनैः यौन खोजायेगा, और वह अधिकाधिक दूर चला जायेगा

इस कारण से बहुत से लोग अपने को ही धोखा दिये चले जाते हैं। वेसोचते हैं कि यदि वे कम भोजन करते हैं तो वे ब्रह्मचारी हो गये हैं। वे ब्रह्मचारीनहीं ही गये हैं। केवल समस्या कोज़रा आगे सरका दिया गया है। उन्हें ठीक-ठाक भोजन दो काम-वासना लौट आएगी-पहले से भी अधिक शक्ति से, ज्यादाताजा व युवा होकर।

यदि तुम तीन सप्ताह से भी ज्यादा समय तक उपवास करो, तो तुम्हारा साराशरीर भूखा हो जाता है। शरीर का रोयां-रोयां भूख महसूस करने लगता है। तबपहली बार तुम सही अर्थों में भूखे हुए हो, तुम्हारा पेट

भूखा है, तुम्हारा साराशरीर ही भूखा हैं। तुम चारों ओर से एक गहरी भूख की अग्नि से धिरे हो महावीर ने इसका जागरण के लिए उपयोग किया, अतः वे भूखे रहते। उपवासकरते और सजग रहते।

एक स्वस्थ आदमी तीन महीनों तक बिना भोजन के रह सकता है। एकसाधारणतः स्वस्थ आदमी तीन माह तक बिना भोजन किये रह सकता है। यदितुम-तीन माह तक उपवास करो तो अचानक एक दिन तुम मृत्यु के किनारे हीखड़े होगे। यह जानते हुए मृत्यु का साक्षात्कार करना हैं, और यह साक्षात्कारतब होता है जबकि तुम अपने शरीर को छोड़ रहे होते हो और अपने केन्द्र परभीतर छलांग लगा रहे होते हो। अब पूरा शरीर कोथक गया है। अब वह नहीं चलसकता। तुम अपने मूल उद्गम पर फेंके जा रहे हो और तुम अब शरीर में नहींरह सकते। धीरे-धीरे तुम शरीर में भीतर, और भीतर और भीतर फेंक दिये जाते हो।

भोजन तुम्हें बाहर ले जाता है, उपवास तुम्हें भीतर ले जाता है। एक क्षणऐसा आता है जबकि शरीर तुम्हें और आगे नहीं ले जा सकत्ता। तब तुम अपनेकेन्द्र पर फेंक दिये जाते हो। उस क्षण में, तुम्हारा अंतर सूर्य, युक्त होता है।

इसलिए महावीर तीन माह तक उपवास करेंगे-चार माह उपवास पर रहेंगे। वे असाधारणरूप से स्वस्थ थे। और तब अचानक वे गाँव में भोजन मांगने जाते। यह भी एक रहस्य है कि क्यों वे अचानक तीन-चार माह बादगाँव में भोजनमांगने जाते थे। वास्तव में, जब भी वे बिल्कुल किनारे ही होते और ऐसी घडीआ जाती कि एक क्षण भी घातक सिद्ध हो सकता था, तभी वे भोजन मांगने चले जाते। वे पुनः शरीर में प्रवेश कर जाते और फिर उपवास पर चले जाते, और तब फिर केन्द्र पर पहुँच जाते, फिर शरीर में प्रवेश करते और फिर केन्द्रपर चले जाते।

तब वे उस मार्ग को महसूस करते : भीतर आती श्वास, बाहर जाती श्वास,-जीवन को शरीर में आते, जीवन कोशरीर से जातें। और तब वे इस प्रक्रिया केप्रति- सजग रहते। वे भोजन करते और वे इस प्रक्रिया के प्रति जागे हुए रहतेवे भोजन करते और वे फिर से शरीर में लौट आते, और फिर से उपवास परउतर जाते। ये वे लगातार करते रहे बारह वर्षों तक। यह एक आंतरिक प्रक्रिया थी।

तो मैंने तीन बातों पर चर्चा कोःश्वास, यौन व भूख-बहुत ही बुनियादीव आधाभूत बातें। किसी केप्रति भी सजग हो जाओ। श्वास सबसे अधिक सरलहै। तन्त्र की विधि का उपयोग करना कठिन है। मन इसका उपयोग करना चाहेगापरन्तु वह बहुत कठिन होगा। उपवास की विधि भी कठिन है। मन उसे पसन्दनहींकरेगा। ये दोनों बहुत कठिन है। केवल श्वास की प्रक्रिया सबसे ज्यादा सरलहै। आने वाले युग में मुझें लगता है, कि बुद्ध की विधि बड़ी सहायक होगीयह मध्यम, सरल और बहुत खतरनाक भी नहीं है।

इसलिए बुद्ध को मध्य-मार्ग का सूत्र खोजने वाला कहते हैं-"मज्झिम-निकाय"-"स्वर्ण मार्ग।" यौन व भोजन, इन दोनों के यह मध्य में है। श्वास स्वर्णमार्ग है-बिल्कुल बीच में।

और दूसरी भी वहुत-सी विधियाँ है। तुम किसी भी विधि से अन्तर्प्रकाशको उपलब्ध हो सकते हो। और एक बार भी तुम उसमें स्थिति हो जाओ तो तुम्हाराअन्तर्प्रकाश तुम्हारे शरीर के कोषों में प्रविष्ट होने लगता है। तब तुम्हारी सारीशारीरिक यांत्रिकता ताजा हो जाती है और तुम बुद्ध-काया को उपलब्ध कर सकतेहो-एक जागे हुए मनुष्य के शरीर को पा सकते हो।

आज इतना ही ।

चौथा प्रवचन

मनुष्य-चेतना के विकास में बुद्ध का योगदान

प्रश्न

भगवन! मनुष्य की आंशिक चेतन ज़ीवन के पूर्ण विकास में एक तत्त्व है। उसकी चेतना को बढाने के लिए उसके ऐच्छिक प्रयासों का क्या महत्त्व हो सकता है?

कृपया यह भी समझायें कि मानव चेतना की वृद्धि के लिए बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्तियों का वया योगदान होता हैं?

विकास मूर्च्छा का हिस्सा है, वह अचेतन है। किसी इच्छा की आवश्यकतानहीं है, किसी सचेतन प्रयास की ज़रूरत नहीं है। वह बिल्कुल प्राकृतिक है। लेकिन, ज़ब एक बार चेतना विकसित ही ज़ाती है, तब दूसरी ही बात होज़ातीहैं। एक बार चेतना का प्रादुर्भाव हुआ कि विकास रुक ज़ाता है। विकास चेतनाके प्रादुर्भाव तक ही होता है, विकास का काम ही इतना है कि वह चेतना कोज़न्म दे दे। एक बार चेतना आ गई, कि विकास ठहर ज़ाता है। तब सारी ज़िम्मेवारीचेतना की होज़ाती है। इसलिए इसे कईं तरह से समझना पड़ेगा।

मनुष्य अब विकसित नहींहो रहा है। बहुत काल से आदमी विकसित नहींहो रहा है। ज़हाँ तक आदमी का सवाल है, विकास बन्द हो गया है। शरीर अपनेआखिरी शिखर पर पहुँच गया है। मानव शरीर बहुत समय से विकसित नहीं होरहा है। बहुत पुरानी हड्डियाँ व बहुत-बहुत पुराने मनुष्य के ज़ोशरीर मिले हैं, वे बुनियादी रूप से हमारे शरीरों से भिन्न नहीं है।। उनमें बुनियादी कोई फर्क नहींहै। यदि एक लाख साल पुराने किसी शरीर को पुनर्ज़ीवित किया ज़ा सके औरउसे प्रशिक्षित करें, तो वह तुम्हारे ही ज़ैसा होगा। उसमें कोई भी फर्क न होगा।

मनुष्य के शरीर ने विकसित होना बन्द कर दिया है। कब किया बंद उसने? ज़ब चेतना भीतर आ गई तो विकास का काम पूरा हुआ। अब ये तुम्हारे हाथमें है, तुम और आगें विकसित होओ। इसलिए आदमी ठहरा हुआ है-विकसितनहीं हो रहा है-जब तक कि वह स्वयं ही प्रयत्न न करें। अब मनुष्य के आगे, सब कुछ सचेतन होगा। आदमी के नीचे, सब कुछ अचेतन है। आदमी के साथही एक नया तत्त्व प्रवेश कर गया-सज़गता का तत्त्व, चेतना का तत्त्व। इस तत्त्वके साथ ही विकास का काम पूरा हुआ। विकास को एक ऐसी स्थिति पैदा करनीपड़ती है ज़िसमें कि चेतना का प्रादुर्भाव हो सके। एक बार चेतना का प्रवेश हुआ, तब सारा दायित्व चेतना पर पड़ज़ाता है। इसलिए अब आदमी प्राकृतिक ढंगसे विकसित नहीं होगा। आगे उसका कोई विकास नहीं होगा।

चेतना विकास का शिखर है-आखिरी चरण। किन्तु यह ज़ीवन का अन्तिमचरण नहीं है। समस्त पशु-ज़गत के विकास की अंतिम सीढी है चेतना। यह आखिरीचरण है। अन्तिम ऊँचाई। शिखर परन्तु इसके आगे बढ़नेके लिए यह पहलाकदम है। और ज़ब मैं कहता हूँ कि विकास रुक गया है, तो मेरा मतलब हैकि अब आंतरिक प्रयत्न की ज़रूरत है। अब, ज़ब तक कि तुम खुद कुछ-न-करो, तुम विकसित न हो सकोगे। प्रकृति तुम्हें उस बिन्दु तक ले आई है, ज़ोकि अचेतन विकास का आखिरी पड़ाव है। अब तुम सज़ग हो, अब तुम्हें पताहै। और ज़ब तुम्हें पता है, तो ज़िम्मेवारी तुम्हारी हैएक बच्चा अपने कृत्यों के लिए ज़िम्मेदार नहीं है, लेकिन एक-प्रौढ़ हैएक पागल अपने कार्यों के लिए ज़िम्मेवार नहीं है, परन्तु एक ज़ो कि पागल नहीं, वह है। यदि तुम शराब के नशे में हो और तुम

होरापूर्वक व्यवहार नहीं क्रंर रहेहो, तो तुम ज़िम्मेवार नहीं हो। चेतना के साथ ही, ज़ानने की क्षमता के साथहीय तुम ही तुम्हारे लिए ज़िम्मेवार होज़ाते हो

सार्त्र ने कहीं पर कहा है कि दायित्व ही एक मात्र मनुष्य का बोझ हैकोईं-भी पशु ज़िम्मेवार नहीं है। ज़ो कुछ भी पशु है, उसके लिए विकास हीज़िम्मेवार है। पशु पर किसी भी बात के लिए कोई दायित्व नहीं हैं। इसलिए अबज़ो भी तुम करोगे वह तुम्हारा ही दायित्व होगा। यदि तुम नर्क निर्मित कर लोऔर नीचे उतर ज़ाओ तो यह तुम पर है। यदि तुम विकसित होओ, बढ़ो औरएक आनन्दपूर्ण स्थिति का निर्माण कर लो, तो यह भी तुम पर है।

अस्तित्ववादियों ने एक बहुत ही बढिया भेद कियाहै, ज़ो कि बहुत हीसुन्दर व अर्थपूर्ण है। वे कहते हैं कि पशुओं के लिए एसेन्स (सार) पहले हैऔर अस्तित्व बाद में विकसित होता है। यह ज़रा कठिन है समझना किन्तु कोशिशकरें। वे कहते हैं कि पशुओं के लिए वृक्षों के लिए सार पहले है, और बादमें अस्तित्व आता हैं। एक बीज़ है, वह सार में एक वृक्ष है। सार वहाँ मौज़ूदहै, और फिर बाद में अस्तित्त्व आयेगा। वह ज़ोअनिवार्य तत्त्व है, वह मौज़ूदहै, और अब उसे केवल प्रकट होना है, व्यक्त होना है। वृक्ष पीछे निकल आएगा।

वृक्ष कोई नई बात नहीं है। एक तरह से वह पहले ही मौज़ूद था। इसलिएवस्तुतः बीज़ की कोई स्वतन्त्रता नहीं है, वृक्ष उसमें मौज़ूद होता है। और वृक्षकी भी अपनी स्वतन्त्रता नहीं है। उसका भाग्य बीज़ में लिखा है। सार-एसेन्सपहले है-यही मतलब है इस बात का। मनुष्य के नीचे सार पहले है, ओर तब अस्तित्व पीछे-पीछे आता है

मनुष्य के साथ बात बिल्कुल उलटी है : अस्तित्व पहले आता है और पीछेआता है एसेन्स (सार)। तुम किसी निश्चित भविष्य के साथ पैदा नहीं होतेः तुम्हेंउसे निर्मित करना पड़ेगा। तुम पैदा तो हो गये, इसलिए तुम्हारा अस्तित्त्व है। यहएक सामान्य अस्तित्त्व है बिना किसी सार के। अब तुम सार निर्मित करोगे। अतः मनुष्य स्वयं को निर्मित करता है। एक वृक्ष प्रकृति के द्वारा निर्मित किया ज़ाताहै, परन्तु मनुष्य स्वयं ही अपना निर्माण कस्ता है।

मनुष्य सिर्फ पैदा होता है अस्तित्व के साथ, बिना किसी सार-निचोड़ के। फिर तुम ज़ो भी करोगे, वही तुम्हारा सार बन ज़ाएगा। तुम्हारे कर्म तुम्हें निर्मितकरेंगे, और एक बहु-आयामी स्वतन्त्रता तुम्हारे सामने होगी। एक आदमी कुछभी बन सकता है, और वह चाहे तो कुछ भी न बने। वह बिना किसी सार केखाली एक अस्तित्व भी रह सकता है। वह मात्र शरीर ही रह सकता है बिनाकिसी आत्मा के। एक तरह से, आत्मा निर्मित करनी होती है।

गुरज़िएफ कहा करता था कि तुम्हारे पास कोई आत्मा नहीं है। तुम बिनाआत्मा के हो। ज़ब तक तुम उसे निर्मित न करो, वह कैसे ही सकती है? यहबात धर्म की सारी शिक्षाओं के विरुद्ध प्रतीत होती है, परन्तु है नहीं। ज़ब धर्मकहता है कि प्रत्येक आदमी के पास आत्मा है, इसका मतलब है कि प्रत्येकव्यक्ति के पास आत्मा हो सकती है। वह एक संभावना है। तुम आत्मा होने तकविकसित होसकते हो। यदि तुम्हारे पास आत्मा पहले से ही हो, तो तुम में औरएक बीज़ में कोई अन्तर नहीं है। यदि तुम भी एक बीज़ की भाँति वृक्ष में विकसितहो रहे हो, यदि तुम भी एक बीज़ के द्वारा मनुष्य हो रहे हो, तो आदमी में औरज़ो कुछ भी आदमी से नीचे अस्तित्व में है, उसमें कुछ भी अन्तर नहीं है।

मनुष्य एक स्वतन्त्रता है-होने की स्वतन्त्रता वह बहुत-सी चीज़ें हो सकताहै, वह कुछ भी हो सकत्ता है। परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि वह एक संभावनाही बना रहे बिना कुछ थी हुए। इस बात से कंपन और भय लगता है।

किर्कगार्ड ने "भय" की धारण प्रकट की हैं। वह कहता है कि मनुष्य एक भय में ज़ीता है। यह डर, यह भय क्या है? भय यही है कि तुम एक संभावनाहो और कुछ भी नहीं। तुम सिर्फ एक अस्तित्व हो, कोई सार नहीं हो। तुम सारनिर्मित कर सकते हो, परन्तु तुम उसे चूक भी सकते हो, इसका दायित्व तुम्हाराहै। यह एक बडी भयानक स्थिति है। कुछ भी निश्चित नहीं है, आदमी असुरक्षितहै। हर क्षण बहुत-सी दिशाएं खुलती हैं, और तुम्हें किसी-न-किसी ओर ज़ाना पड़ता है बिना यह ज़ाने कि तुम कहाँ ज़ा रहे हो, बिना यह ज़ाने कि परिणामक्या होगा, बिना यह ज़ाने कि कल क्या होगा।

तुम्हारा कल-अपने से, तुम्हारे आज़ से-नहीं निकलेगा, परन्तु एक बीज़का कल ज़रूर बीज़ के आज़ से प्रस्फुटित होगा। एक पशु की मृत्यु उसके अपनेज़ीवन के परिणाम स्वरूप यंत्रवत होगी, परन्तु तुम्हारे साथ ऐसा नहीं है। यहीअन्तर है। तुम्हारी मृत्यु तुम्हारी उपलन्धि होगी। तुम्हीं उसके लिए ज़िम्मेवार होगे। और इसीलिए प्रत्येक आदमी विशिष्ट प्रकार से मरता है। किसी भी आदमी कीमृत्यु दूसरे की ज़ैसी नहीं होती। वह हो नहीं सकती।

एक अ कुत्ता, ब कुत्ता, स कुत्ता-सभी एक ही तरह से मरते हैं। उनकोयह मृत्यु उनके ज़ीवन का एक हिस्सा है। वे अपने ज़ीवन के लिए भी ज़िम्मेवारनहीं है, वे अपनी मृत्यु के लिए भी ज़िम्मेवार नहीं है। ज़ब कोई कहता है किफलां कुत्ते की मौत मरेगा, तो उसका मतलब है कि वह बिना विकसित हुए, बिनाकुछ भी सार के मरेगा। वह सिर्फ एक संभावना ही रहेगा। दो कुत्ते एक ज़ैसे ही मरते हैं, दो आदमी कभी भी नहीं। वे एक ज़ैसे कभी नहीं मर सकते। औरयदि वे एक ज़ैसे ही मरे, तो उसका मतलब होगा कि वे विकसित होने के अवसरसे चूक गये।"

चेतना के प्रवेश के साथ ही हर बात के लिए तुम उत्तरदायी होज़ाते हो, कोई भी बात हो। यह एक बहुत बड़ाबोझ है और एक गहरा संताप। यही भयपैदा करता है। तुम खड्ड के ऊपर ही खड़े हो। यही मेरा मतलब है ज़बकिमैं यह कहता हूँ कि मनुष्य को सचेतन प्रयास की ज़रूरत है। आदमी होने काअर्थ है कि सचेतन विकास की भूमि में प्रवेश करना। लाखों-करोडों वर्षों ने तुम्हेंबनाया है, परन्तु अब प्रकृति मदद नहीं करेगी। यह प्राकृतिक विकास के लिएअंतिम शिखर है। अब प्रकृति तुम्हारे लिए कुछ भी न करेगी। उसने ज़ो भी उसेकरना था, कर दिया।

इसके कारण ही, भीतर एक गहरा तनाव हर क्षण रहेगा। आदमी एक तनावमें है। यह प्राकृतिक है और यह अच्छा है। इसे भूलने का प्रयास न करो। इसकाउपयोग करो। तुम उसे भूलने का प्रयास भी कर सकते हो। तब तुम अकसर चूकज़ाते हो। इसलिए तुम्हारे मन की किसी तनावपूर्ण अवस्था को भूलने का प्रयत्नकरना बड़ी गलत बात है, और खतरनाक भी। तुम पीछे गिर रहे हो। इस भीतरीतनाव को ऊपर उठने के लिए उपयोग करो, आगे बढ़नेके लिए। अब शरीर मेंतुम और आगे नहीं बढ़ सकते। शरीर अपने विकास के आखिरी सिरे तक आगया-उसके आगे कोई गति नहीं हैशरीर समतल ढंग से गति करता है। यह ऐसा ही है ज़ैसे कि एक हवाईज़हाज़ज़मीन पर दौड़ रहा है, ज़मीन की पट्टी पर, ताकि ऊपर उड़सके। एकक्षण आता है ज़बकि समतल दौड़ना बन्द करना पड़ता है। उसे एक मील या दो मील या तीन मील दौड़ना पड़ता है ताकि वह एक गति इकट्टी कर सके। तब एक ऐसा क्षण आता है ज़ब कि समतल दौड़ना-किसी कामका नहींहोता। औरयदि एक हवाईज़हज़ ज़मीन पर ही

दौड़ता रहे तो, फिर वह हवाईज़हाज़ नहींहै। वह फिर कार की तरह व्यवहार कर रहा है। ज़ब पर्याप्त वेग इकट्ठा होज़ाता है तो हवाईज़हाज़ ज़मीन छोड़ देता है और तब ऊपर ऊर्ध्व गति प्रारंभहोज़ाती है।

यही आदमी के साथ हुआ है। आदमी होने तक विकास ज़मीन पर गतिकरता रहा। अब मनुष्य एक मोमन्ट्म है। अब मनुष्य के साथ ऊपर की और गतिही एक मात्र गति है। यदि तुम इस बात कोइस तरह देखो कि हमें ज़मीन परदौड़ते चले ज़ाना चाहिएक्योंकि यह हम लाखों-करोडों वर्षों से ऐसा करते रहेहैं, तोफिर तुम चूक ही ज़ाते हो-क्योंकि यह सारी दौड़ ही एक बात के लिएथी कि एक घडी ऐसी आ ज़ाये कि तुम ऊपर उडान भरसको।

पशु आदमी होने की ओर दौड़ रहे हैं, वृक्ष पशु होने की और दौड़ रहेहैं, पदार्थ वृक्ष होने की ओर दौड़ रहा है। प्रत्येक चीज़ इस पृथ्वी पर मनुष्य होनेकी तरफ दौड़ रही है। अतः आदमी किस बात के लिए दौड़े? आदमी होना लक्ष्य-बिन्दु है। प्रत्येक वस्तु आदमी होने को और विकसित हो रही है। अब आदमीके लिए समतल दिशा में कोई गति नहीं है। और यदि तुम समतल ही दौड़तेरहो, तब तुम्हारा वस्तुतः मानव होना नहीं होगा। तुम्हारा ज़ीवन बहुत-सी पतोंका होगा ज़ो कि मानव का न होगा।

कभी-कभी तुम पशु की भाँति बर्ताब करोगे। यदि तुम समतल भूमि परही चलते रही तो कभी तुम वनस्पति-ज़गत की तरह, कभी-कभी तुम बिल्कुलमृत पदार्थ की भाँति होओगे। परन्तु आदमी नहीं होओगे। इसलिए अपने ज़ीवनमें भीतर गहरे देखो। उसने ऊर्ध्वगमन का मोड़ नहीं लिया है। तब तुम वया कर रहे हो? यदि तुम अपने प्रत्येक कृत्य को देखो, तो तुम देखोगे कि एक कृत्यपशु ज़गत का है, एक वनस्पति जगत का है, आदि। तुम अपने ज़ीवन को, उसके कृत्यों को देखो, और तब तुम ज़ानोगे कि कुछ बिल्कुल मृत पदार्थ की तरहसे हो, कि कुछ ज़ैसे सब्ज़ी उग रही हो, और कुछ पशु की भाँति हो। आदमीकहाँ हो।

ऊपर उठने के साथ ही आदमी अस्तित्व में आता है-और वह तुम्हारे अपनेहाथ में है। सचेतन विकास ही एकमात्र विकास होने वाला है। इसलिए रोज़-रोज़ धर्म अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होता चला ज़ायेगा, क्योंकि अब वैज्ञानिक सोचतेहैं, आगे कोई गति नहीं है। सचमुच अब समतल कोई. गति नहीं है। तुम औरआगे प्रगति नहीं कर सकते सब कुछ रुक गया है। इसलिए विज्ञान तुम्हारी ज्ञानेन्द्रियोंके लिए कुछ-न-कुछ ज़ोड़े चला ज़ाता है।

तुम्हारी आँखें भी ठहर गई हैं, इसलिए अब तुम यन्त्रों का उपयोग कर सकतेही देखने के लिए। तुम्हारा दिमाग रुक गया है, इसलिए अब तुम कंप्यूटर काउपयोग कर सकते हो। तुम्हारे पैर ठहर गये हैं, इसलिए अब तुम कार का इस्तेमालकर सकते हो। ज़ो कुछ भी विज्ञान दे रहा है वह केवल यंत्रों का ज़ोड़ है उससारे विकास का-जो कि रुक गया है।

मनुष्य विकसित नहीं हो रहा है, केवल यन्त्र विकसित हो रहे हैं। और सचमुचप्रत्येक यन्त्र तुम्हारी शक्ति को बढाता है, किन्तु तुम स्वयं उससे नहींबढ़ते। बल्कि, मामला उलटा ही गया है। कारों ने गति में बहुत वृद्धि कर ली हैं, परन्तु उन्होंनेतुम्हारे पैरों को नष्ट कर दिया है। यह बडा दुर्भाग्यपूर्ण है, परन्तु यह होगा हीयदि कम्प्यूटर आदमी के मस्तिष्क की ज़गह ले लें, और वे लेंगे क्योकि आदमीका दिमाग इतना कुशल नहीं हें ज़ितना कि एक कंप्यूटर। वे बहुत कुछ करेंगे, परन्तु अन्ततः वे मनुष्य के मस्तिष्क को नष्ट कर देंगे, क्योंकि ज़िस किसी चीज़् का प्रयोग नहीं होता वह बेकार होज़ाती है।

इसलिए आज़ विज्ञान अनुभव करता है कि ज़ो कुछ भी किया ज़ा रहा है, वह विकास का एक झूठा ख्याल देता है। यदि हम अतीत में ज़ायें, तोज़्यादा-से-ज़्यादा गति घोडे को थी-पच्चीस मील प्रति घंटा। अब हम पच्चीस मील पच्चीस हज़ार मील प्रति घंटा की स्पीड पर पहुँच गये है। आदमी नहीं पहुँचा, गति का विकास हुआ है न

कि आदमी का! आदमी पीछे गिरा है क्योंकि जोआदमी घोड़े पर चढ़ता था उससे एक हवाईज़हाज़ चलानेवाला आदमी अधिकशक्तिशाली नहीं है। गंति में वृद्धि हुई, विकास हुआ, परन्तु आदमी पिछड़ गया।

वैज्ञानिकों का एक समूहसोचता है कि आदमी पीछे गिरने को ही है, नकि विकसित होने को। ऐसा हो सकता है, क्योंकि ज़ीवन में तुम कभी भी स्थिरनहीं रह सकते। यदि तुम आगे नहींज़ा रहे हो, तो तुम पीछे गिर रहे हो। ज़ीवन में कोई भी स्थिर क्षण नहीं है। तुम एक ही बिन्दु पर रुके हुए नहीं रह सकतेतुम नहीं कह सकते कि मैं आगे नहींबढ़रहा हूँ इसलिए मैं ज़हाँ हूँ वहीं रहूँगा। मैं रुस्टेटस-को" बनाये रखूँगा। तुम उसे नहीं बनाये रख सकते। या तो तुम आगेज़ाओ, अथवा तुम पीछे गिरोगे। वैज्ञानिकों का एक संमूह सोचता हैँ कि आदमी

रोज़-रोज़ पीछे की ओर ज़ा रहा है-रिग्रेस कर रहा है-कि एक तरह से "इनफैन्टेलाइज़ेशन"-बचपन की तरफ लौटना हो रहा है। आदमी सारी पृथ्वीपर बच्चे की तरह व्यवहार कर रहा है-बज़ाय एक प्रौढ़ व्यक्ति के।

यदि हम गौर से देखें तो बहुत-सी बातें साफ हो सकती हैं। एक बात अतीतमें पक्की थी कि एक बृद्ध पुरुष, एक प्रौढ़ व विकसित आदमी समाज में अधिकप्रभावशाली था। लेकिन हमारा समाज़ सारे विश्व के इतिहास में ऐसा समाज़ है, जहाँ कि बच्चे अधिक आधिपत्य ज़माये हैं। वे हर बात पर अधिकार ज़माए हैं-प्रत्येकधारा को, हर फैशन को, हर चीज़को वे ही आदर्श हैं। जो कुछ भी वे करतेहैं, घर्म होजाता है। जो कुछ भी वे करते हैं, राज़नीति होज़ाती है। जो कुछभी वे करते हैं, वही सारे संसार में प्रचलित होजाता है।

यदि हम पीछे लौटें, तो तीस साल का एक आदमी अधिक प्रौढ़ की भाँतिव्यवहार कर रहा था। अब, ऐसी बात नहीं है। अब एक तीस साल का आदमीभी बच्चों की तरह व्यवहार कर रहा है, बचकानी हरकतें कर रहा है-वही बच्चोंकी भक्ति उछल-कूद कर रहा है, वही बच्चों का रूप अपनाये है। यह बच्चों का रुख क्या है? एक बच्चा सोचता है कि वह इस सारे ज़गत का केन्द्र है, औरउसकी हर एक इच्छा तुरन्त पूरी होनी चाहिए। जब वह भूखा है, तो दूध दियाज़ाता है, जब वह रोता है, तो सब लोग उसकी और ध्यान देते है। सारा परिवारउसके चारों ओर केन्दित है।

बच्चे डिक्टेटर होज़ाते हैं। वे ज़ानते हैं कि कैसे सारे परिवार पर शासनकिया जाता है। एक छोटा-सा बच्चा भी सारे परिवार पर निरंकुश शासन चलाना जानता है। पिता उसको फुसलाता है, माँ उसे रिश्वत देती है। यहाँ तक कि जबघर में मेहमान आते हैं तो वही सब जगह एकाधिकार जमाये रहता है। एक बच्चासोचता है कि वह इस सारे विश्व का केन्द्र है। उसकी परवरिश करना, प्रत्येकको उसकी मददकरनी चाहिए, बिना किसी कीमत के। उसे प्रेम भी नहीं देनापड़ता, वल्कि प्रेम भी उसकी माँग हैं। वह हर चीज़ मांगता चला जाता है, औरयदि उसकी मांग पूरी नहीं होती तो वह हिंसक होजाता है, क्रोधित होजाताहेरे। तब वह सरि ज़गत केखिलाफ होजाता है। वह चीज़ें तोड़ने लगता है।

अब ऐसा प्रत्येक के साथ हो रहा है। ऐसा बच्चों के साथ सदा से होताहैं, लेकिन अब यह हर एक के साथ हो रहा है। हमारी क्रान्तियाँ कुछ और नहींसिवाय इस प्रकार की बचकानी हरकतों के। हमारे तथाकथित विद्रोही कुछ और नहीं है, सिवाय इसके कि प्रत्येक अपने को इस ज़गत का केन्द्र माने हुएउसकी हर इच्छा को तुरन्त पूरी कर देना चाहिए। और यदि वह पूरी न हुईं, तो वह सारे संसार को नष्ट कर देगा।

सारी दुनिया में विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में विद्रोह कर रहे हैं। वे सिर्फ अप्रौढ़, बचकाने मस्तिष्क की बातें कर रहे हैं। इसका वया अर्थ होता है कि विद्यार्थीविश्वविद्यालयों की खिड़कियों पर पत्थर मार रहे हैं, भवन को आग लगा रहे हैं, सब कुछ नष्ट कर रहे हैं। इसका क्या अर्थ होता है? उनमें मैचोरिटी (प्रौढ़ता)की कोई समझ नहीं है। और यदि तुम इस बात पर सोचो तो केवल विद्यार्थी व बच्चे, लड़के व लड़कियाँ ऐसा कर रहे हैं, इतना

ही नहीं है बल्कि यदि आधुनिकआदमी को देखो-यहॉ तक कि आज़ के पिता की तरफ या माँ की त्तरफ देखो, तो तुम पाओगे कि वे भी- बहुत बचपना कर रहे हैं। यदि तुम हमारे राज़नीतिज्ञोंको देखो, तो वे भी बच्चों की-सी हरकतें कर रहे हैं ज़िसमें कि कोई प्रौढ़ता नहीं है।

क्या हो गया है? वास्तव में, आदमी का विकास रुक गया है, विकास मेंवृद्धि ठहर गई है। और हमारे पास अब उसके स्थान पर-उस विकास के स्थानपर वैज्ञानिक संग्रह है। मनुष्य ठहर गया है, वस्तुएँ बढ़रही हैं। तुम्हारा घर, बड़ा-और बड़ा हो रहा है, और तुम वही-के-वही रहत्ते हो। तुम्हारा धन बढ़ रहा है, और उसकी बृद्धि के साथ तुम सोचते ही कि तुम बढ़ रहे ही। तुम्हारा ज्ञान बढता है, तुम्हारी सूचनाएँ बढ़ती हैं, और उसके कारण तुम सोचते हो कि तुम बढ़ रहे हो।

सचमुच एक बुद्ध तुमसे बहुत कम ज़ानते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होता कि तुम अधिक प्रौढ़ हो। एक ज़ीसस तुमसे बहुत कम ज़ानते हैं। वे किसीभी कैथोलिक पादरी से कम ज़ानते हैं, क्योंकि उनकी कोई शिक्षा, कोई प्रशिक्षण नहींहुआ। वे एक मामूली बढ़ई के लड़के थे-अशिक्षित, बिना संसार के किसीभी ज्ञान के। लेकिन, फिर भी तुम उनसे अधिक विकसित नहीं हो। एक मुहम्मद बे-पढे लिखे हैं, एक कबीर कुछ भी नहीं है। लेकिन, वे अधिक विकसित हैं। परन्तु वह विकास दूसरी ही-प्रकार का है-वह है चेतना का विकास न कि सिर्फवस्तुओं का।

तुम वैभव के स्थान पर होने को रख सकते हो। "होना" विकास का दूसराही आयाम है-लम्ब की तरह ऊपर की ओर। पाना समतल है। चीज़ें होती ज़ाती हैं और तुम्हारे पास चीज़ों का ढेर लग ज़ाता है, बहुत-सी सूचनायें इकट्ठी होज़ाती हैं। इतना ज्ञान होजाता है, इतना धन, इतनी डिग्रियाँ, इतने सम्मान होजातेहैं। परन्तु यह सब केवल संग्रह है, यह समतल है। कोई ऊपरी उडान नहीं हैतुम वही रहते३ही। और तुम वही नहीं रह सकते क्योंकि यदि तुम ऊपर नहीं जा रहे हो, तो तुम नीचे ज़ाओगे। तुम बच्चों की तरह व्यवहार करोगे। तुम पीछेगिरोगे। यह एक सबसे बड़ी समस्या आज मनुष्य ज़ाति के सामने है।

विज्ञान सिर्फ तुम्हें चीज़ें दे सकता है। वह तुम्हें चन्द्रमा क्या दूसरे ग्रहों परपहुँचा सकता है, और सारा ज़गत दे सकता है। घर्म तुम्हें सिर्फ एक चीज़ प्रदानकर सकता है, ऊपर की ओर गति-ऊर्ध्व विकास-एक सचेतन विधि ज़िससे कि अपने अस्तित्व में विकसित हुआ जा सके। इसका कोई महत्त्व नहीं है कि तुम्हारेपास क्या है। यह तुम्हारे विकास के लिए बिल्कुल असंगत है। केवल एक ही महत्त्वपूर्ण बात है कि तुम क्या हो। और यह "होने" के प्रति विकास, यही ज़िम्मेवारी है, क्योंकि यही स्वतन्त्रता है। विकासमान शक्तियाँ और आगे बढ़ने के लिए संचालित नहीं करती, तुम स्वतन्त्र हो चुनाव के लिये।

विकास तुम्हें नहींबढ़रहा है। वह पशुओं को आगे बढा रहा है, वह पेडों को बढ़ा रहा है, वह हर चीज़ को आगे की ओर ले ज़ा रहा है सिवाय मनुष्यके। विकास हर चीज़को आगे की और धकेल रहा है ताकि वह बढ़सकेपरन्तु आदमी होने के साथ वह बात खत्म हो गई। अब तुम सचेतन हो गये, इसलिएअब तुम जो चाहो कर सकते हो।

सार्त्र कहता है कि आदमी स्वतन्त्र होने के लिए मज़बूर है-कन्डेम्न्ड टु बीफ्री। सारी प्रकृति बड़े आराम से है क्योंकि स्वतन्त्रता एक बडी ज़िम्मेवारी है, बोझ है, इसलिए हम स्वतन्त्रता पसंद नहीं करते। हम चाहे उसकी कितनी भीबात करें, कोई भी स्वतन्त्रता पसन्द नहीं करता। प्रत्येक स्वतन्त्र होने से डरताहै। स्वतन्त्रता बडी खतरनाक बात है। प्रकृति में कोई आज़ादी नहीं है, इसलिएवहाँ इतनी शान्ति है। तुम कभी एक कुत्ते से नहीं कह सकते कि तुम कुछ कम कुत्ते हो! हर कुता पूरा कुत्ता है। तुम आदमी से कह सकते हो कि तुम पूरे आदमीनहीं हो,

यह अर्थपूर्ण है। परन्तु एक कुत्ते से यह कहना कि तुम पूरे कुत्तेनहींहो-बेमानी है। हर एक कुत्ता पूरा कुता है क्योंकि एक कुता स्वतन्त्र नहीं है-होनेमें। वह विकास के द्वारा आगे धकेला ज़ाता है। वह बनायाजाता है, वह स्वयं-निर्मित नहीं है।

एक गुलाब का फूल-गुलाब का फूल है। वह चाहे कितना भी सुन्दर हो, वह मुक्त नहीं है, वह मात्र दास है। एक गुलाब के फूल को देखोः वह सुन्दरहै, किन्तु दास है, विवश है। कोई स्वतन्त्रता नहीं है कि खिले कि न खिले। कोई समस्या भी नहीं है, कोई चुनाव नहीं है : एक फूल को खिलना ही होगाफूल नहीं कह सकता-"मैं खिलना पसन्द नहीं करता" अथवा कि "मैं मनाकरता हूँ।" उसकी अपनी कोई मरजी नहीं है, कोईस्वतन्त्रता नहीं है। इसीलिएप्रकृति इतनी मौन है-विवश है। वंह गलती नहीं कर सकती, वहाँ गलती नहींहोती। और यदि तुम गलती नहीं कर सकते, यदि तुम हमेशा सही ही होने कोहो और वह सही होना तुम्हारे हाथ की बात नहीं है, तो फिर तुम बाहरी शक्तियोंके द्वारा संचालित हो।

प्रकृति एक गहरी दासता है। आदमी के साथ पहली बार स्वतन्त्रता का प्रवेश होता है। आदमी स्वतन्त्र है-होने अथवा न होने के लिए। तब सन्ताप पैदा होताहै, भय लगता है कि वह समर्थ भी हो पायेगा? ज़ो कुछ हो रहा है, उसमें वहसमर्थ भी हो पायेगा या नहीं हो पायेगा? एक गहरी कंपकपी होती रहती है प्रत्येक क्षण एक कंपता हुआ क्षण है। कुछ भी तय नहीं है, पक्का नहीं है। आदमीके लिए पूर्वकथन नहीं किया ज़ा सकता। हर बात अनिश्चित है।

हम स्वतन्त्रता की बातें करते हैं, परन्तु कोईभी स्वतन्त्रता चाहता नहीं। इसलिए हम स्वतन्त्रता की बातें करते रह सकते हैं, परन्तु दासता निर्मित करतेरहते हैं। हम स्वतन्त्र होने को बात करते है और फिर नईदासत्ता निर्मित करलेते हैं। हमारी हर नई स्वतन्त्रता नई दासताओं के लिए बदलाहट है। हम एकदासता को दूसरी दासता से बदलते रहते हैं, एक बन्धन को दूसरे बन्धन से। कोईभी स्वतन्त्र होना नहीं चाहता क्योंकि स्वतन्त्रता बड़ा भय पैदा करती है। तब तुम्हेंनिश्चय करना पड़ता है और चुनाव करना पड़ता है। हम चाहते हैं कि कोई और हमें बता दे कि हमें क्या करना है-समाज़, गुरु, धर्मग्रन्थ, परम्परा, माता-पिताकोई और हमें बताये कि हमें वया करना है। कोई और हमें मार्ग दर्शन दे ताकिहम उस पर चल सकें। लेकिन हम अपने आप नहीं चल सकते। स्वतन्त्रता है, और- डर है।

इसीलिए इतने सारे धर्म हैं-वे कोईज़ीससया बुद्ध या कृष्ण के कारणनहीं हैं। वे गहरे ज़डों में बैठे भय के कारण हैं। तुम खालिस आदमी नहीं होसकते। तुम्हें ईसाई, अथवा मुसलमान, अथवा हिन्दूहोना पड़ेगा। केवल ईसाई होने से तुम्हारी स्वतन्त्रता खोजाती है। हिन्दू होने के साथ ही तुम आदमी नहीं रहज़ाते। क्योंकि तब तुम कहते ही कि अब मैं एक परम्परा को"मनूँगा। अब मैं असीम में, अज्ञात में यात्रा नहीं करूँगा। अब में धिसे-पिटे मार्ग पर चलूँगा। मैं किसी और के पीछे चलूँगा, मैं अकेला नहीं चलूँगा। मैं हिन्दूहूँ इसलिए मैं भीड़मैं चलूँगा। मैं एक स्वतन्त्र व्यक्ति की तरह नहीं चलूँगा यदि मैं एक अकेलेव्यक्ति कौ भाँति चलूं तो स्वतन्त्रता है। तब हर क्षण मुझे तय करना पड़ता है, हर क्षण मुझें अपने कोज़न्म देना पड़ता है, हर क्षण मैं अपनी आत्मा निर्मितका रहा हूँ। और इसके लिए कोई भी दूसरा ज़िम्मेवार नहीं है, केवल मैं हीअन्ततः ज़िम्मेवार हूँ।

नीत्शे ने कहा है कि "परमात्मा मर गया है और अब आदमी पूर्णतया स्वतन्त्रहै।" यदि सच ही परमात्मा मर गया है, तो आदमी पूरी तरह स्वतन्त्र है। औरआदमी परमात्मा के मरने से इतना भयभीत नहीं है, वह अपनी स्वतन्त्रत्ता से ज़्यादाडरा हुआ है। यदि परमात्मा है तो फिर तुम्हारे साथ सब कुछ ठीक है। यदि

कोईपरमात्मा नहीं है, तो फिर तुम पूरी तरह आज़ाद हो-स्वतन्त्र होने को मज़बूर हो अब ज़ो तुम्हारी मरजी हो करो, और परिणाम भोगो, और उसके लिए कोई भीज़िम्मेवार नहीं होगा।

इरिक फ्रामने एक किताब लिखी है-"दि फियर आँफ फ्रीडम" स्वतन्त्रताका भय। तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, और तुम विवाह की सोचने लगते होप्रेम स्वतन्त्रता है, विवाह दासता है। लेकिन ऐसा आदमी खोज़ना मुश्किल है जोकि प्रेम में पड़ता हो और जो तुरन्त विवाह की न सोचता हो। क्योंकि प्रेम मुक्तहै, वहाँ डर है। विवाह बुक स्थिर चीज़ है, वहाँ कोई डर नहीँ है। विवाह एकसंस्था है-मृत्त्य प्रेम एक घटना है-ज़ीवन्त। वह गतिमान है वह बदल सकताहै। विवाह कोई"गति नहीं करता, वह कभी नहीं बदलता। इसी कारण विवाहमें एक निशि्र्चतता है, एक सुरक्षा है।

प्रेम में कोई निशि्र्चतता नहीँ है, कोई सुरक्षा नहीं है। प्रेम बहुत असुरक्षितबात है। किसी भी क्या वह आकाश। में विलीन हो सकता है, उसी तरह जिसत्तरह कि वह आकाश। से प्रकट हुआ। किसी भी क्षणवह खो सकता है। वहबहुत अपार्थिव है। उसकी जड़े ज़मीन में नहीं हैं। वह पूर्वकथनीय नहीं है। इसलिएअच्छा है कि विवाह में प्रवेश कर जाओ। तब वहाँ ज़ड़े मौज़ूद हैं। अब यहविवाह आकाश में विलीन नहीं हो सकता। यह एक संस्था है। ज़ैसे प्रेम में वैसे ही हर ज़गह ज़हाँ भी स्वतन्त्रत्ता होती है, हम उसे दासता में बदल कर देते हैं। जितनी ज़ल्दी हो, उतना अच्छा। तब हम आराम से हो सकते हैं। इसलिए हरप्रेम को कहानी विवाह पर समाप्त होज़ाती है, "फिर उनकी शादी हो गई, औरउसके बाद वे आनन्द से रहने लगे।"

कोई मी प्रसन्न नहीं है, लेकिन अच्छा है कि कहानी को वहाँ समाप्त कर दिया जाये क्योंकि उसके बाद सारा तर्क शुरू होता है। इसलिए सारी कहानियाँ बहुत ही सुन्दर क्षण पर खतम होती हैं। और वह क्षणा कौंन-सा है? स्वतन्त्रत्ता जब दासता में परिणत होती है। और वह केवल प्रेम के साथ ही नहीं है, ऐसा हर-बात के साथ है। इसलिए विवाह एक कुरूप चीज़ है, और वह होगी ही। हर संस्था कुरूप होती है क्योंकि वह एक ज़ीवन्त चीज़ की मृत लाश है। परन्तु यदि कुछ भी जीवन्त हो, तो उसमें अनिश्चितता तो होगी ही।

"जीवन्त" का मतलब है कि वह गतिमान है, वह बदल सकता है, वह भिन्नहो सकता है। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ और दूसरे क्षण में नहींभी कर सकता। किन्तु यदि में तुम्हारा पति हूँ या तुम्हारी पली हूँ तब फिर तुम निश्चिन्त होसकतेहो कि दूसरे क्षण भी मैं तुम्हारा पति या पली ही रहूँगा। यह एक संस्था है। मृत चीज़े स्थायी होती हैं, ज़ीवित चीज़ें क्षणिक होती हैं, बहाव में बदलती हुईं। आदमी स्वतन्त्रता से डरता है। और स्वतन्त्रता ही एक ऐसी चीज़ है ज़ोकि तुम्हें आदमी बनाती है। इसलिए हम आत्मघाती हैं-अपनी स्वतन्त्रता को नष्टकर रहे हैं। और उसे नष्ट करने के साथ ही हम अपने "होने" की सारी संभावनाको ही समाप्त कर रंहे हैं। तब "पाना" अच्छा है क्योंकि "पाने" का अर्थ होताहै चीज़ों को संगृहीत करना। तुम संग्रह करते चले जाते हो, उसका कमी अन्तनहीं आता। और जितना तुम संग्रह करते जाते हो, उतना ही तुम सुरक्षित अनुभवकरते हो। और जब मैं कहता हूँ कि "अब आदमी सचेतन गति करता है" तोमेरा यही मतलब है कि तुम्हें अपनी स्वतन्त्रता का भी पता हो और तुम अपनीस्वतन्त्रता के भय के प्रति भी होश रखो।

इस स्वतन्त्रता का कैसे उपयोग कों?

धर्मं कुछ और नहीं बल्कि एक प्रयास है, इस सचेतन विकास की ओरएक प्रयत्न है कि किस भाँति इस स्वतन्त्रता का उपयोग करें। तुम्हारे स्वैच्छिकप्रयास अब महत्त्वपूर्ण हैं। जो कुछ भी तुम अवैच्छिक रूप से करते ही, वह तुम्हारे अतीत का हिस्सा है। तुम्हारा भविष्य तुम्हारे सचेतन प्रयासों पर निर्भर करता है। एक

साधारण-सा कर्म भी जोकि सजगता से किया गया हो, जो कि स्वेच्छासे किया गया हो, तुम्हें एक विकास प्रदान करता है। एक मामूली-सा कृत्य भी।

तुम उपवास करते हो, परन्तु इसलिए नहीं कि तुम्हारे पास भोजन नहीं हैतुम्हारेपास भोजन है, तुम उसे खा सकते हो। तुम्हें भूख लगी है और तुम खासकते हो। तुम उपवास करते हो, यह स्वेच्छा से किया गया कर्म है एक सचेतनकृकृत्य। कोई पशु ऐसा नहीं कर सकता। एक पशु उपवास करेगा, यदि उसे भूखनहीं है। एक पशु को उपवास करना ही पडेगा यदि उसके पास भोज़न नहीं हैलेकिन आदमी ही उपवास कर सकता है जब कि उसे भूख भी है और भोजनभी है। यह स्वेच्छा से किया गया कृत्य है। तुम अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग कररहे हो। भूख तुम्हें धकेल नहीं सकती। भूख तुम्हें धक्के नहीं मार सकती औरभोजन तुम्हें खीच नहीं सकता।

यदि भोजन नहीं है, तो वह उपवास नहीं है। यदि भूख नहीं है, तो वहप्राकृतिक बीमारी है। वह फिर उपवास नहीं है। भूख भी है, भोजन भी है औरफिर भी तुम उपवास किये हो। ऐसा उपवास एक वोलीशनल ऐक्ट है, एक स्वेच्छागतकर्म है-एक सचेतन कृत्य है। इससे तुम्हारी सजगता बढेगी। तुम्हें एक सूक्ष्मस्वतन्त्रता का अनुभव होगा-भोजन से मुक्ति भूख से मुक्ति। वास्तव में, बहुतगहरे में-शरीर से मुक्ति। और उससे भी नीचे, गहरे में प्रकृति से मुक्ति। औरतुम्हारी स्वतन्त्रता बढ़ती है, और तुम्हारी सजगता विकसित होती है। जैसे-जैसेतुम्हारी सजगता बढ़ती है, वैसे-वैसे तुम्हारी स्वतन्त्रता बढ़ती है। वे दोनों एक-दूसरों से ज़ुड़े है। और अधिक मुक्त होजाओ और तुम अधिक सज़ग होओगे, अधिक सज़ग होज़ाओ और तुदृनृ अधिक मुक्त होज़ाओगे। ये दोनों एक दूसरेपर निर्भर है।

परन्तु हम अपने को धोखा दे सकते हैं। एक बेटा, एक बेटी, कह सकतीहै-"मैं अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करूँगी, ताकि मैं और अधिक स्वतन्त्र होसकूँ।" हिप्पी वही कर रहे हैं, किन्तु विद्रोह करना-मुक्त होना नहीं है क्योंकिवह प्राकृतिक है। एक उम्र पर माता-पिता के खिलाफ विद्रोह करना स्वतन्त्रतानहीं है। वह मात्र प्राकृतिक हैं। एक बच्चा ज़ो कि गर्भ से निकलकर आ रहाहै, नहीं कह सकता कि मैं गर्भ को छोड़ रहा हूँ। वह केवल एक प्राकृतिक बात हैज़ब कोई काम के लिए परिपक्व होता है, तो वह उसका दूसरा ज़न्म हैअब उसे अपने माता-पिता से लड़ना चाहिए क्योंकि ज़ब वह उनसे लडेगा तबही वह उनसे दूरजा सकेगा। और जब तक वह उनसे दूर नहीं चला ज़ाता, तब तक वह एक नये परिवार काकेन्द्र निर्मित नहीं कर सकता। इसलिए प्रत्येक बच्चा अपने माता-पिता के खिलाफ जाएगा, यह प्राकृतिक है। और यदि एक बच्चा विरुद्धनहींजा रहा है, तो वह विकास है क्योंकि तब वह प्रकृति से लड़ रहा है।

उदाहरण के लिए तुम्हारा विवाह होता है। तुम्हारी माँ और तुम्हारी पत्नीमें अब संघर्ष पैदा होगा ज़ो कि प्राकृतिक है। प्राकृतिक मैं कहता हूँ इसलिएक्योंकि माँ के लिए यह एक बहुत बड़ा धक्काहै। तुम एक दूसरी स्त्री के पासचले गये। अब तक तुम पूरी तरह माँ के ही थे। और इससे कोई भेद नहीं पड़ताकि वह तुम्हारी मॉ है क्योंकि भीतर गहरे में तो न कोई माँ है और न कोई पत्नीहै। भीतर गहरे में हर माँ एक स्त्री है। अचानक तुम दूसरी स्त्री के तरफ मुड़गये और तुम्हारी माँ के भीतर जोस्त्री है, वह दुखी होगी, ईर्ष्या से भरेगी। लडाईऔर संघर्ष स्वाभाविक है। परन्तु यदि तुम्हारी माँ अब भी तुम्हें प्रेम कर सके, तो फिर वह विकास है। यदि तुम्हारी माँ तुम्हें इतना प्रेम कर सके ज़ितना कि उसने पहले कभी नहीं किया जबकि तुम एक दूसरी स्त्री के पास चले गये तोफिर यह विकास है-एक सचेतन विकास है। वह प्राकृतिक वृतियों से ऊपर उठरही है।

जब तुम बच्चे होते हो तो तुम अपने माता-पिता को प्रेम करते हो। वहस्वाभाविक है, केवल एक सौदा है। तुम असहाय हो और वे लोग तुम्हारे लिएसब कुछ कर रहे हैं। तुम उन्हें- प्रेम करते हो और तुम उन्हें आदर देते

हो। जबतुम्हारे माता-पिता बूढे हो गये हों और तुम्हारे लिए कुछ भी न कर सकते होंतब भी यदि तुम उन्हें प्रेम करो और-आदर दो तो फिर यह विकास है। जबभी प्राकृतिक वृत्ति का अतिक्रमण होता है, तो तुम विकसित होते हो। तुमने अपनीस्वेच्छा से एक निर्णय लिया, इसलिए तुम्हारा अस्तित्व बढ़ेगा और तुम एक नया तत्व उपलब्ध करोगे।

पुरानी भारतीय संस्कृति ने हर प्रकार से यह कोशिश की है कि जीवन में जो भी हो इससे विकास हो। एक बच्चे के लिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है किवह अपने पिता का आदर करे, परन्तु यह अस्वाभाविक है कि जब पिता बूढाहो गया हो, मरने के करीब है, कुछ भी करने में असमर्थ हो और खाली उसपर एक बोझ हो, तब यह अप्राकृतिक है। कोई पशु ऐसा नहीं कर सकता, प्राकृतिकबन्धन टूट गया। केवल आदमी ही यह कर सकता है, और यदि यह किया ज़ातातो तुम विकसित होते हो। यह स्वेच्छागत है। तुम किसी भी स्वेच्छागत कृत्य से- चाहे साधारण हो, चाहेजटिल-बढ़ते हो।

मैं तुम्हें कहानी कहता हूँ। "महाभारत" में भीष्म के पिता एक लड़की केप्रेम में पड़ गये। वे बहुत वृद्ध थे। लेकिन यदि तुम बूढे भी हो गये हो, तो भीप्रेम में गिर जाना स्वाभाविक बात है। मृत्यु-शय्या पर भी तुम प्रेम में पड़ सकते हो। लड़की राज़ी हो गई, किन्तु लड़की के पिता ने एक शर्त रखी। उसने कहाकि तुम्हारे एक बेटा है भीष्म। भीष्म युवा थे, विवाह होने को था। लड़की केपिता ने कहां भीष्म तुम्हारे राज्य का उतराधिकारी होगा, इसलिए मेरी यह शर्तमंज़ूर होनी चाहिए कि यदि मेरी लड़की से कोई सन्तान पैदा होती है तो वही राज्य की उतराधिकारी होगी, न कि भीष्म"

पिता के लिए यह बात बड़ी अस्वाभाविक थी कि भीष्म से कहें। वह बूढाथा और किसी भी दिन मर सकता था। लेकिन वह बहुत चिन्तित और उदास हो गया। इसलिए भीष्म ने उससे पूछा, "क्या ब्रात है? क्या तुम्हारे मस्तिष्क मेंकोई उलझन है? मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ मुझे बतायें।" अतः उसनेएक कहानी बनाई। बूढे आदमी इसमें बड़े होशियार होते हैं। उसने कहा-"चूँकि तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो, और चूँकि प्रकृति का कोई भरोसा नहीं, यदि तुम मर जाओ या तुम्हें कुछ होजाये तो फिर मेरे राज्य का कौन मालिक होगा? इसलिएमैंने विद्वानों से राय ली और उनका कहना है कि मैं एक विवाह और कर लूँ ताकि मेरे एक पुत्र और पैदा हो सके।"

अतः भीष्म ने कहा, इसमें क्या अड़चन है? आप विवाह कर लें। तब पिताने कहा, "उसमें एक कठिनाई है। मैं इस लड़की से विवाह करना चाहता हूँ। लेकिन उसके पिता की यह शर्त है कि तुम्हारा पुत्र भीष्म राज्य का हकदार नहीं होगा। केवल मेरी लड़की का पुत्र ही राज्य का मालिक हो।" अतः भीष्म नेकहा, "मेरे लिए ठीक है, मैं आपको वादा करता हूँ।" भीष्म उस आदमी केपास गया जिसकी लड़की का उसके पिता से विवाह होनेवाला था। उसने कहा, मैं तुमसे वादा करता हूँ कि मैं साम्राज्य का उत्तराधिकारी नहीं बनूँगा।" परन्तुवह आदमी एक ममूलीमछली पकड़ने वाला था, बहुत साघारण आदमी थाउसने कहा, "मैं जानता हूँ। परन्तु आप केसे वादा कर सकते हैं? आपके लड़केउलझन खडी कर सकते हैं। हम तो मामूली मछुए हैं, बहुत साधारण लोग हैं। यदि तुम्हारे पुत्र कोई भी परेशानी खड़ी करें तो हम तो कुछ भी न कर सकेंगे।" अतः भीष्म ने कहा, "मैं वादा करता हूँकि मैं कभी विवाह नहीं करूँगा। तब तो ठीक है न?" तब कहींजाकर सारी बात समाप्त हुई।

यह एक बड़ी अप्राकृतिक बात थी। वे युवा थे, और उन्होंने कभी शादीनहीं की। किसी स्त्री की तरफ कामवासना से नहीं देखा। यह विकास हुआ। इस बात ने एक सूक्ष्म अस्तित्व को निर्मित किया, एक केंन्द्र पैदा किया। तब उसकेबाद किसी और साधना की कोई आवश्यकता नहीं थी। केवल यह तथ्य काफीथा। उनके भीतर

केंद्रीकरण हो गया। यह वादा पर्याप्त। वे दूसरा ही आदमीहो गये। उनका ऊर्ध्व विकास शुरू हो गया। प्राकृतिक समतल रेखा ठहर गई। इस वायदे के साथ ही सब कुछ ठहर गया। अब कोईजैविक संभावना नहीं थी। हर प्राकृतिक बात बेमानी हो गई।

किन्तु भीष्म ज़ैसे लोग दुर्लभ हैं। बिना किसी आध्यात्मिक साधना के, बिना किसी आध्यात्मिक प्रयास के उन्होंने ऊँचे-से-ऊँचा शिखर पा लिया। इसलिए किसी भी कृत्य में-साधारण हो-चाहे जटिल, जो कि एक सचेतन निर्णय से आता है, बिना किसी शिक्षा से उत्प्रेरित हुए, बिना किसी प्राकृतिक शक्ति के धक्के के-यदिवह तुम्हारा निर्णय है, तो उस निर्णय से तुम निर्मित होते हो। तुम्हारा हर निर्णयतुम्हारे जन्म के लिए निर्णायक होता है। तुम एक भिन्न ही आयाम में विकसित होते हो। इसलिए किसी भी कर्म का उपयोग करें-साधारण-से-साधारण कृत्य

का भी।

तुम बैठे होः निर्णय करो किमैं अपने शरीर को दस मिनट तकनहीं हिलाऊँगातुम्हें बड़ा आश्चर्य होगा कि यद्यपि शरीर पहले कतई नहीं हिल-डुल रहा था, लेकिनअब शरीर मजबूर कर रहा है, हिलने-डुलने के लिए। तुम्हें शरीर में होने वाली बहुत-सी सूक्ष्म गतियों का पता चलेगा जो कि पहले बिल्कुल तुम्हारे ध्यान में नहीं थी। अब शरीर विद्रोह कोमा। सारा अतीत उसके पीछे खड़ा है ओर शरीर सेकहेगा, मैं गति करूँगा। शरीर कंपने लगेगा, सूक्ष्म गतियाँ शुरू होजायेंगी और तुम्हें बहुत-से आकर्षण खींचेंगे हिलने-डुलने के लिए तुम्हारे पाँव सुन्न होजायेंगे। वे मृत होज़ायेंगे और तुम कहीं खुजलाना चाहोगे। बहुत बातें होंगी। तुम पहलेबिना हिले-डुले बैठे थे, लेकिन अब तुम नहीं बैठ सकते। लेकिन यदि तुम दस मिनट भी बिना हिले डुले बैठ सको, तो तुम्हें किसी ध्यान की आवश्यकता नहीं है।

जापान में-वे "खाली बैठने" को ध्यान कहते हैं। उसके लिए उसका शब्दहै-"ज़ा-ज़ेन"ज़ा-ज़ेन का अर्थ होता है सिर्फ बैठना। तब सिर्फ बैठो और कुछ भी न करो। जब कोई साधक गुरु के पास आता तो वह उससे कहता-"किबस खाली बैठो, घंटों तक खाली बैठे रहो।"ज़ेन आश्रम में तुम्हें बहुत-से साधकघंटों तक सिर्फ बैठे हुए मिलेंगे। कोई ध्यान की प्रक्रिया नहीं दी गई, कोई मनननहीं, कोई प्रार्थना नहीं। केवल बैठना ही ध्यान है।

एक साधक बिना हिले-डुले छः घंटे तक बैठेगा, और जब सारा हलन-चलन समाप्त होजाये, चला जाये, जबकि कोई गति ही न हो, और खाली गतिही न हो, इतना ही नहीं बल्कि भीतर मन में भी हिलने-डुलने की इच्छा शेषन हो, तब तुम केन्द्र पर होते हो, तब तुम संगठित हुए। तुमने एक साधारण सेबैठने के कृत्य को तुम्हारी स्वेच्छा के लिए तुम्हारे संकल्प के लिए, तुम्हारी-सज़गता के लिए उपयोग किया।

यह बहुत-कठिन है। यदि मैं तुमसे कहूँ कि अपनी आँखें बन्द कर लें औरउन्हें खोलें नहीं, तो बहुत से प्रलोभन आ जायेंगे। और तब तुम्हें बड़ी बेचैनीअनुभव होगी, उन्हें बन्द रखने में, और तुम उन्हें खोल दोगे। और तुम अपने कोभी धोखा दोगे कि मैंने थोड़े ही खोली, अचानक वे अपने आप रवुल गई। आँखें अपने आप खुल गई। मुझे पता ही नहीं चला। अथवा तुम दूसरी तरह से धोखादोगे-तुम छोटी-सी झलक ले लोगे, एक मात्र और फिर बन्द कर लोगे।

यदि अपनी स्वेच्छा से अपनी आँखें बन्द रखो, तो वह सहायक होगा। कुछभी विकसित होने के लिए माध्यम हो सकता है। अतः अपनी आदत का ख्यालकरो। और जो भी तुम करो, स्वेच्छा से करो। कुछ भ-कोई भी आदत का उपयोगकिया ज़ा सकता है। किसी भी यांत्रिक कृत्य का इस्तेमाल किया जा सकता हैउसके विपरीत करना शुरू करो। और जब तुम एक बार निर्णय कर लो, तो फिरवैसा करो, अन्यथा वह बड़ा आत्मघाती सिद्ध होगा।

वह आत्मघाती सिद्ध होगा। यदि तुम कुछ निर्णय करते हो और उसे पूरानहीं करते तो अच्छा है क्योंकि निर्णय ही न करो, क्योंकि उससे तुम्हारे संकल्प को बड़ा भारी धक्का लगता है। और हम वैसा कर रहे है। हम तय करते चले जातेहैं और नहीं करते हैं। और आखिर में हम संकल्प की सारी संभावना ही नष्टकर देते हैं और फिर हम अपंने भीतर एक गहरी संकल्पहीनता, गहरी नपुंसकता, एक गहरी शिथिलता का अनुभव करते हैं। ओर तुम बहुत मामूली बातों का निर्णयभी पूरा नहीं कर सकते। कोई तय करता है कि मैं अब सिगरेट नहीं पीऊँगा, और दूसरे ही दिन वह सिगरेट पीता दिखलाई पड़ता है। तुम सोचोगे कि उसमें क्या गलती है? वह मेरा ही निर्णय था और मैं अपने निर्णय का मालिक हूँ औरमैंने वह बदल दिया है।

तुम मालिक नहीं हो। तुमने निर्णय बदल दिया क्योंकि तुम मालिक नहीं हो। सिगरेट मालिक सिद्ध हुई, तुम नहीं। सिगरेट पीना तुमसे ज्यादा शवितशालीसाबित हुआ। तब अच्छा है कि निर्णय ही मत करो-सिगरेट पीते रही। किन्तुअगर तुम निर्णय करते हो तो फिर इस निर्णय पर डटे रहो। तब उससे हटो मतवह तुम्हें विकसित कर देगा।

सचमुच हर आदत तुमसे संघर्ष करेगी और तुम्हारा मन कहेगा कि क्या कररहे हो। इसमें क्या बुरा है। तुम्हारा मन कई तरह से तर्क करेगा। मैं नहीं कहताकि सिगरेट पीना गलत है। मैं यह कहता हूँ कि पहले निर्णय करना कि सिगरेटनहीं पीऊँगा और फिर पीना गलत है। इसके विपरीत भी कर सकते हो : यदितुम निर्णय करते हो कि सिगरेट पीऊँगा तो फिर पीओ। फिर रुको मत। फिरचाहे कुछ भी होता हो-कैंसर हो या फिर कुछ भी हो, उसे होने दो। यदि साराजगत भी उसके खिलाफ जाता हो, तोजाये। यदि तुमने सिगरेट पीने का निर्णयकिया है, तो पीओ। जीवन की कीमत पर भी पीओ। वह भी तुम्हें विकसित करेगा।

अतः सवाल सिगरेट पीने या न पीने का नहीं है। भीतर गहरे में सवाल संकल्प को, स्वेच्छागत कृत्य को पूरा। करने का है। चाहे कोई भी विषय हो, इससे कोई मतलब नहीं है। लेकिन निर्णय करो और छोटे-छोटे से निर्णयों से तुम एकबहुत बड़ा संकल्प निर्मित कर सकते हो-बहुत छोटे-छोटे निर्णयों से।

जैसे कि कहो-कि मैं एक घंटे तक खिड़की से बाहर नहीं देखूँगा। यह एक बहुत ही छोटा-सा निर्णय है, जिसका कोई अर्थ भी नहीं है। कौन परवाहकरेगा कि आप खिड़की से बाहर देखते हैं या नहीं। और खिड़की के बाहर कुछ हो भी नहीं रहा है। लेकिन जिस क्षण तुम यह निर्णय करते हो कि मैं खिड़कीसे बाहर नहीं देखूँगा, तुम्हारा सारा अस्तित्व विद्रोह करेगा और देखना चाहेगा और खिड़की ही सारे जगत का केन्द्र होजायेगी। ऐसा लगेगा कि ज़ैसे तुम सब कुछ खोरहेहोवहाँकुछहोरहा है।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन ने तय किया कि आज मै बाज़ार नहींजाऊँगा। उस समय सवेरे के पाँच बजे थे। बाजार जाने का कोई सवाल भी नहीं था। उसने सिर्फ निश्चय किया था कि वह नहींजाएगा। तब वह बाजार के बारे में सोचने लगा। और उसने ऐसा इसलिए निश्चय किया था क्योंकि सप्ताह में एक दिन ही गाँव में बाजार लगता था। उसने सोचा-हर सप्ताह मैं बेकार ही बाजार जाता हूँनतोकुछवेचने कोहोताहैओरनखरीदने को।

वह एक गरीब आदमी था-न कुछ बेचने को था और न ही खरीदने कोउसने सोचा कि फिर मैं बिना मतलब ही बाजार क्यों जाता हूँ। क्योंकि हर एक जाता है औरयह बाजार का दिन है-गाँव में उत्सव का दिन होता है। मैं क्यों जाऊँ? आज मैं नहीं जाऊँगा, यद्यपि आज हाट का दिन है।

उसने यह निर्णय सवेरे पॉच बजे ही कर लिया। और तब वह सोचनेलगा-"कहीं ऐसा नहीं हो कि वहाँ कोई खास बात होजाए। मुझे जाना चाहिए, न मालूम क्या बात हो।" अतः वह उस पर गौर करने लगा, और भीतर-ही-भीतर परेशान होने लगा। और तब करीब छः बजे वह बाज़ार में पहुँच गया। अभीचार-पाँच घंटे

बाकी थे बाज़ार के लगने में, लोगों को इकट्ठे होने में। लेकिनवो बाजार में एक पेड़ के नीचे बैठा था, ठीक बाज़ार के बीच में।

किसी ने मुल्ला से पूछा-"मुल्ला, तुम इतनी जल्दी ही बाज़ार मैं क्यों बैठे हो? नसरुद्दीन ने कहा-आज बाज़ार का दिन है और मैं ने सोचा कि कोई ऐसीघटना होजाये और बहुत भीड़ इकट्ठी होगी और कहीं ठीक-स्थान पर नहीं पहुँच पाऊँ? इसलिए मैं पहले से ही मध्य में बैठ गया हूँ। अगर कुछ भी होताहै तो मैं पहला आदमी होऊँगा। और कौन ज़ाने। इस जगत में सभी कुछ संभव है।"

बाज़ार बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया, सारेजगत का केन्द्र हो गया। और वहइतना आकर्षक हो गया मात्र एक निर्णय लेने से कि मैं आज बाजार नहींजाऊँगा, क्योंकि हर सप्ताह मैं बेकार ही जाता हूँ न तो कुछ खरीदने को होता है, औरन बेचने को।

जिस क्षण भी तुम निर्णय करते हो, तो आकर्षित होते हो। और इस आकर्षणसे ऊपर उठना ही विकास है, ग्रोथ है। स्मरण रहे कि यह दमन नहीं है। यह दमन नहीं अतिक्रमण है। प्रलोभन वहाँ है, तुम उससे लड़ते भी नहीं हो, तुम उसे स्वीकार करते हो। तुम कहते हो, ठीक है, प्रलोभन हो रहा है, लेकिन मैंने निर्णय कर लिया है। इसे ध्यान के लिए उपयोग करें।

तुम बैठे हो। और जब तुम ध्यान के लिए बैठे हो तो बहुत से विचार बिना बुलाये मेहमानों की तरह आयेंगे। वे साधारणतः कभी नहीं आते। जब तुम ध्यानकरते हो, तभी केवल वे भी आते है, वे आयेंगे, वे भीड़ लगायेंगे, वे तुम्हें घेर लेंगे। उनसे लड़ो नहीं। केवल इतना ही कहो-"मैंने निर्णय कर लिया है किमैं तुम्हारे कारण परेशान न होऊँगा, और स्थिर बैठे रहो। एक विचार तुम्हारे पासआता है, उससे केवल इतना ही कहो-"चले जाओ"। उससे लड़ो मत। लड़कर तुम परिचय बना लेते हो, लड़कर तुम स्वीकार कर लेते ही, लड़कर तुम उससेकमज़ोर साबित होजाओगे। केवल कहो कि "चले ज़ाओ" और स्थिर बैठे रहो। तुम चकित होजाओगे, सिर्फ इतना कहने से ही कि चले जाओ, वह चला जाता है।

लेकिन पूरे संकल्प के साथ कहो। तुम्हारा मन बँटा हुआ नहीं हो। वह कहींस्त्रियों जैसी "ना" नहीं हो। वह वैसा न हो, क्योंकि स्त्रियाँ जितने ज़ोर से "ना" कहती हैं, उतना ही उसका मतलब "हॉ" होता है। वह स्त्रियों वाला "ना" नहीं हो। यदि तुम कहते कि "चले ज़ाओ"। तो भीतर इसका मतलब यह नहीं होकि "और नज़दीक चले जाओ"। और तब पूरे संकल्प से कहो कि-जाओयही मतलब भी हो तुम्हारा और विचार चला जाएगा। यदि तुम क्रोध में हो, औरतुमने निर्णय कर लिया है कि मैं क्रोधित नहीं होऊँगा, तो उसे दबाओ नहीं। सिर्फक्रोध से इतना ही कहो-"मैं क्रोधित होने वाला नहीं हूँ" ओर क्रोध चला जाएगा।

यह एक यांत्रिकता है। तुम्हारे संकल्प की आवश्यकता है क्योंकि क्रोध कोऊर्जा चाहिए। यदि तुम पूरी शक्ति से "ना" कह दो, तो क्रोध के लिए कोई ऊर्जानहीं बचती। एक विचार चलता है क्योंकि भीतर बहुत गहरे में "हाँ" छिपा है। यदि तुम "ना" कह देते हो तो वह "हाँ"जड़ से कट जाता है। विचार की जड़ेउखड़जाती हैं। वह तुम्हारे भीतर-नहीं रह सकता। परन्तु तब "हाँ" अथवा "ना" का मतलब भी वही होना चाहिए। तब "हॉ" ही हो। परन्तु यदि हम "हाँ" कहतेचले जाए और मतलब "ना" हो, अथवा "ना" कहैं और मतलब "हाँ" हो, तब फिरसारा जीवन उलझन से भर जाता है। और तुम्हारा मन, तुम्हारा शरीर समझ हीनहीं पाते कि तुम्हारा मतलब क्या है, और तुमक्या कह रहे हो

यह सचेतन प्रयास निर्णय लेने का, कृत्य करने का व होने का-यही मनुष्यके लिए विकास होगा। एक बुद्ध तुमसे भिन्न है इस प्रयास के कारण ही, औरकुछ बात नहीं। बीज रूप में कोई भेद नहीं है, केवल यह सचेतन प्रयास ही साराभेद निर्मित करता है

आदमी और आदमी में केवल यह सचेतन प्रयास ही एकमात्र वास्तविक भेद हैं। बाकी सब बहुत ऊपरी बात है। केवल तुम्हारे कपड़े ही भिन्न हैं। किन्तु जबतुम्हारे भीतर कुछ सचेतन जैसा है, एक प्रौढ़ता है, एक भीतरी प्रौढ़ता है जो किप्राकृतिक नहीं है, जो कि पार चली जाती है, तभी तुम्हारे पास एक विशिष्टव्यक्तित्व है।

बुद्ध एक गॉव में से गुज़र रहे हैंजहाँ कि बहुत से आदमी उनका अपमान करने इकट्ठे हो गये हैं। वे कहते हैं, तुम लोग देर से आये, तुम्हें दस सालपहले आना चाहिए था, क्योंकि अब मैं जाग गया हूँ। अब मैं प्रतिक्रिया नहीं कर सकता। यदि तुम मेरा अपमान करते हो, मुझे गाली देते ही, तो मेरेलिए वह ठीक है। मैं जवाब देनेवाला नहीं, तुम मुझे बदलेमें गाली देने को मजबूर नहींकर सकते।

जब कोई तुम्हें गाली देता है, तो वह तुम्हें क्रोध करने के लिए मजबूर कर रहा है। और जब तुम क्रोधित होते हो, तो तुम क्रोध के हाथों में गुलाम हो गये उसने तुम्हें क्रोध दिला दिया। और हम बिना सोचे-समझे कहे चले जाते है कि हम क्या कह रहे हैं कि "उसने मुझे क्रोध दिला दिया।" तुम्हारा क्या मतलबहै। उसने तुम्हें कुछ कहा और उसने तुम्हें क्रोधित कर दिया, अतः वह तुम्हारा मालिक हो गया। वह कुछ भी कह सकता है, वह बात को बना-बिगाड़ सकताहै, वह बटन दबा सकता है, और तुम क्रोध में आते हो। तुम पागल होजाते हो। तुम्हारा बटन किसी के द्वारा भी दबाया जा सकता है, और तुम्हें पागल कियाज़ा सकता है।

बुद्ध कहते हैं-तुम देर से आये, मित्र। अब मैं स्वयं अपना मालिक होगया हूँ। अब तुम मुझे कुछ भी करने को मज़बूर नहीं कर सकते। यदि मैं चाहूँतो मैं करूँ, और यदि मैं नहीं चाहूँ तो मैं नहीं करता। तुम्हें वापस जाना पड़ेगा। मैं तुम्हें जवाब देनेवाला नहीं हूँ। वे लोग परेशानी में पड़ गये, क्योंकि यह अग्दमीबहुत ही बेबूझढंग से बर्ताव कर रहा है। जब तुम किसी को गाली देते हो, तो वह अपमानित महसूस करता है, वह क्रोधित होता है, उसे किसी-न-किसी भाँति प्रतिक्रिया करनी ही चाहिए। परन्तु इस आदमी ने प्रतिक्रिया करने से इनकार कर दिया। और बुद्ध उन लोगों से कहते हैँ, "मैं जरा जल्दी मैं है, दूसरे गाँवपहुँचने की। यदि तुम्हारी बात पूरी हो गई हो, तो मुझे जाने दो। यदि तुम्हें कुछ और भी कहना हो, तोजब मैं लौटकर आऊँ, तो तुम तैयार रहना और कह देना।"

यही अतिक्रमण है। कुछ जो स्वाभाविक था, उसका अतिक्रमण हो गयाप्रतिक्रिया स्वाभाविक है, क्रिया विकास है। हम सब प्रतिक्रिया करते हैं। हमारेपास कोई क्रिया नहीं है-केवल प्रतिक्रियाएं हैं। कोई तुम्हारी प्रशंसा करता है और तुम्हें अच्छा लगता है, और कोई तुम्हें गाली देता है और तुम्हें बुरा लगता है, और कोई एक किस्म का व्यवहार करता है और उससे उस किस्म की प्रतिक्रिया होती है। तुम्हारे बारे में पूवं-निश्चित हुआ जा सकता है।

एक पति घर लौटता हुआ जानता है कि उसकी पत्नी क्या पूछनेवाली हैं। वह उत्तर तैयार कर लेता है। हॉलाकि अभी वह घर नहीं पहुँचा है, उसने उत्तर तैयार कर लिया है। वह यह भी जानता है कि उसकी पत्नी उसके उत्तर का विश्वास करनेवाली नहीं है। और पत्नी भी जानती है कि वह क्या पूछनेवाली है और पतिक्या जवाब देगा। हर चीज़ पूर्व निश्चित है और वही रोज-रोज हो रहा है। और यही सारे जीवन चलेगा। वही सवाल वही जवाब, वही सन्देह, वही शंका, वही चालाकियाँ, वही-के-वही खेल, और लोग उन्हें खेले चले ज़ाते हैं। ये सब प्रतिक्रियाएं हैं।

किसी वे मुल्ला नसरुद्दीन से कुछ रुपया मांगा। मुल्ला ने कहा, "यह पहली दफा तुमने मांगा है, इसलिए मैं दिये देता हूँ।" उसने रुपया दे दिया। वह एक एक छोटी-सी रकम थी। तब मुल्ला ने सोचा, इतनी छोटी-सी रकम वापस लौटने वाली नहीं है। परन्तु उस आदमी ने वे रुपये लौटा दिये। सात दिन बाद उसने न रुपये वापस कर दिये। मुल्ला को बडा ताज्जुब हुआ। एक सप्ताह बाद वह आदमी फिर रुपये मांगने आया। मुल्ला ने कहा, "अब इस ज़ार तुम मुझे धोखादे सकते। तुमने पिछली दफा धोखा दिया।"

उस आदमी ने जवाब दिया, "क्या कहते हो। मैंने तुम्हारा रुपया लौटा दिया।" किन्तु मुल्लाने कहा, "परन्तु तुमने मुझे धोखा दिया, वयोंकि मुझे पक्का यकीन था कितुम रुपया नहीं लौटाओगे। यह बात निश्चित थी। परन्तु तुमने लौटाकर मुझे धोखा दिया। अब तुम दोबारा धोखा नहीं दे सकते। मैं तुम्हें रुपया देने वाला नहीं हूँ।"

यदि कोई हमारी पूर्वधारणा। के इधर-उधर व्यवहार करे तो हमें आश्चर्य होता है। हम इतने पूर्वनिर्धारित हैं कि प्रत्येक जानता है कि कोई वया करनेवाला है। तुम ऐसा ऐसा करो और ऐसा ऐसा होगा। यह एक यांत्रिक प्रतिक्रिया है। इनयांत्रिक प्रतिक्रियाओं के पार चले जाओ, प्राकृतिक शाक्तियों का अतिक्रमण कर जाओ, संकल्प निर्मित करो। वही मार्ग है, आदमी के विकास के आगे आदमी से नीचे, प्राकृतिक विकास है, किन्तु वह आदमी के लिए नहीं है।

औरप्रश्न कादूसरा हिस्सा है-कृपया बतायें कि चेतना के विकास में बुद्ध-पुरुषों का क्या योगदान होता है?

बुद्ध-पुरुषों का योगदान होता है क्योंकि मनुष्य की चेतना अकेली नहीं हैं, व्यक्तिगत नहीं है। वह भी सामूहिक है। वह तुम्हारे भीतर है और वह तुम्हारे बाहर भी हैं। एक तरह से चेतना तुम्हारे भीतर भी है और तुम बड़ी भारी चेतना के भीतर भी हो-जैसे कि सागर में मछली। मछली सागर में है ओर सागर मछलीमें है।

हम चेतना के महान सागर में जीते हैं। और जब कभी भी एक बुद्ध का जन्म होता है, जब कभी भी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, अपने प्रयासोंसे जागता है, अपने सचेतन विकास के द्वारा ऊपर उठता है, तो सागर में एक लहर उठती है। उस लहर के साथ ही सागर में हर चीज प्रभावित होती है। ऐसाहोगा ही क्योंकि सागर में एक लहर एक बहुत बड़ेढाँचे का हिस्सा है।

जब बुद्ध अपने शिखर पर उठते हैं, तो सारा सागर हज़ार-हज़ार लहरों में हूँप्रभावित होता है। अब ये ऊँचाई सब जगह प्रतिध्वनित होगी। तुम एक झील मेंएक पत्थर फेंकते होः एक छोटा वर्तुल उससे निर्मित होता है। और तब वहफैलता चला जाता है, और आखिर में सारी झील ही उससे प्रभावित होती है। एक बुद्ध भी एक झोल में गिरे एक पत्यर की भाँति है। अब मनुष्यता वैसी हीनहीं होगी, जैसी कि बुद्ध के पहले थी।

ईसाईयों ने इसे एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात बनाई। वे इतिहास को दो हिस्सोंमें बांटते है, एक ईसा से पूर्व और दूसरा ईसा के बाद। सचमुच यह बहुत महत्त्वपूर्णबात है। वस्तुतः इतिहास भिन्न है और बँटा हुआ नहीं है, परन्तु विभाजन कियागया है, क्योंकि जीसस क्राइस्ट के बाद एक परिवर्तन है। चूँकि क्राइस्ट का जन्महुआ है, औरअब मनुष्यता वापस लौटकर मन की उस अप्रौढ़ स्थिति को नहींजा सकती। हर चीज़ा प्रभावित होती है। हम बुद्धों के साथ उठते हैं, हम हिटलरोंके साथ गिरते है, परन्तु यह उठना और गिरना तुम्हारे लिए स्वाभाविक है। एकबुद्ध पैदा होते हैं, तो उनके साथ हर एक ऊपर उठता है। परन्तु यह तुम्हारी तरफसे सचेतन प्रयास नहीं हुआ।

तुम इस अवसर का उपयोग कर सकते हो। एक बुद्ध मौज़ूद हैं, एक प्रसुप्तसंभावना अपने अन्तिम तत्त्व में खिल गई। एक चेतना शिखर हो गई। अब यहतुम्हारे लिए बहुत अच्छा क्षण है, सचेतन प्रयास करने के लिए। अब तुम्हें कमसमय लगेगा, तुम्हें कम प्रयास करना पड़ेगा। यह ऐसा ही है जैसे कि सारा इतिहासअपने शिखर

कौ ओर बढ़ रहा हो। अब तुम आसानी से तैर सकते हो। परन्तुयदि तुम इस अवसर का लाभ नहीं लेते, तो तुम ऊँचाई तक जाओगे और तुमवापस लौट जाओगे। एक बुद्ध के साथ तुम ऊँचे उठोगे, एक हिटलर के साथ तुम नीचे गिरोगे। तुम ऊपर-नीचे उठते-गिरते रहोगे। ये ऊपर-नीचे गति तुम्हारे लिए प्राकृतिक शक्ति से होगा। एक बुद्ध के लिए यह एक सचेतन प्रयास है, तुम्हारे लिए वह सिर्फ एक प्राकृतिक शक्तिहोगी।

तुम उसका उपयोग कर सकते हो। आदमी उसका दो तरह से उपयोग करराकता है। जब एक बुद्ध मौज़ूद है, तो उठना सरल है। सारी चेतना ही शिखरकी और खुली है। शिखर वहाँ मौज़ूद है। तुम्हारे भीतर बहुत गहरे में उसकी प्रतिध्वनि होती है। बहुत गहरे में संगीत सुनाईं पड़ता है, तुम उसका अनुसरण कर सकते हो। यदि तुम जरा-सा भी प्रयत्न करो तो तुम बहुत जल्दी ही बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकतेहो।

एक बहुत ही अर्थपूर्ण कहानी है-बुद्ध ने, जो अन्तिम पाना था-पा लिया, तब वे सात दिन तक बिल्कुल मौन हो गये। उनके पास यह भी न बचा किकहें कि उन्होंने क्या पा लिया। मौन समग्र था और टूटनेवाला भी नहीं था। ब्रह्माको बड़ा डर लगा कि वे यदि नहीं बोले... और ऐसा कभी-कभी ही घटित होताहैं कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। अतः कहानी कहती है कि ब्रहा। बुद्धके पास आये, उनके चरणों में झुके और बोले, "तुम बोलो। चुप न होजाओतुम्हें बोलना ही पड़ेगा"

बुद्ध वे कहा कि "यह बिल्कुल व्यर्थ लगता है क्योंकि जो मुझे सुन सकते है और समझ सकते हैं, वे मेरे बिना बोले भी समझजायेंगे। और जोमुझे नहीं सुनना चाहते, यदि मुझे सुन भी लें, तो भी न समझेंगे। अतरू कोई आवश्यकता नहींप्रतीत होती है।" ब्रह्मा ने कहा, "कुछ और भी लोग हैं जो कि बच रहते हैं। कुछ थोडे से लोग ऐसे भी हैं जो कि किनारे ही खड़े हैं। यदि आप बोले तो वे सुन लेंगे। और छलाँग लगा जायेंगे। यदि आप नहीं बोले, तो वे वापस भी गिर सकते हैं। वे बिल्कुल किनारे पर ही खड़े हैं। वे आपकी सुनेंगे और छलांग लगा जायेंगे।"

एक बुद्ध उपस्थित हैं। छलाँग लगाने की एक संभावना बनती है। लेकिनतुम छलाँग लगाओ या नहीं परन्तु तुम प्रभावित होते हो। तुम पर असर होता हैपरन्तु यह प्रभाव बिना तुम्हारे सचेतन संकल्प के एक प्राकृतिक धक्का ही होगाऔर जब एक हिटलर आता है तो तुम उसके साथ नोचे आ जाते हो। जिस तरहकि एक बुद्ध के साथ तुम ऊपर उठते ही, तुम किसी के साथ भी नीचे गिर सकतेहो, क्योंकि ये ऊपर उठना तुम्हारी उपलब्धि नहीं है।

एक ऊपर उठती हुई लहर के साथ तुम ऊपर जाते हो, और एक नोचे गिरती लहर के साथ तुम नीचे गिरते हो। परन्तु तुम अवसर का उपयोग कर सकते हो। जब ऊपर उठ रहे हो, तब थोड़े से प्रयत्न से ही, तुम्हारे थोड़े से संकल्प से ही तुम अधिक उपलब्ध कर सकते हो। इसलिए एक बुद्ध के साथ, हज़ारों बुद्धत्वको उपलब्ध हो सकते हैं।

में नहींजानता कि तुम्हें इस बात का पता है या नहीं कि बुद्ध के समयपाँच सौ वर्षों के भीतर जो कुछ भी घर्म के संबंध में हो सकता था, हुआ। केवलपाँच सौ वर्षों में। बुद्ध-गौतम बुद्ध, महाबीर, सुकरात, प्लेटो, अरस्तू कनफ्यूसियस, लाओत्से, जरथुष्ट्र, जीसस क्राइस्ट-वे सब-के-सब पाँच सौ वर्षों में हुए-एक खास समय में, जबकि हर चीज़ ऊपर कौ ओर उठ रही थी। सारे बड़े-बड़े धर्म उनपाँच सौ सालों में पैदा हुए।

कुछ रहस्यपूर्ण जड़ में छिपा था-कुछ जो कि बहुत ही रहस्यपूर्ण था। केवलबिहार में, एक छोटी-सी जगह में, एक छोटे से प्रान्त में जबकि बुद्ध उपस्थित वे, उस समय बुद्ध की ऊंचाई के आठ लोग थे। केवल बिहार के

छोटे से क्षेत्र में आठ आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध थे। महावीर वहाँ ही थे, बुद्ध थे, अजीत केशकम्बल थे, बिलथीपुट्टथे-आठ ऐसे लोग थे। और ये तो ज्ञात लोग थे।

किसी ने बुद्ध से पूछा, "तुम्हारे पास दस हजार विक्षु हैं, उनमें से कितनोंको बुद्धत्व उपलब्ध हो गया?" बुद्ध ने कहा, "कितनों को ही, मैं गिनती नहींकर सकता।" प्रश्नकर्ता ने पूछा, "तो वे चुप क्यों हैं? हमें उनकी प्रतीति क्योंनहीं होती? वे प्रसिद्ध क्यों नहीं होते? वे प्रसिद्ध क्यों नहीं हैं?" बुद्ध ने कहा"जब मैं बोल रहा हूँ तो उन्हें बोलने को आवश्यकता नहीं है। और फिर मुझेही जब ज्ञान हुआ तो मैंने सब भाँति प्रयत्न किया कि चुप रहूँ। वे तो ब्रह्मा थेजिन्होंने कि मुझे बोलने को कहा और उसके लिए राजी कर लिया। इसलिए वेमौन हो गये हैं उनके बारे में कोई भी नहींजानेगा। उनके नाम भी नहींजाने जायेंगे।"

एक दिन बुद्ध हाथ में एक फूल लिए भिक्षुओं के बीच आकर बैठ गयेउन्हें बोलना था, लेकिन वे कुछ भी न बोले। वे चुपचाप बैठे रहे, और ऐसा बहुतदेर तक चलता रहा। हर एक आदमी घबड़ा गया और उनके कुछ समझ में नआया। उन्होंने एक दूसरे से कान में फुसफुसा के कहना शुरू कर दिया, "क्या मामला है। आज बुद्ध बोल क्यों नहीं रहे हैं।" बुद्ध चुपचाप बैठे थे, हाथ मेंसिर्फ एक फूल को लिए-एक कमल का फूल, उसकी और चुपचाप देखते हुए, पूरी तरह उसमें डूबे हुए। तब किसी ने पूछा, "वीसा आप आज कुछ नहीं बोलनेवालेहैं?" बुद्ध ने कहा-"में बोल रहा हूँ। सुनो।" और वे फिर चुप हो गये।

तब किसी और ने पूछा-"हम कुछ नहीं समझ पाते कि आप क्या कहरहे हैं? आप सिर्फ फूल की और देख रहे हैं और हम यहॉ आप से कुछ सुननेके लिए आये हैं।" बुद्ध ने कहा, "मैंने, जो कुछ भी कहा जा सकता था, वहसब कह दिया है। अब मैं वह कह रहा हूँ जो कि कहा नहींजा सकतायदि कोई समझ पाता हो, तो हँसे।" अतः केवल एक आदमी खिलखिलाकर हँस पड़ा-महाकाश्यप। उसे पहले कोई भी नहींजानता था, उसका किसी कोभी नहीं था। यही केवल एक घटना थी, ज़िससे पता लगा कि महाकाश्यप उसव्यक्ति का नाम था।

आनन्द बुद्ध का बहुत प्रसिद्ध शिष्य था, सारीपुत्र भी बहुत जाना माना शिष्यथा, गोदगालायन भी परिचित शिष्यों में से था। परन्तु महाकाश्यप बिल्कुल हीअनजाना शिष्य था। न तो सारीपुत्र, न आनन्द, और न ही गोदगालायम हँस सके। केवल एक बहुत ही अनजान व्यक्ति, जिसका किसी को भी पता नहीं था, हँसा। बुद्ध ने उसे अपने पास बुलाया, "महाकाश्यप यहाँ मेरे पास आओ। "और बुद्धने वह फूल महाकाश्यप को दे दिया और कहा, "जो कुछ भी मैं कह सकताथा। वह मैंने बोलकर दूसरों को दे दिया। और जो कुछ भी मैं बोलका नहीं कहसकता था, वह मैं तुम्हें देता हूँ। इस फूल को लो। यही एक मात्र घटना महाकाश्यप के बारे मेंपताहेउसकेनामकेबारे में।

परन्तु जब बोधिधर्म चीन पहुँचा, बुद्ध के सात सौ वर्षों बाद तो उसने कहा, मैं महाकाश्यप का शिष्य हूँ। बुद्ध पहले गुरु थे, महाकाश्यप दूसरा था और उसी पंक्ति में मैं अट्ठाइसवाँ हूँ।" इसलिए जापान में जेन परम्परा कहती है कि महाकाश्यप ही उनका जन्मदाता है-वह आदमी जो कि हँसा था और जिसे बुद्ध ने फूल प्रदानकिया था।

रात्रि में जब सब चले गये और कोई भी न बचा तो आनन्द ने पूछा, "यहमहाकाश्यप कौन है? हमें इसका कोई भी पता नहीं। यह बड़ा ही अज्ञात व विचित्रआदमी है।" बुद्ध ने कहा, "तुम उसके बारे में जान भी कैसे सकते हो। वहवर्षों मौन रहा है। और वह हँस सका क्योंकि वह इतना मौन था। केवल वहीसमझ सका। यह बिना शब्द के सन्देश था। केवल वही एक मात्र समर्थ था।

जब एक बुद्ध मौज़ूद होते हैं, तो तुम्हारे संकल्प के थोड़े ही प्रयत्न से, तुमबहुत अधिक उपलब्धकर सकते हो। जब एक बुद्ध नहींहोते तो तुम धारा केविपरीत लड़ रहे हो। जब एक हिटलर या चंगेज़खान होता है तो बहुत प्रयासकी जरूरत होती है। तब भी सफलत्ता बहुत कठिन होती है।

कहते हैं, बुद्ध ने कहा था, "ज़न्म लेने के लिए सही क्षण को चुनो। वहीक्षण चुनोजबकि एक बुद्ध उपस्थित हों"

आज़ इतना ही

पांचवां प्रवचन

पूर्ण चन्द्रमा का नैवेद्य

सूत्र- भीतर के पूर्ण चन्द्र के अमृत को इकट्ठा करना ही नैवेद्य है।

तुमने ताओ की धारणा यिन तथा यांग के बारे में सुना होगा-जो कि एकही सत्य में दोध्रुवीय विरोधों की धारणा है। अस्तित्व ध्रुवीय विरोधों में जीता है-विधायक व निषेधात्मक विरोधों में, पुरुष वस्त्री में, यिन व यांग में।

सत्य अस्तित्व की एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया है। और जब मैं कहता हूँ द्वन्द्वात्मकप्रक्रिया तो मेरा मतलब है कि यह कोईसाधारण प्रक्रिया नहीं है। यह बडी जटिलप्रक्रिया है। एक सामान्य प्रक्रिया का मतलब होता है कि एक ही तत्त्व काम कररहा हैं, एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का अर्थ है कि दोहैविपरीत ध्रुवों की शक्तियाँ एकही दिशा में कामकर रही हैं। और यद्यपि वे विरोधी दिखलाई पंड़ती है फिरभी वे एक सामंजस्य, एक संगीतपूर्ण लयबद्धता पैदा करती हैं। और वह लयबद्धताही अस्तित्व है।

पुरुष वस्त्रीसे मिलकर मानवता बनती है। पुरुष अकेला मानवता नहीं है, और१ हींस्त्रीअकेली मानवता है। हम जिस संगीत, जिस समन्वय को मानवता कहतेहैं, वह मानवता एक द्वन्द्वात्मक घटना है। पुरुष औरस्त्रीदोनों मिलकर मानवता को जन्म देते हैं। वे दोनों मानवता के निर्माण में सहायता-देते है। और उनका जोउसे निर्मित करने का ढंग है, वह द्वन्द्वात्मक है। वे दो विपरीत ध्रुवों की तरहहोते हैं। और उन दोनों के आंतरिक तनाव के कारण ही ऊर्जा पैदा होती है जोकि गति करती है और आगे विकास के लिए प्रक्रिया बनती है।

ऐसा ही सब तलों पर होता है। यदि हम भौतिक शास्त्री के साथ अणु केभीतर गहरे उसके आतरिक ढाँचे में उतरें, तो हम उन्हीं दो विपरीत ध्रुवों कीशक्तियों को काम करते पायेंगे : धन व ऋण विद्युत। इन दो विपरीत ध्रुवों केकारण ही पदार्थ निर्मित होता है। यदि केवल विधायक विद्युत ही हो, तो संसारइसी क्षण विलीन हो जायेगा। यदि खाली निषेधात्मक विद्युत ही हो, तो भी कुछक्यों होगा। परन्तु धन व ऋण विद्युत मिलकर एक आंतरिक तनाव पैदा करतीहैं और उस आंतरिक तनाव के कारण ही पदार्थ अस्तित्व में आता है।

यही बात आदमी के भीतरी स्वरूप के बारे में भी है। यह सूत्र उसी सेसंबंधित है। हमने पहले बात की कि किस भांति जागरूकता आंतरिक सूर्य कोनिर्मित करती है। लेकिन यह सूत्र आंतरिक चन्द्र को किस भांति निर्मित कियाजाये, इस पर बात करता है। सूर्य भीतरी विधायकता के लिए प्रतीक है, औरचन्द्र भीतरी नकारात्मकता के लिए प्रतीक है। सूर्य भीतर का पुरुष है, और चन्द्रभीतरीस्त्रीहै। ये शब्द प्रतीकात्मक है और भारतीय योग के लिए विशेषतः येबड़े अर्थपूर्ण है। सूर्य से अर्थ बाहरी सूर्य से नहीं है और चन्द्र से अर्थ भी बाहरीचन्द्रमा से नहीं है। ये दो शब्द "सूर्यं" व "चन्द्र" भीतर के जगत के लिए उपयोगकिये गये हैं।

भारतीय योग आदमी को दो हिस्सों में बाँटता है : सूर्य-भाग व चन्द्र-भाग। यहाँ तक कि एक श्वास सूर्य की श्वास कहलाती है और दूसरी श्वास चन्द्र कौश्वास। और सचमुच, यह एक बडी गहरी बात है जो कि खोजी गई है। यदितुम चन्द्र-श्वास को रोक लो और केवल सूर्य-श्वास जाही लो, तो तुम्हारा शरीरगर्म हो जाएगा। और इतनी तेज गर्मी सिर्फ एक ही श्वासके लेने से पैदा कीजा सकती है कि इसे शरीर की भाषा में समझना कठिन हो

जाता है। तिब्बतीलोगों मैँ उष्ण-योग भी होता है जिसमें कि श्वास को केवल सूर्य कोश्वास सेही लेना है और चन्द्र श्वास की काम में ही नहीं लेना।

साधारणतः श्वास लगातार बदलती रहती है, किन्तु इस बात की और पश्चिमीचिकित्सा-शास्त्र का कोई ध्यान नहीं गया है। श्वास की प्रक्रिया कोई सामान्यप्रक्रिया नहीं है। यह भी द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया है। तुम अपने नाक के नथुनों कोहरघंटे बदल रहे हो। करीब-करीब चालीस से साठ मिनट में तुम दूसरे ही नथुनेसें श्वास लेना शुरू कर देते हो और फिर यह बदल जाता है। जब तुम्हें शरीरमें अधिक गर्मी की जरूरत होती है, उदाहराणार्थ-यदि अचानक तुम क्रोध में आजाओ तो तुम्हारी सूर्य की श्वास चलने लगती है।

योग कहता है कि जब चुप क्रोधित होते हो, यदि तुम अपनी चन्द्र-श्यासका उपयोग करो, तो तुम क्रोधित कदापि नहीं हो सकते, क्योंकि चन्द्र-श्वास भीतरगहरी ठंडक उत्पन्न करती है। सारा रारीर ही सूर्य और चन्द्र में बँटा हुआ है, और हमारा मन भी सूर्य और चन्द्र में विभाजित है।

इसलिए मनुष्य की ओर एक की भाँति-मत देखो, क्योंकि कोई भी चीज़एककी तरह की नहीं हो सकती। हर चीज द्वैत की तरह होती है। तुम भी दोमें विभाजित हो। तुम्हारा भी विधायक हिस्सा है और निषेधात्मक हिस्सा है। विधायकहिस्से को भारतीय प्रतीक में सूर्य कहते हैं और निषेधात्मक हिस्से कोचन्द्रनिषेधात्मक हिस्सा ठंडा, शांत, व स्थिर है। विधायक गर्म, ऊर्जा से भरा हुआव सक्रिय है। तुम्हारे भीतर सूर्‌य सक्रिय हिस्सा है और चन्द्र निष्किय। और यदिये सक्रिय व निष्क्रिय-इन दोनों में गहन संतुलन हो जायें, तो तुम अचानक बुद्धत्वको उपलब्ध हो जाते हो। यदि एक अधिक प्रभावशाली है, तो असन्तुलन होजाताहै। और जिस क्षण भी वे दोनों समान शक्ति के हो जाते हैं तो तुम्हारा अंतरिकसन्तुलन पुनः प्राप्त होजाता है और तुम एक दूसरे ही जगत में प्रवेश कर जातेहो, वह है-अद्वैत का जगत्। इस अद्वैत के जगत का अनुभव तभी हो सकताहै जबकि ये द्वैत तुम्हारे भीतर सन्तुलित हो जाते हैं। तब तुम दोनों का अतिक्रमणकर जाते हो

इस जगत में हम द्वैत की तरह जीते हैं। इस जगत के पार हम अद्वैत कीतरह जीते हैं-एक की भाँति। अपने को एक त्रिभुज की भाँति सोचोः दो कोणसंसार में होते हैं और तीसरा कोण संसार के पार होता है। दो कोण इस संसाररो संबंधित है और एक कोण उस जगत से संबंधित है-ब्रह्म का जगत्। किन्तुयदि ये दोनों असन्तुलन में हैं, तो तुम इन दोनों के पार नहीं जा सकते। तुम इनदोनों के पार तभी जा सकते हो जबकि इन दोनों में सन्तुलन सध जाये। यह सन्तुलनही निर्वाण है, यह सन्तुलन ही मोक्ष है। यह सन्तुलन ही सेन्टरिंग है, केन्द्रीकरणहै। सजगता इस द्वैत को सन्तुलित करने का काम करती है। और जिस क्षण भीयह द्वैत सन्तुलित होजाता है, तुम्हारा दोबारा फिर जन्म नहीं होसकता। तुमइस संसार से विलीन हो जाते हो।

तुम पुनः पुनः पैदा होते हो यदि असन्तुलन मौजूद है। यदि सन्तुलन समग्रनो जाये, यदि यह पूरा हो जाए तो फिर जन्म नहीं हो सकता। तुम इस संसारसे खो जाते हो। फिर शरीर जीवित नहीं रह सकता। तब तुम पुनः शरीर में प्रवेशनहीं कर सकते। अतः सर्वप्रथम हम यह समझने की कोशिश करें कि ये आंतरिकसूर्य और चन्द्र क्या हैं और कैसे इन्हें सन्तुलित किया जाता हैं।

यह सूत्र कहता है- "भीतर के पूर्ण चन्द्र का अमृत-रस एकत्रित करनानी नैवेद्य है।"

तुम्हें तुम्हारे भीतर पूर्ण चन्द्र की आवश्यकता हैं ताकि पत्मात्मा को भोगचढा सको। वही केवल परमात्मा के लिए भोजन हो सकता है-भीतर का पूर्ण चन्द्र।

जागरूकता दो तरह से काम करती है। वह सूर्य भी निर्मित करती है औरचन्द्र भी। हमने बात की है कि किस भाँति वह भीतर सूर्य निर्मित करती हैतब तुम भीतर जो भी चल रहा है उसके प्रति सजग ही जाते हो,

गहरी-से-गहरी अचेतन क्रिया के प्रति भी जब तुम सजग हो जाते हो, तो तुम बुद्धत्व कोउपलब्ध हो जाते हो। तुम्हारे शरीर के सारे कोष जाग जाते हैं, तुम प्रकाश हीहो जाते हो। तुम्हारी चेतना तुम्हारे शरीर के प्रत्येक छिद्र तक पहुँच जाती है। जिसतरह सूर्य की किरणे पृथ्वी पर पहुँचती हैं, तुम्हारी आंतरिक सजगता, यदि एकबार जाग जाये, तो वह भी शरीर के रोयें-रोयें में, हर एक रेशे-रेशे में काम करनेलगती है। तुम्हारा सारा शरीर ही आलोक से भर जाता हें। परन्तु यह सजगताका एक हिस्सा है, लेकिन यह जागरूकता की केवल एक ही प्रक्रिया है। तुम्हारेकेन्द्र की किरणेंतुम्हारी परिधि पर भी जाती हैं-घेरे पर। जितनी अधिक किरणेंतुम्हारी परिधि पर जाती हैं, उतना ही तुम्हारा केन्द्र शीतल हो जाता है।

मुझे पता नहीं है कि तुमने सूर्य के एक विशेष सिद्धान्त के बारे में सुनाहै या नहीं-बाह्य सूर्य के। मैं नहीं जानता कि वह सही है या गलत, परन्तु वहआंतरिक सत्य को जानने में सहयोगी है। कहते हैं कि सूर्य अपने गहरे-से-गहरेकेन्द्र पर सारे सौर मण्डल में सर्वाधिक ठंडा है। वह जरा भी गर्म नहीं है। गर्मीकेवल परिधि पर है, घेरे पर है, न कि सूर्य के आंतरिक केन्द्र पर। सूर्य के चारोंओर हीलियम गैस होने के कारण, उष्णता पैदा होती है। हीलियम के कारण वअणुओं के श्रृंखलाबद्ध विस्फोटों के कारण गर्मी पैदा होती है। और तब वह ताप सौर मण्डल को पहुँचता है।

सूर्य का अपना शरीर है और वह उसका केन्द्र है। सौर-परिवार उसका शरीरहै और यह पृथ्वी उस शरीर का हिस्सा है एक कोष की भाँति। ताप सौर-परिवारको जाता है, वह फैलता है। परन्तु सूर्य अपने-आपमें एक ठंडी वस्तु है-मूरीतरह ठंडी। और उसका गहरे-से-गहरा हिस्सा अस्तित्व में सर्वाधिक ठंडा स्थानहै। ऐसा होना ही चाहिए क्योंकि अस्तित्व विपरीत ध्रुवों में हो जी सकता हैयदि सूर्य सर्वाधिक गर्म है, तो उसके भीतर कुछ-न-कुछ ऐसा होना चाहिए जोकि उस ताप कोसन्तुलित करता हो। एक पहिये कोलें जो कि सड़क पर चलरहा है, किन्तु मध्य में वह कील, जिस पर वह घूम रहा है, ठहरी हुई है। गतिके केन्द्र में कहीं भीतर जरूर अगति छिपी होनी चाहिए अन्यथा गति संभव नहीं है।

इस अभिव्यक्त जगत में प्रत्येक चीज विपरीत ध्रुवों में जीती है। तुम जीवितहो क्योंकि तुम्हारे भीतर मृत्यु मौजूद है। यदि तुम्हारे भीतर मृत्यु न हो, तो तुमजीवित भी नहीं रह सकते। इसलिए इस भरोसे मत रहना कि मृत्यु एकदम अचानकआ जाती है। वह एक आंतरिक विकास है। वह कोई बाहर से आने वाली चीजनहीं है। वह तुम्हारे ही भीतर घटती है। वह कोई ऐसी नहीं है जो कि तुम्हेंमिलती है, जिसका कि तुम साक्षात्कार करते हो-नहीं। वह कुछ ऐसी है जिसकीतरफ तुम रोज-रोज बढ़ते जा रहे हो। एक दिन यह विकास हो जाता हैऔर तुम मर जाते हो। यहएक आंतरिक घटना है। तुम भीतर मृत्यु-केन्द्र केसहित जीवित हो। तुम मृत्यु-केन्द्र के बिना जीवित भी नहीं रह सकते।

अपने विपरीत ध्रुव के बिना कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। जीवन और मृत्यु-विधायक व निषेधात्मक सत्य है। तर्कपूर्ण भी लगता है, द्वन्द्वात्मक भी प्रतीत होताहै, लेकिन अभी तक यह सिद्ध नहीं हुआ कि सूर्य अपने केन्द्र बिन्दु पर बिल्कुलठंडा है, जो कि अपनी परिधि के ताप से बिल्कुल विपरीत ध्रुव है। यह सचभी हो सकता है, और नहीं भी हो सकता है। परन्तु हमारे भीतर के जगत मेंपूरी तरह सत्य है। जब तुम सजग होते हो, तो गर्मी तुम्हारी परिधि की और यात्राकरने लगती है। तुम्हारे शरीर का प्रत्येक कोष गर्म हो जायेगा, सजगता के प्रवेशकरने के कारण। दूसरा विपरीत हिस्सा तुम्हारे अस्तित्व का केन्द्र ठंडा, और ठंडा, ओर अधिक ठंडा होता जायेगा। वहीं चन्द्र का कार्य करता है। सूर्य है गर्मी काफैलना, प्रकाश का फैलना।

और तुम्हें यह भी पता होना चाहिए कि आलोक के दो गुण हैं-प्रकाशव ताप। ताप केवल सघन हो गया-प्रकाश है, प्रकाश कुछ और नहीं, केवलविघटित उष्णता है। इसलिए जब प्रकाश तुम्हारे शरीर पर फैलता है, तोशरीरका प्रत्येक कोष गर्म हो जाता है, प्रकाशित व सजग हो जाता है। नींद एक ठंडी चीज है, रात्रि एक ठंडी चीज है। इसलिए रात्रि में हम सो जाते हैं, वह ठंडासमय है। और सुबह, सूर्य के निकलने के साथ, हर चीज गर्म और जिन्दा होजाती है। तब सोना कठिन होता है और जागना सरल होता है।

जब तुम्हारी परिधि ठंडी होती है. जब शरीर का प्रत्येक कोष ठंडा होताहै, निद्रा में होता है तो तुम्हारा केन्द्र-बिन्दु गर्म होता है। केन्द्र पर उस गर्मबिन्दु के कारण ही तुम कामुकता अनुभव करते हो, तुम क्रोधित होते हों, लोभमें पड़ते हो, और सब कुछ करते हो। तुम्हारा केन्द्र एक बुखार हो जाता है औरयह गर्मी ही यात्रा करने लगती है। वस्तुतः जब गर्मी तुम्हारे केन्द्र से छूटती हैतो वह फैलती है। और वह जितनी अधिक फैलती है उतनी ही कम उतप्त औरअधिक प्रकाशमय होती है।

पृथ्वी पर सूर्यकी किरणें जीवन देनेवाली हैं। उन्होंने बडी यात्रा की हैयदि तुम उनके निकट, और निकट जाओ, तो वे तुम्हारी मृत्यु बन जायेंगी क्योंकितब वे खाली गर्म नहींहोंगी, बल्कि वे शुद्ध आग होंगी।

शरीर का ढाँचा जिस तरह का है, वह पूरा ठंडा है। तुम्हें गर्मी का अनुभवसिर्फ क्रोध में, काम में, वासना में, इच्छा में होता है। वह प्रकाश नहीं-है, बल्किमात्र एक बुखार कौ घटना है। इसी कारण यौन की अनुभूति-एक रिलीज, एकमुक्त होने जैसो होती है, क्योंकि उसमें तुम गर्मी की एक खास मात्रा खोते हो और तुम भार-हीन हो जाते हो। तुम ज्वर की एक विशेष मात्रा छोड़ते हो औरतुम हलके हो जाते हो।

इसी कारण, सेना में सिपाहियों को यौन की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। क्योंकियदि तुमने सिपाहियों को यौन की स्वतन्त्रता दी तो वे लड़ नहीं सकते। तब भीतरी ज्वर निकल जाता है। यदि तुमने उन्हें काम की स्वतन्त्रता नहीं दो, तो उनकाभीतरी ज्वर इकट्ठा होता रहता है। और इस प्रकार इकट्ठा होगया ज्वर अपनेआप हिंसात्मक होने लगता है।

अतः एक बहुत गहरी घटना, इतिहास की एक बहुत बडी पहेली इससे सुलझसकती है। जब कभी कोई-समाज संपन्न हो जाता है, जब उसके खाने-पीने कोसमस्या हल हो जाती है तो वह काम कोदृष्टि से मुक्त होने लगताहै। केवलदरिद्र समाज ही यौन की दृष्टि से दमित हो सकते हैं। जब भी कोई समाज समृद्धव सम्पन्न हो जाता है, तो तुम यौन का दमन नहीं कर सकते, क्योंकि भोजनकी समस्या दूर हो गई। भोजन जुटाने में जोऊर्जा खर्च होनी थी अब उसकावया करें? इसलिए एक सम्पन्न समाज यौन-मुक्त हो जाता है।

एक सम्पन्न समाज का अर्थ है जो टैक्नोलॉजी में बहुत आगे बढ़ गया होऔर जब भी कोई सभ्यता सम्पन्नता के बिन्दु पर आ जाती है, तो काम-स्वंतन्त्रताहो ही जायेगी। और तब जो समाज कम उन्नत है, वे उस उच्चतर सभ्य समाजपर विजय पा सकते हैं। इसीलिए इतिहास में ऐसा हमेशा होता रहा हैः एक बडीसभ्यता सदैव जंगली, बर्बर, असभ्य सभ्यताओं से पराजित हुई है।

भारत सदैव अपनी सम्पन्नता के कारण हारता रहा। टारटर, बर्बर, हूण, मुगल, तुर्क-वे सब असभ्य समाज थे-गरीब, दरिद्रता से पीडित, यौन-दमित। उनमें बहुतहिंसा भरी थी। तुम इसे आज के प्रसंग में भी देख सकते हो। वियतनाम में, अमेरिकाकभी नहीं जीत सकता। उनके युवक यौन मुक्त हो गये हैं, वे अब कम हिंसकहैं। इसलिए वे वियतनाम में नहीं जीत सकते। किसी भी दरिद्र समाज को कोईसम्पन्न समाज नहीं जीत सकता। वे लम्बे समय तक लड़ सकते हैं, परन्तु जीतनहीं सकते। वे सारे देश को भी चाहे तो मौत के घाट उतार दें, लेकिन वे जीतनहीं सकते, क्योंकि वह लड़ने का जोश ही उनमें नहीं है।

अमेरिका आज सारे इतिहास में सर्वाधिक यौन सम्बन्धों में मुक्त देश हैअमेरिका लड़ नहीं सकता, लड़ना दमित यौन का हिस्सा है। भीतर का बुखारइतनी बड़ी मात्रा मेंइकट्ठा हो जाना चाहिए कितुम हिंसक होने लगो। सेक्सकोदबाओ और तुम हिंसक हो जाओगे। इसीलिए तथाकथित साधु-संन्यासी अपनेव्यवहार में बहुत हिंसक हो जाते हैं। वे क्रोधी हैं, हिंसक हैं क्योंकि उन्होंने अपनेयौन को दबाया है। उस बुखार को किसी-न-किसी भाँति बाहर फेंकनाहै।

यौन में तुम ऊर्जा की एक विशेष मात्रा फेंक रहे हो। वे कहते हैं कि एकबार के यौन-संबंध में तुम एक सो बीस कैलोरीज ताप छोड़ते हो-एक सौ बीसकैलोरीज। यह उतना ही है जितना कि तुम एक मील की दौड़ लगाने पर छोड़ो। तब भी तुम इतनी ही ताप की कैलोरीज छोड़ोगे-एक सौ बीस। इसीलिए इसपर काफी बात चलती है कि क्या यौन हृदय-रोग में सहायक हो सकता है? वह सहायक हो सकता है? उसमें ऊर्जा रिलीज होती है। जो लोग खूब खाते-पीते हैं, उनके लिए यह हृदय रोग को होने से रोक सकती है। यह ऊर्जा को-स्खलित करती है, किन्तु यह कोई समाधान नहीं है। यह सिर्फ एक अस्थायी प्रबन्धहै। यह सिर्फ तुम्हारी संरचना में एक छिद्र करना है जिससे कि ऊर्जा बाहरनिकल जाये।

जब भी तुम क्रोधित होते हो, तो तुम्हारा सारा शरीर गर्म हो जाता है। वहबुखार से पीडित हो जाता है। तुम्हारा केन्द्र क्रोध छोड़ता है, वह परिधि पर पहुंचजाता हैं। सामान्यतया वह ठंडा होती है। परिधि साधारणतः ठंडी होती है, औरकेन्द्र गर्म होजाता है। इसका ठीक उलटा हो जायेगा, जब तुम्हारे भीतर जागरूकताघटित होगी। जब तुम ध्यान करते हो और भीतर गहरे डूब जातेहो, जब तुमप्रत्येक क्रिया के प्रति सजग हो जाते हो, तो हर चीज उलटी हो जाती है, बिल्कुलविपरीत। तुम्हारी परिधि-क्रोध में नहीं जाएगी, यौन में नहीं जायेगी, उसकी तन्द्रापूर्णठंडक। वह उष्णा हो जायेगी-जीवन्त तथा सजग। और चूँकि यह ऊर्जा परिधिपर लगातार, चौबीस घंटे पहुँचती रहेगी, तुम्हें किसी क्रोध अथवा यौन कीआवश्यकता नहीं रहेगी।

एक बुद्ध कोक्रोध करने की आवश्यकता नहीं है। यह उनके लिए बिल्कुलव्यर्थ है, क्योंकि सारी व्यवस्था ही बदल गई है। अब वे अपने ताप का प्रकाशको तरह उपयोग कर रहे हैं, और तुम अपने प्रकाश को ताप को तरह उपयोगकर रहे हो। वही ईंधन तुम्हारा घर जलाने के काम आ सकता है और वही ईंधनउसे प्रकाशित करने के ईंधन एक ही है, किन्तु दिशा बदल जाती है। भीतर काईंधन, अन्तर की ऊर्जाही आग हो जाती है, आत्मघाती बन जाती है। यह तुम्हेंजला कर खाक कर देती है और तुम सिर्फ राख रह जाते हो। अन्त में जब मृत्युतुम्हारे पास आती है तो तुम सिर्फ राख होते हो। सब कुछ जलकर राख होगया, क्योंकिं तुमने अपनी ऊर्जा कोप्रकाश के लिए काम में नहीं लिया, बल्कि उसकाउपयोग एक आग की तरह किया।

वह भस्म करने वाली आग हो जाती है यदि उसे केन्द्र में एकत्रित कर लियाजाये और जब कभी वह अतिरेक से बहने लगे, तो उसे अस्थायी रूप से छोड़दिया जाये। किसी भी अचानक धक्के से वह परिधि पर आ जाती है, बाहर छोड़दी जाती है। यह एक बड़ी अराजक स्थिति है। तुम उसे भीतर इकट्ठी करते चलेजाते हो। फिर एक दिन यह बहने लगती है और तुम्हें उसे बाहर फेंकना पड़ता है।

हम अपने कृत्यों को रेशनलाइज करते रहते हैं। जब तुम क्रोध में होते हो, तो तुम कहते हो कि किसी और ने तुम्हें क्रोधित कर दिया। नहीं, ऐसी बात नहींहै, तुम तैयार ही थे, तुम भीतर अतिरेक में थे। तुम यह नहीं जानते क्योंकि तुमभीतर के प्रति सजग नहीं थे। तुम एक विशिष्ट मात्रा में ऊर्जा लिए भीतर वहरहे थे, जो कि बाहर छोड़ी जाने की प्रतीक्षा कर रहीथी, जब कोई आदमी तुम्हेंगाली देता है, अथवा अपमान करता है और तुम क्रोधित हो जाते हो, तो तुमसोचते हो कि उस आदमी ने तुम्हें क्रोधित कर दिया। नहीं, इस आदमी ने तोसिर्फ

स्थिति पैदा की है, अवसर दिया है ताकि अतिरेक से बहती ऊर्जा बाहरनिकाली जा सके। एक तरह से वह तुम्हारा दोस्त है, सहायक है। यदि वहहो, तो तुम बहुत बुरी स्थिति में फंस जाओगे। यदि कोई भी तुम्हें तुम्हारी ऊर्जाको बाहर फेंकने के लिए अवसर नहीं दे, तो तुम उसे प्रक्षेपित करोगे, तुम कुछभी कल्पना करोगे और तुम किसी भी चीज पर उसे निकालोगे।

लोग अपने जूतों पर क्रोधितहो जाते हैं, वे उन्हें उठाकर फेंक देते हैं। वेदरवाजे पर क्रोध करते हैं, वे उसके प्रति हिंसक हो जाते हैं। वे किसी भी चीजसे क्रोधित हो सकते-हैं। यदि कुछ भी अवसर नहीं मिले, तो वे अपने आप परक्रोध करते हैं। वे अपनेको ही नुकसान पहुँचाने लगते हैं, अथवा वे कोई-न-कोई उसके पूरक खोज निकालते हैं।

हमने बहुत-सी चीजें खोज ली हैं। कोई आदमी सिगरेट पी रहा है। हमसोचते हैं कि यह साधारण बात है। नहीं, ऐसा नहीं है। अबमनोवैज्ञानिककहतेहैं कि यह एक गहरी हिंसा है। तुम धुआँ भीतर-बाहर करते हो, इससे भूख, हिंसाव यौन को रिलीज़ करने में आसानी होती है। जो भी लोग हिंसक होते, हैं, ज्यादा खाते हैं। ज्यादा भोजन को चबाकर वे अपनी हिंसा निकाल लेते हैं।

तुमने कभी ध्यान नहीं दिया होगा, परन्तु जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तोतुम अधिक नहीं खा सकते, जब तुम प्रसन्न हो तो तुम ज्यादा नहीं खा सकते, जब तुम आनन्दपूर्ण हो, तो भी तुम बहुत अधिक नहीं खा सकते। यह बिल्कुलउलटी बात लगती है हमारे सोचने के हिसाब से। हम सोचते हैं कि जब आदमीप्रसन्न होता है तो उसे ज्यादा खाना चाहिए। नहीं, एक प्रसन्न आदमी अधिकनहीं खाएगा। वह ज्यादा नहीं खा सकता, क्योंकि खाना हिंसा का ही हिस्सा हैएक प्रसन्नआदमी हिंसक नहीं होता। इसलिए जब तुम-प्रेम से भरे हो, तो तुमबहुत अधिक नहीं खा सकते।

दो व्यक्ति जब प्रेम में हों, अविवाहित हो, वे अधिक भोजन नहीं करेंगेपरन्तु जब वे विवाहित हो जायेंगे तो अधिक खाने लगेंगे क्योंकि प्रेम विलीन होगया। अब यह हिंसा है। और यह बहुत-सी गहरी चीजों से संबंधित है। पशुओंमें हिंसा दाँतों के द्वारा प्रकट होती है, और हम पशुओं से संबंधित हैं। और जबएक पशु हिंसक होता है तो उसकी ऊर्जा दाँतों में, नाखूनों में आ जाती है। एकपशुकेलिएयेहिंसकहोनेकेसाधनहैं।

लेकिन यही हमारे साथ भी होता है। जब तुम हिंसक होते हो, तो तुम्हारेदाँत, तुम्हारी उँगलियाँ, तुम्हारे नाखून गर्मी से भर जाते हैं, ऊर्जा से भर जाते हैं। अब तुम्हें उसे छोड़ना है। तुम खा सकते हो, तुम मसूड़ों का उपयोग कर सकतेहो, तुम धूम्रपान कर सकते हो, तुम पान चबा सकते हो, क्योंकि तुम्हें किसी चीजकी जरूरत है जिसे कि तुम चबा सको। इसलिए ऐसे लोग हैं जो कि दिन भरपान चबाते रहते हैं। इस तरह उनकी हिंसा मुक्त होती रहतीं है।

यहाँ तक कि लगातार बोलते रहने से भी हिंसा निकलती रहती है। स्त्रियोंपुरुषों से ज्यादा बात करतींहैं क्योंकि पुरुष दूसरे तरीकों से भी हिंसा निकालसकते हैं और स्त्रियाँ नहीं निकाल सकतीं। यही एकमात्र कारण है, वे अधिकबोलती हैं, वे लगातार बातें करती रहती हैं, वे पागल की तरह बातें करती हीचली जाती हैं, क्योंकि आदमी के पास दूसरी भी संभावनाएँ है जहाँ कि वह अपनीहिंसा निकाल सकता है-दफ्तर में, कार के ऊपर आदि। क्या तुमने कभी गुस्सेमें किसी आदमी कोकार चलाते हुए देखा हैं? वह एक्सीलेटर के द्वारा अपनाक्रोध विसर्जित कर रहा है। कार की गति बढ़ जाएगी। वह अपना क्रोध निकालरहा है, कार तो सिर्फ साधन है। पचास प्रतिशत दुर्घटनाएँ कार के कारण नहींहोतीं, बल्कि ड्राइवर की वजह से होती हैं-न कि ट्रैफिक की वजह से बल्किमानसिक तनाव के कारण।

परन्तु स्त्रियाँ अपने तनाव को इतनी तरह से विसर्जित नहीं कर सकतीं। उनकेपास एक ही रास्ता है-बातचीत करते जाना। दाँतों व होंठों से कुछ करतेचले जाने से बहुत कुछविसर्जित होता रहता है। एकस्त्रीजो कि क्रोध में हैवह ज्यादा प्लेटें तोड़ेगी-अनजाने ही। उसे भी ताजुब होगा कि आज उसके हाथसे चीजें ज्यादा क्यों टूट रही हैं। यह अचतेन मन है। ऊर्जा हाथों में आ गई है। ऊर्जा अब कुछ तोड़ना चाहती, है।

इसलिए अच्छा है कि घर में कुछ चीजें टूटने वाली हों, उससे मदद मिलतीहैं। तब इसके पहले कि पति घर आये, पत्नी खाली हो चुकती है। यदि तुम सभीकुछ न टूटने वाला बना दो तो फिर परिवार, टूटते हैं। टूटने वाली चीजें परिवारोंको चलते रहने में मदद करती हैं। अब यह तथ्य की तरह साबित हो चुका है।

यदि तुम्हारे केन्द्र पर ऊर्जा इकट्ठी हो गई हैं जो कि ज्वर पीड़ित है, औरपरिधि पर नहीं फेंकी गई है और जिसका कि उपयोग प्रकाश की भाँति नहीं कियागया है, तो ऐसा होना अनिवार्य है। हर रोज ऊर्जा इकट्ठी करोगे और फिर तुम्हेंउसे फेंकना होगा। और यह मूढ़तापूर्ण है। सारी जिन्दगी हम यही कर रहे हैं-ऊर्जाइकट्ठी कर रहे हैं- और फेंक रहे हैं-फिर इकट्ठी कर रहे हैं-और फिर फेंकरहे हैं। चौबीस घंटे आप कर क्या रहे हैं? सिर्फ ऊर्जा इकट्ठी कर रहे हैं ताकिउसे फेंक सकें। अब ऊर्जा होती है तो यह समस्या होती है कि अब उसे कैसेफेंके? इसलिए हम उसे काम में, क्रोध में, लोभ में, निकालते रहते हैं। और जबऊर्जा बाहर फेंक दी जाती है, तो यही समस्या होती- हैं कि उसे इकट्ठी कैसे करें।

यह कैसी जिन्दगी है। एक दुष्ट-चक्र सजगता के साथ सारा मेकेनिज्म, सारी यांत्रिकता ही बदल जाती है। जागरूकता के साथ ही प्रतिक्षण तुम्हारा भीतरीकेन्द्र ऊर्जा को शरीर के हर कोष को भेज रहा है। और तुम्हारा शरीर कोई छोटीचीज नहीं है, वह एक छोटा-सा जगत है-जैसा ऊपर, वैसा नीचे। प्रत्येक शरीरएक छोटा-सा जगत है। ओर जब मैं कहता हूँ छोटा तो मुझे अपराध का भावमहसूस होता है क्योंकि वस्तुतः वह छोटा नहीं है। वहउतना ही बड़ाहै जितनाकि यह जगत। लेकिन हमारी भाषा के कारण सारी दिक्कत है। जगत बहुत बड़ालगता है, और तुम्हाराशरीर छोटा मालूम होता है।

दोनों में भेद वया है? कहते हैं कियदि पृथ्वी से सारी खाली जगह हटाईजा सके, यदि हम उसे सिकोड़ सकें और रिक्त स्थान को फेंक सकें तो हमारीपृथ्वी एक छोटी-सी गेंद की भाँति होगी। यदि हम हिमालय में से सारी खालीजगह को निकाल दें, तो उसे एक माचिस की पेटी में बन्द किया जा सकताहै। पदार्थ ज्यादा नहीं है, अधिक सामान नहीं है, पदार्थबहुत ही कम है, केवलउसमें रिक्तता ही बहुत अधिक है।

अतः कैसे जाना जाये कि एक वस्तु बड़ी है अथवा छोटी? एक बहुत छोटी-सी चीज को बहुत बड़ी करके फुलाया जा सकता है, यदि तुम उसमें रिक्तताभर दो। यदि तुम्हारे शरीर में उतना रिक्त स्थान भर दिया जाये जितना कि इसजगत में है तो तुम भी पृथ्वी के समान हो जाओगे। इसलिए सारेभेद केवल स्पेसके हैंरिक्त स्थान के। वस्तुतः उनमें ओर कोई अन्तर नहीं है।

लेकिन जब मैं कहता हूँ एक छोटा-सा जग तो मेरा केवल इतना ही मतलबहै कि जो कुछ भी जगत में मौजूद है वह सब-का-सब तुम्हारे भीतर भी मौजूदहै। चाहे कुछ भी मात्रा हो, बिल्कुल उसी तरह वह तुम्हारे भीतर भी है। इसलिए जब तुम्हारा सौरमण्डल, तुम्हारा सूर्य, ऊर्जा को छोड़ता है, तो वह उसे दो तरह से छोड़ता है। या तो तुम मूर्च्छित हो, तब वह उसे यौन में, क्रोध में, लोभ आदिदूसरी बीमारियों मेँ छोड़ता है। यदि तुम जागरूक हो, तो फिर इस जागरूकताके द्वारा वह ताप प्रकाश में रूपान्तरित हो जाता है। तब वह प्रकाश कीभाँतिनिष्कासित होता है। तब तुम सतत प्रकाश की वर्षा के नीचे बैठे हुए हो। तुम्हाराप्रत्येक रेशा, प्रत्येक

कोष उसमें नहा गया है। लगातार आलोक की वर्षा हो रहीहै। जब यह ही जाता है, तो तुम्हारा भीतरी केन्द्र ठंडा और ठंडा होने लगताहै और अन्ततः वह सर्वाधिक ठंडा स्थान हो जाता है।

हिन्दुओं में प्रचलित कथा हैं कि शंकर (शिव) कैलाश पर्वत पर रहते हैंकैलाश तुम्हारे भीतर सर्वाधिक शीतल धार्मिक स्थान है-सबसे अधिक शीतल शिखर सर्वाधिकऊँची चोटी-और वह सदैव बर्फ से ढकी रहती है। यह कहने का एक प्रतीकात्मकढंग है कि तुम्हारे भीतर भी वह सर्वाधिक शीतल स्थान मौजूद है-एककैलाश-तुम्हारे भीतर भी। किन्तु तुम उसे तभी जान सकते हो जबकि ताप प्रकाशमें रूपान्तरित हो जाये उसके पहले कभी नहीं। और जितने अधिक तुम जागरूकहो जाते हो, उतना ही अधिक ताप प्रकाश में बदल जाता है और तुम भीतर एकचन्द्रमा कोमहसूस करने लगते हो। तुम्हें एक शीतल शान्त सरोवर की प्रतीतिहोती है।

यह सूत्र कहता है-"भीतर के पूर्ण चन्द्र के अमृत-रस को इकट्ठाकरना------।"प्रारंभ में सचमुच तुम उसे अनुभव करोगे, लेकिन खो भी दोगेयह ऐसा ही है जैसे कि पहले दिन का चन्द्रमा होता है। तब दूसरे दिन का चन्द्रमाहोता है और तीसरे दिन का चन्द्रमा होता है। तुम उसे अनुभव करते हो औरवह फिर चला जाता है, तब फिर वह उगता है, और तब पूर्ण चन्द्रमा की रात्रिआती है। इसी भाँति भीतर का शीतल स्थान भी बढ़ता है। जैसे-जैसे तुम्हारी सजगताबढ़ती है, तुम्हारा ताप प्रकाश में रूपान्तरित हो जाता है। जैसे-जैसे तुम्हारी परिधिआलोकित हो जाती है, जैसे-जैसे तुम्हारा प्रत्येक कोष प्रकाश से भर जाता हैऔर सजग व जागरूक हो जाता है, यह भीतर का चन्द्रमा बढ़ता है। कभी-कमीतुम्हें अनुभव में आता है और कभी यह फिर खोजाता है। कभी-कभी भीतरठंडी हवा के झोंके आने लगते हैं और तुम जानते ही कि भीतर कुछ हो गयाहै। तुम्हें अनुभव भी होता है, किन्तु तुम उसे फिर खो देते हो। फिर यह बढ़ताही चला जाता है।

अन्ततः जब कोई मूर्च्छा नहीं बचती और तुम्हारी समग्र ऊर्जा प्रकाश में बदलगई होती है, तो तुम उस पूर्ण चन्द्र को जान पाते हो।

बुद्ध ने नकारात्मक ढंग से उस पूर्ण चन्द्र की बात की है क्योंकि वह नकारात्मकध्रुव है। इसलिए बुद्ध कहते हैं कि जब यह भीतरी मौन उपलब्ध होता तोयही निर्वाण है। वह शब्द इस सूत्र के प्रसंग में बहुत अर्थपूर्ण है। निर्वाण काअर्थ होता है-"लौ का बुझ जाना"-एक दीया जल रहा हैं और फिर उराकौलौ बुझ जाती है।

जब तुम्हारा ताप समग्ररूपेन। प्रकाश में पस्णित हो जाता है, तो फिर कोईलौ नहीं होती। इसीलिए चन्द्रमा को प्रतीक को तरह चुना गया है। चन्द्रमा मेंप्रकाश तो है किन्तु कोई लौ नहीं है। इसीलिए उसका प्रकाश ठंडा है। वह बिनाकिसी लौ के है, बिना किसी आग के है। बिना किसी लौ के प्रकाश है। लौविलीन हो गई है।

जब कोई पहली जार सूरज से परिचित होता है, तोप्र्काश लौ की भाँतिहोता है-जलती हुई आग की तरह। अतः यदि तुम जीवन का, भीतर जीवन काअ्न्वेषण करो, बुद्ध का अथवा महावीर का, अथवा जीसस का, तो बहुत-सी बातेंसामने आयेंगी जो कि साधास्यातः छिपी रहती हैं। उदाहरण के लिए, जब कभीवृद्ध जैसा आदमी पैदा होता है तो उसका प्रारम्भिक जीवन क्रान्तिकारी होगा-क्योंकिजैसे ही कोई आदमी भीतर प्रवेश करता है, तो पहला अनुभव आग को लपट की तरह होता है। जितना बुद्ध बड़े होते जाते हैं, उतनी भीतर की ठंडक कौप्रतीति होती जाती है, उतना ही भीतरी चन्द्रमा पूर्ण होता जाता है। क्रान्ति खोगाती है। तब बुद्ध के शब्द क्रान्तिकारी नहीं होते।

जीसस को यह अवसर नहीं मिल सका। उन्हें मार दिया गया जबकि जेक्रान्तिकारी ही थे। इसीलिए यदि तुम बुद्ध के वचनों को जीसस के वचनों सेतुलना करो, तो उनमें सीधा और स्पष्ट भेद दृष्टिगोचर होता है। जीसस

के वचनएक युवा मनुष्य के वचन हैं-गर्म। बुद्ध के भी शुरू के वचन ऐसे ही है लेकिनवेअस्सी वर्ष तक जिये। वे मारे नहीं गये।

उसके भी कारण है। और एक कारण यह है कि भारत सदा से यह जानताथा है कि ऐसा होता है। जब कभी कोई व्यक्ति भीतर जाता है तो प्रथम अनुभवआग को तरह होता है-क्रान्तिकारी, विद्रोही। इसीलिए भारत में कभी किसी कोमारा नहीं गया। इसीलिए भारत ने ऐसा व्यवहार कभी नहीं किया, जैसा कि यूनानने सुकरात के साथ किया तथा यहूदियों ने जीसस के साथ किया। भारत बहुतकुछ जानता रहा, उसने ऐसे बहुत से लोगों कोजाना है। भारत भली-भाँति जानता है कि यह प्राकृतिक है-जब कभी कोई बुद्ध अपने भीतर प्रवेश करेंगे तो पहला अनुभव क्रान्तिकारी होगा। वे एक दम से फट पड़ेगे और एक लपट का विस्फोट होगा। परन्तु फिर धीरे घीरे लपट विलीन हो जायेगी और अन्ततः खाली चन्द्रमा ही बचेगा-मौन, शीतल, बिना किसी आग के बल्कि सिर्फ प्रकाश लिए।

जीसस की हत्या कर दी गई। इसीलिए ईसाईयत अधूरी रह गई। ईसाईयत की बुनियाद प्रारम्भिक जीसस के आधार पर पड़ी उस जीसस पर जो कि अभीलपट ही थे। इसीलिए ईसाईयत अधूरी रहे गई। बौद्ध घर्म फ़ूड हो गया। उसनेबुद्ध को सब तलों पर जान लिया। उसने बुद्ध के चन्द्रमा को सब सारे तलों पर जान लिया-पहले दिन के चाँदसे लेकर पूर्ण चन्द्र रात्रि तक। यह सूली पर चढानापश्चिम के लिए बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण सुआ। यह इतिहास में एक सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्णघटनाओँ मेंशैसे एक थी कि जीसस की हत्या कर दी गई जबकि वे अभी केवलतेंतीस वर्ष के ही थे-एक लपट ही थे। वह लपट चन्द्रमा के प्रकाशा में बदल दृजाती परन्तु अवसर ही नहीं दिया गया। और उसका कुल कारण इतना ही था कि यहूदियों को इस भीतरी घटना का कोई पता नहीं था।

भारत ने बहुत से बुद्धों को जाना है और सदैव ऐसा हुआ है कि जब कभीकिसी ने भीतर प्रवेशा किया है तो सबसे पहले वह आग देखता है-लपट, औरतब उसकी क्रान्तिकारी आत्मा ही चाहर प्रकट होती है। परन्तु जब कोई भीतरऔर भीतर प्रवेश करता है तो वह विलीन हो जाती है और तब केवल मौन रहजाता है-एक चन्द्रमा के आलोक का मौन।

यह सूत्र कहता है-अन्तत के पूर्ण चन्द्र के अमृत-रस को इकट्ठाकरना--... ।

यह मौन, यह ठंडी शान्ति चंद्र की-हिन्दुओंने इसे ही अमृत कहा है। इसे कहीं और नहीं खोजना पड़ता है। यह तुम्हारे ही भीतर मौजूद है। यह अमृततुम्हारे भीतर है। एक बार तुम इस अमृत में स्थापित हो जाओ, एक बार तुमइस चन्द्रमा के सरोवर में स्थिर हो जाओ, तो तुम्हारे भीतर ही पूर्ण चन्द्र का उदयहोजाता है। अब तुमने दोनों ध्रुवों को जान लिया। तुमने जीवन को भी जानलिया, और तुमने मृत्यु को भी पहचान लिया। तुमने सुरज को जान लिया औरचन्द्रमा को भी। तुमने दोनों ही ध्रुवों को जान लिया-जीवन और मृत्यु। और एकबार तुमने दोनों को जान लिया कि तुम दोनों के पार हुए। इसलिए इसे अमृतकहते हैं।

अब तुम नहीं मरोगे! अब तुमने अमृत पी लिया। अब तुम नहीं पर सकतेपरन्तु तुम पुरानी समझ के हिसाब से अब जीवित नहीं हो। तुम पुराने अर्थों में। मर चुके हो। तुम नये चन्द्रमा में पैदा हो गये हो। अब मृत्यु तुम्हारे लिए मृत्युनहीं होगी, और जीवन थी जीवन नहीं होगा। अब तुम दोनों के पार हो गये।

मैंने एक ज़ेन मास्टर, टंका के बारे में सुना है, जिसने कि अपने शिष्योंसे एक दिन कहा कि बुद्ध कभी पैदा ही नहीं हुए। उसने कहा कि यह सारीकहानी ही झूठी है, यह बुद्ध की सारी कथा ही झूठी है। वे कभी पैदा ही नहींहुए। उसके शिष्य तो घबड़ा गये। इसका क्या अर्थ होता है। ऐसा लगता था किवह पागल हो गया है। हर रोज वह स्वयं ही बुद्ध की जीवन गाथा सुनाया करताथा-उनका जन्म और सब कुछ। और अचानक वह कहता है,

यह सब बात बेकारहै। वे कभी पैदा ही नहीं हुए। और इतना कहकर वह अपनी जगह से उठा औरअपनी झोपडी के भीतर चला गया।

सारे शिष्य उसकी झोपडी के चारों ओर इकटूठे हो गये और पूछने लगे, आप क्या कह रहे हैं? उसका क्या होगा कि आप सारे जीवन हमें सिखातेरहे हैं? "टंका ने जवाब दिया-टंका अब न रहा। वह कभी पैदा ही नहीं हुआ, इसलिए सारी कथा ही मिथ्या है। टंका का शिक्षा देना और तुम्हारा उसे सुनना-येदोनों ही मिथ्या है। किसी ने ऐसे ही काल्पनिक कहानी खड़ी कर दी है। तुम्हेंउससे धोखे में आने की जरूरत नहीं।" तब तो वे और भी परेशानी में पड़ गयेयह तो ही भी सकता था कि बुद्ध न हुए हो, लेकिन टंका तो उनके सामने हीखड़ा था। टंका हँसा और बीला... ष्श्जो भी पैदा हुआ, जिसका भी जन्म हुआ, वह बुद्ध नहीं थे।

भारत में दो नाम प्रचलित हैं। गौतम सिद्धार्थ, माता-पिता के द्वारा दिया गयानाम था। तब एक दिन वे बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये। उनकी चेतना खिल गई, पूर्ण विकसित हो गई। तब उन्होंने दूसरे ही नाम का उपयोग किया- "गौतम बुद्ध"बुद्ध का अर्थ होता है वह जो कि जाग गया। यह दूसरा नाम गौतम का बिल्कुलनहीं है। गौतम तो मात्र एक स्थिति था। उसकी उस स्थिति में बुद्धत्व कोई उनकेबोधि-दिवस के दिन ही घटित नहीं हुआ। वह तो वहाँ पहले से ही मौजूद था, केवल उस दिन तो उसकी प्रत्यभिज्ञा हुई। गौतम नै उस दिन केवल पहचाना उसे, जो कि सदा से ही उपस्थित था-उस बुद्धत्व को।

यह अन्तर की घटना जन्म और मृत्यु के पार है। यह कभी जन्मती भी नहींऔर मरती भी नहीं क्योंकि जो भी जन्मता है, वह मरता भी है और जो कभीजन्मता ही नहीं वह मरता भी नहीं। मृत्यु को जन्म की जरूरत होती है-एकदुर्गा-आवश्यकता की भाँति-एक अनिवार्य पूर्व-आवश्यकता। यदि तुम कभी पैदानहींहोते तो तुम मर ही नहीं सकते। इस अन्तर की घटना के साथ-जबकि सूर्यओर चन्द्र सन्तुलित हो गये हों, जबकि सारी द्वन्द्वात्मकता समाप्त हो गई हो, जबकिसमन्वय पूरा हो गया हो-तब तुम्हें तुम्हारे भीतर उसकी प्रतीति होती हैं जो किशाश्वत है।

इसलिए यह सूत्र कहता है-भीतर के पूर्णचन्द्र के अमृत-रस को इकट्ठाकरना ही नैवेद्य है। अब तुम ही भोजन हो गये हो। अब तुम स्वयं का परमात्पाको भोग चढा सकते हो। अब तुम ही भोजन हो। अब तुम शाश्वत हो। औरइसे भोजन-नैवेद्य क्यों कंहते हैं? क्योंकि जब तुम शाश्वत होते हो, तमी तुम शाश्वतके लिए भोग बन सकते हो? और भोजन से सामान्य अर्थ भी लगाया गया हैजब तुम भोजन करते हो तो वह तुम्हारे साथ एक हो जाता है, वह तुम्हारा रक्त, मांस, हइडी बन जाता है, वही तुम होजाता है। तुम तुम्हारा भोजन ही हो। अतःजब तुम अपनी इस आंतरिक वास्तविकता कोजानने लगते हो, शाश्वत यथार्थको, तोतुम उसे जगत को, अस्तित्व कोभोग चढ़ा सकते हो।

इसका यह अर्थ है कि अब तुम जगत की हड्डियाँ हो सकते हो, तुम इसजगत का रक्त हो सकते हो। अब तुम उसके साथ एक हो सकते हो, जैसे किभोजन तुम्हारे साथ एक होजाता है। मिलन पूरा हुआ क्योंकि तुम पत्मात्मा केलिए भोजन हो गये। तब तुम नैवेद्य हो। तब ही भोग स्वीकार किया जा सकता है।

लेकिन तुम अपने शरीर कोभोग नहीं दे सकते। वह भोजन तो होगा लेकिनगिद्धों के लिए न कि ईश्वर के लिए। इसका परमात्मा को भोग नहीं दिया जासकता। तुम्हारा शरीर पृथ्वी से आता है और वापस पृथ्वी कोलौट जाता है। वहकेवल पृथ्वी के द्वारा ही पुनः खाया जाता है। "डस्ट अन्टु डस्ट" मिट्टी-मिट्टीमें मिल जाती है। वह केवल पुनः मिट्टी हो सकता है। अतः इस शरीर का पत्मात्माको भोग नहीं दिया जा सकता।

एक युवा साधक बुद्ध के पास आया और बोला, "मैं आपके पास स्वयंको भेंट देने आया हूँ-मुझे स्वीकार करें।" बुद्ध ने उससे पूछा. "तुम क्या भेंटकर रहे हो-अपना शरीर? लेकिन उसे तो पहले ही से भेंट किया जा चुका है, और पृथ्वी उस पर अपना दावा कोमी, इसलिए तुम उसे केसे भेंट कर सकते हो? तुम क्या चीज भेंट कर रहे हो, मुझे ठीक-ठीक बताओ।" वह आदमी तोउलझन में पड़ गया। उसने कहा, "मेरे पास जो भी है वह मैं तुम्हें भेंट करता.हूँ" बुद्ध ने कहा, तुम्हारे पास क्या है? क्या है जो कि तुम्हारा है? क्या तुम्हारेविचार तुम्हारे हैं? वे समाज के हैं, तुम्हारा मन समाज का मन है। तुम्हारा शरीरतुम्हारे माता-पिताका है, इस पृथ्वी का है, आकाश का है, पानी का है, अग्निका है, हवा का है-पाँच तत्वों का है। तुम्हारे पास ऐसा क्या है, जो कि तुममुझे भेंट दे सकते हो?"

वह आदमी कुछ भी जवाब न दे सका, क्योंकि उसके पासऔर तो कुछभी न था। वह इनके अलावा कुछ भी न सोच सका, अतः बुद्‌ध ने कहा, "अभीभेंट न करो। पहले खोज कर लो कि तुम क्या हो? और जिस क्षणा भी तुम उसकापता चला लोगे, वह पहले से ही भेंट किया जा चुका होगा। तब उडी भेंट करनेकी भी आवश्यकता न रहेगी।"

अब तुम इस आंतरिक सन्तुलन को खोज लेते हो, जो कि सूर्य की खोजऔर चन्द्र की खोज से जाना जाता है जब तुम दोनों को जानते हो, तो वे दोनों को जानते हो, तो वे दोनों एक दूसरे को सन्तुलित कर देते हैं, और उसी संतुलन में तुम द्वैत से पार निकल जाते हो। और तब त्रिभुज का तीसरा कोण छूने को मिलता है। पहली बार तुम अपने ऊपर उठे, अब तुम अपने अंतरतम स्व हो। अब तुम नीचे अपने आपको देख सकते हो- अपने सूरज को, अपने चन्द्रमा को, अपने शरीर को, अपनी आत्मा को, अपनी विधायकता, अपनी नकारात्मकता को अपने पुरुष, अपनी स्त्री, को देख सकते हो। अब तुम अपने को नीचे मुड़कर देख सकते हो, द्वैत के सारे संसार को-बहु-आयामी द्वन्द्वात्मकता को। और अब तुम नैवेद्य हो सकते हो-परमात्मा के लिए भोजन।

लेकिन अब कोई आवश्यकता भेंट चढ़ाने की भी नहीं है, क्योंकि तुम पहले ही भेंट चढ़ चुके हो। अब कोई आवश्यकता ही नहीं है कि कहो कि स्वीकार करे, तुम पहले से ही स्वीकृत हो चुके। तुम एक हो गये। जैसे कि भोजन एक हो जाता है, तुम भी परमात्मा से एक हो गये। और परमात्मा से मेरा मतलब है-सर्व, समग्रता, यह सारा अस्तित्व।

अतः क्या-करें? ताप को प्रकाश में रूपान्तरित करो। यही मन्त्र है : तापको प्रकाश में रूपान्तरित करो। ताप का ताप की तरह उपयोग मत करो, उसकाप्रकाश की भाँति उपयोग करो। जब तुम देखो कि तुम्हें क्रोध आ रहा है, तोअपनी आँखें बन्द का लो और उस पर ध्यान करो कि क्रोध क्या है। भीतर गहरेखोजो और उस स्रोत को खोज निकालो जहाँ से कि वह आ रहा है। हम साधारणतःइसके बिल्कुल विपरीत कर रहे हैं। जब हमें क्रोध आता है तो हम क्रोध केविषय पर सोचने लग जाते हैं। उसके बारे में सोचते हैं जिसने कि क्रोध पैदाकरवा दिया और क्रोध के स्रोत को नहीं देखते, वह कहाँ से आ रहा है। जबभी तुम्हें क्रोध आये, अपनी आँखें बन्द करलो। यही ठीक क्षण है-ध्यान केलिए। अपनी आँखें बन्द कर लो भीतर जाओ और पता लगाओ कि यह क्रोधकहाँ से आ रहा है। मूल स्रोत तक उसका पीछा करो। गहरे भीतर चले जाओ, और तुम ताप के उस स्रोत तक पहुँच जाओगे जहाँ कि एकत्रित ऊर्जा बाहर निकलनेके लिए धक्के दे रही है।

इसका निरीक्षण करो, उसमें संलग्न मत होओ, क्योंकि यदि तुम उसमें संलग्नहुए, तो वह बिना रूपान्तरण के बाहर फेके दी जाएगी। और उसे दबाओ भी मत, क्योंकि यदि तुम उसे दबाओगे तो वह वापस अपने मूल उद्गम पर फेंक दी जायेगीजो कि अतिरेक से बह रहा है। वह उसे वापस सोख नहीं सकता, वह पुनः पहले से

ज्यादा शक्तिसे वापस फेंक दी जाएगी। इसलिए उसका दमन मत करो, और नही उसके साथ संलग्न होओ। केवल उसके प्रति सजग हो जाओ, भीतर उद्गमपर पहुँच जाओ। यह भीतर गति ही प्रक्रिया को शिथिल कर देगी। यह निरीक्षणही क्रोध की गुणवता को बदल देगा। क्योंकि यह शान्त निरीक्षण ही उसका एंटीडोट है, विपरीत उपचार है।

क्रोध और शान्त निरीक्षण दो विपरीत घटनाएँ हैं। जब यह शान्त निरीक्षणक्रोघके भीतर प्रवेश करता है, तो वह क्यों को बदल देता है, उसके रसायनिकसंयोजन को ही बदल देता है और ताप प्रकाश में परिणत हो जाता है। यही परिवर्तनहै। ताप प्रकाश हो जाता है। तब क्रोध न तो अपने मूल स्रोत वापस फेंकदिया जाता है, जो कि उसे वापस नहीं ले सकता, क्योंकि वह पहले ही अतिरेकसे बह रहा है, और न ही वह विषय की ओर जाता है, जो कि-व्यर्थ है-एकमूर्खतापूर्ण व्यर्थता है। तब यह ऊर्जा न तो क्रोध के बिषय की ओर जाती है औरन ही यह मूल स्रोत पर दबाई जाती है। निरीक्षण से यह ऊर्जा टूट कर फैल जातीहै। यह तुम्हारे शरीर की परिधि पर प्रकाश की तरह पहुँच जाती है। तब यहटूट कर फैल जाती हैं तो यह प्रकाश की भाँति गति करती है, और वही क्रोध"ओजस्" हो जाता है, प्रकाश हो जाता है-एक आंतरिक प्रकाश।

इसलिए यदि तुममें बहुत क्रोध है तो चिन्ता करने अथवा निराश होने कीबात नहीं है। वह इतना ही बतलाता है कि तुममें बहुत ऊर्जा है। एक आदमीजिसमें जरा भी क्रोध न हो जन्म से उसे रूपान्तरित नहीं किया जा सकता। उसकेपास ऊर्जाही नहीं है। अतः प्रसन्न होओ कि तुम्हारे पास ऊर्जा है, लेकिन उसकादुरूपयोग न करें। ऊर्जा का गलत उपयोग किया जा सकता है, उसका रूपान्तरणभी किया जा सकता है। ऊर्जा अपने आप में है, तटस्थ है। वह तुम्हें नहीं कहेगीकि उसका क्या करो। तुम्हें ही तय करना पड़ेगा। यही भीतरी रसायन प्रक्रियाका गुप्त विज्ञान है-गर्मीकोप्रकाश में बदलना, कोयले कोहीरे मेंरूपान्तरित करना, निम्न धातुओं में बदल देना।

यह तो सिर्फ प्रतीक है। रसायनविद इस बात से मतलब नहीं रखते थेनिम्न धातुओं को उच्च धातुओं में बदल दो। बल्कि उन्हें तो छिपाना पड़ताऔर एक गुप्त गुहा प्रतीक खोजने पड़ते थे क्योंकि पुराने समय में यह बड़ाकठिन था कि भीतरी विज्ञान की बात और हत्या न करदी जाये। जीसस कीहत्या कर दी गई, वे एक रसायनविद (एलकेमिस्ट) थे। और जोईसाइयत उनकेपीछे फैली जिसने कि जीसस का अनुसरण किया, वह उनके बिल्कुल ही विपरीतचली गई। ईसाई चर्च ने उन सबको मारना और करुलकरना शुरू कर दियाभी एलकेमी की कोशिशा कौ, भीतर रूपान्तस्या का प्रान किया। यह षाब्द ष्एलकेमीष् बड़ा सुन्दर है। हमारी फैपेस्ती इसी शब्द सेहै। केपेरट्रोशब्द एलकेमी से उत्पन्न है, लेकिन एलकेमी ब्रहुत ही गहरामहत्वपूर्ण शब्द है। यह "एलकेमी" राब्द इजिप्ट से आया। इजिप्ट का पुरानाखेम" है और श्एल खेम" का अर्थ होता है-चंइजिप्ट का गुप्त विज्ञान। इजिप्टलोग भीतरी रूपान्तस्या की एलकेमी में बहुत गहरे गये थे, कि भीतर कीको केसे बदलें।

इजिप्ट में वहुत-सी की ममीज सुरक्षितरखी राई हैं। वे सर्वाधिक पुरानी ममीजहै लेकिन अभी भी वैज्ञानिकचह जॉच नहीं कर मृपाये क्रि उनको किस माँति सुरक्षितरखा षायाथा। क्यों और केसे उन्हें संभाल का रखा राया था। लेकिन उस श्क्योंश्का हम अनुमान लगा सकते हैं। और हमारा तथाकथित इतिहास कुछ और नहीं, बस सिर्फ अनुमान है। लेकिन गुह्य-विषवों के लिए वह सदैव ही एक आंतअनुमान हैउन्हें क्यों संभाल कर रखा गया, यह तो समझना मुश्किल है। लेकिन उससेभी ज्यादा समस्यापूर्ण है कि कैसे रखा गया-किस रासायनिक प्रक्रिया से उन्हेंरखा गया। वे आज भी इतने ही ताजे हैं, जैसे अभी ही मरे हों। यदि कोई भीबाहरी रासायनिक प्रक्रिया होती तो हमारी केर्मस्ट्रपै उसे जान लेती। आज हम पुरानेइजिप्ट के बजाय स्सायन शास्त्र में

ज्यादा विकसित हैं। वस्तुतरू बात यह है किये षारीर बाहरी रासायनिक प्रक्रिया से नहीं संभठल कर ररग्रे गये, बल्कि भीतरी

एलकेमी से।

तुम्हारी काम-ऊर्जा जो कि जीवन का मूल स्रोत है, यदि उसे भीतर से रूपान्तरितकिया जा सके, तो तुम्हारे शरीर को कितने भी समय तक सुरक्षित रखा जा सकताहै। यदि तुम्हारी र्काभ-ऊर्जा को रूपान्तरित कर दिया जाये, तो तुम्हारे शरीर कोलाखों वर्षों तक रखा जा सकताहै। यदि तुम्हरि षारीर के कोषों मैँ से यौन खोजाये, तो शरीर को संभालकर रखा जा सकता है, क्योंकि जन्म भी यौन से होताहै और मृत्यु भी यौन से ही। तुम्हारे शरीर की ताजगी, तुम्हारे रारीर का युवापन, यौन से ही अस्ता है और तब विकृति भी यौन से होती है। हन ममियों कोइसलिएसंभग्रल कर नहीं रखा गया था जैसा कि इतिहासबिदृ कहते हैं या इजिप्ट के दूसरेशास्त्री कहते हैं कि आदमी सदैव अहंकार की भाषा में सोचता रहा है और इसलिएराजाओं ने, सग्राटों ने अपने को बचाया है। यह बात नहीं है। इसका रहस्य बिल्कुलभिन्न ही है। उन्हें इसलिए संभाल कर रखा गया ताकि वे अपने को पहचान सकेंजबकि आत्मा पुनः जन्म लै। जब एक आदमी दूसो रारीर में पैदा हो ओर यदिउसका पुराना रारीर बचा लिया जाये, तो वह उसकी श्भीतरी प्रराति में सहायकढोता हैपरन्तु पुराना शरीर तभी उपयोगी हो सकता है यदि उसे एलकेमी से रूपान्तरितकिया गया हो, अन्यथा वह किसी काम का नहीं। यदि तुम अपना रारीर भीतरसे बदलो, तो तुम्हारा शरीर एक प्रयोगशाला हो जाता है। वह ग्रयोराशाला है, वहकेवल शरीर नहीं है। यदि तुम भीतर काम करते रहते ही, प्रयोरा कंरते रहते हो, तो फिर तुम इस शरीर को केवल बाहर से ही नहीं, भीतर से भी जानते होहम अपने शरीर कोबाहर से ही जानते हैं। जो कुछ भी दर्पपा हमें बंतलाताहैं वही हमारा ज्ञान है। यह भीतर से नहीं है। हमारा ज्ञान ऐसा ही है जेसे किफोईमकानष् के चारों ओर चवकर लगाये और कहै कि मैं इस घर को जानताहूँ। वह कभी अर के भीतर नहीं आया, उसने कथी इसे भीतर से नहीं देखाहम अपने शरीर कोबाहर से ही देखते हैं, भीतर से कभी भी नहीं। यदि तुमं अपने क्रोध को, अपने सेक्स को रूपान्तरित करना प्रारंभ करो, तो तुम इसे भीतर से देखने लगोगे। तब तुम्हारा शरीर एक बडा प्रयोग है, एकबडी प्रयोगशाला है-बही जटिल। और तब तुम उसे संभालकर रखना चाहोगे, ताकि आगे बिकास हो सके। जब कोई दूसरे शरीर में प्रवेशा करता है, तो वहपुराने ज्ञारीर से बहुत कुछ सीख सकता है। यह पुराने इजिप्ट में एक बहुत बड़ाप्रयोन्ना था और शरीर के साथ बहुत-सी बातें की जाती थीं। वे लोग कुछ बातोंमें सफल भी होते थे, और कुछ में असफलायदि तुम्हारे षास पुनः नया ज्ञारीर हो, नई प्रयोगशाला ही और पुराना संभालकर रखा गया शरीर हो, तो तुम्हें दोबारा अ-ब-स से प्रारंभ नहीं कस्ना पड़ेगायदि पुराना संभालकर रखा है तो यह रिकार्ड है। मृत्यु ने बीच में बाधा डालीथी लेकिन अब तुम पुनः प्रारंभ का सकते हो। तुम्हें शुरू से प्रारंभ करने कोजरूरत नहीं है। तुम वही से प्रारंभ कर सकते हो, जहॉ पिछले जीवन में मृत्यु... ने बाधा उपस्थित की थी।

इसलिए केवल इजिप्ट के रहने चालों ने व तिब्बत के लोगों ने शरीरों कीसुरक्षित रखा, लेकिन उन्हीं शरीरों को सुरक्षित रखा, जो कि आंतरिक गहरे प्रयोगोंमें लगे थे। अन्यथा, यह बिल्कुल बेकार है कि तुम्हारे षारीर को सुरक्षित रखाजाये। तुम अपने पुराने रारीर को पहचान भी न सकोगे

लेकिन का शरीर मास्को में सुरक्षित रखा गग्रा है, लेकिन वह उसको पहचानभी नभाएगा। यदि फिर से जन्म ले, तो वह उसे नहीं पहचानेगा। उसके रारीरकोएक प्रयोगागला की तरह कभी काम में नहीं लिया गयाय उसने उसे कभीनहीं जाना। वह सिर्फ दर्पणा में ही उसे देखता था न कि सीधे ज्ञारीर मेंयह प्रक्रिया एलकेमीकल है रू क्रोध का अवलोकन करो और क्रोध प्रकाशमें रूपान्तरित होजाता है। यौन का अवलोकन करो और यौन

प्रकाश मैँ रूपान्तरितहो जाता है। किसी भी आंतरिक घटना का निरीक्षण करो जो कि ताप उत्पन्नकरती हो, उसका अवलोकन करो और केवल अवलोकन सेवह प्रकत्मा में बदलजाती है। और यदि तुम्हारी सारी ताप पैदा करने वाली अंतर्घटनाएँ प्रकाश में रूपान्तरितहो जाती हैं, तो तुम उस आंतरिक चन्द्रमा, को अनुभव करोगे। और जब भीतरकोई अग्नि नहीं बचेगी, तब तुममें पूर्ण चन्द्र का अमृत-रस एकत्रित होगाऔर इस अमृत से ही तुम अमर हो जाते हो। न कि इस शरीर में, न किइस शरीर के द्वारा। तुम अमस्ता को उपलब्ध हो जाते हो क्योंकि तुम जीवन औरमृत्यु दोनों का अतिक्रमणा कर गयेतब ही तुम नैवेद्य हो। तब तुम परमात्मा के लिए, समग्र के लिए भोग हो

आज इतना ही

छठवां प्रवचन

बुद्धत्व मानव की परम स्वतंत्रता

प्रश्न

1. ऐसा क्यों है कि कुछ ही लोग आंतरिक रूपान्तरण के लिए उत्सुक होते हैं?

2. क्या आज का युग बुद्ध-पुरुषों को जन्म देने में सक्षमहैं?

भगवान! क्या कारण है कि बहुत थोड़े-से लोग ही जगत में आंतरिक ताप को आध्यात्मिक प्रकाश में रूपान्तरित करने के लिए उत्सुक होते हैं? क्या आपको ऐसा प्रतीत होता है कि आज का युग व पीढ़ी कृष्ण, लाओत्से व क्राइस्ट जैसे बुद्ध-पुरुषों को पैदा करने में सक्षम है?

मनुष्य एक स्वतंत्रता है-पूर्ण स्वतन्त्रता है। अतः अध्यात्म एक चुनाव है। कोई दबाव नहीं है तुम पर, जो कि तुम्हें अध्यात्म को चुनने के लिए बाध्य कर रहा है। कोई कारण भी नहीं है जो कि रूपान्तरण करने को मजबूर कर रहा है। यदि कोई भी कारण होते, जो कि तुम्हें रूपान्तरण करने को बाध्य कर रहे होते, तो फिर किसी अध्यात्म की संभावना नहीं है।

कार्य-कारण नियम ही भौतिकता है। तुम भोजन करते हो क्योंकि भूख है। वह तुम्हें बाध्य करती है, वहाँ कोई चुनाव नहीं है। तुम चुन नहं सकते कि भोजन लेना अथवा न लेना। तुम्हें लेना ही होगा। अध्यात्म उस तरह की खोज नहीं है। तुम्हें कोई भी मजबूर नहीं कर रहा है। तुम्हें स्वयं अकेले ही चुनना है।

अध्यात्म एक चुनाव है। वह कारणगत नहीं है। बाकी सब चीज़ें कारणवश हैं। कोई भी कारण है और उसका परिणाम होता है। और परिणाम स्वतन्त्र नहीं है। उसका कारण है। अध्यात्म सब कारण के पार है। वह किसी भी चीज से बाध्य नहीं, वह तुम्हारा आंतरिक चुनाव है। तुम चाहो तो चुनो, और तुम चाहो तो न चुनो। कितने भी जन्म तुम चाहो तो उसे न चुनो लेकिन कोई तुम्हें उसके लिए बाध्य नहीं कर सकता। इसे ठीक से समझ लेना चाहिए और यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण चीज है। क्योंकि यदि हर चीज का कारण है, तो फिर मैं कहूँगा कि कोई अध्यात्म नहीं है। तब कोई तुम्हारे आध्यात्मिक होने के लिए कारण बन सकता है। यदि कारण मौजूद है तो उसका परिणाम भी होगा। तब एक बुद्ध को कारण से बनाया जा सकता है। तब फिर हम कारण पैदा कर सकते हैं और तब उससे बुद्ध निर्मित हो जायेंगे।

लेकिन हम ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं कर सकते जिसमें कि तुम बुद्ध हो जाओ। और हम ऐसी भी कोई स्थिति पैदा नहीं कर सकते कि जिसमें तुम्हें बुद्ध होने से बनाया जा सकता है। तब फिर हम कारण पैदा कर सकते हैं और तब उससे बुद्ध निर्मित हो जायेंगे।

लेकिन हम ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं कर सकते जिसमें कि तुम बुद्ध हो जाओ। और हम ऐसी भी कोई स्थिति पैदा नहीं कर सकते कि जिसमें तुम्हें बुद्ध होने से रोका जा सके। तुम मुक्त हो। जिस क्षण भी तुम बुद्ध होना चाहो, हो सकते हो। और तुम चाहो तो कितने ही जन्म उसका चुनाव नहीं भी कर सकते हो।

भौतिकवाद तथा अध्यात्म में निरंतर विवाद चलता है। यही आधारभूत विवाद है- न कि यह कि परमात्मा है या नहीं। यह बुनियादी विवाद नहीं है क्योंकि कोई भी परमात्मा के बिना भी आध्यात्मिक हो सकता है। बुद्ध किसी परमात्मा में विश्वास नहीं करते थे, महावीर ने तो परमात्मा के अस्तित्व के लिए मना ही

कर दिया। लेकिन फिर भी कोई महावीर और बुद्ध के जितना आध्यात्मिक नहीं है। इसलिए ईश्वर कोई ऐसी महत्वपूर्ण बात नहीं है। यहां तक कि आत्मा भी कोई महत्वपूर्ण चीज नहीं है। बुद्ध कहते हैं कि कोई आत्मा भी नहीं है और फिर भी वे प्रथम श्रेणी के आध्यात्मिक हैं। तब फिर अध्यात्म में बुनियादी चीज क्या है? यह जो स्वतन्त्रता की धारणा है- कि क्या मानव मानवता के पार जाने के लिए स्वतन्त्र है?

यदि हर चीज का कारण है तो फिर तुम्हारे लिए कोई स्वतन्त्रता नहीं है। तुम्हारे पास एक विशेष शरीर है क्योंकि उसके विशिष्ट कारण हैं- किसी खास पिता के कारण, किसी खास मां के कारण, किसी खास देश जलवायु, किसी खास वंश के कारण। तुम्हारे पास विशिष्ट शरीर है, उसके खास कारण है। तुम्हारे पास एक मन है किसी खास देश, खास संस्कृति खास शिक्षा के कारण। तुम्हारे पास जो मन है, उसके भी खास कारण हैं। तुम एक विशेष भाषा बोलते हो क्योंकि उसके भी कारण हैं। यदि तुम चीन में पैदा होते और तुम्हें दूसरी कोई भाषा नहीं बोल सकते थे। भाषा के भी कारण हैं। कुछ चीजों की आवश्यकता है, तब तुम कोई विशेष भाषा बोल सकते हो।

अतः इन चीज़ों में कोई स्वतन्त्रता नहीं है। केवल अध्यात्म ही अकारण है। और यही धर्म और विज्ञान के बीच बड़े से बड़ा विवाद है। क्योंकि विज्ञान का कहना है कि कुछ भी बिना कारण के संभव नहीं है, प्रत्येक बात कारण से है। तुम्हें पता हो, चाहे तुम्हें इसका पता न हो, वह दूसरी बात है। यह बात भले ही अज्ञात हो लेकिन हर चीज़ का कारण है।

विज्ञान का जीवन के प्रति ऐसा ही दृष्टिकाण है : कि हर चीज़ का कारण है। कारण ज्ञात है अथवा अज्ञात, किन्तु हर चीज़ कारणवश है। यदि हर एक चीज़ कारणवश है तो फिर कोई स्वतंत्रता नहीं है। तब यदि एक बुद्ध बुद्ध हैं तो यह उनकी कोई उपलब्धि नहीं है। वे भी कारण से हैं। तब उनकी स्थिति में कोई भी अ, ब, स बुद्ध हो जायेगा। केवल एक विशेष परिस्थिति की जरूरत है।

तब बुद्ध के स्थान पर किसी को भी रखा जा सकता है। तब यदि तुम्हें भी उन्हीं परिस्थितियों में रखा जाये तो तुम भी बुद्ध हो जाओगे, जैसे कि पानी सौ डिग्री पर उबलता है- कोई भी पानी हो। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन-सा पानी गंगा का पानी है अथवा गोदावरी का पानी है, अथवा कहीं का भी पानी। कोई भी पानी एक खास तापक्रम पर उबलेगा और एक खास तापक्रम पर पर उबलेगा और एक खास तापक्रम पर उबलेगा और एक खास तापक्रम पर भाप बन जाएगा। सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाएगा-किसी भी देश में, कोई भी जलवायु हो, कोई भी युग हो। इसलिए कौन-सा पानी-यह बात ही असंगत है। सौ डिग्री पर वाष्पीकरण होता है अतः कोई भी पानी रखो-अ, ब, स, इसमें काई फर्क नहीं पड़ता।

विज्ञान कहता है कि वही बात बुद्ध के साथ भी है। उसका कहना है कि किसी भी व्यक्ति को-अ, ब, स को बुद्ध की परिस्थिति में रख दो और परिस्थिति ठीक, हो तो बुद्ध हो जायेंगे। ऐसा इसलिए है क्योंकि अभी भी हमें कार्य-कारण के सारे सूत्र पता लगा लेंगे।

यह बात बिल्कुल व्यर्थ है। कोई भी ऐसी परिस्थिति पैदा नहीं कर सकती जिसमें कोई दूसरा बुद्ध हो सके। कोई उसे सिखा भी नहीं सकता। यदि मैं पानी से कहूँ-भाप बन जाओ तो वह भाप नहीं बनेगा। लेकिन स्थिति पैदा करें तो पानी भाप बन जायेगा। पानी की अपनी कोई स्वतन्त्रता नहीं है कि चुनाव कर सके। स्थिति महत्त्वपूर्ण बात है। यदि स्थिति मौजूद है तो पानी स्वतः भाप बन जायेगा। विज्ञान कहता है कि आदमी की स्थिति बड़ी जटिल है। वह इतनी साधारण नहीं है कि गर्मी पैदा करो, पानी को भाप बनाने के के लिए। वह जटिल है, लेकिन फिर भी हर चीज़ का कारण है, और हर व्यक्ति कारण से है।

यदि यह बात सच हो तो फिर कोई स्वतन्त्रता नहीं है। वास्तव में, इस देश में यह विचार मनुष्य के मन में बहुत गहरे जड़ जमाये हुए है। इसी कारण अब मनोशास्त्री कहते हैं कि कोई भी अपराधी अपराधी नहीं है : वह कारण से है। और कोई बुद्ध बुद्ध नहीं है, क्योंकि वह भी कारण से है। प्रत्येक सिर्फ दास है, कोई जिम्मेवारी नहीं है। स्वतन्त्रता की धारणा जाने के साथ ही फिर कोई दायित्व नहीं है।

अतः जब तुम मुझसे पूछते हो कि लोग क्यों अपने को रूपान्तरित करने के लिए, अपनी आंतरिक ऊर्जा को आध्यात्मिक प्रकाश में बदलने के लिए उत्सुक नहीं हैं तो उसमें "क्यों" असंगत है। यह पूछा ही नहीं जा सकता। स्वतन्त्रता के साथ ही "क्यों" खो जाना है। तुम पूछ सकते हो कि यह पानी क्यों नहीं उबल रहा है? तब तुम्हें उस स्थिति में "क्यों" पूछना पड़ेगा।

अतः स्थिति में गहरे उतर जाये ंतो तुम्हें उत्तर मिल जाएगा कि क्यों यह पानी नहीं उबल रहा। कोई-न-कोई बात चूक रही है। उस बात को पूरी कर दो और पानी उबल जाएगा। क्यों, कोई आदमी बीमार है? उसकी जाँच करो और कुछ-न-कुछ मिल जायेगा और उत्तर प्राप्त हो जायेगा। क्यों कोई आदमी आध्यात्मिक नहीं है? इसका उत्तर यह है कि यह प्रश्न ही असंगत है क्योंकि "क्यों" के साथ तुम यह सोचते हो कि कहीं-न-कहीं प्रक्रिया में कोई चीज़ बाधा बन रही है। वास्तव में कोई ऐसी बात नहीं है। यदि तुम आध्यात्मिक होना चाहो तो तुम हो सकते हो। यदि तुम नहीं चाहते, तो यह तुम्हारे ऊपर है, यह तुम पर निर्भर करता है।

यदि सारी वही की वही परिस्थितियाँ भी मौजूद कर दी जायें, तो भी एक बुद्ध को पैदा नहीं किया जा सकता, उन्हें नहीं बनाया जा सकता। सचमुच, बुद्ध के जीवन में बहुत-सी ऐसी बाते हैं जो कि हमें मदद कर सकती हैं। वे पैदा हुए तो वे अपने पिता के अकेले पुत्र थे, और वह भी उसकी बुद्धावस्था में पैदा हुए थे। पिता ने ज्योतिषियों से पूछा कि, "या तो यह एक चक्रवर्ती सम्राट बनेगा अथवा यह संन्यासी हो जायेगा।"

पिता ने कहा, "यह कैसा ज्योतिष है। तुम मुझे वह बताओ जो कि होनेवाला है; कि वस्तुतः यह क्या बननेवाला है।" उन्होने कहा, "यही एक मात्र संभावना है जो कि हम कह सकते हैं। या तो यह संन्यासी हो जाएगा, या फिर यह चक्रवर्ती सम्राट बनेगा।"

ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं। सारी दुनिया का सम्राट और एक संन्यासी-सड़कों पर भीख मांगनेवाला। इन दोनों के मध्य सभी कुछ आ जाता है। ये दोनों बातें बिल्कुल विपरीत हैं।

इसलिए पिता बहुत चिन्तित हो गये और उन्होंने अपने दरबार के विद्वानों से पूछा। उन्होंने अपने राज्य के सारे बड़े-बड़े विद्वानों की एक बड़ी सभा बुलाई और पूछा कि क्या उपाय किया जाये कि उनका लड़का संन्यासी न बने, वह इस संसार में रहे और इसे छोड़कर न चला जाये। उन्होंने पूछा कि किस प्रकार का वातावरण दिया जाये और कैसी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाये ताकि अध्यात्म की तरफ उसकी कोई उत्सुकता न हो।

यह एक बड़ा प्रयोग था-एक प्रयोग जिससे कि एक व्यक्ति को कुछ विशेष बनाने का ही प्रबन्ध था। उसे एक महान सम्राट होना ही चाहिए और दोनों संभावनाएँ खुली थीं। अतः कैसे एक संभावना को रोका जाये और दूसरी संभावना को बढ़ावा दिया जाये। उन्होंने एक निर्णय लिया वे बड़ी वैज्ञानिक समझ के लोग थे। ऐसा प्रयोग उसके पहले भी कभी नहीं हुआ और न उसके बाद में कभी हुआ। वह मानवती के इतिहास में एक बड़े-से-बड़ा प्रयोग था।

अतः उन्होंने सारी योजना तैयार कर ली। बुद्ध का बचपन एक योजनाबद्ध बचपन था-समग्ररूपेण सुनियोजित। वो क्या भोजन करें, वो क्या करें, किससे बात करें, कौन शिक्षा दे, वो कब चलें-हर चीज़

सुनियोजित थी। वे बड़े विद्वान लोग थे। उन्होंने कहा कि यह दुःख कभी देखे ही नहीं। यह कभी किसी वृद्ध आदमी को न देखे, यह कभी किसी रोगी को न देखे, यह कभी कोई बीमारी, या गरीबी न देखे। यह सदा सपनों के जगत में ही जिये-युरोपिया में। ये सदा भ्रमों में ही जिये जो कि इतने वास्तविक हों कि उसे यह संसार छोड़ने का ख्याल ही पैदा न हो।

इसलिए उनके लिए तीन महल बनवाये गये तीन अलग-अलग मौसम के लिए। उनके बाग में एक भी सूखा पत्ता नहीं छोड़ा जाता था। रात्रि में जो भी मुर्झा गया हो, उसे हटा दिया जाता। उन्होंने कभी मुर्झाता हुआ फूल भी नहीं देखा। वे केवल खिलते हुए ताज़ा फूल ही देखते। किसी भी वृद्ध आदमी को, जहाँ भी बुद्ध होते वहाँ नहीं जाने दिया जाता। जहाँ कहीं भी गौतम होते किसी बूढ़े आदमी को नहीं जाने दिया जाता-केवल युवा, स्वस्थ, सुन्दर स्त्री और पुरुष ही जा सकते थे।

राज्य की सारी सुन्दर स्त्रियाँ उनकी सेवा में उपस्थित की गई। वे उनकी सेवा करती, और सारे समय संगीत और मधुर गान चलता रहता और उनकी जिन्दगी एक गीत बन गई, एक स्वप्न जैसी हो गई। संपूर्ण योजना संभव हो सकी क्योंकि वे राजा के लड़के थे। जब वे युवा हुए तो उन्होंने कभी भी किसी वृद्ध, बीमार अथवा मरे हुए आदमी को नहीं देखा। उन्हें इतना भी पता न चला कि मृत्यु भी होती है। सचमुच जब कोई मृत्यु न हो, वृद्धावस्था न हो, दुख न हो तो फिर सवाल ही कहाँ खड़ा होता है संन्यास का? फिर संसार को क्यों छोड़ें? फिर तुम जैसा चाहो वैसा जगत है ही- सुन्दर सुखद।

वे इस सपने के संसार में जीते थे कि अचानक एक दिन सब कुछ बिखर गया। कोई उसमें कब तक रह सकता है? वह इतनी झूठी बात है कि कोई उसमें कब तक जिये। किसी दिन तो कुछ होगा ही और सब कुछ टूट कर बिखर जायेगा। और ऐसा हुआ उस सुनियोजना के कारण ही। मैं कहता हूँ उस योजना के कारण ही, क्योंकि जब उन्हें जीवन के सत्यों का पता चला तो उन्हें भारी धक्का लगा। वे ही बातें हमारे लिए आघात नहीं हैं क्योंकि हम उनसे परिचित हैं। लेकिन जब बुद्ध ने पहली बार एक बृद्ध पुरुष को देखा तो उन्हें उसका कोई पता नहीं था, अतः उन्होंने पूछा कि इस आदमी को क्या हो गया है? जब उन्होंने पहली बार एक मृत शरीर को देखा तो सारा सपनों का संसार विलीन हो गया।

हम इन चीजों को रोज देखते हैं, इसलिए हम इनके आदी हो जाते हैं। लेकिन उन्हें उसका कोई पता नहीं था, इसलिए उन्होंने पूछा, "इस आदमी को क्या हो गया है?" उनको उत्तर मिलना चाहिए और वही आघात पहुँचाने वाला होगा- भयानक आघात। उनके जीवन में और मृत्यु के यथार्थ में इतना अन्तराल हो गया था कि कहते हैं वे बोले, "यदि यह आदमी मर गया है तो फिर सारा जीवन ही व्यर्थ है। तब मैं भी मर ही जाऊँगा। तब सब कुछ बेकार है। यदि मृत्यु अन्त है, तो फिर जीवन अर्थहीन है। अतः मुझे उसे जानना पड़ेगा यदि ऐसा कुछ है जो कि कभी मरता नहीं। यदि ऐसा कुछ भी नहीं है, तब हम सपनों में जी रहे हैं, समय गंवा रहे हैं, शक्ति खो रहे हैं, अपने को नष्ट कर रहे हैं।"

पिता के मन में पूरी योजना थी। वे कारण बनाने की कोशिश कर रहे ि, किसी विशेष विकल्प को थोपने का प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन परिणाम बिल्कुल उलटा आ गया, क्योंकि जब तुम कोई चीज़ जबरदस्ती थोपते हो तो आंतरिक स्वतन्त्रता विद्रोह करने लगती है। बुद्ध का जीवन एक बनाया हुआ था-कृत्रिम, झूठा, अवास्तविक। और चूँकि हर चीज़ थोपी गई थी, तो उनकी भीतरी स्वतन्त्रता विद्रोह कर उठी। उसी आंतरिक स्वतन्त्रता के कारण वे बिल्कुल विरोधी ध्रुव की ओर घूम गये। बुद्ध के पिता के यह बात बिल्कुल समझ के बाहर थी कि आखिर हुआ क्या? जो कुछ भी उनका सामर्थ्य थी, वह सब उन्होंने किया, लेकिन सारी योजना असफल हो गई।

तुम किसी आदमी को कारण से कुछ नहीं बना सकते। और यदि तुम आदमी को सकारण कुछ बना सकते हो, तो फिर मनुष्यता का कोई मतलब नहीं होगा। आदमी अकेला संसार में एक अकारण घटना है। इसलिए मैं नहीं कह सकता कि "क्यों"। क्योंकि यदि मैं कहूँ "इसलिए" और "इस कारण से" तो फिर आदमी आध्यात्मिक नहीं हो सकता। तब तुम उन तथ्यों को उपस्थि कर दो, और आदमी आध्यात्मिक हो जायेगा। तब अध्यात्म भी एक बड़े अर्थशास्त्र का भाग हो जायेगा। यह पूर्ति करो और मांग पूरी हो जाएगी। मैं मांग निर्मित करता हूँ और उसकी पूर्ति हो जाएगी।

नहीं, मनुष्य के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। अध्यात्म कोई वस्तु नहीं है। और इसके कारण ही, चूँकि अध्यात्म का मतलब ही स्वतन्त्रता होता है, इसलिए बहुत कम आध्यात्मिक हो पाते हैं। क्योंकि तुम अपनी स्वतन्त्रता का कभी उपयोग नहीं करते। बल्कि इसके विपरीत तुम अपने को दासता में डालते जाते हो क्योंकि दासता सुविधापूर्ण है, बहुत सुविधापूर्ण है, और स्वतन्त्रता असुविधापूर्ण है, कष्टपूर्ण है।

यदि हर एक गुलाम है और तुम भी गुलाम हो तो तुम प्रत्येक के साथ तालमेल बिछा सकते हो। यदि तुम एक मुक्त व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हो तो तुम्हारा तालमेल गलत हो जायेगा। इन्हीं गलीत तालमेल वाले व्यक्तियों से सारे संसार की प्रगति हुई। जिनका समाज से तालमेल बैठ जाता है वे लोग ही रूढ़ीवादी लोग हैं, परम्परावादी लोग हैं। ये लोग वही करते हैं जो कि सारे लोग करते हैं, इन्होंने अपना तालमेल बिठा लिया है। स्वतन्त्रता का अर्थ होता है कि तुम उस दिशा में जा रहे हो जिस तरफ कोई भी नहीं जा रहा है। तुम्हें भय पकड़ता है। तुम बेचैनी का अनुभव करते हो। तुम निश्चित नहीं हो सकते क्योंकि कोई भी तो उस तरफ नहीं जा रहा है। क्योंकि स्वतन्त्रता एक बड़ी जिम्मेदारी है। और इतनी खतरनाक जिम्मेवारी है कि तुम अपने को धोखा देते चले जाते हो।

ज्यादा से ज्यादा हम एक गुलामी की जगह दूसरी गुलामी को चुन लेते हैं। तुम गुलामियों को बदलते रहते हो। एक हिन्दू ईसाई हो जाता है, एक ईसाई हिन्दू हो जाता है। उन्होंने दासताएँ बदल लीं। एक आदमी पार्टी का है और फिर वह उसे छोड़ देता है, तब वह सोचता है कि मैं स्वतन्त्र हूँ और फिर वह दूसरी पार्टी बन्धन स्वतन्त्रता नहीं है। स्वतन्त्रता का अर्थ होता है कि बिना किसी बन्धन चलना। उसका अर्थ होता है कि क्षण-क्षण चलना, बिना किसी आयोजना अथवा बिना कुछ भी तय किये-असुरक्षा में प्रवेश कर जाना। हम सदा ही सुरक्षा को दिलचस्पी रखते हैं।

दो तीन दिन ही हुए एक बुद्ध महिला मेरे पास आई। उसका पति गहरे ध्यान में लगा है। अब उस स्त्री को चिंता होने लगी है क्योंकि वह अब अधिक शान्त हो गया है। वह मुझे कहने आई थी कि मेरा पति ज्यादा शान्त हो गया है, और मुझे डर है कि यदि ऐसे ही चलता रहा तो वह संन्यासी हो जाएगा। वह हमें छोड़ देगा, वह हमें त्याग कर जा सकता है। अतः कृपाकर मेरे पति को ध्यान करने से मना करें। मैंने उससे पूछा कि क्या तुम्हारे पति पहले की अपेक्षा ज्यादा खराब हो गये हैं? तो उस महिला ने मुझे कहा कि नहीं, वे पहले कि बजाय ज्यादा अच्छे हो गये हैं। अब वो पहले की तरह क्रोधित नहीं होते। वो ज्यादा प्रेमपूर्ण हो गये हैं, ज्यादा करुणापूर्ण हो गये हैं। लेकिन सारा घर चिंतित हो गया है। डर है कि वो कहीं हमें छोड़ न दें।

यह डर उस पत्नी का ही नहीं था। मैंने उसके पति से भी पूछा। उसने कहा कि मैं भी कुछ परेशान-सा हो गया हूँ क्योंकि शान्ति भीतर उतर रही है और जैसे-जैसे शान्ति भीतर उतरती चली जाती है वैसे-वैसे हर चीज़ भिन्न नज़र आती-जाती है। मेरी परिवार मुझे मेरा नज़र नहीं आता। ऐसा लगता है कि यह किसी और का परिवार है। मैं बच्चों के प्रति ज्यादा करुणापूर्ण हूँ, लेकिन अब वो मेरे नहीं हैं। मैं उनके लिए सबकुछ कर रहा हूँ

और करता रहूँगा परन्तु यह ऐसा ही है जैसे मैं यह सब खेल में कर रहा हूँ-नाटक में कर रहा हूँ। मैं इसमें संलग्न नहीं हूँ, इसलिए मुझे भी भय लगता है। यदि यह ऐसे ही चलता रहा, तो कुछ भी हो सकता है। किसी दिन भी मैं इन्हें छोड़ सकता हूँ।

यह जो डर है, यह अज्ञात का डर है। एक निश्चित ढाँचा पहले था, अब एक नया घटक प्रवेश कर रहा है। और यह बात इतनी जीवन्त है कि हर चीज बदलेगी। इसलिए उसने मुझसे कहा कि यदि आप कहें तो मैं ध्यान करना बन्द कर दूँ। और तब मेरे परिवार में सब बड़े प्रसन्न होंगे।

तुम भी अपनी स्वतन्त्रता से डरे हुए हो और दूसरे भी तुम्हारी स्वतन्त्रता से डरे हुए हैं, इसलिए हमारे पास एक गुलामों का समाज है। और हमारा अपने परिवार में इतना गहरा निहित स्वार्थ है, इतना कुछ लगा रखा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं है। इसीलिए तो हम स्वतन्त्रता की ओर नहीं मुड़ते।

प्रत्येक क्षण तुम चुनने को स्वतन्त्र हो। तुम अध्यात्म को हर क्षण चुन सकते हो। अथवा, तुम पुरानी आदतों को भी चुन सकते हो। पुरानी आदतों के साथ बात आसान है। तुम उन्हें जानते हो, तुम उन्हें जिये हो। कुछ भी नया नहीं है। नये के साथ ही तुम अज्ञात में अन्धेरे में प्रवेश करते हो। तुम्हें फिर से सीखना पड़ता है। अतः एक व्यक्ति जो कि स्वतन्त्रता की तरफ बढ़ रहा है उसे हर क्षण ही सीखना पड़ेगा। और वह अतीत पर निर्भर नहीं हो सकता। अतीत मदद नहीं करेगा।

लेकिन हम सब अतीत से केन्द्रित हैं। चूँकि अतीत ने हमारी एक बार मदद की थी, हम आदतों से बंध गये हैं। यह आंतरिक मन की यांत्रिकता है। जब भी तुम कुछ जानो तो फिर तुम्हें उसके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं। जब भी तुम किसी बात को आदत की तरह जान लेते हो, तो वह तुम्हारी चेतना से भीतरी रोबोट की यांत्रिकता को मिल जाती है। वह तुम्हारी यांत्रिक प्रक्रिया को हस्तांतरित हो जाती है। तब फिर तुम्हें उसकी परवाह करने की जरूरत नहीं। यांत्रिक हिस्सा अपने आप उसे करता रहेगा।

यदि तुम एक ड्राइवर हो तो, तुम बात करते रहते हो, तुम सोचते चले जाते हो, तुम गीत गाते रहते हो, अथवा तुम अपना रेडियो चालू कर सकते हो और गाड़ी चला सकते हो। तुम गाड़ी नहीं चला रहे हो। तुम्हारा रोबोट, यांत्रिक हिस्सा ही चला रहा है। तुम्हारी तो जरूरत तब होगी जब कुछ नया होगा। कोई अचानक दुर्घटना होगी। तब तुम्हारी जरूरत पड़ेगी। वरना तुम्हारी कोई भी जरूरत नहीं है। तुम आराम से कहीं भी हो सकते हो। तुम्हें अपनी कार में होने की जरा भी जरूरत नहीं है।

तब तुम यंत्रवत गाड़ी चला रहे हो, तब तुम वहाँ नहीं हो। तुम पहले ही मंजिल पर पहुँच गये और खाली तुम्हारा रोबोट पार्ट ही, यांत्रिक हिस्सा ही गाड़ी चला रहा है। तुम्हारी आत्मा उड़ कर सितारों पर अथवा बादलों पर पहुँच सकती है-कहीं भी, किन्तु रोबोट पार्ट ही सब कुछ कर रहा है। यह तुम्हें सुविधाजनक प्रतीत होता है। अतः जब हर चीज़ एक रूटीन में आ जाती है तो वह तुम्हें सुविधापूर्ण लगता है। कुछ भी ज्यादा हो जाये तो तुम्हें जागरूक होना पड़े, सजग रहना पड़े। जब तुम ड्राइविंग सीखते हो तब बड़ी समस्या होती है। तुम्हें सीखने में बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है क्योंकि तब तुम्हें होश रखना पड़ता है।

बेहोशी, अचेतना एक ऐसा नशा है, चेतना, जागरूकता एक ऐसा श्रम है। जब भी तुम कुछ नया सीख रहे होते हो, तो तुम्हें प्रतिपल होश रखना पड़ता है। वह होश रखना ही एक बड़ा श्रम है, एक तनाव है। ऐसा है नहीं, लेकिन चूँकि हम हमेशा ही यांत्रिकता में चलते हैं, इसलिए ऐसा होता है। एक आदमी जो कि अध्यात्म की भाषा में सोच रहा हो, जागरूकता की भाषा में सोचना चाहिए। बढ़ती हुई जागरूकता से। और सजगता तभी आती है जबकि तुम नये-नये प्रयत्नों का सामना करो।

जैविक शास्त्री कहते हैं कि पशु एक ऐसे जगत में रहते हैं जहाँ कि सजगता की जरूरत नहीं होती-एक नियमबद्ध चक्र में। वे ऐसे कृत्य करते हैं जो कि एक से होते हैं। एक पशु का जन्म दूसरे पशु के जन्म से भिन्न नहीं हो सकता। मृत्यु भी भिन्न नहीं होती, यौन भी अलग नहीं होता। प्रत्येक बात वैसी ही होती है क्योंकि हर बात वृत्ति के द्वारा की जाती है। एक चिड़िया घोंसला बनाती है, एक पशु गुफा बनाता है, एक दूसरा पशु कुछ और बनाता है। वे अपनी वृत्ति से उसे बनाते हैं। उन्हें उसे सीखना नहीं पड़ता। उन्हें कभी सिखाया भी नहीं जाता। यह उनका यांत्रिक अंश है, यह उनके कोषों में अंतर्निहित है। उन्हें वह करते रहना ही पड़ेगा।

यहाँ तक कि यदि एक चिड़िया को बिना उसके माता-पिता के भी पाला जाये, और दूसरी चिड़ियों को भी उससे न मिलने दिया जाये, तब भी जब उसका समय पक जायेगा, वह घोसला बनाना शुरू कर देगी। औ घोसला ठीक वैसा ही होगा जैसा कि उसके पूर्वज शताब्दियों से बनाते आ रहे हैं। उन्हें किसी ने भी नहीं सिखाया, किसी सजगता की भी जरूरत नहीं है। यह उनके कोषों में मौजूद है। यह वृत्ति के अनुसार हो रहा है-एक यांत्रिक चीज़-इसलिए वे उसे करते हैं।

मनुष्य के साथ कठिनाई है। मनुष्य को सब कुछ सिखाना पड़ता है-हर चीज़। अब जैविक-शास्त्री कहते हैं कि शीघ्र ही, इस शताब्दि के बाद आदमी को यौन की भी शिक्षा देनी पड़ेगी, तुम्हें उसमें प्रशिक्षण देना पड़ेगा क्योंकि अब सेक्स भी वृत्ति पर निर्भर नहीं है जैसे कि पहले था। इसलिए तुम्हें लगेगा कि आज सारी दुनिया में यौन की पुस्तकों का विस्फोट हुआ है जैसे कि ड्राइविंग सीखने की किताबें हैं। अब उनके पास किताबे हैं कि प्रेम भी कैसे करें-कैसे कुशल यौन को उपलब्ध हों।

किसी भी पशु को सेक्स के बारे में जानने की जरूरत नहीं है, फिर आदमी को ही क्यों? आदमी होने के साथ ही से सब कुछ सीखना पड़ता है। क्यों? क्योंकि मनुष्य में जो उसका रोबोट अंश है वह द्वितीय है और चेतना आ गई है, जो कि प्राथमिक है। यह केन्द्रीय शक्ति है। तुम्हें सभी कुछ सीखना पड़ेगा। और तब चुनाव आता है। तुम्हें चुनाव करना पड़ेगा कि क्या सीखना और क्या नहीं सीखना।

अध्यात्म तुम्हारा महानतम चुनाव है। यह तुम पर निर्भर है। तुम चाहो तो संसार को आध्यात्मिक दृष्टि से देख सकते हो, और तुम चाहो तो संसार की तरफ भौतिक दृष्टि से देख सकते हो। कोई तुम्हें नहीं कहेगा कि यह मत चुनो और कोई तुम्हें बाध्य नहीं कर सकता। यदि तुम भौतिक दृष्टिकोण अपनाओ तो तुम्हारा जीवन एक प्रकार का होगा और यदि तुम्हारा आध्यात्मिक दृष्टिकोण हो, तो तुम्हारा जीवन बिल्कुल ही भिन्न होगा। यही स्वतन्त्रता है।

जैविकशास्त्री कहते हैं कि यह चेतना मनुष्य के जीवन में आई क्योंकि बहुत पहले, कम-से-कम बीस लाख वर्ष पहले, कुछ वनमानुषों ने-यानी मानव के पूर्वजों ने पेड़ से नीचे उतरकर चार के बजाय दो पैरों पर चलना शुरू कर दिया। बजाय चार पैरों के उन्होंने दो पैर से चलना प्रारंभ कर दिया। दो हाथ उसके खाली हो गये। इन दो हाथों के मुक्त होने से बहुत-सी बातें हो गईं और उनमें सबसे बड़ी बात यह हुई कि यह चेतना का हिस्सा भीतर आ गया। जब वन मानव वृक्षों पर थे, तब उन्हें कोई खतरा नहीं था। वे सुरक्षित थे, अपने पेड़ों पर। कोईशेर उन्हें नहीं मार सकता था। कोई चीता उन पर हमला नहीं कर सकता था। वे अपने वृक्षों पर बैठे सुरक्षित थे। वे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर चले जाते थे। और वह एक यांत्रिक बात थी-अन्तर्निहित वंश परम्परागत।

और यह अभी तक अज्ञात है कि आखिर क्यों थोड़े से वन मानुष ही जमीन पर उतर आये। ऐसा लगता है कि इसके बहुत से कारण हैं। लगता है कि या तो अचानक आबादी का भयानक विस्फोट हो गया। वे संख्या में

इतने हो गये कि उन्हें रहने के लिए नये स्थान की खोज करनी पड़ी। वृक्ष कम थे और वे ज्यादा हो गये। अथवा कई वर्षों तक वर्षा न हुई और वृक्ष सूख गये और मर गये, उनको नीचे उतरना पड़ा। लेकिन कोई भी कारण क्यों न हो, ये सब अनुमान की बातें हैं।

अभी-अभी एक बहुत बड़े वैज्ञानिक ने अपना मत दिया है कि मानवता एक रुग्णता से उत्पन्न हुई। कुछ वनमानुष, चिपांजी बहुत ही रुग्ण हो गये किसी विशेष वाइरस से-एक विशेष रोग हो गया। चिपांजी इतने रुग्ण हो गये कि वे पेड़ों पर लटके हुए नहीं रह सकते थे। वे इतने कमजोर हो गये कि उन्हें पृथ्वी पर उतर आना पड़ा। यह संभव है। जो भी कारण हो, परनतु इतना पक्का है कि जब वे जमीन पर उतर कर आ गये तो उन्हें अधिक सचेत रहना पड़ा। तब उनकी यांत्रिक आदतों से काम नहीं चलेगा। उनकी अन्तर्निहित वृत्तियाँ पर्याप्त नहीं थीं। उन्हें अनजान जगह पर चलना था। चलना ही नहीं, चलने की भंगिमा, उसकी प्रक्रिया ही नई थी। उनके शरीर उससे परिचित नहीं थे। दो पाँवों से चलने के साथ ही वे दो पैरों वाले जानवर हो गये, चार पैरों वाले जानवरों के बजाय। उनके कोषों में इस बात का पहले से कोई ज्ञान नहीं था। इसीलिए, जब आदमी पैदा होता है, तब एक बच्चा उत्पन्न होता है तो उसे चलना सीखना पड़ता है। यह, अभी तक भी स्वाभाविक वृत्तियों के अनुसार नहीं है।

एक घोड़ा पैदा होता है, वह दौड़ सकता है। एक बछड़ा पैदा होता है, वह दौड़ सकता है। यदि तुम एक छोटे बच्चे को ऐसी जगह रख दो, जहाँ कि कोई भी नहीं चलता हो, और वह नकल नहीं कर सके तो वह अपने सारे जीवन नहीं चलेगा।

कुछ सियारों की गुफाओं में कुछ बच्चे पाये गये जो कि उन सियारों के साथ ही बड़े हुए। वे चल नहीं सकते थे। अभी कोई चार-पाँच वर्ष पहले उत्तर प्रदेश के जंगलों में एक चौदह वर्ष का लड़का सियारों की एक गुफा में पाया गया। वे उसे किसी गाँव से उठा ले गये होंगे और फिर उन्होंने उसे पाल लिया। चौदह साल का बच्चा था लेकिन वह चल नहीं सकता था। वह दो पैरों वाला नहीं था, वह अभी भी चार पैरों वाला था। वह चार पैरों पर ही चलता था और वह सियारों की तरह ही चलता था, न कि आदमी की तरह।

अभी भी चलना एक प्रयास है। इसलिए जब बच्चा चलने लबगता है तो उसके माँ-बाप प्रसन्न होते हैं क्योंकि यह बात कीमती है-एक उपलब्धि है। हमारी भाषा में भी कुछ ऐसी चीजें़ हैं, जो कि इस रुख को बतलाती हैं। हम कहते हैं कि कोई आदमी अपने पाँव पर खड़ा हो गया है, वह अपने पाँव पर ही खड़ा है। यह बात कीमती है, बहुमूल्य है, प्रशंसनीय है। हम किसी को निंदित करते हैं जब कि हम कहते हैं कि तुम अभी भी अपने पाँव पर खड़े नहीं हुए।

चूँकि आदमी एक नई स्थिति में आ गया वृक्षों से जमीन पर उतर कर-जिसमें कि सभी कुछ नया था, जिसमें कि यांत्रिक हिस्सा सहायक नहीं होगा, जिसमें कि खाली वृत्तियाँ काम न देंगी-इसीलिए बुद्धि का विकास हुआ। उसे सजग होना पड़ा, और उसे हर क्षण सतर्क होना पड़ा क्योंकि चारों तरफ इतने खतरे थे। वह दुश्मनों से घिरा हुआ था। और वह कमजोर था क्योंकि अब वृत्तियाँ मदद नहीं करेंगी। यह खतरनाक स्थिति उसकी सतर्कता के लिए पहला विद्यालय थी। उसे सचेत रहना था।

अब उसने बहुत ही सुरक्षित स्थिति प्राप्त कर ली है, इसलिए वह रोबोट की तरह हो सकता है। सचेत रहने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। इसीलिए पैनापन, सजगता, सतर्कता को फिर से चुनना पड़ेगा। यदि तुम जंगल में चले जाओ और जंगली जानवरों के साथ रहना शुरू कर दो, तो वह कोई वास्तविक खतरा नहीं है। तुम

अपने को उससे भी अभ्यस्त कर सकते हो। वह भी तुम्हारे आंतरिक रोबोट का हिस्सा हो जाएगा। मनुष्य के लिए क्षण-क्षण जीना, वर्तमान में, सजग, सचेत, जागरूक। और वह तुम्हारा अकारण चुनाव होगा।

इसे इस भाँति देखें। विज्ञान कारणगत है। उसका अर्थ होता है कि वह अतीत-केन्द्रित है। यदि कुछ भी खोजना हो, तो विज्ञान अतीत में जायेगा। यदि तुम बीमार हो, तो विज्ञान तुम्हारे पिछले इतिहास में जाएगा, तुम्हारे केस हिस्ट्री में जाएगा कि आखिर यह रोग क्यों हुआ। विज्ञान भविष्य में नहीं जा सकता। सह सदैव भूत में ही जाता है। यदि तुम अन्धे हो, तो विज्ञान तुम्हारे अतीत की खोज करेगा, तुम्हारे माता-पिता के अतीत में उतरेगा। वह अतीत में जाता है, वह कारण जानने के लिए कोशिश करता है। तब परिणामों का पता चल सकता है।

धर्म भविष्योन्मुख है, अतीतोन्मुख नहीं। इसलिए "क्यों" का उत्तर नहीं दिया जा सकता-वैज्ञानिक भाषा में। वह भविष्य-केन्द्रित है। तुम उसे समझ सकते हो, ऐसा नहीं है कि कुछ है जो तुम्हें अध्यात्म की तरफ ले जाने के लिए कारण है। बल्कि कुछ तुम्हें पुकार रहा है आध्यात्मिक होने के लिए। कारण नहीं है, बल्कि पुकार है-तुम्हारे लिए।

सदा-सदा आध्यात्मिक आदमियों ने कहा है कि एक पुकार मैंने सुनी। वह पुकार भविष्य से आती है, न कि अतीत से। यह अन्त से संबंधित है-न कि स्रोत से। वहाँ चुनाव की स्वतन्त्रता है। जो भी तुम्हारी नियति है, उसे तुम चुन सकते हो। तुम चुनाव कर सकते हो जो भी उपलब्ध करना चाहो और होना चाहो। यदि तुम भूखे हो, तो तुम भोजन ढूंढते हो, यह कारणगत है। यदि तुम भीतर तनाव महसूस करते हो और तब ध्यान का चुनाव करते हो तो यह भी कारणगत है। तब तुम्हारा ध्यान भी एक वैज्ञानिक प्रयास ही है।

परन्तु यह बिना कारण के है यदि तुम कहो कि मुझे कुछ भी पता नहीं कि क्यों, लेकिन कोई पुकार आती है। तुम्हारी ओर से पुकार आती है। और मुझे इसे दिशा में जाना ही पड़ता है। मुझे किसी अज्ञात की सुगन्ध आती है। और मुझे इस दिशा में जाना ही पड़ता है। मुझे किसी अज्ञात की सुगन्ध आती है। वह मेरे अतीत से नहीं आती, वरन मेरे भविष्य से आती है, मुझे निमंत्रित करती हुई। मैं जाऊगा। यह खतरनाक है क्योंकि मुझे भी पता नहीं कि क्या होने जा रहा है। मुझे कुछ भी पक्का पता नहीं है कि उसका क्या परिणाम होगा, लेकिन मैं जाऊँगा। तब यह एक छलांग है। और स्मरण रहे कि ऐसा इसी युग में नहीं है। ऐसा सदैव से ही है और ऐसा हमेशा ही होता रहेगा।

मुझसे यह भी पूछा गया है कि क्या मुझे लगता है कि वर्तमान पीढ़ी कृष्ण, लाओत्से, क्राइस्ट जैसे बुद्धजनों को पैदा करने के लिए सक्षम है? अध्यात्म समय से कोई मतलब नहीं रखता-समय-अपना युग। एक लाओत्से किसी खास समय के कारण पैदा नहीं होता। एक बुद्ध किसी खास युग के कारण नहीं जन्मते। बुद्ध के समय में कितने ही लोग थे, लेकिन एक ही बुद्ध हुए। युग तो सबके लिए एक-सा ही था, समय तो सब के लिए एक जैसा ही था।

समय बिल्कुल असंगत है अध्यात्म का फूल खिलना कोई समय पर निर्भर नहीं होता।

हाँ, दूसरी चीज़ें समय पर निर्भरहैं। उदाहण के लिए, तुम बुद्ध के जमाने में हवाई जहाज में नहीं उड़ सकते थे। तुम्हें बैलगाड़ी में ही यात्रा करनी पड़थी थी क्योंकि विकास के कुछ खास समय के बाद ही हवाई-जहाज संभव है। अब तुम हवाई-जहाज में उड़ सकते हो, लेकिन अभी भी तुम दूसरे सौर ग्रहों को नहीं जा सकते। तुम कुछ भी करो परन्तु तुम वहाँ नहीं जा सकते। करीब बीस सदियां और अभी लगेगी जबकि हम दूसरे

सौर मण्डल पर जा सकेंगे। सौर मण्डल के पार जाने में कम-से-कम अभी बीस शताब्दियाँ और लगेंगी। यह धीमा विकास है।

बहुत-सी चीज़ें भी विकसित करनी पड़ेंगी। एक बैलगाड़ी को हवाई-जहाज होना पड़ेगा, इसके अलावा भी बहुत-से कदम उठाने पड़ेंगे। अतः बुद्ध के जमाने में भी तुम बहुत-सी बातें नहीं कर सकते थे, जहाँ तक बाहरी दुनिया का संबंध है। परन्तु जहाँ तक भीतरी जगत का संबंध है, कोई भी क्षण, कोई भी समय उतना ही ठीक है जितना कि अन्य कोई। क्योंकि जैसे ही तुम भीतर जाते हो, समय खो जाता है।

इसे समझना पड़ेगा। एक बुद्ध ध्यान कर रहे हैं, वे भीतर गहे चले गये हैं। कोई समय नहीं है वहाँ समय समाप्त हो जाता है। उन्हें समय का पता भी नहीं है। समय रुक जाता है। यदि तुम भीतर जाओ तो समय रुक जाता है। बुद्ध जो कि पच्च्ीस सौ वर्ष पूर्व ध्यान कर रहे थे समय से बाहर हो गये थे, तुम आज ध्यान करते हुए भी समय से बाहर चले जाते हो। और तुममें और बुद्ध में कोई अन्तर नहीं होगा क्योंकि सारे भेद समय के भेद है।

तुम कुछ खास कपड़े पहनते हो जो कि बुद्ध नहीं पहन सकते, तुम बहुत-सी बातें जानते हो, जो कि बुद्ध नहीं जानते। तुम एक अलग जगत के आदमी हो-एक भिन्न शिक्षा, एक भिन्न ही संस्कृति और बुद्ध एक दूसरे ही जगत के आदमी थे। लेकिन जब तुम भीतर जाते हो, तो तुम संस्कृति, समाज, शिक्षा, इन सब के पार निकल जाते हो। जब तुम भीतर जाते हो तो तुम एक दूसरे ही जगत में प्रवेश कर जाते हो जो कि इस समाज के द्वारा बनाया हुआ नहीं है। और तब तुम जा सकते हो। लेकिन मनुष्य की आदत है यह सोचता है कि हमारा युग बुरा है कि हमारा समय खराब है। यह मनुष्य की आदत है।

और ऐसा आज ही नहीं है। ऐसा सदा ही था। बेबीलोन में एक बहुत पुराना रेकार्ड मिला है। वह कम-से-कम सात हजार वर्ष पुराना है। लेकिन यदि तुम उसे कल सुबह के अखबार में छाप दो-संपादकीय की भाँति तो उससे काम चलेगा। तुम्हें उसमें कुछ भी बदलने की जरूरत नहीं है। वह कहता है, यह अंधकार का युग है, यह घूसखोरी का जमाना है, यह अनैतिकता और पाप का समय है। सब कुछ जोशुभ था, खो गया, सब जो विद्वतापूर्ण था विलीन हो गया। युवा विद्रोही हो गये हैं। पत्नी पति की नहीं सुनती, बेटा पिता की नहीं सुनता। शिक्षकों का शिष्य आदर नहीं करते। यह सात हजार वर्ष पुराना लेख है। यह युग के बारे में जानते हैं और जो भी हमारे चारों ओर है, उससे परिचित हैं। और हम अपने पड़ोसी की बुद्ध से तुलना करने लग जाते हैं। हमें मालूम नहीं है कि उस समय कैसे पड़ोसी थे। बुद्ध आपके पड़ोसी नहीं थे। बुद्ध तो केवल एक ही हैं। अतः हम अतीत के सबसे श्रेष्ठ आदमी के साथ आज के सबसे बुरे आदमी को तौलते हैं, इसीलिए हर काल हमें पाप का काल प्रतीत होता है।

हम जीसस के बारे में सोचते हैं, हम जुदास के बारे में नहीं सोचते हैं। हम राम के बारे में ख्याल करते हैं, हम रावण के बारे में नहीं सोचते हैं। हम बुद्‌ध के बारे में सोचते हैं, हम देवदत्त के बारे में नहीं सोचते। वह बुद्ध से ईर्ष्या करता था, केवल इसीलिए कि लोग बुद्ध का इतना मान क्यों करते हैं। वह बुद्ध का सिर्फ चचेरा भाई था। जब उसने देखा कि इससे काम नहीं चलेगा तो उसने संसार त्याग दिया। उसने केवल इसीलिए संसार त्याग दिया क्योंकि उसने देखा कि लोग उसी का आदर करते हैं जो कि संसार का त्याग कर देता है। अतः उसने इसीलिए संसार छोड़दिया और गहरी तपश्चर्या में चला गया। उसने ध्यान का अभ्यास किया, योग राधा, सबकुछ किया-केवल गौतम से उपर उठने के लिए।

उससे भी कुछ नहीं हुआ, क्योंकि तुम अपने को जबरदस्ती बुद्ध नहीं बना सकते, तुम नकल नहीं कर सकते। परन्तु देवदत्त को तो लोग भूत गो, लेकिन बुद्ध अभी भी हैं। सारा युग विस्मृत को गया, केवल बुद्ध बच रहे। सब कुछ विलीन को गया, लेकिन बुद्ध शेष रह गये। और त्तब हम अपने काल को युद्ध से तौलते हैं। और उसी से यह समस्या उठ खडी होती है कि वया आज भी बुद्ध या जीसस पैदा हो सकते है 7 यह असंभव प्रतीत होता है। केसे आज के इस अन्धकार के, घूसखोरी के, अनैतिकता के युग में यह हो सकता है? यह केसे संभव है?

एक दूसरी बात भी यहाँ प्रवेश करती है : जब कोई मनुष्य बीस शताब्दियों पहले मर चुका होता है तो यह हम भूल ही जाते हैं कि हमने उसके साथ कैसा बर्ताव किया था, जबकि वह जिन्दा था। जीसस को क्रॉस पर लटका दिया गया, इसलिए नहीं कि वे बहुत बड़ेमसीहा थे अथवा महान बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति थे, बल्कि सिर्फ इसलिए कि वे अनैतिक, अनुशासनहीन तथा परम्परा के विरुद्ध व्यक्ति थे। उनका आचरण किमी सम्मानीय व्यक्ति जैसा नहीं था। और जब उन्हें मारने के लिए कहा गया तो यह निर्णय सर्वसंमति से लिया गया था।

कम, बहुत कम लोग उनके साथ थे, और सारा देश उनके खिलाफ था। उनके सिर्फ बारह शिष्य थे और वे भी उनको छोड़कर भाग गये जबकि उन्हेंक्रास पर लटकाने का समय आया। वे भाग गये। वे भी भीतर तो संदिग्ध थे। जब सब लोग उनके खिलाफ थे, तोजरूर कुछ गलत बात होगी। जीसस को "एक हिप्पी" की तरह क्रॉस पर लटका दिया गया-एक आवारा आदमी की तरह।

तुम्हें आश्चर्य होगा यह जाकर कि जीसस की हत्या का कोई रिकॉर्ड नहीं है। यहूदियों ने इस घटना का कहाँ पर भी उल्लेख नहीं किया। वह एक इतनीछोटी धटना थी कि किसी भी यहूदी ने अपने इतिहास में उसका उल्लेख नहीं किया है। रोम के लोगों ने इसको रिकॉर्ड नहीं किया हैंयदि तुम जीसस हुएकि नहीं यह देखने के लिए यदि तुम कोई भी ऐतिहासिक रिकॉर्ड ढूंढ़ने जाओ, तो तुम्हें एक भी ऐसा रिकर्डिं नहीं मिलेगा। कुछ भी नहीं है। शिष्यों के द्वारालिखा गया बाइबिल का रिकॉर्ड ही एकमात्र रिकॉर्ड है।

इसलिए कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें कि जीसस के होने पर भी शंका है। वे कहते हैं कि यह आदमी कभी हुआ ही नहीं। वे कहते हैं कि यह जीसस क्राइस्ट एक नाटक था जो कि हर गाँव में खेला जाता था-कि यह सिर्फ एक नाटक था, न कि ऐतिहासिक तथ्या और बाद में धीरे-धीरे लोग भूल ही गये कि यह एक ड्रामा था और यह इतिहास बन गया। यदि बाइबिल खो जाये तो कोई रिकॉर्ड नही है कि जीसस कभी हुए भी थे। यदि वे एक बहुत महत्वपूर्ण, प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, यदि उनसे वह युग प्रभावित हुआ था, तो यह असंभव है समझना कि क्यों उनका कोई रिकॉर्ड नहीँ है।

यह ऐसा ही है जैसे कि वे हुए ही नहीं। वे अज्ञात थे, कोई उनके बारे में कुछ नहीं जानता था। बाद में, जबकि शिष्य इक्ट्ठे हुए और उन्होंने एक संगठन निर्मित किया, तो धीरे-धीरे वे जाने गये। अन्यथा वे एक अनजान यहाँ के लड़के थे। यदि जीसस तुम्हें मिल जायें तो तुम उनको नहीं पहचान सकोगे। यदि अचानक तुम्हें चुद्ध मिल जायें और कोई तुम्हारा परिचय नहीं कराये, तो तुम उन्हें भी नहीं पहचानोगे-क्योंकि यह आन्तरिक आलोक इतनी सूक्ष्म व गुप्त शक्ति है कि जब तक तुम भी सहयात्री नहीं हो, और जब्र तक तुम भी उसी आयाम में यात्रा नहीं कर रहे हो, तुम उन्हें नहीं पहचान सकते।

अतः जब तुम पूछते को कि क्या आज भी बुद्ध या जीसस का पैदा होनासंभव है तो तुम फिर एक अर्थहीन प्रश्न पूछ रहे हो। कहीं भी, किसी भी समयजीसस संभव है, बुद्ध का होना संभव है, क्योंकि यह संभावना तुम्हारे आन्तरिकस्वरूप का छोर है न कि धटनाओं के क्रम का जिसे कि हम इतिहास कहते हैं। वह इतिहास कीबात

नहीं, यह समय से संबंधित नहीं। वह हमारे स्वरूप काअंतरतम लोक है जो कि शाश्वत में जीता है, समय में नहीं। तुम बुद्ध को सकते हो। एक छलांग लो और तुम बुद्ध हो जाओगे। और तुम छलांग न- लो इससेसमय बाधा नहीं देगा।

यह समय की बात ही असंगत है। इसे ठीक से समझ लेना चाहिए औरइस पर गहराई से सोच लेना चाहिए क्योंकि हम यड़े चालाक लोग हैं और स्वयंको धोखा देने में यड़े चतुर हैं। यदि कोई कहता है कि आज के चुग में बुद्धका होना संभव नहीं है तो फिर तुम सोचने लगते हो कि यह मेरा दायित्व नहीं है कि रूपान्तरित होऊँ। और ऐसे धर्म हैं जो कि कहते हैं कि आज के चुग मेंबुद्ध होना संभव नहीं है। और एक तरह से सभी धर्म यह कहते हैँ। कोई भीसंगठित धर्म यहाँ कहेगा कि जीसस तो ष् सिर्फ एक बार ही पैदा को सकते हैं। वे श् ही केवल एकमात्र परमात्मा के बेटे हैं, और कोई भी पुनः जीसस नहीं हीसकता। तुम केवल क्रिश्चयन हो सकते हो, श्न कि क्राइस्ट।

जैन कहते हैं कि तुम तीर्थकर नहीं हो सकते, तुम एक महावीर नहीं होसकते। कोटा पूरा को गया। केवल चौबीस ही तीर्थकर को सकते हैं। पच्चीसबाँनहीं ही सकता। मुसलमान तुम्हें पैगम्बर नहीं होने देने, क्योंकि मुहम्मद आखिरीपैगम्बर थे और वे खुदा से पूरा आखिरी सन्देश लेकर आये हैं। अब उसमें कोई सुधार संभव नहीं है, और उसकी कोई जरूरत भी नहीं है, वे कहते हैं। हर एक संगठित धर्म यही कहेगा कि मुहम्मद या महावीर होने की कोई भी जरूरत नहीं है, इसलिए केवल अनुकरण करो। तुम केवल अनुकरण करने वाले हो सकते हो।

क्यों? क्यों, वे ऐसा कहते हैं? उसके दो कारण हैं-बहुत गहरे में तुम भी यह बात पसन्द करते हो और फिर तुम्हारे ऊपर जिम्मेवारी भी नहीं रहती तुम अपने को बदलो। समय खराब है, अतः तुम जीसस नहीं हो सकते। यह तुम्हारा दायित्व नहीं है। धर्म कहेगा कि इस कलियुग में, इस पाप से भरे युग में कोई भी जीसस नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हें नहीं होना। तब तुम्हारी कोई जिम्मेवारी नहीं हो, तो समय ही ऐसा है जो कि बाधा देता है, अन्यथा तुम कभी के ही जीसस की भाँति खिल गये होते। तुम तो तैयार हो ही लेकिन समय ठीक नहीं है।

प्रत्येक अपने गहरे में इसे पसन्द करता है-इस बात की प्रशंसा भी करता है। तब तुम जो भी चाहो, हो सकते हो। तब तुम पर कोई बोझ नहीं है कि तुम भी बुद्ध की तरह न खिलो। इस गहरे सन्तोष और इस चालाक प्रवंचना के कारण, हम प्रसन्न हैं। हम सोचते हैं कि हम केवल अपराधी हो सकते हैं, हम केवल कमजोर प्राणी हो सकते हैं। बस इतना हो सकता है जो कि इस युग में संभव है।

और दूसरी बात, हर एक धर्म सोचता है कि यदि बुद्ध फिर से पैदा हो तो फिर बुद्ध की कोई संगठित संस्था नहीं हो सकती क्योंकि दूसरा आनेवाला बुद्ध उसको बिखेर देगा। ईसाई किसी और को फिर से क्राइस्ट नहीं होना देना चाहते। दूसरा क्राइस्ट सारे ईसाई साम्राज्य को तितर-बितर कर देगा। क्योंकि ऐसे लोग अपरम्परावादी होते हैं, ऐसे लोग किसी संप्रदाय के नहीं होते, ऐसे लाग सदैव ही स्वतन्त्र होते हैं, पूर्णरूप से स्वतन्त्र। वे किसी भी संस्था को नष्ट कर देंगे, यदि वे पुनः जन्म लें।

इसलिए कोई भी धर्म यह पसन्द नहीं करेगा कि जीसस किसी भी रूप से प्रकट हों। पोप उनका प्रतिनिधि है और वह काफी है, जीसस की कोई भी आवश्यकता नहीं है। इसलिए हर एक धर्म इस बात पर जोर देता है कि अभी, इस क्षण कुछ भी नहीं हो सकता। सिर्फ तुम ज्यादा से ज्यादा अनुसरण कर सकते हो। पूजा करो और अनुसरण करो। केवल भीड़ में अनुयायी हो जाओ, अकेले व्यक्ति होने की कोशिश ही मत करो।

बुद्ध एक अकेले व्यक्ति थे, और वे बौद्ध नहीं थे। वे हिन्दू घर में पैदा हुए थे, और तब वह संस्था उन्हें बर्दाश्त न कर सकी। कोई भी संस्था नहीं कर सकती। जीसस यहूदी की तरह जन्म, वे यहूदी ही मरे। वे ईसाई नहीं थे। परन्तु चूँकि यहूदी लोग उस चीज को नहीं संभाल सके, चूँकि वे समाहित नहीं किये जा सके, उन्हें निकाल बाहर कर दिया गया। और चूँकि उन्हें बाहर फेंक दिया गया, वह बीज ईसाईयत के रूप में फूटा।

बुद्ध हिन्दू थे। वे हिन्दू की तरह ही जिये और हिन्दू की तरह ही मरे। वे बौद्ध नहीं थे। लेकिन हिन्दु लोग उन्हें अपने में समाहित नहीं कर सके क्योंकि यदि वे बुद्ध को समाहित करते हैं तो पूरे समाज को बदलना पड़ता है। वे समाहित नहीं किये जा सके, इसलिए उन्हें निकालकर फेंक दिया गया।

यदि आज बुद्ध बौद्ध समाज में पैदा हों, तो उन्हें वहाँ से भी निकाल दिया जायेगा। यदि आज ईसाई समाज में जीसस का जन्म हो, तो वे निष्कासित कर दिये जायेंगे। ऐसा नहीं है कि बौद्ध अथवा हिन्दू बुद्ध अथवा जीसस के विरुद्ध हैं, कोई भी संस्था उनके खिलाफ हो ही जायेगी-उनकी अपनी संस्था भी, क्योंकि संस्थाएँ परम्परारहित कि वे कब क्या करेंगे।

इसीलिए एक जीवित बुद्ध पुरुष के आसपास कोई संस्था निर्मित नहीं कर सकते। यह बहुत ही कठिन है। तुम उनके साथ कभी आराम से नहीं हो सकते कि वह कब क्या कहेगा, कि कब वह क्या करेगा। जब एक गुरु मर जाए, तो संस्था निर्मित हो सकती है। अब तुम जानते हो कि गुरु क्या चाहता है, वह कैसे व्यवहार करता है। अब तुम हर एक चीज़ को केटेगरीज़ में बांट सकते हो। अब तुम चीजों को अलग-अलग कर सकते हो, बांट सकते हो, विश्लेषण कर सकते हो। अब एक संस्था सींव है।

केवल एक मृत गुरु ही एक संस्था को बनने देगा। एक जीवित गुरु के साथ, बीज, प्रतिदिन बढ़ रहा है, बदल रहा है, रूपान्तरित हो रहा है, अज्ञात में प्रवेश कर रहा है। तुम उसके साथ निश्चित नहीं हो सकते। इसलिए केवल मृत गुरु के साथ ही संस्थायें पैदा होती हैं। और जब संस्थाएँ पैदा हो जाती हैं, तो तुम जीसस और बुद्ध के बारे में इतना ऊँचा कभी भी नहीं सोच सकते।

इसलिए ये दो बातें याद रखो : एक, धर्म एक सतत प्रक्रिया है। वह किसी भी काल में ठहरती नहीं। और दूसरी, अध्यात्म एक व्यक्तिगत घटना है। यदि तुम उसे चुनते हो, तो वह तुम्हारे साथ घटित होगी। लेकिन कोई उसे खरीद नहीं सकता। उसके लिए "सम्पूर्ण संकल्प" चाहिए।

बुद्ध और जीसस जैसे लोग किसी भी युग में बंधे हुए नहीं हैं। अभी इस क्षण भी लोग है जो कि बुद्धत्व को उपलब्ध हैं, लेकिन तुम उन्हें पहचान नहीं सकते। समाज को उन्हें पहचानने के लिए सदियाँ लग जायेंगी। जब उन्हें मरे हुए वर्षों बीत जायेंगे, तब कहीं जाकर समाज पहचान पाएगा कि वे कोई विरले लोग थे- कि कुछ अपूर्व अतीत में घटित हुआ था।

मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं। नीत्शे ने दुनिया में एक बहुत ही आश्चर्यजनक पुस्तक लिखी है- "दस स्पेक जरथुस्त्र"। इस किताब में उसने एक कहानी कही है। एक पागल आदमी बाज़ार में जाता है और हर एक आदमी से पूछता है, उनकी आँखों में झांकता है और पूछता है-"क्या तुमने परमात्मा को देखा है? कहाँ है परमात्मा? मैं उसे ही खोज रहा हूँ। मैं परमात्मा कोढूंढ रहा हूँ। कहाँ है परमात्मा?" हर एक हँस देता है। सचमुच ये सब आस्तिक हैं, लेकिन वैसे ही आस्तिक हैं जैसे कि होते हैं। यह उनके लिए एक औपचारिकता की बात है। वे सोचते हैं कि इस आदमी का दिमाग खराब हो गया है। कोई कहता है, सचमुच परमात्मा है और उसने इस जगत को बनाया है। लेकिन अब बात खत्म हो गई। न हमें उससे कोई मतलब है, और न उसे हमसे। तुम क्यों खोज रहे हो

उसे? क्या है काम? क्या पागल हो गये हो? ये बातें बातचीत करने अथवा लिखने-लिखाने के लिए ठीक हैं-कि परमात्मा है, अतः उसे खोजो लेकिन क्या तुम सच में ही उसे खोज रहे हो?

और वह आदमी हर एक की आँखों में झांकता है और कहता है, क्या तुमने परमात्मा के बारे में कुछ सुना है? कहाँ है वह? तब सारी भीड़ इकट्ठी हो जाती है उसके चारों तरफ और लोग कहते हैं, "हमने लम्बे अर्से से उसके बारे में कुछ नहीं सुना। तुम कहीं और जाओ। बाजार को गड़बड़ न करो।" वह आदमी कहता है, "मैं तुम्हें एक समाचार देने आया हूँ। मैं उसे नहींढूंढ़ रहा हूँ मैं तो सिर्फ इतना ही जानने आया हूँ कि क्या तुमने उसके बारे में अभी अभी कुछ सुना है? क्या तुम्हें पता है कि वह मर गया है?" अब लोग सचमुच सोचते है कि यह आदमी पागल हो गया है। जब वह खोज रहा था, तब भी वह पागल था, और जब वह कह रहा है कि परमात्मा मर गया है तब वह और भी ज्यादा पागल है। कह रहा है कि परमात्मा मर गया है तब वह और भी ज्यादा पागल है।

हम मृत और फिर भी जवित परमात्मा में विश्वास करते हैं-मृत ताकि वह हमें स्पर्श नहीं कर सके, और जीवित ताकि हम रविवार को उसकी पूजा कर सकें। लेकिन यह आदमी पागल है। या तो यह सोचता है कि वह अभी भी जिन्दा है और उसे खोजा जा सकता है, अथवा यह सोचता है कि ईश्वर मर गया है। अतः वे उससे पूछते हैं कि तुम्हें यह किसने कहा? वह कहता है कि मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। और इससे भी ज्यादा पागल है। कह रहा है कि परमात्मा मर गया है तब वह और भी ज्यादा पागल है।

हम मृत और फिर भी जीवित परमात्मा में विश्वास करते हैं-मृत ताकि वह हमें स्पर्श नहीं कर सके, और जीवित परमात्मा में विश्वास करते हैं-मृत ताकि वह हमें स्पर्श नहीं कर सके, और जीवित ताकि हम रविवार को उसकी पूजा कर सकें। लेकिन यह आदमी पागल है। या तो यह सोचता है कि वह अभी भी जिन्दा है और उसे खोजा जा सकता है, अथवा यह सोचता है कि ईश्वर मर गया है। अतः वे उससे पूछते हैं कि तुम्हें यह किसने कहा? वह कहता है कि मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। और इससे भी ज्यादा रहस्यात्मक बात तो यह है कि तुमने ही उसे मार डाला है। लेकिन ऐसा लगता है कि यह खबर तुम तक नहीं पहुँची। उसमें थोड़ा समय लगेगा। तुमने स्वयं ही उसे मार डाला है। मैं इस खबर को वापस ले जाता हूं। अभी समय पका नहीं है, और मैं जरा जल्दी ही आ गया हूं। खबर को तुम तक पहुँचने में समय लगेगा।

सूरज की किरणों को भी तुम तक पहुँचने में समय लगता है, तारों की किरणों को भी तुम्हारे तक आने में समय लगता है। बादल गरजते हैं, और बिजली चमकती है लेकिन उन्हें भी तुम्हारे पास तक आने में समय लगता है-जबकि तुमने उसे देख भी लिया हो तब भी, क्योंकि एक अन्तराल है। प्रकाश ध्वनि से तेज़ गति से चलता है। और बादलों में गर्जना होती है और बिजली चमकती है, तो तुमने पहले बिजली देख ली होती है, लेकिन तुम्हें बादलों का गर्जन बाद में सुनाई पड़ता है। लेकिन ऐसा लगता है कि तुम तक उसकी खबर नहीं पहुँची। उसमें समय लगेगा।

इसमें समय लगता है कि पहचान पाओ कि बुद्ध बुद्ध हैं। और उसमें इतना समय लगता है कि जब बुद्ध नहीं होते, तब तुम उन्हें पहचान पाते हो, जब जीसस नहीं होते, तब तुम उन्हें पहचान पाते हो। और जब वे होते है, तुम उन्हें केवल पहचान ही नहीं पाते बल्कि तुम उन्हें इनकार ही कर दे हो। इस सब में समय लगता है। यह एक बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है मनुष्य के मन की। इसके कारण ही हम बहुत कुछ चूक जाते हैं।

बहुत सी कहानियाँ हैं। लोग बुद्ध के पास आते हैं और पूछते हैं-कि कोई कहता है कि क्या आप बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति हैं, क्या सचमुच आप हैं? क्या आप ने उसे पा लिया है जो कि अप्राप्य है? यदि बुद्ध कहते है कि

हाँ मैंने पा लिया है तो वे लोग जायेंगे और लौटकर कहेंगे कि बड़े अहंकारी व्यक्ति हैं। यदि वे कहते है कि "नहीं, मैंने नहीं पाया है," तो वे कहेंगे, हमें पहले ही पता था। यदि वे मौन रह जाते हैं, तो वे कहते हैं कि यह आदमी कुछ नहीं जानता।

ऐसे सहस्त्रों कहानियाँ हैं। पाइलेट ने जीसस से पूछा था-"क्या तुम सच ही यह सोचते हो कि तुम परमात्मा के बेटे हो? क्या सच तुम भी ऐसा सोचते हो?" यदि जीसस कहते है कि, "हाँ, मैं परमात्मा का बेटा हूँ" तो वे एक पागल व्यक्ति हैं। यदि वे चुप रह जाते हैं, तो वे डर गये। यदि वे मना कर देते हैं तो वे सोचते हैं कि हमें पहले ही पता था कि तुम नहीं हो। अतः बुद्ध क्या कहें? जीसस क्या कह सकते हैं। लेकिन यदि वे बीस या पच्चीसों वर्षों पूर्व मर गये हैं, तो तुम उनके पास नहीं जा सकते और पूछ सकते कि, "क्या तुम एक समाधिस्थ व्यक्ति हो? क्या तुम सचमुच ऐसा नहीं सोचते कि तुम आत्म-प्रवंचना में पड़े हो? क्या तम स्वयं को धोखा नहीं दे रहे?"

तुम नहीं पूछ सकते। इस लम्बी मृत्यु की दूरी में तुम नहीं पहुँच सकते। तुम पहचानने लगते हो लेकिन तब यह सब बेकार है। वह प्रत्यभिज्ञा किसी काम की नहीं। यदि बुद्ध लौअ कर आ जायें तो तुम फिर वही बात पूछोगे।

ऐसा क्यों है। जब एक बुद्ध तुम्हारे मध्य उपस्थित होता है, वह तुम्हारे ही जैसा प्रतीत होता है। वह तुम्हारी ही तरह जीता है, वह तुम्हारी ही तरह खाता है, वह तुम्हारी ही तरह बीमार भी होता है, वह तुम्हारी ही तरह मर भी जाता है, तब तुम ऐसा कैसे सोच सकते हो कि एक आदमी जो कि तुम्हारी ही तरह हो, ज्ञानी हो गया और तुम नहीं होओ? यह बड़ा घृणास्पद है। यह भीतर गहरे में तुम्हारे अहंकार को चोट पहुँचाने वाला है। चूँकि यह तुम्हारे अहंकार को चोट पहुँचाता है, चूँकि तुम्हें यह हीनभाव से भर देता है, तुम मना कर देते हो। जब तुम इनकार कर देते हो, तो तुम्हें अच्छा लगता है।

इसलिए मैं तुमसे कहूँगा कि जब कभी तुम किसी बुद्ध पुरुष के सम्पर्क में हो, जबकि तुम्हें तुम्हारा मन इनकार करने के लिए कहे, तो इसे स्मरण रखें-इस मन की इस आदत के कारण ही तुम बहुत से बुद्धों को चूक गये, और इस आदत के कारण ही तुम कभी भी किसी बुद्ध को नहीं पहचान पाओगे। और जब तक तुम यह किसी व्यक्ति में नहीं पहचान पाओ जो कि उसमें घट गया है वह तुम्हारे भीतर घटित नहीं हो सकता। जब तुम मना ही करते जाओ और ऐसा सोचो कि कोई बुद्ध नहीं है, तो अन्ततः तुम भी कभी बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो सकोगे। जब कोई नहीं हो सकता तो तुम भी कैसे हो सकते हो?

जब तुम किसी में बुद्धत्व को भी पहचान लिया जो कि भविष्य में होगा। एक बुद्ध की प्रत्यभिज्ञा वर्तमान में तुम्हारे अपने ही भविष्य के बुद्धत्व की प्रत्यभिज्ञा है, तुम्हारी अपनी भविष्य की संभावना, तुम्हारी स्वयं की निर्यात।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

अन्तस्थ केन्द्र के मौन की ओर

तेरहवाँ सूत्र

निश्चलत्वं प्रदक्षिणम्।

निश्चलता ही प्रदक्षिणा है, अर्थात "उसकी" पूजा के हेतु घूमने की प्रक्रिया है।

मौन ही ध्यान है। और मौन आधारभूत है किसी भी धार्मिक अनुभव के लिए। क्या है मौन? तुम उसे निर्मित कर सकते हो, तुम उसका अभ्यास भी कर सकते हो, तुम उसे आरोपित कर सकते हो। लेकिन तब वह केवल ऊपरी होगा, झुठा, कृत्रिम होगा। तुम उसका अभ्यास कर सकते हो, तुम उसका अभ्यास कर सकते हो और तुम उसे अनुभव करने लगोगे, तुम्हें उसकी प्रतीति होने लगेगी। परन्तु तुम्हारा अीयास उसे आत्म-सम्मोहन बना देता है। वह वास्तविक मौन नहीं होता। वास्तविक मौन तो तभी आता है जबकि तुम्हारा मन खो जाता है-किसी प्रयत्न के द्वारा नहीं, वरन समझ के द्वारा किसी अीयास के कारण नहीं, बल्कि एक आंतरिक सजगत के कारण।

हम शोर से भरे हैं, आवाजों से भरे हैं-बाहरी और भीतरी। बाह्य जगत में ऐसी कोई भी स्थिति उत्पन्न करना असंभव है जो कि मौन हो। यदि हम दूर गहन जंगल में भी चले जायें वहाँ भी कोई मौन नहीं है बल्कि नई ध्वनियाँ हैं-प्राकृतिक ध्वनियाँ है। अर्ध-रात्रि को सभी कुछ ठहर जाता है, लेकिन तब भी वह शान्ति नहीं है, केवल नई प्रकार की ध्वनियाँ है। तुम उनसे परिचित नहीं हो। वे अधिक लयबद्ध हैं : अधिक संगीतपूर्ण हैं, लेकिन फिर भी वे ध्वनियां ही हैं, मौन नहीं है।

एक आधुनिक संगीतज्ञ, जॉन केज़ ने कितनी ही बार कहा है कि मौन असंभव है। तुम संगीतपूर्ण ध्वनियाँ सुन सकते हो, जो तुम्हें पसन्द हैं और ऐसी ध्वनियाँ सुन सकते हो जो तुम्हें पसन्द नहीं हैं। जो ध्वनि तुम्हें पसन्द नहीं है, वह शोर हो जाती है। जोशोर तुम्हें पसन्द है, वह संगीत बन जाता है। लेकिन तुम शान्ति को नहीं पा सकते। केज़ ने कहा कि तुम उस ध्वनि-रहित शान्ति को नीं पा सकते।

उसने उस हॉल के इंजिनियर से कहा कि तुम कहते को कि यह हॉल पूर्णतया साउंडप्रूफ है, तुम कहते को यह इको प्रूफ है, लेकिन मुझे दो ध्वनियों सुनाई पड़ती हैं, एक ऊँची और एक नीची। इंजिनियर ने जवाब दिया कि जो ऊँची ध्वनि है वह तुम्हारे नर्व सिस्टम की है और नीची ध्वनि तुम्हारे रक्त के प्रवाह की है। केज कहता है कि उस दिन मेरे लिए यह निश्चित हो गया कि जब तक मैं मर ही न जाऊं, मौन असंभव है। और इको घूफ था, प्रतिध्वनि रहित भी था। उसने हाँल में प्रवेश किया। लेकिन उसके पास कान हैं और इसलिए उसने ध्वनि खोज ली। यह एके वहुत बड़ा संगीतज्ञ है-आज की सदी का एक महानतम संगीतज्ञा उस हॉल में उसने दो ध्वनियाँ सुनी-एक ऊँची ध्वनि, और दूसरी नीची ध्वनि।

बाहर के जगत में शान्ति असंभव है। और तुम्हारा नर्वस सिस्टम भी बाहर के जगत का हिसा है, न कि भीतर का। तुम्हारा रक्ताभिसरण भी बाहरी जगत का हिस्सा है, भीतरी नहीं। वास्तविक अन्तस तो पूर्ण नीरव है, मौन है। यदि मुझे इजाजत दे तो मैं कहूँगा कि पूर्ण मौन का बिन्दु हमारे भीतर है। ध्वनि बाहर की बात है, मौन ही भीतर को बात है। मौन और अन्तस दोनों पर्यायवाची है।

यदि तुम बाहर जाते हो तो हुम ध्वनि में प्रवेश करते हो। यदि तुम भीतर प्रवेश करते को तो तुम मौन में प्रवेश करते हो। तुम्हें उस जगह पहुँचना चाहिए जहाँ कि मौन है, अथवा जैसा कि झेंन मास्टर कहते हैं-दि साउन्डलेस साउंड-ध्वनिरहित ध्वनि। हिन्दू रोगियों ने उसे हमेशा से "अनहद-नाद" कहा है : ध्वनि जो कि अनिर्मित है।

उदाहरण के लिए तुम किसी भी यंत्र का उपयोग कर सकते हो। लगातार उसे दोहराने से तुम्हें मौन का आभास होगा-एक झूठे मौन की प्रतीति होगी। मंत्र की सतत पुनरुक्ति तुम्हें अश्वात्म-सम्मीढित कर लेती है ख्तुम्हें एक शिथिलता का अनुभव होगा। तुम्हारी सजगता खो जायेगी। तुम्हें और अधिक नींद आएगी। और उस नींद की अवस्था में तुम्हें लगेगा कि तुम मौन को गये। लेकिन वह मौन नहीं है। मौन का अर्थ होता है कि मन मिट गया समझ के द्वारा। जितना तुम अपने मन को समझोगे, जितने तुम अधिक सजग होओगे, अपने मन की यांत्रिकता के प्रति उतने ही अधिक तुम उससे तादाद तोड़ सकोगे।

केवल हमारे तादात्स्य के कास्या ही इतना आंतरिक शोरगुल निर्मित होता है। भीतर मन में क्रोध है, तुम उससे तादात्म्य जोड़लेते की। तुम उसे एक वस्तु की जा नहीं देखते। क्रोध कहीं तुमसे बाहर है, लेकिन तुम क्रोधित होने लगते हो, तुम उसके साथ एक होने लगते हो। तब तुम अपने आंतरिक केन्द्र को चूक जाते हो। तुम बाहर चले गये। मन में सतत बहुत-से विचार चल रहे हैं। विचार की प्रक्रिया जारी है और तुम प्रत्येक विचार के साथ तादाद बना लेते हो। तब गुम्र चाहर चले गये।

विचार के साथ ही नहीं, तुम उन चीजों से भी एक हो जाते हो जो कि गुम्हारे केन्द्र से और भी अधिक दूर है। तुम्हारा घर केवल तुम्हारा घर नहीं है। गुम्र ही तुम्हारा घर को जाते को। तुम्हारी चीजें भी तुम्हारी चीजें नहीं है, तुम उनसे तादात्म्य जोडे हो। जब तुम्हारी कार में कुछ नुकसान हो जाता है तो अरी अतिरिकता भी चोट खा जाती है। जब यदि जै कुछ भी तुम्हारा है, वह सब तुमसे ले लिया जाये, तो हुम मर जाओगे।

हम अपनी वस्तुओं से भी तादात्म्य बनाये हुए हैं, हम अपने विचारों से एक हो बैठे हैं, हम अपने भावों से एक हो गये हैं। हम सिवाय अपने आप के हर चीज से तादात्म्य जोड़हैं। हम हर बात से सिवाय हमरि आंतरिक केन्द्र के तादात्म्य के निर्मित किये हुए हैं। इस तादात्म्य के कारण ही, शोर निर्मित होता है, एक सतत संताप, तनाव पैदा होता है।

वह होगा ही क्योंकि तुम अपना घर नहीं हो। तुममें और उसमें एक अन्तराल है, लेकिन तुम उस अन्तराल को भूले हुए हो। तुझ अपनी पत्नी नहीं हो, तुम अपने पति नहीं हो। एक अन्तराल है। तुम उस अन्तराल को भूल गये हो।- हुम अपने विचार भी नहीं हो, अपना अधि, अपना प्रेम, या अपनी घृणा भी नहीं हो। एक अन्तराल हैं। जब तुम इस गैप को, इस अंतराल को अनुभव करने लगोगे, तो तुम सदा उससे प्यार होओगे। एक साक्षी ढोओगे जो कि उसमें संलग्र नहीं है। जिस किसी चीज़में भी तुम सैलग्र नहीं होते, उसी के तुम सदा बाहर होते हो।

यदि जॉन केज ने जैसा कि उसने कहा कि अपनी ही आवाजें सुनों-नर्वस सिस्टम के काम करने की तथा रवत्त के प्रवाह को-ती यहाँ दो बातें हैं : एक है अवेयरनेस, सजगता, विवेक, जानना, चौतन्या एक बिन्दु भीतर है जो किया सजग होता है कि दो ध्वनियों हैं। लेकिन यह उन दो ध्वनियों के अति ही सजग होता है। वह उस केन्द्र के प्रति सजग नहीं होता जो कि जान रहा है कि दो ध्वनिमाँ हैं। यदि वह हस सजगता के केन्द्र के प्रति भी सजग हो जाये, तो फिर वे दोनों ध्वनियों वहुत दूर हैं। एक अन्तराल है। और जिस क्षण भी तुम्हारी चेतना का ध्यान वस्तु की ध्वनियों से ध्वनिरहित सजगत्ता के केन्द्र की और जाता है तुम मौन में प्रवेश करते हो। इसलिए

मैं कहना चाहूँगा कि तुम मौन ही हो, और सिवाय तुम्हारे अभी कुछ ध्वनि है। यदि तुम किसी भी वस्तु से तादाद जोड़ते हो तो फिर तुम इस ध्वनिरहितता को कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकोगे।

यह सूत्र कहता है कि मौन, थिरता ही प्रदक्षिणा है-"उसकी" पूजा के लिए घूमना है। तुम मन्दिर जाते हो और फिर वहाँ वेदी के चारों तरफ सात चक्कर लगाते हो। यह पूजा की एक प्रक्रिया है, किन्तु प्रत्येक क्रिया एक प्रतीक है।

सात चक्कर ही क्यों? मनुष्य के पास सात शरीर हैं, और प्रत्येक शरीर के साथ उसका तादात्म्य है। इसलिए जब कोई भीतर जाता है तो उसे सात शरीरों को छोड़ना होता है और हर एक शरीर के साथ तादात्म्य तोड़ना होता है। ये चक्कर हैं। जब ये सात चक्कर पूरे हो जाते हैं, तो तुम केन्द्र में होते हो।

मन्दिर की जो वेदी है वह तुमसे कोई बाहर की बात नहीं है। तुम ही मन्दिर हो, और तुम्हारा आन्तरिक केन्द्र ही वेदी है। यदि मन उस वेदी के चारों ओर चक्कर लगाता है और धीरे-धीरे निकट, और निकट आता जाता है तो अन्त में उसी में स्थिर हो जाता है। यही प्रदक्षिणा है। और जब तुम अपने केन्द्र पर होते हो, तो सभी कुछ शान्त होता है। यह शान्ति समझ के द्वारा उपलब्ध की जाती है-तुम्हारे क्रोध की समझ से, तुम्हारी वासनाओं, तुम्हारे लोभ, तुम्हारे काम की समझ से, सभी कुछ की समझ से। यह तुम्हारे मन की समझ है। लेकिन हम तो अपने मन से तादात्म्य जोड़े हैं, हम सोचते हैं कि हम मन ही हैं। यही एक मात्र समस्या है कि कैसे हम अपने मन से पृथक हों।

मुझे याद आता है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने तलाक के लिए प्रार्थना पत्र दिया। सारा गाँव कोर्ट में उपस्थित हो गया। हर एक आदमी हैरान था क्योंकि मुल्ला नसरुद्दीन की उम्र बस 87 वर्ष की थी और उसकी पत्नी 78 वर्ष की थी। न्यायाधीश भी आश्चर्य में था। उसने नसरुद्दीन से पूछा-"तुम्हारी आयु कितनी है?" मुल्ला ने जवाब दिया-"मेरी उम्र बस 87 वर्ष की है-केवल 87 वर्ष।" तब जज ने पूछा कि तुम्हारी पत्नी की आयु कितनी है? नसरुद्दीन ने कहा-"केवल 78 वर्ष।" जज ने फिर पूछा-"तुम कितने वर्ष से विवाहित हो, कितने वर्षों से साथ-साथ रह रहे हो?" नसरुद्दीन ने कहा-"हुजूर, सिर्फ 65 वर्ष से केवल 65 वर्ष से हुजूर।" न्यायाधीश ने कहा-"मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। जब तुम 65 वर्ष से साथ-साथ रह रहे हो, तो अब तलाक के लिए आवेदन पत्र की जरूरत क्या है?" मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा "माई लार्ड! बस, बहुत हो चुका।"

हमारे मन के साथ भी एक ऐसा बिन्दु आ जाना चाहिए जहां कि हम कह सकें कि अब काफी है, बहुत हो गया। हम अपने मन के साथ जन्मों रह लिए लाखों वर्ष लेकिन अभी भी वह बिन्दु नहीं आया जहां कि हम कह सकें, बहुत हो चुका-एनफ इज़ एनफ। अभी तक भी हम सजग नहीं हो सके कि सारा दुःख ये सारा नर्क जिसे कि हम जीवन कहते हैं यह सब हमारे मन के ही कारण है और उसके साथ तादात्म्य के कारण है। इस संसार को छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं केवल एक ही धार्मिक आवश्यकता है कि हम अपने मन को छोड़ दें, क्योंकि मन ही संसार है। कभी-कभी हम निराशा से भर जाते हैं, ऊब जाते हैं-हमारे मन से नहीं किन्तु किसी खास मन से। तब हम उसे बदल देते हैं, लेकिन वह बदलाहट अ-मन के लिए नहीं होती। वह परिवर्तन भी दूसरे प्रकार के मन के लिए होती है।

और वही बात मुल्ला नसरुद्दीन के साथ हुई। उसका तलाक पत्र स्वीकृत हो गया। और जब वह स्वीकार कर लिया गया तो वह सोच रहा था कि जब मैं अपनी पत्नी से मुक्त हो जाऊँगा, तो फिर मैं स्वतन्त्र हो जाऊँगा और चैन की नींद सो सकूँगा। परन्तु वह उस रात बिल्कुल न सो सका। वह इतना उत्तेजना से भरा था। ऐसा

नहीं कि तलाक उत्तेजना से भरपूर था बल्कि जिस क्षण तलाक मंजूर किया गया, उसी क्षण तलाक मंजूर किया गया, उसी क्षण उसने दूसरी शादी करने की बात सोचना प्रारंभ कर दिया।

इस तरह हम चलते जाते हैं। वह अपनी पत्नी से थक गया था, लेकिन पति होने से नहीं थका था, स्त्री से नहीं ऊब गया था। वह केवल इस स्त्री से ऊब गया था परनतु उस मन से नहीं ऊबा था जो कि ये सारे संबंध निर्मित करता है और फिर दुःख पाता है। और एक सप्ताह में ही सारे गाँव में खबर फैल गई कि वह एक सतरह साल की लड़की से विवाह करने वाला है। सब लोग परेशानी में पड़ गये-सारा गाँव। उसके लड़के थे 55 वर्ष की आयु के-पोते थे, और पोतों के भी लड़के थे।

उसका सबसे बड़ा लड़का जो कि 55 वर्ष का था वह उसके पास पहुँचा और बोला-"अब्बा जान, यह अच्छा तो नहीं लगता कि आपको सलाह दूँ, परन्तु 87 वर्ष की आयु में 17 वर्ष की लड़की से शादी करना ठीक नहीं है और सारा गाँव इस बात के खिलाफ है, और फिर यह बात स्वास्थ्य के लिए भी ठीक नहीं है। इससे मृत्यु भी हो सकती है।" नसरुद्दीन ने कहा, "इसकी चिन्ता मत करो। यदि यह लड़की मर जाएगी, तो मैं फिर दूसरी शादी कर लूँगा।"

इस तरह हमारा मन काम करता चला जाता है। वह सदा बाहरी चीज़ों में परिवर्तन करता रहता है, जो कि कहीं और, परिधि पर हैं। वह अपने को नहीं बदलता। मन ही एक मात्र समस्या है, और मन सदैव बाहर ही देखता है, भीतर नहीं देखता। तलाक की आवश्यकता है किसी खास प्रकार के मन से नहीं, इस और उस मन से भी नहीं, परन्तु मन से ही। मन के स्वयं के होने से ही तलाक लेने की जरूरत है, और केवल तभी तुम मौन में प्रवेश कर सकते हो।

अतः फिर क्या करें? तुम दो बातें कर सकते हो। एक, कि मन को ही रूपान्तरित कर लो। दूसरा जो कि बहुत ही सामान्य है और जो सब जगह किया जाता है कि इस मन को बदलने का प्रयत्न न करो किन्तु कोई विधि इस मन को मूर्च्छित करने के लिए उपयोग करो। तब मन ज्यों-का-त्यों बना रहता है। किसी रूपान्तरण की आवश्यकता नहीं है। एक मन्त्र तुम्हें दे दिया जाता है, एक विधि। तुम इसी मन से उसे करते हो।

तुम उसे शिथिल तथा मूर्च्छित कर सकते हो। तब वह ऊपर से कम सक्रिय होगा, लेकिन वह भीतर गहरे में ज्यादा सक्रिय होगा। वह ऊपर परिधि पर निष्क्रिय प्रतीत होगा, और तुम उसके कारण मूर्ख बन जाओगे, लेकिन भीतर क्रिया चलती रहेगी। मन्त्र का उपयोग करो। राम-राम, या कृष्ण या कोई भी नाम जपते जाओ, सतह पर मन शान्त हो जाता है। परन्तु भीतर चलता रहता है। यह बहुत सरल है। इसीलिए मंत्र-योग बहुत अधिक प्रचलित है। वह आकर्षित करता है। महेश योगी का भावातीत ध्यान इसी प्रकार की आत्म-वंचना की विधि है। वह सिर्फ एक तरकीब है। तुम उसके साथ खेल सकते हो। वह प्रारीं में मदद करेगी और कुछ दिन तक तुम्हें ऐसा लगेगा कि तुम कुछ हो गये, ऊपर उठ गये, और तब सब कुछ रुक जाता है। पठार आ गया। जब सतह-कुछ शान्त हो गई, तब तुम इस विधि से कुछ नहीं कर सकते। और फिर धीरे-धीरे वे दबे हुए स्वर पुनः स्पष्ट होने लगेंगे।

यह साधारण आत्म-सम्मोहन है। यदि तुम यह भी सोचो कि मैं शान्त हूँ, मैं शान्त हूँ, मैं रोज-रोज और अधिक शान्त हो रहा हूँ तब भी तुम्हें एक खास शान्ति की प्रतीति होगी। परन्तु वह प्रतीति सिर्फ विचार से निर्मित है। विचार करना छोड़ दें और वह फिर गायब हो जाएगी। यह कुए की विधि है, कि सतत दोहराते रहो कि तुम शान्त हो रहे हो, तुम रोज-रोज और अधिक शान्त हो रहे हो। दोहराते चले जाओ इसे सतत्। सतत

दोहराने से तुम धोखे में आ जाओगे। तुम सोचने लगोगे, सचमुच, मैं शान्त हो गया हूँ। यह आत्म-प्रवंचना है, जो कि कहीं नहीं ले जाती। तुम वही के वही रहते हो, कोई रूपान्तरण घटित नहीं होता।

यह सूत्र ऐसी किसी भी स्थिरता से संबंधित नहीं है। यह सूत्र तो एक प्रामाणिक मौन से संबंधित है जो कि किसी विधि से उपलब्ध नहीं होता किन्तु समझ से उपलब्ध होता है। और मेरा समझ से क्या मतलब है? मन से मत लड़ो, उसे समझने का प्रयत्न करो। क्रोध के विरुद्ध क्रोध न करो, क्रोध से लड़ो मत, बल्कि समझो कि क्रोध क्या है। यह कौन-सी ऊर्जा है? यह क्यों होता है कहाँ से आता है, इसका स्रोत कहाँ है और इसका उद्गम कहाँ है। उस पर ध्यान करो, और जितने उसके प्रति जागरूक हुए, उतना ही कम तुम्हें क्रोध आएगा। और जब बिल्कुल क्रोध नहीं होगा, तो तुम आंतरिक मौन में फेंक दिये जाओगे।

काम है, उससे लड़ो मत, उसे समझने का प्रयत्न करो। लेकिन हम अपने से ही लड़ने में लगे हैं। या तो हम मन के साथ एक हो जाते हैं या फिर मन से लड़ने लगते हैं। दोनों ही तरह े हम नुकसान में रहते है। यदि तुम उसके साथ एक हो गये तो फिर तुम क्रोध में गिरोगे, काम में गिरोगे, लोभ में, ईर्ष्या में जलोगे। यदि तुम लड़े तो तुम एक विरोधी रुख बना लोगे। तब तुम भीतर बंट जाओगे। तब भीतर तुम विरोधी ध्रुवों को निर्मित कर लोगे।

और कोई दूसरा नहीं, तुम ही विभाजित हो क्योंकि यह क्रोध तुम्हारा ही क्रोध है। अब यदि तुम उससे लड़े, तो तुम्हारा क्रोध दुगुना हो जाएगा-एक तो क्रोध और दूसरा इस क्रोध के खिलाफ क्रोध का भाव। और तुम बँट गये। अब तुम लड़ते जाओ, परन्तु यह एक व्यर्थ लड़ाई होगी। यह ऐसा ही होगा जेसे मैं अपना दायां हाथ बायें हाथ से लड़ाऊँ मैं लड़ना चाह सकता हूँ। कभी मेरा दायां हाथ जीतेगा, कभी मेरा बायाँ हाथ जीतेगा। लेकिन कोई विजय हाथ न लगेगी। तुम एक खेल-खेल सकते हो, लेकिन उसमें कोई जीत या हार नहीं होगी।

मैंने डी.टी. सुजुकी के बारे में एक कहानी सुनी है। वह एक परिवार में मेहमान था। सुजुकी एक बहुत बड़ा विचारक था। उसने पश्चिम में झेन का प्रवेश कराया, और वह खुद भी गहरे ध्यान में गया था। वह किसी परिवार के पास ठहरा था, मेहमान था और उसके कारण परिवार ने बहुत से और लोगों को निमंत्रण दिया था ताकि वे उससे मिल सकें। उन्होंने बहुत-सी दार्शनिक समस्याओं पर बातचीत की। बातचीत भी आधी रात तक चलती रही। लम्बी चर्चा चली चार-पाँच घंटों तक। हर चीज पर चर्चा की गई बिना किसी भी परिणाम के, जैसा कि अकसर दार्शनिक चर्चाओं में होता है।

जब मेहमान चले गये, तब आतिथेय ने सुजुकी से कहा कि चर्चा बहुत लम्बी चली और हमें बड़ा आनन्द मिला। लेकिन कोई नतीजा तो निकला नहीं। यह तो बड़ी निराशाजनक बात है। सुजुकी हँसने लगा और बोला- "मुझे दर्शनशास्त्र इसीलिए पसंद है क्योंकि तुम लड़ते जाओ और न कोई जीत होगी न हार होगी।"

यह एक बहुत परिष्कृत खेल है जिसमें कोई भी नहीं हारता और न कहीं कोई जीतता ही है। यह कोई ऐसा बुरा खेल नहीं है कि जिसमें कोई जीते या हारे। यह खेल ऐसा है कि तुम इसे खेलते ही रह सकते हो। कोई कभी न तो जीतता है, और न ही कोई हारता है। और भी अधिक सुन्दरता इसकी इस बात में है कि प्रत्येक को लगता है कि वह जीत रहा है। यह इसकी सुन्दरता है। और ऐा है।

ऐसा ही भीतर भी होता है। तुम अपने से लड़ने में लग जाते हो, क्योंकि तुम दोनों ही तरफ से लड़नेवाले हो। कोई विजय संभव नहीं है क्योंकि वहाँ तुम्हारे सिवा कोई और नहीं है। तुम ही अपने साथ खेल रहे हो, अपने को बांटकर। यह द्वन्द्व, यह अन्तर्द्वन्द्व ही सारे धार्मिक लोगों का अभिशाप है, क्योंकि जिस क्षण भी उन्हें पता चलता है उस नर्क का जो कि उन्हीं के मन ने निर्मित किया है वे उससे लड़ने को उद्यत हो जाते हैं। लेकिन द्वन्द्व से तुम कहीं भी नहीं पहुँचोगे।

उसके बहुत से कारण हैं। जब तुम अपने ही मन से लड़ते हो तो तुम्हें उसके साथ रहना पड़ता है। और जब तुम अपने ही मन से लड़ते हो तो वह तुम्हारा अज्ञान, ज़ाहिर करता है। मन है ही इसलिए क्योंकि तुने उसको गहरा सहयोग दिया है। यदि यह सहयोग वापस ले लिया जाये, मन विलय हो जाता है। तब लड़ने की कोई जरूरत नहीं। मन तुम्हारा शत्रु नहीं है। वह सिर्फ तुम्हारे अनुभवों का संकलन है। यह तुम्हारा ही मन है, क्योंकि तुमने ही संगृहीत किया है। और तुम अपने अनुभवों से लड़ नहीं सकते, और यदि तुम लड़े तो ज्यादा संभावना तो यह है कि तुम्हारे अनुभव ही जीत जायेंगे। वे तुमसे ज्यादा वजनदार हैं।

रोज यही होता है। यदि तुम अपने मन से लड़ो तो अन्त में तुम्हारा मन ही जीत जाता है। अन्ततः नहीं, लेकिन फिर भी वह जीतता है। और तुम्हें झुकना पड़ता है। वास्तविक, प्रामाणिक स्थिरता द्वन्द्व से उपलब्ध नहीं की जा सकती। द्वन्द्व दमन करता है, दबा देता है। और जिसे भी दबा दिया गया है उसे बारबार दबाना पड़ेगा। और जिसे भी तुमने दबाया है वह तुम्हारे विरुद्ध विद्रोह करेगा। तुम एक पागलखाना हो जाओगे। स्वयं से लड़-लड़कर अपने से बातचीत कर, अपने से बदला लेकर अपने ही सामने झुककर, अपने से ही हार जाने पर-तुम एक पागलखाना हो जाओगे।

अपने मन के खिलाफ लड़ो मत। यह इतना शोर पैदा करता है कि सामान्य लोग भी इतने आंतरिक शोर से भरे हुए नहीं होते जितने कि धार्मिक लोग। सामान्य लोग इन बातों की परवाह ही नहीं करते। वे इन सब बातों से सरलता को ले लेते हैं। वे जानते हैं कि यह तर्क है लेकिन वे उसे वैसा ही स्वीकार कर लेते हैं। एक धार्मिक आदमी जानता है कि मन नर्क है और इसलिए वह उसे मना कर देता है, उससे जूझता है, और तब एक दुगुना नर्क पैदा हो जाता है।

तुम नर्क से लड़कर स्वर्ग निर्मित नहीं कर सकते। यदि तुम अतिक्रमण करना चाहो तो उसके लिए द्वन्द्व मार्ग नहीं है। सजगता, होश, जानना कि यह मन क्या है, यही मार्ग है। अतः क्या किया जाए? दमन की विधियों के प्रति सजग रहो। केवल एक बात अनिवार्य है कि जो कुछ भी तुम कर रहे हो, उसे पूरी सजगता से करो। यदि तुम क्रोध में हो तो होशपूर्वक क्रोध करो।

गुरजिएफ अपने शिष्यों के लिए ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित किया करता था। वह सिर्फ स्थिति बनाता था। तुम कमरे में आये और गुरजिएफ ऐसी स्थिति निर्मित करेगा कि तुम्हारा अपमान हो। कोई तुम्हें गाली दे देगा, कोई तुम्हें कोई और अपमानजनक शब्द कहेगा कि तुम क्रोधित हो जाओ। सारा ग्रुप तुम्हें क्रोध करने के लिए मदद करेगा और जो भी हो रहा है उस सब के प्रति तुम सजग हो। और गुरजिएफ तुम्हें अधिकाधिक क्रोध में धक्का देगा और तब अचानक तुम फूट पड़ोगे, तुम पागल हो जाओगे।

और तब गुरजिएफ कहेगा कि अब पूरी सजगता से क्रोध करो। वापस न लौटो, क्रोध से पीछे मत जाओ। पूरी तरह क्रोध करो। और उससे वापस लौट जाना सरल है। तब वह कहता कि होश रखो और दख्ेो भीतर कि क्या हो रहा है। कहाँ से ये क्रोध के बादल उठ रहे हैं। उस आंतरिक अग्नि का पता लगाओ जहाँ से यह धुआँ उठ रहा है।

गुरजिएफ सदैव स्थितियाँ मौजूद करता रहता था। उसकी अपनी राय थी कि यदि हम चाहते हैं कि दुनिया ज्यादा शान्त हो, तो हमें अपने बच्चों को सिखाना पड़ेगा कि कैसे क्रोध करें, कैसे ईर्ष्या करें, कैसे घृणा से भरें, कैसे हिंसक हों। हमें उन्हें सिखाना चाहिए। हम बिल्कुल ही उलटी बात सिखा रहे हैं। हम कह रहे हैं कि क्रोध मत करो। कोई यह नहीं बताता कि क्रोध क्या है। कोई यह बात नहीं सिखाता कि यदि तुम क्रोध करो, तो

समझपूर्वक करो। तब पूरी कुशलता से करो, तब क्रोध के खिलाफ हैं। और प्रत्येक यह कहता है कि क्रोध मत करो, वह मत करो।

एक बच्चे से पूछा गया कि उसका नाम क्या है तो उसने जवाब दिया कि "डोन्ट"। क्योंकि जब भी मैं कुछ करता हूँ तो मेरी माँ या मेरे पिता चिल्लाकर कहते हैं कि "डोन्ट" मत करो। इसलिए मैं सोचता हूँ यही मेरा नाम है क्योंकि मुझे हमेशा ही डोन्ट कहा जाता है। इससे द्वन्द्व का रुख निर्मित होता है। बिना ज्ञान के तुम कुछ चीज़ों के विरुद्ध हो। और यदि तुम विरुद्ध हो तो तुम जीत नहीं सकते, क्योंकि ज्ञान ही शक्ति है। बाहर के जगत में वैज्ञानिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि भीतर भी ज्ञान ही शक्ति है।

बादलों में विद्युत है। वह सदा से वहाँ थी लेकिन हम अतीत में उसके प्रति अनभिज्ञ थे। बादलों की बिजली सिर्फ हमारे दिल में भय पैदा करती थी। अब हम उसके बारे में जानते हैं। अब बिजली हमारी गुलाम है, इसलिए कोई भय नहीं है। अन्यथा, वेदों में लिखा है कि जब देवता तुमसे नाराज होता है, तो वह बिजली गिरायेगा, आंधी उठायेगा, बादल गरजाएगा। जब ईश्वर नाराज होगा तो तुम्हारे साथ ऐसा होगा। उन्होंने कहा कि यह परमात्मा का क्रोध है। अब हमने उसे जान लिया है। अब वह परमात्मा का प्रकोप नहीं है, उसका परमात्मा से कोई भी संबंध नहीं है। इस तरह ज्ञान शक्ति बन जाता है।

भीतरी क्रोध भी बिजली की तरह से है, विद्युत की भाँति है। पहले बादलों की विद्युत सिर्फ परमात्मा का प्रकोप था। फिर हमने उसे जान लिया। यह जानना ही शक्ति बन गया, और अब ईश्वरीय प्रकोप नहीं रहा। तुम्हारा क्रोध नहीं रहेगा और तब तुम तुम्हारे क्रोध को मार्ग दे सकोगे, तब फिर वह तुम्हारा सेवक हो जाएगा।

एक आदमी जिसके भीतर कोई क्रोध नहीं है वह नपुंसक है। क्रोध ऊर्जा है यदि तुम उसे नहीं जानते, तो वह आत्मघाती हो जाता है। यदि तुम उसे जानते हो, तो तुम उस ऊर्जा को रूपान्तरित कर सकते हो, तुम उसका उपयोग कर सकते हो। तब वह तुम्हारी दास है। और यही बात हर एक चीज़ के बारे में है। तुम्हारे विचार-वे भी ऊर्जा हैं, उनका उपयोग किया जा सकता है। यदि तुम मौन हो जाओ, तो तुम तुम्हारे विचारों के मालिक हो जाओगे। अभी तुम्हारे पास विचार तो है लेकिन कोई विचारणा की शक्ति नहीं है। जब तुम्हारे पास विचार नहीं होंगे, तो तुम अपनी विचार की प्रक्रिया के मालिक होओगे, तब तुम पहली दफा विचार कर सकोगे। विचार करना ऊर्जा है, लेकिन तब तुम मालिक हो।

अन्तस के स्थिर बिन्दु की खोज के साथ ही तुम अपने मालिक हो जाते हो। बिना इसकी खोज के तुम अपनी वृत्तियों के दास बने रहोगे, किसी भी चीज़ के गुलाम हो जाओगे। ज्ञान तुम्हें भीतर ले जायेगा, अतः अपने को एक प्रयोगशाला बना लो। तुम एक संसार हो। पता लगाओ कि तुम्हारी ऊर्जा-शक्तियाँ कौन"कौन-सी हैं, वे तुम्हारी शत्रु नहीं है। तुम्हारी ऊर्जा-शक्तियाँ क्या हैं।

अपनी मुख्य वृत्ति को, गुण को जानो। इसे याद रखो, तुम्हारे मुख्य गुण को पहचानो। पता लगाओ कि तुम्हारी मुख्य वृत्ति क्रोध है, या कि काम है, या कि लोभ है, या घृणा है या ईर्ष्या है। क्या है तुम्हारी मुख्य वृत्ति? पहले इसका पता लगाओ, क्योंकि यदि तुम इसे बिना जाने ही भीतर गये, तो भीतर जाना कठिन होगा, क्योंकि तुम्हारी मुख्य वृत्ति में ही तुम्हारी ऊर्जा है। वह केन्द्र है, शेष सब गौण है, उससे निम्न है।

यदि क्रोध तुम्हारा मुख्य गुण है तो बाकी सब उसके आधारभूत हैं। अपनी ऊर्जा का केन्द्र खोज लो और तब उसके प्रति सजग होने का प्रयत्न करो। तब शेष सब भूल जाओ। यदि लोभ तुम्हारा मुख्य गुण है, तो सिर्फ लोभ के प्रति सजग रहो बाकी सब भूल जाओ। जब लल्ली की समस्या सुलझ जाएगी, शेष सब अपने आप ठीक

हो जाएगा। और यह बात स्मरण रखो कि किसी और की नकल में मत पड़ना क्योंकि किसी और की मुख्य वृत्ति एक अलग बात है।

इस नकल करने की प्रवृत्ति के कारण हम बहुत-सी व्यर्थ की समस्याएँ खड़ी कर देते हैं। उदाहरण के लिए, बुद्ध को एक चीज का रूपान्तरण करना था, महावीर को दूसरी चीज का और जीसस को किसी और ही चीज को रूपान्तरित करना था। यदि तुम जीसस का अन्धा अनुकरण करो, तब तुम जीसस की मुख्य वृत्ति से लड़ने लगोगे, बजाय अपनी वृत्ति के, और उससे तुम भटक जाओगे। बुद्ध को समझो; जीसस को समझो लेकिन अपनी बीमारी को खोजो, और अपनी सजगता को उस विशेष बीमारी पर केन्द्रित करो। यदि मुख्य रोग ठीक हो गया, तो छोटी-मोटी बीमारियाँ अपने आप ही भाग जाएंगी।

हम छोटी-मोटी बीमारियों से लड़ते रहते हैं। तब तुम कितने ही जीवन व्यर्थ करते रहते हो। तुम एक छोटी-सी बीमारी को बदलते हो और दूसरी छोटी बीमारी निर्मित हो जाएगी, क्योंकि ऊर्जा का स्रोत, बीमारी का केन्द्रित स्रोत ज्यों-का-त्यों रहता है। इसलिए तुम सिर्फ बीमारी बदल सकते हो यदि तुम छोटी-मोटी बीमारियों के साथ कुछ कर रहे हो। और हम डरे हुए हैं अपनी ही मुख्य बीमारी को जानने से भी।

बहुत से लोग मेरे पास आते हैं, और मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, सदा आश्चर्य होता है क्योंकि जो कुछ भी वे अपनी बीमारी बतलाते हैं वह उनकी बीमारी कभी होती ही नहीं। अपनी समस्याओं के बारे में भी धोखा देते हैं। जब मैं उनके साथ काम करता हूँ, उनका निरीक्षण करता हूँ, और वे जब ज्यादा स्पष्ट हो जाते हैं, नग्न हो जाते है, तब नई समस्याएँ खड़ी हो जाती है। एक वृद्ध आदमी करीब अट्ठावन या उनसठ वर्ष का आया। वह व्यक्ति सदा आता और ध्यान की बात करता कि कैसे करें। और कहता-"मैं पच्चीस वर्ष लगातार ध्यान करने में रस ले रहा हू।"

लेकिन वह बात ही नहीं थी। ध्यान में उनका कोई रस नहीं था। धीरे-धीरे उन्हें भी पता चलने लगा कि ध्यान में उनका रस नहीं है। उसका रस इस कीर्ति में था कि वे कितने बड़े ध्यानी हैं। कीर्ति उनका रस था, अहं उनकी समस्या थी। और वे सदा कहते कि अहंकार मेरी समस्या नहीं है, मैं एक बहुत ही नम्र आदमी हूँ। परन्तु बहुत से विचार मेरी समस्या हैं, मैं एक बहुत ही नम्र आदमी हूँ। परन्तु बहुत से विचार मेरी समस्या हैं, अतः इन विचारों को कैसे विलय करूं? मुख्य गुण एक ही था-अहं का विचार ही समस्या थी। और वे सदा मुख्य बीमारी को छोड़ रहे थे।

अतः तुम वृक्ष से पत्तों को काटे जाओ, और वृक्ष नये पत्ते निकालता जाएगा। तुम एक पत्ता काटो और वृक्ष दो पत्ते पैदा कर देगा। और वृक्ष पहले से ज्यादा हरा हो जाएगा, तुम्हारे ही प्रयत्न के कारण ज्यादा हरा हो जायेगा। तुम पत्ते नहीं काट सकते, तुम केवल जड़े दो अलग चीज़ें हैं। "जब मैं कहता हूँ, "मुख्य गुण" तो मेरा मतलब है जड़। जब मैं कहता हूँ छोटी-छोटी बीमारियाँ तो मेरा मतलब है पत्ते। और समस्या ज्यादा कठिन हो जाती है क्योंकि पत्ते तो दिखलाई पड़ते है और जड़ें छिपी है पृथ्वी में। वे ही सारे "पत्तों का स्रोत हैं। तुम सारा वृक्ष काट डालो तो भी नया वृक्ष पैदा हो जाएगा क्योंकि जड़ें ज्यों-की-त्यों हैं। तुम जड़ों को काट दो और वृक्ष अपने आप विलीन हो जाएगा। वृक्ष की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

परन्तु इसकी जड़े भीतर जमीन में हैं। तुम्हारा मुख्य गुण भीतर गहरे में मिलेगा। इसलिए जो कुछ भी तुम कहोकि तुम्हारी समस्या है वह कभी भी तुम्हारी समस्या नहीं होती। इसे मान कर ही चलना चाहिए कि कम-से-कम वह तुम्हारी समस्या नहीं है। बल्कि उसके विपरीत मामला हो सकता है क्योंकि हम अपनी आंतरिक

कमजोरियों को छिपाते हैं। और अपने मन का ध्यान अलग हटाने के लिए, केवल वास्तविक समस्या को भूल जाने के लिए, हम छोटी-छोटी समस्याएँ पैदा कर लेते हैं।

एक दिन एक आदमी मुल्ला नसरुद्दीन के पास आया। वह गाँव का एक बूढ़ा आदमी था-हर बात में बुद्धिमान था, सांसारिक बातों में होशियार था। वह आदमी सर्दी से बीमार था काफी समय से, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला था। उसने सब प्रकार की दवाइयाँ कर ली थीं, लेकिन उससे भी कुछ न हुआ था। इसलिए उसने मुल्ला से पूछा कि "क्या वह कुछ सलाह दे सकता है कि क्या करना चाहिए।" मुल्ला ने कहा कि, "तुम आधी रात कोझील पर चले जाओ। सर्द-रात्रि थी और झील ज़मी होगी। तुम उसमें स्नान करना और फिर नंगे होकर झील के चारों ओर दौड़ लगाना। ठंडी हवाएं भी चल रही होंगी।" उस आदमी ने कहा, "तुम क्या कह रहे हो? मैं पहले ही सर्दी से परेशान हूँ। मैं और भी ज्यादा बीमार हो जाऊँगा। मुझे निमोनिया हो जाएगा।" मुल्ला ने कहा कि, "यदि तुम्हें निमोनिया हो जाएगा तो मेरे पास उसकी दवा है। लेकिन सामान्य सर्दी के लिए कोई दवा नहीं ह। यदि तुम्हें निमोनिया हो जाए तो मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूँ।"

तुम्हारे आंतरिक जगत में भी तुम उन समस्याओं को छोड़ देते हो जो कि तुम सुलझा न सको। जिन समस्याओं का तुम समाधान नहीं खोज सकते तुम उन्हें भूल जाते हो। तुम उन समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हो जिन्हें तुम हल कर सकते हो। इस कारण ही तुम्हारी मुख्य बीमारी भीतर दब जाती है। आखिर में तुम्हें भी उनका पता ही नहीं होता और दूसरी कृत्रिम समस्याओं से उलझते रहते हो जो कि वास्तविक समस्याएं नहीं हैं। ये झूठी समस्याएँ काफी ऊर्जा पी जाती हैं और तुम्हारी ऊर्जा-शक्तियों को विनिष्ट कर देती हैं। और तुम वही के वही रहते हो क्योंकि तुम पत्तों से लड़ने में लगे रहते हो।

इसलिए पहली बात भीतरी स्थिरता के लिए यह जानना है कि तुम्हारी समस्याओं की जड़ क्या है। तुम्हारे द्वन्द्वों, तनावों की बुनियाद क्या है। क्या है जड़? इस पर सोचो ही मत कि उनका हल कैसे करें, क्योंकि यदि तुम वह सोचते गये तो तुम डर जाओगे। उनका हल करने की मत सोचो। प्रथम सामान्यतः यह जानना है कि मन की मुख्य वृत्ति को जान लो, तो बस उसके प्रति सजग रहो : कि वह कैसे काम करती है, कैसे भीतर जाल बुनती है, कि कैसे वह भीतर काम करती चली जाती है और तुम्हारे जीवन को प्रभावित करती है। केवल सजग रहो। कभी भी मत सोचो कि उसे कैसे बदलें, क्योंकि जैसे ही तुमने बदलने की सोची कि तुम उसके प्रति सजग होने का अवसर चूक जाओगे।

क्रोध है, लोभ है, काम है। उन्हें बदलने की मत सोचो, उनका अतिक्रमण करने की मत सोचो। वे वहाँ हैं-इनके प्रति सजग रहो। अतिक्रमण परिणाम नहीं है, बल्कि वह फल है। इस भेद को ख्याल में रखो। भेद बारीक है। अतिक्रमण परिणाम नहीं है, वह फल है। क्या मतलब है मेरा? तुम अतिक्रमण के बरे में सोच नहीं सकते, तुम विचार नहीं कर सकते कि मन से पार कैसे जाएँ। विचार करके तुम कभी भी न जा सकोगे। यदि मैं कहूँ कि जागे हुए रहो तो मेरा यह मतलब नहीं है कि जागे हुए रहने से तुम मन के पार चले जाओगे।

कल ही एक व्यक्ति यहाँ था। वह ध्यान में मौन होने के लिए संघर्ष कर रहा था। लेकिन वह इतना जल्दी में था कि जल्दी कि जल्दी ही बाधा बन गई। जब भी वह आता, यह पूछता-"अभी कितने दिन और लगेंगे? मैं तीन महीने से ध्यान कर रहा हूँ, और अभी तक कुछ भी नहीं हुआ है?" इसलिए मैंने उससे कहा, "जब तक तुम यह सतत चाह नहीं तोड़ोगे कि कब होगा, तब तक यह बिल्कुल नहीं होगा।" उस आदमी ने मुझसे कहा-"मैं इसे भी छोड़ सकता हूँ। तब फिर कब होगा? मैं इसे भी छोड़ सकता हूँ। मैं आपको भी कष्ट नहीं दूँगा। लेकिन बताओ कि यदि मैं इसे छोड़ दूँ, तब फिर कब होगा?"

इसलिए यदि मैं तुम्हें कहूँ कि सजगता से तुम पार चले जाओगे, तो ऐसा न सोचना कि सजगता विधि है और चूँकि तुम पार जाना चाहते हो, इसलिए तुम पार चले जाओगे। ऐसा न सोचें कि यदि सचमुच सजगता ही विधि है तो मैं इसका अीयास करूँगा, इसके द्वार मैं पार चला जाऊँगा। तब तुम कभी भी पार न जा सकोगे। यदि सजगता उपलब्ध हो जाए, तो अतिक्रमण होता है। वह एक फल है, परिणाम है। वह आता है। यदि सजगता है तो अतिक्रमण आएगा, तब तुम अपने मन के पार चले ही जाओगे, तुम अपने भीतरी केन्द्र पर पहुँच जाओगे। लेकिन तुम उसकी कामना नहीं कर सकते।

अपने क्रोध को स्वीकार करो। वह है, उसे स्वीकार करो, और उसके प्रति सजग हो जाओ। ये दो चीज़ें है- स्वीकार और सजगता। और तुम सजग तभी हो सकते हो जबकि तुम समग्रता से स्वीकार कर लो। यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करते तो तुम मेरे चेहरे की तरफ नहीं देख सकते। यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करते तो तुम मुझसे सूक्ष्म ढंग से आँख बचाओगे। यदि मैं कमरे में उपस्थित भी होऊँ, तो भी तुम किसी दूसरी तरफ देखने लगोगे, तुम किसी और चीज के बारे में सोचोगे। यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करते, यदि तुम मुझे नकार करते हो, तो तुम्हारा सारा मन मुझसे दूर हटेगा। यदि तुम क्रोध को मना करते हो, तो तुम उसके प्रति सजग नहीं हो सकते, तुम उसके आमने-सामने खड़े नहीं हो सकते। और जब क्रोध को आमने-सामने देखा जाता है, तो वह विलीन हो जाता है। जब काम को देखा जाता है तो ऊर्जा मुक्त हो जाती है, किसी दूसरी दिशा में। अपने मन को प्रत्यक्ष देखो और उसे स्वीकार करो।

विषेधात्मक शिक्षा, निन्दा करने की शिक्षा, संघर्ष की शिक्षा, ने ही इसे निर्मित किया है, हमारे तथाकथित संसार को निर्मित किया है। सारा संसार एक पागलखाना हो गया है, और प्रत्येक व्यक्ति विक्षिप्तता के आखिरी किनारे पर खड़ा है।

अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दो तरह की विक्षिप्तताएँ हैं-एकः नॉर्मल, सामान्य विक्षिप्तता, दूसरी : ऐबनॉर्मल, असामान्य विक्षिप्तता। नॉर्मल विक्षिप्तता का अर्थ है कि प्रत्येक वैसा है। ऐबनॉर्मल विक्षिप्तता का अर्थ है कि काई जरा उससे आगे चला गया है। गुण-धर्म में वस्तुतः कोई भेद नहीं है। ऐसा लगता है कि केवल मात्रा का ही भेद है, केवल डिग्री का। और जब तुम क्रोध में होते हो, वस्तुतः तुम अस्थायी रूप से पागल हो जाते हो। तुम सामान्य विक्षिप्तता से ऐबनॉर्मल विक्षिप्तता में चले गये। जब कोई वासना से भर जाता है, विक्षिप्त वासना से; तो वह सामान्य आदमी नहीं रहता, वह बिल्कुल दूसरा ही आदमी हो गया है। और चौबीस घन्टे में दिन में तुम कितनी ही बार ऐबनॉर्मल विक्षिप्तता को छूते हो।

इसीलिए जब कोई आदमी किसी की हत्या कर देता है तो हम कहते हैं कि वह ऐसा आदमी तो नहीं था कि ऐसा काम करे। हम उसे जानते हैं और हम उसे सामान्य विक्षिप्तता में जानते हैं। कोई व्यक्ति कोई अपराध करता है, और हम उस पर विश्वास नहीं कर पाते। हम सोचते हैं कि वह आदमी ऐसा तो कदापि नहीं था। लेकिन उसकी सामान्य विक्षिप्तता है वह सदैव वहाँ है। किसी भी समय ऐबनॉर्मल मन तुम पर हावी हो सकता है, किसी भी क्षण।

विलियम जेम्स एक पागलखाने को देखने गया, और उसके बाद सैंतीस साल तक वह ठीक से सो नहीं सका, क्योंकि पागलखाने में पहली बार उसे पता चला कि जो कुछ दूसरे लोगों को हुआ है वह किसी भी क्षण उसे भी हो सकता है। उसने एक आदमी को देखा जो कि अपना ही सिर दीवार से पीट रहा था।

वह लौट कर आया, वह उस दिन नहीं सो सका। उसकी पत्नी भी परेशान हो गई। उसने कहा, "मैं घबरा गया हूँ, बहुत ज्यादा चिन्तित हो गया हूँ। वह जो उस आदमी को हुआ है वह मुझे भी हो सकता है।" उसकी पत्नी

हँसने लगी और बोली-"क्यों तुम व्यर्थ में परेशान हो रहे हो? तुम विक्षिप्त होनेवाले नहीं हो।" विलियम जेम्स ने कहा, "केवल कुछ दिन पहले वह आदमी भी विक्षिप्त नहीं था, और अब वह पागल है। मैं अभी पागल नहीं हूँ, लेकिन कल मैं ही पागल हो सकता हूँ। गारंटी क्या है।"

सचमुच कोई गारंटी नहीं है, क्योंकि कुछ डिग्रीज का ही मामला है। कोई गारंटी नहीं है, पक्का नहीं है। तुम हो सकता है कि किनारे ही खड़े हो। और सब कुछ भी होता है और तुम धकेल दिये जाते हो। तुम्हारी पत्नी मर जाती है, तुम्हारा घर जल जाता है, और तुम एक डिग्री आगे धकेल दिये जाते हो।

यह स्थिति, यह मानवता की विक्षिप्त स्थिति मनुष्य के अपने ही मन के साथ लगातार संघर्ष के कारण उत्पन्न हुई है। यह उसकी बाई-प्रोडक्ट है। ज्ञान का जन्म सदा स्वीकार से होता है। यही रहस्य है। यदि पागल आदमी अपने पागलपन को समग्रता से स्वीकार कर लेते हो, भीतर एक नई घटना घटती है। स्वीकार से संघर्ष खो जाता है और संघर्ष में जोशक्ति खो रही थी वह नहीं खोती। तुम अधिक शक्तिशाली हो जाते हो। इस शक्ति और सजगता से, तुम अपने मन से ऊपर चले जाते हो। इसलिए तुम्हें अपने मन का स्वीकार होना चाहिए, और मन के प्रति सजगता हो। और तीसरी बात, तुम्हें इस संसार में परिधि से नहीं बल्कि केन्द्र से चलना चाहिए, जीना चाहिए।

कोई तुम्हें गाली देता है, वह तुम्हारे नाम के बारे में कुछ कह रहा है। जो आदमी परिधि पर जी रहा है, वह सोचेगा कि वह कुछ "मेरे" बारे में कह रहा है। जो आदमी केन्द्र पर जी रहा है, वह सोचेगा कि वह नाम के विरुद्ध कह रहा है और मैं कोई नाम नहीं हूँ। मैं बिना नाम के पैदा हुआ था। नाम तो परिधि पर चिपकाया गया लेबल है, इसलिए परेशान क्यों होऊँ? वह आदमी मेरे बारे में तो कुछ कह नहीं रहा हैं, बल्कि नाम के बारे में कह रहा है। तुम नाम से तादात्म्य बनाये हुए हो, इसलिए तुम परेशान हो जाते हो। यदि तुम अपने और नाम के बीच गैप अनुभव कर सको, परिधि और तुम्हारे बीच अन्तराल देख सको, तो परिधि को ही नुकसान पहुँचा है, न कि केन्द्र को। वह तो अस्पर्शित है।

एक हिन्दू संन्यासी, स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में थे। किसी ने उन्हें गाली दे दी, किन्तु वे हँसते हुए आ गये और अपने शिष्यों से बोले कि कोई "राम" को गाली दे रहा था। "राम" बड़ी मुश्किल में पड़ा। उसका अपमान हो रहा था और वह भारी संकट में था। शिष्यों ने पूछा-"आप किसके बारे में बात कर रहे हैं? "राम" तो आपका ही नाम है।" रामतीर्थ ने कहा- "सच ही यह मेरा नाम है लेकिन मैं नहीं। वे लोग मुझे तो जरा भी नहीं जानते। फिर वे मुझे गाली कैसे दे सकते है? वे सिर्फ मेरा नाम ही जानते हैं।"

यदि कृत्य को भी गाली दी जाये, तो भी कृत्य को दी जाती है, तुम्हें नहीं। यदि तुम गैप बनाये रखो-और वह कठिन नहीं है यदि सजगता हो, वह सरलतम बात है- तब परिधि ही स्पर्षित होती है, लेकिन केन्द्र अस्पर्शित रहता है। यदि केन्द्र अस्पर्शित रहता है, तो आगे-पीछे तुम उस गहरे स्थिरता के बिन्दु को खोज लोगे, जो कि तुम्हारा ही केन्द्र-बिन्दु नहीं है बल्कि सारे अस्तित्व का केन्द्र-बिन्दु है।

मैं आज सवेरे ही एक कहानी पढ़ रहा था। बहुत सुन्दर कहानी है। एक युवा साधक, बड़ी कठिन और लम्बी यात्रा के बाद गुरु की झोपड़ी पर पहुँचा-अपने पसन्द के गुरु की। शाम का समय था और गुरु नीचे गिरे हुए पत्तों को बुहार रहा था। साधक ने गुरु को प्रणाम किया लेकिन गुरु मौन ही रहा। उसने बहुत-से प्रश्न पूछे लेकिन गुरु ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने पूरी कोशिश की कि किसी भाँति गुरु का ध्यान आकर्षित करे लेकिन गुरु इस भाँति हो रहा जैसे कि वह वहाँ अकेला था। वह गिरे हुए पत्तों को बुहारता रहा।

जब शिष्य ने देखा कि गुरु का ध्यान पाने की कोई संभावना नहीं है तो उसने उसी जंगल में एक झोपड़ी बनाने का निश्चय किया। वह उस जंगल में वर्षों रहा। कुछ समय बाद अतीत गिर गया क्योंकि उसे चलाये रखने के लिए भी उसे रोज-रोज निर्मित करना पड़ता है। परन्तु जंगल में तो सबकुछ मौन था। वहाँ कोई आदमी भी नहीं था। केवल वहाँ गुरु था जो कि नहीं होने के बराबर था। कोई संवाद भी नहीं था। वह उसके नमस्कार का भी जवाब नहीं देता था, वह शिष्य की ओर झांकता भी नहीं था। उसकी आँखें खाली, शून्य थीं।

इसलिए कुछ समय के बाद अतीत खो गया। शिष्य वहाँ बना ही रहा। विचार थे, धीरे-धीरे वे भी खोने लगे क्योंकि उन्हें चलाने के लिए भी तुम्हें उन्हें रोज-रोज भोजन देना पड़ता है। यदि तुम उन्हें भोजन नहीं दो, तो वे भी सदैव नहीं चल सकते। कुछ करने के लिए भी नहीं था, इसलिए वह विश्राम में पड़ा रहता, मौन बैठा रहता, और गिरे हुए पत्तों को बुहारता रहता। एक दिन बहुत वर्षों के बाद, जबकि वह गिरे हुए पत्तों को बुहार रहा था, उसे आत्म-ज्ञान हो गया। वह रुका और दौड़ता हुआ गुरु के पास झोपड़ी में गया। गुरु वही गिरे हुए पत्ते बुहार रहा था। शिष्य ने कहा, "बहुत धन्यवाद, श्रीमन्।"

सचमुच गुरु ने कभी जवाब नहीं दिया। लेकिन यह धन्यवाद बहुत सुन्दर है। वह गुरु के पास गया और बोला, "धन्यवाद, श्रीमन्।" क्योंकि गुरु के उत्तर नहीं देने के कारण ही------उसने कोई बौद्धिक जवाब नहीं दिया, न ही उसकी तरफ देखा; बस मौन ही रहा इस सबके कारण ही वह अपने गुरु से कुछ सीख पाया। उसने यह मौन सीखा। उसने यह बिना परिधि की परवाह किये केन्द्र पर रहना सीखा।

कोई आदमी लोभी है, यह परिधि की बात है। रहने दो उसे लोभी। कोई आदमी कुछ मांग रहा है, यह परिधि की बात है; उसे मांगने दो। गुरु परेशान नहीं हुआ। वह तो मृत पत्तों को ही बुहारता रहा। उसने कुछ भी नहीं कहा लेकिन उसने एक मार्ग दिखला दिया। उसने कुछ भी नहीं बोला, लेकिन फिर भी उसने उत्तर दिया। वह स्वयं ही उत्तर था। ऐसा मौन शिष्य ने पहले कभी न जाना था। ऐसी अनुपस्थित उपस्थिति उसने पहले कभी न देखी थी। ऐसा था जैसे कि वह व्यक्ति वहाँ मौजूद ही नहीं था, जैसे कुछ भी न बचा था।

बिना कुछ कहे भी गुरु ने बहुत कुछ कह दिया था, बल्कि कहना चाहिए बहुत कुछ दिखला दिया था, और शिष्य उसका अनुसरण करता गया। केवल वही एक पाठ था, लेकिन बहुत गहरा और गुप्त : केन्द्र पर रहना और परिधि की चिन्ता नहीं करना, वर्षों तक शिष्य केन्द्र पर रहने का प्रयत्न् करता रहा, बिना परिधि की चिन्ता किए। एक दिन सूखे पत्तों को बुहाराते समय वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया। सालों गुजर गये थे, और अब ऐसी कृतज्ञता का भाव था। उसने बन्द किया सब और दौड़ा गुरु के पास और बोला, "बहुत धन्यवाद, श्रीमन्।" केवल उस छिपे हुए उत्तर का अनुसरण करके ही ऐसा हुआ।

लेकिन यह सब तुम पर निर्भर करता है। उसकी जगह कोई और अपमानित निदित अनुभव कर सकता था, सोच सकता था कि वह आदमी पागल है और उस पर क्रोधित हो सकता था। तब वह एक बहुत बड़ा अवसर चूक जाता। लेकिन वह व्यक्ति निषेधात्मक नहीं था। उसने उस सारी बात को बड़े विधायक रूप से लिया। उसने उसका अर्थ समझा, उसने उसे जीने का प्रयत्न किया, और घटना घट गई। वह फल था, वह कोई परिणाम नहीं था। वह चाहता तो नकल कर सकता था, लेकिन उसने नकल नहीं की। वह लौटकर भी वापस नहीं आया। वह उसी जंगल में था, लेकिन वह तब तक लौटकर नहीं आया जब तक कि घटना ही नहीं घट गई। वह केवल दो बार गुरु के पास आयाः पहली बार वह गुरु का अभिवादन करने आया और दूसरी बार उसको धन्यवाद देने।

वह इतने वर्षों तक वहाँ क्या कर रहा था? यह एक साधारण-सा पाठ था। केवल एक ही रहस्य था, लेकिन वह आधारभूत था। उसने कोशिश की कि परिधि से विचलित नहीं हो। उसने स्वयं कोस्वीकार कर लिया। परिधि की चिन्ता न करते हुए, परिधि से चिन्तित न होते हुए, वह सजग बना रहा। वह इतना जागरूक था वस्तुतः कि जैसे वे बीस वर्ष जैसे थे ही नहीं। और जब वह बात हो गई, जब वह घटना घट गई, वह ऐसे ही दौड़ा जैसे कोई बात ही नहीं हुई। लेकिन यह बस ऐसे ही था जैसे वे बीस वर्ष हुए ही नहीं। वह गुरु के पास धन्यवाद देने गया जैसे उसने अभी अभी, थोड़ी देर पहले ही मार्ग बतलाया हो।

यदि मौन हो, तो समय खो जाता है। समय परिधि की बात है। यदि मौन हो तो सर्व के प्रति कृतज्ञ हो सकते हो-आकाश के प्रति, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, सबके प्रति। यदि मौन हो तो पुराना संसार किसी भी क्षण खो जाता है, पुराने जो भी तुम हो, नहीं बचते। पुराना आदमी मर जाता है, और एक नया जीवन, एक नई ऊर्जा का जन्म होता है।

यह सूत्र कहता है कि यही प्रदक्षिणा है। यदि तुम अपने बीइंग के, अपने अस्तित्व के केन्द्र में प्रवेश कर सको, तो वही स्थिरता है-जहाँ कि कोई भी आवाज़ नहीं है। तभी केवल तुम मंदिर में प्रवेश किये हो, परमात्मा की उपासना की है, प्रदक्षिणा की है, क्रिया पूरी की है।

हम मन्दिर में क्रियाकाण्ड करते रह सकते हैं, बिना यह जाने कि इस क्रियाकाण्ड का अर्थ क्या है। प्रत्येक क्रियाकाण्ड एक गुप्त कुंजी है। क्रियाकाण्ड तो बच्चों की बात है। यदि तुम्हें यह पता नहीं हो कि यह एक कुंजी है, तो तुम उससे खेल सकते हो। लेकिन तब तुम उसे फेंक भी सकते हो, क्योंकि तुम समझोगे कि वह व्यर्थ है-क्योंकि तुम्हें उस ताले का पता नहीं है और तुम्हें चाबी का भी पता नीं है कि इससे कुछ खोला जा सकता है। ये सब बड़ी गुप्त भाषाएँ हैं।

क्रिया-काण्ड गुप्त भाषा है। उसके द्वारा कुछ संप्रेषित किया गया है। किताबें नष्ट हो सकती हैं क्योंकि भाषाएँ मृत हो जाती हैं। शब्दों के अर्थ बदलते जाते हैं। इस सबके कारण, जब कभी कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो वह कुछ क्रिया-काण्ड निर्मित कर देता है। वे ज्यादा स्थायी भाषाएँ हैं। जबकि शास्त्र भी खो जायेंगे, जब धर्म भी मुर्दा हो जायेंगे, जब पुरानी भाषाएँ समझी न जा सकेंगी या गलत समझी जायेंगी, तब भी क्रिया काण्ड चलते रहेंगे।

कभी-कभी कोई धर्म बिल्कुल खो जाता है, लेकिन क्रियाकाण्ड चलते रहते हैं। वे नये धर्म में पुनर्निर्मित किए जाते हैं, वे नये धर्म में प्रवेश कर जाते हैं, बिना यह जाने कि क्या हो रहा है। क्रियाकाण्ड स्थायी भाषाएँ हैं, और जब कभी कोई उनमें गहरे जाता है तो उनके रहस्य का पता चलता है। यह उपनिषद मूलतः पूजा की क्रिया से संबंधित है और प्रत्येक कृत्य बड़ा अर्थपूर्ण है।

अपने आप में यह बच्चों की बात जैसा लगता है। वह मूढ़तापूर्ण प्रतीत होता है कि मन्दिर में जाओ और वेदी के चारों ओर परिक्रमा करो, या देवता की मूर्ति के चारों ओर चक्कर लगाओ। यह मूर्खतापूर्ण दिखलाई पड़ताहै। क्या कर रहे हो तुम? अपने आप में यह मूढ़तापूर्ण है, क्योंकि हम भूल ही गये कि यह एक गुप्त कुंजी है। इसका अर्थ ताले को जानने में छिपा है। इसका अर्थ ताले को खोलने में ढका है। यह सात चक्कर देवता की मूर्ति के चारों ओर शरीर के सात चक्रों से संबंधित है और वेदी का मतलब उस भीतरी आत्यंतिक केन्द्र से है।

अपने केन्द्र के चारों ओर घूमते रहो, भीतर जाते चले जाओ, और एक ऐसा क्षण आता है कि सब क्रिया रुक जाती है। तब कोई ध्वनि नहीं होती। तुम मौन में प्रवेश कर गये। यह मौन ही दिव्यता है, यह मौन ही

आनन्द है, यह मौन ही सब धर्मों का लक्ष्य है, और यह मौन ही सारे जीवन का उद्देश्य है। और जब तक तुम इस मौन को उपलब्ध नहीं होते, तुम चाहे कुछ भी प्राप्त कर लो, सब व्यर्थ है अर्थहीन है। यदि तुम सारा संसार भी पा लो, तो भी वह किसी काम का नहीं।

लेकिन यदि तुम आंतरिक मौन को प्राप्त कर लो, इस केन्द्र को पा लो, और सारा संसार भी खो दो तो भी यह पाने जैसा है। कोई भी सौदा बुरा नहीं है, यदि कुछ भी देना पड़े, त्यागना पड़े। जब तुम इस आंतरिक मौन को उपलब्ध होओगे, तब तुम जानोगे कि जो कुछ भी तुमने इसके बदले में दिया वह कुछ भी नहीं था। जो भी तुम पाते हो वह अमूल्य है और जो तुमने खोया वह कचना है।

किन्तु कचरा ही हमारे लिए धनहै, कचरा ही हमारे लिए बहुत कीमती है। और मैं फिर दोहराता हूँ कि यदि तुम सोचते हो कि इस कचरे से तुम कुछ खरीद सकते हो, तो तुम कभी उस केन्द्र को नहीं पा सकोगे। केन्द्र परिणाम नहीं हो सकता। यदि तुम इस कचरे को फेंक दो तो, उसे पा सकोगे, वह फल है, कांसीक्वेन्स है।

"स्थिरता ही प्रदक्षिणा है-उसके चारों ओर पूजा के लिए घूमना।" उसके चारों ओर, उस भीतरी केन्द्र के चारों ओर, वह जो आत्यंतिक केन्द्र है, उसके चारों ओर घूमना। "यह" परिधि है, "वह" केन्द्र है। इसलि "इसे" छोड़ते जाओ और "उसकी" ओर बढ़ते जाओ। साधना का मतलब यही होता है। यही मार्ग है।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

मौन के तीन आयाम

प्रश्न

1. कृपया, आंतरिक स्थिरता को आंतरिक मौन के अलावा किसी और आयाम से भी समझायें?

2. आज के मनुष्य के लिए आंतरिक स्थिरता कठिन क्यों हो गई है और उसके लिए क्या मार्ग है?

भगवन! कल रात्रि आपने आंतरिक स्थिरता को आंतरिक मौन के आयाम से समझाया। कृपया आंतरिक स्थिरता को किसी अन्य आयाम से भी समझाने की अनुकंपा करें?

स्थिरता के बहुत से आयाम हैं। एक है मौनः यह ध्वनि का विपरीत ध्रुव है। यह ध्वनि न होना है। दूसरा आयाम है अ-गति यह गति का विपरीत धूव है। मन एक गति है जैसे कि मन एक ध्वनि है। ध्वनि यात्रा करती है और मन भी। मन सतत चलता रहता है, बिना जरा भी रुके।

तुम फिर मन के बारे में भी सोच भी नहीं सकते। ऐसी कोई चीज़ नहीं होती, क्योंकि जब स्थिरता, स्टिलनेस होती है तो मन नहीं होता। जब मन होता है, तो गति भी होती है। अतः मन की गति क्या है? इसके द्वारा हम स्थिरता के दूसरे आयाम के बारे में सोच सकते है : अ-गति।

बाह्य रूप से हम जानते हैं कि गति का क्या अर्थ है : एक जगह से दूसरी जगह जाना : एक स्थान से दूसरे स्थान को हटना, "अ" से "ब" को पहुँचना। यदि तुम "अ" स्थान पर हो, और फिर तुम "ब" स्थान पर चले जाते हो, तो गति हुई। इसलिए मन के बाहर गति का अर्थ होता है कि स्पेस में रिक्त स्थान में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। यदि कोई रिक्त स्थान न हो, तो तुम नहीं चल सकते। तुम्हें बाहर चलने के लिए स्पेस की, खाली स्थान की आवश्यकता है।

भीतरी गति खाली स्थान में न होकर समय में होती है। यदि कोई समय न हो, तो तुम भीतर नहीं जा सकते। समय भीतरी आकाश : एक सेकंड से तुम दूसरे सेकंड को, इस दिन से उस दिन को; यहाँ से वहाँ, अभी से तब में समय में गति करते हो। समय ही आंतरिक आकाश है। अपने मन का विश्लेषण करो, और तुम देखोगे कि सदा अतीत से भविष्य या भविष्य से अतीत में गति कर रहे हो। या तो तुम अतीत की स्मृतियाँ में गतिमान हो, और या तो भविष्य की इच्छाओं में दौड़ रहे हो।

जब तुम अतीत से भविष्य या भविष्य से अतीत में जाते हो केवल तभी तुम वर्तमान क्षण का उपयोग करते हो, लेकिन बस एक मार्ग की तरह। वर्तमान मन के लिए केवल अतीत और भविष्य का एक विभाजन करनेवाली रेखा है। मन के लिए सचमुच वर्तमान है ही नहीं, उसका अस्तित्व ही नहीं है। वह सिर्फ एक विभाजन करने वाली रेखा है जहाँ से तुम अतीत या भविष्य में होने में असमर्थ हो। इसे समझ लो। तुम वर्तमान में गति करने में असमर्थ हो। वर्तमान में कोई समय नहीं होता। वर्तमान सदैव एक क्षण होता है। तुम कभी भी दो क्षणों में नहीं होते। केवल तुम्हारे पास सदा एक क्षण होता है। तुम "अ" से "ब" को नहीं जा सकते क्योंकि केवल "अ" ही होता है। कोई "ब" नहीं होता।

समय के इस गुण को, वर्तमान को ठीक से समझ लो : कि सदा तुम्हारे पास एक क्षण होता है। चाहे तुम सड़कपर भीख मांगने वाले भिखारी हो और चाहे सम्राट, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी समय की सम्पदा

वही है। एक बार में केवल एक क्षण। और तुम उसमें प्रवेश नहीं कर सकते, वहाँ कोई जगह नहीं है जहाँ कि जाया जा सके। और मन सदा गति में पाया जाता है, इसलिए मन वर्तमान का उपयोग कभी नहीं करता। वह कर ही नहीं सकता। वह पीछे अतीत में चला जाता है। वहाँ बहुत से बिन्दु हैं जहाँ कि गति की जा सकती है। लम्बी स्मृति है, तुम्हारा सारा अतीत वहाँ मौजूद है।

या फिर वह भविष्य में चला जाता है। फिर तुम कल्पना कर सकते हो क्योंकि भविष्य भी मूलतः अतीत का ही प्रक्षेपण है। तुम जिये हो, तुमने बहुत से अनुभव किये हैं। तुम उन्हें पुनः पाने की इच्छा करते हो या फिर तुम उनसे बचना चाहते हो। यही तुम्हारा भविष्य है। तुमने किसी से प्रेम किया है, और वह सुन्दर था, आनन्दपूर्ण था। तब तुम उसे पुनः करना चाहोगे, अतः तुम प्रक्षेपण करोगे कि तुम भविष्य में बीमार नहीं पड़ो। इसलिए तुम्हारा भविष्य तुम्हारा प्रक्षेपित अतीत ही होता है, और तुम भविष्य में गति कर सकते हो।

परन्तु मन इस जीवन के भविष्य से सन्तुष्ट नहीं होता। वह स्वर्ग को भी प्रक्षेपित करता है, वह भविष्य के जीवनों की कल्पना करता है। वह मामूली से भविष्य से सन्तुष्ट नहीं होता, इसलिए वह मृत्यु के बाद भी समय निर्मित कर देता है। अतीत और भविष्य बहुत बड़े प्रदेश हैं। तुम उनमें आसानी से गति का सकते हो। वर्तमान के साथ तुम गति नहीं कर सकते। अ-गति का अर्थ हल्ला है, वर्तमान में होना। वही स्थिरता का दूसरा आयाम है। यदि तुम क्षण में ठहर सको, अभी और यहीं, तो तुम स्थिर हो जाओगे। फिर स्थिर होने के सिवाय दूसरी कोई भी संभावना नहीं है।

अभी में जियो, और गति रुक जाएगी क्योंकि मन रुक जाएगा। अतीत की मत सोचो, और उसे भविष्य में भी प्रक्षेपित न करो। जो कुछ तुम्हें मिला है, वह बहुत है। उसी में ठहर जाओ, वहीं रुक जाओ, उससे सन्तुष्ट हो जाओ। यह क्षण ही वास्तविक अस्तित्व का समय है।

उसके सिवा कुछ और नहीं है। अतीत केवल स्मृति है। वह सिर्फ तुम्हारे मस्तिष्क में है-सिर्फ संगृहीत धूल, संगृहीत अनुभव। अस्तित्व में कोई अतीत नहीं होता, अस्तित्व में कोई भविष्य नहीं होता। अस्तित्व सदा वर्तमान है।

यदि इस पृथ्वी पर आदमी नहीं होता तो कोई अतीत या भविष्य नहीं होता। फूल उगते लेकिन वर्तमान में होते। सूर्य भी निकलता लेकिन वर्तमान में। पृथ्वी कुछ भी अतीत की बात नहीं जानती होती, और न ही भविष्य के सपने देखती। कोई अतीत नहीं होता, और न ही कोई भविष्य। अतीत मन में होता है, स्मृति में होता है, और उस स्मृति के कारण ही भविष्य में प्रक्षेपित किया जाता है। अतः साधारणतः हम समय को तीन बिन्दुओं में बाँटते हैं : अतीत, वर्तमान व भविष्य। किन्तु वस्तुतः अतीत और भविष्य समय के हिस्से नहीं है। वे मन के हिस्से हैं, न कि समय के हिस्से। समय का केवल एक ही आयाम होता है। यदि तुम उसे हिस्सा करना चाहो, तो वह सिर्फ वर्तमान होता है।

समय सदा ही वर्तमान होता है। ये तीन विभाजन समय के विभाजन नहीं हैं। अतीत और भविष्य मन के हिस्से हैं : न कि समय के। समय से केवल वर्तमान ही संबंधित है। लेकिन तब उसे वर्तमान कहना भी संभव नहीं है क्योंकि हमारे लिए भाषा में वर्तमान का अर्थ होता है कुछ ऐसा जो कि अतीत और भविष्य के मध्य में है। वह अतीत के संदर्भ में है, वह भविष्य के भी संदर्भ में है। यदि कोई अतीत और भविष्य नहीं है, तब फिर वर्तमान का सारा अर्थ ही खो जाएगा।

सुना है मैंने, एकहार्ट ने कहा है कि समय जैसी कोई चीज़ नहीं, सिर्फ एक इंटरनल नाऊ है-शाश्वत अभी है। एक शाश्वत अभी है, और एक असीम यहीं है। जब हम कहते हैं वहाँ, तो हम जहाँ होते हैं उसके ही संदर्भ में

कहते हैं, अन्यथा केवल "यही" है। यदि "मैं" यहाँ नहीं हूँ तो फिर यहाँ क्या बिन्दु होगा और वहाँ क्या बिन्दु होगा? मेरे संदर्भ में ही मेरे निकट की जगह को मैं कहता हूँ "यहाँ" और जो मुझसे निकट नहीं है, मैं कहता हूँ "वहाँ" यह यहाँ कहाँ समाप्त होता है और यह "वहाँ" कहाँ प्रारंभ होता है? हम कोई रेखा नहीं खींच सकते। वस्तुतः यह सब "यहाँ", हियर।

मन के कारण ही हम उस समय को विभाजित करते हैं। तब हमने जो अनुभव कर लिया है, अतीत हो जाता है, और जो हमें अनुभव करने की आशा है, भविष्य हो जाता है। किन्तु यदि कोई मन नहीं हो, तो फिर एक असीम नाऊ होगा, एक शाश्वत अभी होगा। यहीं और अभी ही सत्य है। वहाँ "वह" सब मन के हिस्से हैं न कि वास्तविकता के हिस्से।

दूसरे आयाम से स्थिरता की बात सोचने का अर्थ होता है, क्षण-क्षण जीने का प्रयत्न करना। तब तुम स्थिर हो जाओगे। तुम मौन हो जाओगे। तब भीतर कोई कंपन नहीं होगा, कोई हलचल नहीं होगी कोई गति नहीं होगी। प्रत्येक चीज़ एक गहरी शान्ति का सरोवर हो जाएगी।

हमारा मन अतत और भविष्य में क्यों जाता है? बुद्ध ने इच्छा को, तृष्णा को "तन्हा" कहकर पुकारा है। बुद्ध कहते हैं कि चूँकि तुमने कुछ अनुभव किया है, इसलिए तुम उसकी पुनः कामना करते हो। चूँकि तुम कामना करते हो, तुम भविष्य में गति करते हो। कोई कामना मत करो और कोई भविष्य नहीं है। यह कठिन है क्योंकि मन जब सुख का अनुभव करता है तो वह पुनरुक्ति की कामना करता है। और जब मन दुःख का अनुभव करता है तो वह नहीं चाहता कि वह पुनरुक्त हो। वह उसे टालना चाहता है। इसी कारण यह बहुत प्राकृतिक बात है कि भविष्य निर्मित होता है। और इसी भविष्य के कारण हम वर्तमान से चूक जाते हैं।

यदि तुम सुन रहे हो तो सिर्फ सुनो, सोचो मत कि तुमसे क्या कहा जा रहा है, उसका अर्थ खोजने का भी प्रयास मत करो, क्योंकि तुम दो बातें वर्तमान में नहीं कर सकते। सुनना पर्याप्त है। और यदि तुम सिर्फ सुन रहे हो तो, तुम वर्तमान में हो, और सुनना भी ध्यान हो जाता है।

महावीर ने कहा है कि यदि तुम सम्यक रूप से सुन सको तो फिर कुछ और करने की आवश्यकता नहीं है। केवल श्रावक हो जाने से ही, सम्यक श्रोता हो जाने से ही तुम जो कुछ भी पाने योग्य है उसे पा लोगे। केवल श्रावक होने से ही- सम्यक सुनने वाले होने से ही-क्योंकि सुनना सिर्फ सुनना नहीं है, वह एक बड़ी घटना है। और एक बार तुम्हें रहस्य का पता चल जाये तो फिर तुम किसी भी जगह उसका उपयोग कर सकते हो। तब केवल भोजन करना भी ध्यान हो जाएगा, सिर्फ चलना भी ध्यान हो जायेगा, केवल सोना भी ध्यान हो जाएगा। तब जिस कार्य में तुम उस क्षण में होओगे; बिना भविष्य में गति किए, वही ध्यान हो जाएगा।

लेकिन हम ऐसा कोई कृत्य नहीं जानते जिसमें हम वर्तमान में हो सकें। या तो हम अतीत की बात सोचने लगते हैं या फिर भविष्य की। वर्तमान लगातार चूक जाता है। उसका अर्थ होता है कि हम अस्तित्व को चूकते चले जाते हैं। और तब यह श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया हो जाती है, तब यह एक आदत बन जाती है।

एक शाम मुल्ला नसरुद्दीन सड़क पर आ रहा था। सड़क सूनी थी और अचानक उसे कुछ घुड़संवारों की आवाज सुनाई दी, कुछ सैनिकों की आवाज सुनाई दी जो कि उसकी तरफ आ रहे थे। उसका मस्तिष्क काम करने लगा। उसने सोचा कि वे लोग डाकू भी हो सकते हैं, वे उसे कत्ल भी कर सकते है। और राजा के सिपाही भी हो सकते हैं और उसे जबरदस्ती सेना में भरती कर सकते हैं या कुछ भी ऐसा-वैसा कर सकते हैं। वह अपने आप ही भयभीत हो गया और घोड़े और उनकी आवाज निकट आई तो वह भागा, जोर से भागा और एक कब्रस्थान में कूद गया और उन लोगों से छिपने के लिए एक खुली कब्र में जाकर लेट गया।

इस आदमी को इसी तरह अचानक भागते हुए देखकर वे घुड़सवार जो कि महज यात्री थे, चौकन्ने हो गये कि आखिर क्या मामला है। वे मुल्ला के पीछे दौड़े और उसकी कब्र के पास पहुँचे। मुल्ला वहाँ ऐसे लेटा था, जैसे मर गया हो। उन्होंने पूछा कि क्या बात है? उन्होंने मुल्ला से पूछा कि आखिर मामला क्या है जिससे वह इतना डर गया है? तब मुल्ला को महसूस हुआ, उसने अकारण ही अपने को डरा दिया। उसने अपनी आँखें खोली और कहा कि "मामला बड़ा जटिल है-बड़ा उलझनपूर्ण है। यदि तुम नहीं ही मानते और जानना ही चाहते हो कि मैं यहाँ पर क्यों हूँ, तो मैं तुमसे कहूँगा कि मैं यहाँ हूँ, तुम्हारे कारण से और तुम यहाँ पर हो मेरे कारण से।"

यह एक दुष्ट-चक्र है। यदि तुमने कामना की, तो तुम भविष्य में चले गये और इससे फिर एक दुष्ट-चक्र निर्मित होगा। जब वह भविष्य वर्तमान बनेगा, तो तुम फिर भविष्य में यात्रा कर जाओगे। आज मैं कल के बारे में सोचूँगा, यह एक आदत बन जाएगी। और कल तो कभी आता नहीं, वह आ ही नहीं सकता, वह असंभव है। जब भी वह आता है, तब वह फिर आज की तरह आता है, और मैंने हमेशा आज से कल में यात्रा करने की एक आदत बना ली है। इसलिए जब भी कल आता है वह आज की तरह आता है, तब वह फिर आज की तरह आता है और मैंने हमेशा आज से कल में यात्रा करने की एक आदत बना ली है। इसलिए जब भी कल आता है वह आज की तरह आता है, और तब मैं फिर कल में गति कर जाऊँगा।

यहशृंखला है। और जितना ज्यादा तुम ऐसा करते हो उतने ही तुम उसमें कुशल हो जाते हो। और कल तो कभी आता नहीं है। जब भी आता है, आज ही आता है और आज से तुम्हारा कोई संबंध नहीं है। तुम्हारी यांत्रिकता है : चूँकि यह आज है तुम आगे गति कर जाते हो। यह बहुत बड़ी आदत है-इसी जीवन की नहीं, बल्कि जन्मों-जन्मों की। इसे तोड़ना पड़ेगा, इसमें से बाहर निकलना पड़ेगा। जो भी तुम कर रहे हो, एक ही बात स्मरण रखो, वर्तमान मे रहो, उसे करते समय। यह बहुत कठिन है, बड़ी मुश्किल बात है, और तुम एकदम से सफल भी नहीं होओगे। एक लम्बी आदत को तोड़ना पड़ेगा। यह एक कड़ा संघर्ष है, लेकिन प्रयत्न करें। प्रयत्न करना भी अन्तराल पैदा कर देगा, और यह प्रयास ही कभी तुम्हें वर्तमान के कुछ क्षण दे देगा। और यदि तुम एक बार इसका स्वाद चख लो तो फिर तुम मार्ग पर हो।

लेकिन तुम अभी वर्तमान का स्वाद भी नहीं जानते। तुमने कभी उसे चखा ही नहीं। तुमने कभी उसे जिया ही नहीं। मैं कहता हूँ, वही तो है, जो कुछ भी जीवन में है।

जीसस कहते हैं कि हम सब मरे हुए हैं, जीवित नहीं हैं। एक दिन वे सवेरे जबकि अभी सूरज निकलने को ही था, एक मछुए के पास से गुजर रहे थे। मछुए ने अपना जाल पानी में फेंक दिया है, और जीसस उसके कन्धे पर हाथ रखते हैं और कहते हैं-"क्या तुम अपना सारा जीवन यूं मछली पकड़ने में ही गवाँ देना चाहते हो? मैं तुम्हें कुछ इससे अच्छी चीज़ पकड़ना सिखा सकता हूँ। मैं तुम्हें जीवन का मछुआ बना सकता हूँ।" मछुआ जीसस की ओर इस तरह देखने लगा जैसे कि कोई चुम्बक उसे खींच रहा हो। उसने अपना जाल फेंका और जीसस के साथ हो गया।

अभी वे गाँव से बाहर निकल ही रहे थे, कि कोई दौड़ता हुआ आया और मछुए से कहने लगा-"तुम्हारे पिता की मृत्यु हो गई है। वे अभी-अभी मर गये हैं, अतः घर चलो। तुम जा कहाँ रहे हो?" मछुए ने आज्ञा मांगी। वह जीसस से बोला, "मुझे, घर जाने की आज्ञा दे दें। मैं जल्दी ही लौटकर आ जाऊँगा। मुझे अपने मृत पिता को दफनाने जाने दें।" जीसस ने कहा, "मुर्दे-मुर्दों को दफना देंगे। तुम्हें जाने की आवश्यकता नहीं। गाँव में इतने मृत लोग रह रहे हैं। वे मुर्दे को दफना देंगे।"

जीसस के लिए हम सब मुर्दे हैं क्योंकि हमने जीवन को चखा ही नहीं कभी वर्तमान का स्वाद लिया ही नहीं। अस्तित्व को कभी जाना ही नहीं। हम सब मृत अतीत में जीते हैं। और हम मरे हुए अतीत को भविष्य पर प्रक्षेपित करते रहते हैं। इसी कोशंकर "माया" कहते हैं : इल्यूजन, भ्रम। शंकर को बहुत गलत समझा गया। जब शंकर कहते हैं कि यह संसार माया है तो उनका मतलब है कि आदमी का संसार भ्रम है, न कि यह संसार।

हम इस संसार के बारे में कुछ भी नहीं जानते। हमने अपने मानसिक संसार बना रखे हैं। प्रत्येक का अपना एक जगत है- अतीत और भविष्य का एक जगत स्मृतियों और कामनाओं का एक जगत यह जगत झूठा है, भ्रम है। अतः जब शंकर कहते हैं कि वह जगत झूठा है तो उसका अर्थ है कि तुम्हारा जगत न कि यह जगत। और जब तुम्हारा जगत नहीं हो जाएगा, तभी तुम वास्तविक जगत को जानोगे। और शंकर कहते हैं कि वही ब्रह्म है, वही सत्य है-निरपेक्ष सत्य।

अभी ऐसा है कि हम एक सपनों के जगत में रह रहे हैं। प्रत्येक अपने-अपने सपनों से घिरा हुआ है, सपनों के बादलों के कोहरे में खोया है। प्रत्येक अपने सपनों से घिरा हुआ चल रहा है। और इन सपनों के कारण ही हम उसे नहीं देख सकते जो कि सत्य है, जो कि वास्तविक है। वास्तविक हमारे सपनों के पीछे छिपा है। यह सपनों से भरा चित्त ही अस्थिर मन है। वह जो सपनों से मुक्त चित्त है वही स्थिर मन है। किन्तु कामनाएँ ही सपनों को जन्म देती है। तुम रात को सपने देखते हो क्योंकि तुम दिन में इच्छाएँ करते हो। यदि तुम दिन में इच्छाएँ न करो, तो तुम रात में सपना नहीं देख सकते।

एक बुद्ध सपने नहीं देख सकते क्योंकि सपने ही इच्छाएँ हैं और इच्छाएँ ही सपने हैं। जब वे दिन में होती हैं तो तुम उन्हें कामनाएँ कहते हो, जब वे रात में होती हैं तो तुम उन्हें सपने कहते हो। लेकिन प्रत्येक कामना सपना है। क्यों? क्योंकि प्रत्येक कामना भविष्य में है जो कि अभी नहीं है। प्रत्येक कामना भविष्य की कामना है जो कि नहीं है। भविष्य है ही नहीं।

हम सपने देखते ही रहते हैं। इसे तोड़ना पड़ेगा। यह सपने देखना ही गति है-एक सतत गति। तुम सपनों से भरे हो-सपने जो कि टूट गये हैं, जल गये हैं और नये निर्मित किये गये हैं। प्रतिदिन हमें पुराने सपनों को फेंकना पड़ता है और नये निर्मित करने पड़ते हैं।

किसी भी क्षण, किसी भी कार्य में, यहीं और अभी में रहने का प्रयत्न करो। प्रयत्न भी एक बाधा है, लेकिन प्रारंभ में प्रयत्न करना पड़ेगा। शुरू में तुम्हें प्रयत्न करना ही पड़ेगा। प्रयत्न भी एक बाधा है क्योंकि हर प्रयत्न तुम्हें भविष्य में ले जाता है। लेकिन शुरू में यह करना ही पड़ेगा फिर दूसरे चरण में प्रयत्नरहित प्रयत्न करना होता है, और फिर तीसरे चरण में प्रयत्न विलीन हो जाता है और तुम वर्तमान में होते हो। तुम सड़क पर चल रहे हो, तब केवल चलो, कुछ भी और करने का प्रयत्न मत करो। यह बहुत सरल मालूम पड़ता है। यह सरल नहीं है। ऐसा लगता है कि हम सब यह कर ही रहे हैं। ऐसा नहीं है। जब तुम चल रहे हो, तो तुम्हारा मन हजारों दूसरी बातें कर रहा होता है। प्रत्येक कदम के साथ चलो। केवल चलो।

बुद्ध ने कहा है कि जब तुम चल रहे हो, तब सिर्फ चलो, जब तुम खा रहे हो, तब सिर्फ खाओ, जब तुम सुन रहे हो, तब सिर्फ सुनो। उस कृत्य में पूरे ही हो जाओ। अपने मन को कहीं और मत जाने दो। और यह एक बहुत ही आश्चर्यजनक अनुभव है क्योंकि अचानक वर्तमान प्रवेश कर जाएगा। तुम्हारे सपनों के संसार में वास्तविकता का जगत प्रवेश कर जाएगा। और यदि तुम्हें उसकी एक झलक भी एक क्षण के लिए मिल जाये, तो तुम दूसरे ही आदमी हो जाओगे। तब तुम उसे जानोगे जो कि अभी और यहीं है, तुम्हारे चारों तरफ है, और तुम

उसे चूक रहे हो। तुम उसे अपनी यांत्रिक आदत के कारण ही चूक रहे हो। और कोई कुछ भी नहीं कर सकता सिवाय इसके कि वह अ-यांत्रिक हो जाए।

कभी-कभी सजगता से बड़े चमत्कार घटित हो जाते हैं। मैं पढ़ रहा था कि रूस में पुराने दिनों में क्रान्ति के पहले एक छोटे से गाँव में एक नाटक खेला जा रहा था। अचानक मैनेजर को पता चला कि एक आदमी, जो कि अन्तिम दृश्य में अत्यन्त आवश्यक है, गायब है। एक आदमी की आवश्यकता थी, एक विशेष पार्ट में जबकि वह हकलाता है। वह आदमी गायब था, इसलिए उन्होंने किसी दूसरे आदमी की खोज की जो कि उसकी जगह काम कर सके। तब किसी ने कहा कि यह तो उस समय बड़ा कठिन होगा। लेकिन गाँव में एक लड़का था, जो कि कुशल था। उसे किसी प्रशिक्षण की भी जरूरत नहीं थी क्योंकि वह स्वाभाविक ही हकलाता था। अतः लड़के को लाया गया। बहुत से चिकित्सकों ने उसका इलाज करने की कोशिश की थी लेकिन उसका हकलाना जारी था।

इसलिए उस लड़के को बुलाया गया और उसे वह रोल दे दिया गया। अभ्यास करने की भी आवश्यकता नहीं थी, जब वह लड़का स्टेज के भीतर घुसा तो उसने हकलाने का प्रयत्न किया लेकिन वह नहीं हकला सका। वह बिना किसी गलती के बोलने लगा जैसा कि कोई भी बोलता है। जितना उसने कोशिश की उतना असंभव हो गया। क्या हो गया? पहली बार हकलाने की जो यांत्रिक आदत थी, सजगता के कारण टूट गई। अब वह उसे पूरी जागरूकता के साथ कर रहा था। वह अब उसे करने का प्रयत्न कर रहा था। वह सजग हो गया था, और उसकी बीमारी विलीन हो गई थी। वह एक यांत्रिक आदत थी, परन्तु उसे सजगतापूर्वक करने की कोशिश ने असंभव कर दिया।

मैं एक शहर में था। एक प्रोफेसर को मेरे पास लाया गया। वह एक कॉलेज में प्रोफेसर था। एक बहुत सुशिक्षित, समझदार, तथा तार्किक आदमी था। लेकिन उसे एक रोग था और वह बड़े कष्ट में था। क्योंकि उसने स्त्रियों की तरह चलने की आदत डाल ली थी। और वही उसकी समस्या थी, विशेषतः एक कॉलेज में सब लोग हँसते थे। उसकी मनोचिकित्सा हुई, उसे अस्पताल में रखा गया, लेकिन किसी भी प्रयत्न से कुछ भी नहीं हुआ। और जितना उसने प्रयत्न किया, जितना उसने संकल्प किया, उसे नहीं करने का, उतना वह ज्यादा करने लगा। और इस तरह वह भारी उलझन में पड़ गया।

उसे मेरे पास लाया गया। मैंने उससे कहा कि अपनी इस आदत से लड़ो नहीं, बल्कि इसे होशपूर्वक करो। जब तुम सड़क पर चलो स्त्रियों की तरह चलो। स्त्रियों की तरह चलने का प्रयत्न करो। उसने कहा, आप क्या करने को कह रहे है? मैं पहले ही इतनी परेशानी में हूँ, और यदि मैं भी अपनी ओर से प्रयत्न करूँ, तो फिर इससे भी बुरा हो जाएगा। मैंने उससे कहा कि तुमने बीस वर्ष से कोशिश करके देख लिया कि तुम स्त्रियों की तरह न चलो। अब इसका उलटा करो। इसका उलटा भी करके देख लो। तुम यहाँ खड़े हो जाओ। यहाँ मेरे सामने ही इस कमरे में चलो।

उसे बड़ी शर्म मालूम हुई। फिर भी उसने कोशिश की और चला। लेकिन वह चल नहीं सका। उसने कहा, क्या हो गया? यह आने क्या किया? क्या आपने कुछ किया है? यह तो चमत्कार है। मैं कोशिश कर रहा हूँ और मैं स्त्रियों की तरह नहीं चल पा रहा। मैंने उससे कहा कि अब तुम जाओ और ऐसा करते रहो। अपने कॉलेज जाओ। प्रत्येक कदम पर स्त्री की तरह चलने का प्रयत्न करो। शाम को वह मेरे पास आया। वह तो आनन्द से भरा था। उसने कहा कि मैं आपको कैसे धन्यवाद दूँ। यह तो असंभव है, लेकिन चमत्कार है। यह तरकीब तो काम कर गई। मैं चल ही नहीं सकता। यदि मैं चलने की कोशि करता हूँ तो मैं नहीं चल सकता हूँ। हो क्या गया?

जिस क्षण भी तुम अपनी सजगता किसी यांत्रिक आदत के पास लाते हो, तो वह रुक जाती है क्योंकि कोई भी यांत्रिक आदत तुम्हारी मूर्च्छा पर निर्भर होती है। इसलिए संकल्पशक्ति काम नहीं देगी, सजगता काम देगी। और इस भेद को स्मरण रखो। संकल्प में तुम आदत से लड़ने का प्रयत्न करते हो, और यदि तुम उससे लड़ते हो, तो तुमने उसे स्वीकार कर लिया। और जब मैं कहता हूँ सजगता से, होशपूर्वक तो मेरा मतलब है बिना उससे लड़े। उसे आप अपना पूरा साथ दे दें, उसके खिलाफ जरा भी न हो।

तुम सड़क पर चल रहे हो, अपने चलने के मथ पूरी तरह समग्र हो जाओ। उसके साथ एक ही जाओ, जो हो रहा हो, उसके प्रति जागे रहो। अब यह बायां पाँव, अब यह दायाँ पाँव चल रहा है। हर एक गति होशपूर्वक अनुभव करो। उस क्षण में रहो, अपने मन को कहीं भी और मत जाने दो। यदि पुरानी आदत के अनुसार मन कहीं भी चला जाये- तो उसे वापस ले आओ। निराश न को। यदि मन चला जाता को तो यह न कहें कि "यह असंभव है, मुझसे नहीं होगा।" नहीं, अपने मन को वापस ले आओ। पुनः प्रयत्न करो, और आगे पीछे तुम्हें कुछ क्षणों का पता चलेगा, चाहे वे कितने भी कम हो, जब तुम वर्तमान के अनुभव का स्वाद ले पाओगे। वर्तमान का अनुभव करना कितना प्रीतिकर है। और एक बार भी तुम वर्तमान को अनुभव कर लो, तो तुम अस्तित्व के द्वार के निकट ही हो, तुम उसमें प्रवेश कर सकते हो।

इस आयाम में स्थिरता का अर्थ है कि मन को कोई गति अतीत में या भविष्य में नहीं जाती। कोई गति नहीं। बस केवल वर्तमान में रहो। तुम इसे बुद्धि से समझ सकते हो, तुम्हें लग सकता है कि ठीक है, समझ गये। लेकिन बौद्धिक समझ काम नहीं देगी। बल्कि वह और भी बड़ी प्रवंचना होगी। वह बड़ी प्रवंचना साबित होगी। तुम्हें उसे करना पड़ेगा। सोचने समझने से कुछ भी न होगा।

तुम अपने बिस्तर पर लेटे हुए हो, तुम सोने जा रहे हो। इस लेटे होने की स्थिति को अनुभव करो। बिस्तर का स्पर्श अनुभव करो, चादर का स्पर्श अनुभव करो और चारों और की आवाजें-सड़क पर चलनेवाली गाडियों की आवाजें आदि सुनो। अनुभव करो उस सबको, वहीं रुक जाओ। सोची नहीं, केवल अनुभव करो, वर्तमान में हो जाओ। और उस अनुभव की स्थिति में सो जाओ। उस रात तुम्हें सपने कम आयेंगे, तुम्हारी नींद गहरी हो जाएगी।

सवेरे तुम्हारा जागरण अधिक ताजा होगा। जब सवेरे तुम्हें मालूम पडे, पहली वार कि नींद टूट गई तो एकदम से बिस्तर के बाहर कूदकर मत आ जाओ। वहीं पड़े रहो पाँच मिनट। पुनः चादर का अनुभव करों। उष्णता का अनुभव करो, सर्दी का, छत पर पड़रहीं वर्षा का, अथवा सड़क पर फिर से चालू हो गये ट्रैफिक की आवाज का अनुभव करो, अथवा जगत का अनुभव करो। जो कि जाग गया है-शोर, पक्षियों का गीत-इस सबको पुनः अनुभव करो। तुरन्त दिन में छलांग न लगाओ। सुबह के साथ रहो। अन्यथा तुम्हारी नींद टूट जाएगी और तुम बाहर निकलकर दौड़ पड़ोगे, भविष्य में चले जाओगे।

यह दूसरा आयाम है। और एक तीसरा आयाम भी है, और अच्छा होगा कि उसके बारे में भी जान लें। एक आयाम है ध्वनि के विपरीतः मौन। यह एक आयाम है : निर्ध्वनि। दूसरा आयाम स्थिरता का है गति के विरुद्ध। वह है निश्चलता-कोई गति नहीं। और तीसरा है अहंकार के विरुद्ध-अहंशून्यता। तीसरा सबसे अधिक गहरा है।

बुद्ध ने कहा है-"जब तुम मिट ही नहीं जाते तुम स्थिर नहीं हो सकते। तुम ही समस्या हो। तुम ही शोर हो, तुम ही गति हो। इसलिए जब तक तुम पूरी तरह मिट न जाओ, तुम पूर्ण स्थिरता को उपलब्ध नहीं हो सकते।" इस कारण ही बुद्ध को "अनात्मवादी" कहते हैं अर्थात जो किसी आत्मा में विश्वास नहीं करते।

हम सोचते चले जाते हैं कि हम हैं-"कि मैं हूँ।" यह "मैं" बिल्कुल ही मिथ्या है। और इस "मैं" के कारण ही बहुत-सी बीमारियों का प्रारंभ होता है। इस "मैं" के कारण ही तुम अतीत को इकट्ठा करते जाते हो, इस "मैं" के कारण ही तुम अतीत के सुखों को पुनरूक्त करने की विचारते रहते हो। सब कुछ इस "मैं" पर टिका है-अतीत, भविष्य, इच्छाएँ।

बुद्ध ने गहरे ध्यान में जाना कि हम संसार की सारी इच्छाओं को छोड़ सकते हैं, किन्तु यदि यह "मैं" रहता है तो यह मोक्ष की इच्छा करने लगता है-परम मुक्ति, परमात्मा के साथ एक होने की स्वतन्त्रता ब्रह्म के साथ एक होने की मुक्ति। यदि यह "मैं" रहता है तो इच्छाएँ रहेंगी, चाहे उनकी दिशा कोई भी क्यों न हो और उनका उद्देश्य कुछ भी क्यों न हो।

बुद्ध कहते हैं, इस "मैं" केन्द्रित अस्तित्व को गिरा दो। परन्तु कैसे गिरायें इसे? कौन गिरायेगा? यदि कोई "मैं" ही नहीं है तो कौन गिरायेगा? गिराने का अर्थ है कि अपने भीतर जाये और इसे खोजें-उसकोढूढें कि वह कहाँ हैं, कि वह है भी या नहीं। क्योंकि जो भी भीतर गए हैं और जिन्होंने भी खोजा है, उन्हें यह नहीं मिला। केवल वे ही जो कभी भीतर नहीं गये हैं, और जिन्होंने उसे कभी नहीं खोजा हैं, वे ही विश्वास करते हैं कि वह है। कोई भी आज तक खोज कर नहीं बता पाया है कि "मैं" है।

जब मैं कहता हूँ कि मैं हूँ तो "हूँ" ही वास्तविकता है न कि "मैं" जब तुम भीतर जाते हो, तो तुम्हें कुछ होने की प्रतीति होती है। एक विशेष अस्तित्वगत अनुभूति होती है। तुम्हें प्रतीति होती है कि कुछ है, लेकिन वह तुम नहीं हो। "मैं" की कोई प्रतीति नहीं होती। केवल एक विकेन्द्रित हूँ के होने की प्रतीति होती है। अस्तित्व की अनुभूति होती है बिना किसी "मैं" के।

अतः तीसरे आयाम में प्रवेश करने के लिए एक और बात-जब भी तुम्हारे पास समय हो-जब भी-तो यह जानने का प्रयज्न करो कि यह "मैं" कहाँ है। तुम्हें किसी मन्दिर में जाने की जरूरत नहीं है। यदि तुम जाते हो, तो अच्छा है, लेकिन कोई जरूरत नहीं है। तुम रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे हो, अपनी आँखें बन्द कर लो, कोशिश करो, जानने की कि यह "मैं" कहाँ है? क्या शरीर में? क्या मस्तिष्क में? कहाँ है वह? खुले मन से जाओ। खोजो कि वह कहाँ है। अपनी कार में बैठे हुए या बिस्तर पर लेटे हुए, जब भी तुम्हारे पास थोड़े-से क्षण हों, अपनी आँखें बन्द कर लो और बस एक ही प्रश्न-यह "मैं" कहाँ पर है? कहाँ है यह? "मैं" कहाँ है।

रमण महर्षि ने ध्यान की विधि बतलाई है। वह उसे "मैं कौन हूँ" ध्यान कहते हैं। बुद्ध कहते हैं कि इससे काम नहीं चलेगा क्योंकि जब तुम पूछते हो कि "मैं कौन हूँ" तो तुमने पहले से ही यह मान लिया कि तुम हो। तब वह तो पूछा ही नहीं गया। यदि प्रश्न यही है कि "मैं कौन हूँ," तो "मैं हूँ" इतना तो पक्का हो गया। तुमने उसे पहले से ही मान लिया। अब तुम सिर्फ पूछ रहे हो, "मैं कौन हूँ? "मैं" के लिए सवाल नहीं उठाया गया। बौद्ध ध्यान कहता है कि पूछो, मैं कहाँ हूँ? न कि "मैं कौन हूँ।"

भीतर हर एक कोने में चले जाओ, खुले मन से खोजो, और तुम अपने को कहीं भी नहीं खोज पाओगे। तुम एक मौन अस्तित्व ही पाओगे। बिना किसी "मैं" के। और ऐसा नहीं सोचें कि यह बहुत कठिन है। यह कठिन नहीं है। यदि तुम जहाँ भी अपनी आँखें बंद कर लो और भीतर खोजने की कोशिश करो कि मैं कहा हूँ? तो तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा। तुम्हें बहुत-सी चीजें मिलेंगी। तुम्हारा हृदय धड़कता हुआ मिलेगा, तुम्हारी श्वास होगी, तुम्हें बहुत से मन में तैरते हुए विचार मिलेंगे। तुम्हें बहुत-सी चीज़ें मिलेंगी, लेकिन तुम्हें कोई "मैं" नहीं मिलेगा, कोई अहंकार नहीं मिलेगा।

बुद्ध कहते हैं कि अहंकार एक सामूहिक कल्पना है-जैसे कि "समाज" है, जैसे कि "देश" है, जैसे कि "मनुष्यता" है। तुम उन्हें कहीं भी नहीं खोज सकते। हम यहाँ बैठे हैं। हम इसे एक क्लास कह सकते हैं, लेकिन हम इसे कहीं भी खोज नहीं सकते। यदि हम इसे खोजने निकले तो हमें व्यक्ति मिलेंगे, कोई क्लास नहीं मिलेगी। कोई समूह नहीं मिलेगा, केवल व्यक्ति ही मिलेंगे। ग्रुप सिर्फ समूह का नाम है। हम बहुत से वृक्षों को जंगल कहते हैं। जंगल जैसी कोई चीज़ नहीं होती, केवल वृक्ष और वृक्ष। यदि तुम भीतर जाओ, तो तुम्हें वृक्ष मिलेंगे और जंगल विलीन हो जाएगा।

अतः तीसरा आयाम है न होना अथवा अहंकार शून्यता। जब किसी को पता चलता है कि वह नहीं है, लेकिन फिर भी है, तो स्थिरता स्टिलनेस उपलब्ध हो गई। यदि कोई अहंकार नहीं है तो फिर तुम तनावपूर्ण नहीं रह सकते, अब तुम अस्थिर नहीं हो सकते, तुम भीतर गहरे शोर में डूबे नहीं हो सकते। सारा खेल ही समाप्त हो जाता है।

लेकिन हम कर क्या रहे हैं? हर क्षण हम ऐसी बातें कर रहे हैं जिससे कि इस "मैं" को और ज्यादा भोजन मिल रहा है। इसे और अधिक शक्ति मिल रही है, और अधिक ऊर्जा मिल रही है, और ईंधन मिल रहा है। हम हर क्षण इसको बनाये रखने का प्रबन्ध कर रहे हैं। यह एक मिथ्या धारणा है, लेकिन इसे संभाला जा सकता है और बनाये रखा जा सकता है। तुम इसमें विश्वास करते चले जा सकते हो ऐसी स्थितियाँ बनाते जाओ जिससे कि इसमें विश्वास करना सरल हो जाये। "मैं" एक विश्वास है, यह कोई तथ्य नहीं है।

प्रत्येक आदमी अहंकार में विश्वास करता है। लोग पूछते है कि परमात्मा कहाँ है? जब तक हमें वह मिल ही न जाये हम उसमें विश्वास नहीं कर सकते। वे लोग भी अपने अहंकार में विश्वास करते हें बिना यह जानने का प्रयत्न किये कि क्या ऐसी भी कोई चीज है? यह चमत्कार है। हम परमात्मा में सन्देह करते हैं, लेकिन हम कभी अपने पर सन्देह नहीं कर सकते। और जब तक हम अपने पर सन्देह नहीं करते, हम स्थिरता में प्रवेश नहीं कर सकते। उस सन्देह के साथ सभी कुछ बिखर जाता है। एक धार्मिक आदमी का जन्म अपने अहंकार पर तथा अपने पर सन्देह करने से होता है।

हमने उसे तो मान ही लिया है, हम उसके बारे में कभी नहीं पूछते कि क्या वह वस्तुतः है या नहीं। और यदि कोई हमें यह बतलाता है कि वह नहीं है, तो वह हमें दुश्मन मालूम पड़ता है। मित्र वे हैं जो कि हमारे अहंकार को मजबूत करने में मदद करते हैं। हमारा परिवार हमारा समाज, हमारे देश में सब हमारे अहंकार में केन्द्रित होने में हमारी सहायता करते हैं। धर्म तुम्हें सिंहासन से नीचे उतार देता है। तुम अपने सिंहासन से नीचे उतार दिये जाते हो। तुम हो ही नहीं और यदि तुम नहीं हो तो स्थिरता की गहरी खाई में होगे-अंतहीन खाई, जिसकी कोई और छोर नहीं होगा। क्योंकि यह "मैं" ही सब गड़बड़ करनेवाला है, यह "मैं" ही सारी बीमारी है। यह "मैं" ही सारे उपद्रव की जड़ है। यही एक मात्र समस्या है।

टंका एक गाँव में ठहरा हुआ था। कोई उसके पास आया और बोला,-"मेरी सहायता करो, मुझे सिखाओ, मुझे दीक्षित करो। मैं मुक्त होना चाहता हूँ। मैं मोक्ष प्राप्त करना चाहता हूँ।" टंका ने उससे कहा, "मैं तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता। मैं तुम्हारे इस "तुम" को विलीन कर सकता हूँ, लेकिन मैं तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता।"

"मैं" के लिए कोई मुक्ति नहीं है। केवल एक ही मुक्ति है और वह है "मैं" से मुक्ति। "मैं" के लिए कोई मोक्ष नहीं है। केवल एक ही मोक्ष है-वह है "मैं" से मोक्ष, न कि "मैं" के लिए मोक्ष।

अतः तुम क्या कर सकते हो? तुम बिना किसी पूर्व-धारणा के उस पर विचार कर सकते हो। जब कभी तुम्हारे पास समय हो, अपनी आँखें बंद कर लो, भीतर जाओ और खोजो कि तुम कहाँ पर हो। जल्दी ही तुम इस

तथ्य पर पहुँच जाओगे कि तुम इस अनन्त अस्तित्व के हिस्से की भाँति हो, न कि एक अलग द्वीप की तरह। हम एक असीम महाद्वीप के हिस्से हैं। "मैं" तुम्हें एक द्वीन होने का मिथ्या ख्याल देता है और तब हर मुसीबत खड़ी होती है। "मैं" ही सब दुःखों की जड़ है। हर हिस्सा, युद्ध, अपराध हर विक्षिप्तता इसी "मैं" से निर्मित होती है। हम इससे चिपकते चले जाते हैं, और हम चिपके हुए है। यह पकड़ छूटनी चाहिए।

इसलिए ऐसा होता है कि जिस आदमी ने बहुत तपस्या की हो वह बहुत सूक्ष्मरूप से अहंकारी हो जाता है। वह और भी अधिक "मैं" हो जाता है। एक विस्तार का, एक महाद्वीप का हिस्सा होने के बजाय वह अहंकार का शिखर हो जाता है। यह प्रत्येक के लिए संभव है। अतः केवल धन या, मान-सम्मान, या संसार की वस्तुएँ या सम्पति ही इस "मैं" के लिए भोजन नहीं बनती। यह "मैं" किसी भी चीज़ को अपने भोजन में बदल सकता है।

इसलिए अध्यात्म के मार्ग पर प्रवेश करने के पहले बुद्ध की सलाह सदैव स्मरण रखनी चाहिए। उन्होंने कहा है कि इसके पहले कि तुम किसी भी मार्ग में प्रवेश करो, यह देख लो कि यह "मैं" भी है या नहीं? केवल तभी तुम्हारा मार्ग आध्यात्मिक होगा। अन्यथा, कोई भी मार्ग हो, वह अन्ततः सांसारिक ही साबित होगा, क्योंकि यह "मैं" उसका पोषण करेगा।

एक बार मुल्ला नसरुद्दीन राजधानी से गाँव लौटकर आया। सारा गाँव उसके चारों ओर इकट्ठा हो गया कि राजधानी की क्या खबर है, कि वहाँ पर क्या हो रहा है। और उन दिनों जबकि कोई अखबार भी नहीं निकलता था यह गाँव के लिए बहुत बड़ी बात थी। एक आदमी राजधानी गया था और वह वापस लौटकर आया है और वह भी कोई मामूली आदमी नहीं, बल्कि मुल्ला नसरुद्दीन खुद गाँव का एक अकेला पढ़ा-लिखा आदमी। जब सब लोग इकट्ठे हो गये, मुल्ला चुप बैठा था, बहुत गंभीर था। वह अभी राजधानी से लौटकर ही आया था। सारा गाँव पागल हो रहा था, यह जानने के लिए कि वहाँ क्या हो रहा है। तब मुल्ला बोला-"अभी मैं तुम्हें ज्यादा कुछ नहीं बताऊँगा, केवल एक बात कि मैं सम्राट से मिला था। और इतना ही नहीं, बल्कि वह मुझसे बोला भी था। लेकिन मैं तुम्हें सारी बात बाद में बताऊँगा।"

गाँव के लोग चले गये। सारा गाँव बड़ा उत्सुक हो गया केवल एक बात पर कि मुल्ला नसरुद्दीन सम्राट से मिला है। और इतना ही नहीं बल्कि सम्राट उससे बोला भी है। लेकिन एक आदमी वहीं पर रहा और उसने जोर देकर पूछा-"सम्राट ने क्या कहा, मुल्ला मुझे बताओ, वरना मैं जाने वाला नहीं हूँ। मैं अब सो नहीं सकता, क्योंकि मैं इतना उत्तेजित हूँ।" उसने क्या कहा-"थोड़ा ही बताओ। विस्तार में मत जाओ, लेकिन सार तो बता दो।" अतः मुल्ला बोला, "ज्यादा कोई लम्बी-चौड़ी बात नहीं है। जब उसने मुझे खड़े हुए देखा, तो वह चिल्लाया, "मेरे रास्ते से हटो।" यही एक बात मुझसे बोला था।"

लेकिन वह गाँव का आदमी संतुष्ट हो गया क्योंकि ये कोई साधारण शब्द नहीं थे। वे सम्राट के द्वारा बोले गये थे। और वे ही शब्द उसने सुने हैं। जिस आदमी ने पूछा था वह बड़ा सन्तुष्ट हुआ, और उसने कहा कि मुल्ला, "मैं कितना खुशनसीब हूँ कि मैं तुम्हारे गाँव में पैदा हुआ। सोचो कि मैंने वे ही शब्द जो कि सम्राट ने तुम्हें कहे थे, तुम्हारे लिए। सम्राट ने स्वयं तुम्हें कहा था, "मेरे रास्ते से हटो।" नसरुद्दीन ने कहा- "हाँ, सम्राट ने स्वयं कहे थे। वह मेरे निकट आया और धीरे से नहींबोला बल्कि इतने जोर से बोला कि हर एक ने सुना। "मेरे रास्ते से हटो"- वह चिल्लाकर बोला। सचमुच, वह जोर से चिल्लाया था।"

ऐसा ही है मन। ऐसा ही अहंकार। वह हर तरह से अपने को भरने की कोशिश करता है। उसके रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं, गूढ़ भी हैं, लेकिन सूक्ष्म। यदि तुम अध्यात्म की ओर कुछ भी करना चाहो तो अहंकार उसे विषैला कर देता है। इसके पहले कि उस आयाम में जाओ, याद रखो कि तुम अहंकार नहीं हो। यदि एक बार भी तुम इसे

खोज लो कि तुम अहंकार नहीं हो, तब सभी कुछ आध्यात्मिक होजाता है, और हर मार्ग आध्यात्मिक मार्ग हो जाता है। तब तुम जहाँ भी जाते हो, तुम परमात्मा के पास ही जाते हो। तब हर मार्ग परमात्मा की ओर ही जाता है। अहंकार के साथ कोई मार्ग परमात्मा की तरफ नहीं जाता। अहंकार के साथ यदि तुम मक्का या जेरुसलम या काशी भी चले जाओ, तो भी तुम नर्क में जाओगे।

तुम और कहीं जा ही नहीं सकते क्योंकि अहंकार ही नर्क है। बिना अहंकार के कहीं भी जाओ, नर्क भी चले जाओ तो भी वहाँ तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। क्योंकि बिना अहंकार के सब कहीं स्वर्ग ही है। अहंकार ही सब दुखों की मूल जड़ है।

ये तीन, स्थिरता के, स्टिलनेस के लिए आयाम हैं : मौन ध्वनिशून्यता की भाँति, मौन मन की अ-गति की भाँति, मौन अहंकारशून्यता की भाँति किसी से भी प्रारभ करो, और दूसरे पीछे-पीछे आ जायेंगे। अथवा तुम तीनों पर एक साथ काम कर सकते हो, तब सारा काम बड़ी तीव्र गति से होगा। लेकिन खाली विचार मत करते रहो। क्योंकि सोचना गति है, सोचना शोर है, सोचना अहंकार की प्रक्रिया है।

सोचना बन्द करो, और करना शुरू करो। केवल करना ही काम आयेगा। केवल करना ही तुम्हें अस्तित्वगत बनायेगा। केवल करने के द्वारा ही छलांक संभव होगी और विस्फोट होगा।

भगवान, तीव्र गतिमानता, सक्रियता तथा तनावों से भरे इस औद्योगिक काल में आज का आदमी दैनिक कार्य के बाद अपने कोबिल्कुल थका-मांदा पाता है। ऐसी हालत में उसके लिए यह आंतरिक मौन या स्थिरता पाना बहुत कठिन है।

कृपया बताएँ कि इसके क्या कारण हैं और उसके लिए क्या उपाय हैं?

स्थिति ऐसी दिखलाई पड़ती है। ऐसा है नहीं, वरन स्थिति बिल्कुल इससे उलटी है। तुम इस औद्योगिक युग के कारण थके हुए नहीं हो, इस कार्य और इन तनावों के कारण भी थके हुए नहीं हो। तुम थके हुए हो क्योंकि तुमने अपने भीतर की स्थिरता से संबंध खो दिया है। कार्य कोई समस्या नहीं है, तुम ही समस्या हो। युग भी समस्या नहीं है। तुम ही समस्या हो।

ऐसा मत सोचो कि आज का आदमी अधिक बोझ से लदा हुआ है। वह कम भारग्रस्त है। एक पुरातन आदमी ज्यादा भारग्रस्त था। यांत्रिकता, औद्योगिकीरण, ये सब समय बचाते हैं। ये सब समय बचानेवाले हैं और इनके कारण समय बचा है।

लेकिन चूँकि अब तुम्हारे पास समय तो है परन्तु कोई स्थिरता नहीं है, चूँकि तुम्हारे पास समय तो है और उसका कोई उपयोग नहीं है, इसलिए इससे समस्या पैदा होती है। एक पुरातन आदमी की समस्याएँ कम हैं, इसलिए नहीं कि वह शान्त है और स्थिर है, परन्तु इसलिए कि उसके पास समय ही नहीं है, कोई समय नहीं है कि वह अपने लिए समस्याएँ खड़ी कर सके। तुम्हारे पास बहुत समय है, और तुम्हें पता नहीं कि तुम उसका क्या करो?

इस समय का उपयोग आंतरिक यात्रा के लिए किया जा सकता है। और यदि आदमी इसका उपयोग अन्तर्यात्रा के लिए नहीं करता तो वह नष्ट होता है। तब उसके लिए कोई आशा नहीं है, क्योंकि अब और अधिक समय बचेगा। जल्दी ही सारा संसार स्वचालित यांत्रिकता के अन्तर्गत आ जाएगा। तुम्हारे पास समय होगा और तुम्हें यह पता नहीं होगा कि तुम उसका क्या करो। और इतिहास में पहली बार आदमी कल्पना का स्वर्ग प्राप्त कर लेगा। जिसके लिए कि वह हमेशा से कामना कर रहा था। तब वह बड़ी उलझन में होगा कि वह उसका क्या करे।

तुम्हारे पास किसी भी युग से अधिक समय है। और तुम काम के कारण थके हुए नहीं हो। तुम थके हुए हो क्योंकि तुम्हारा अपने भीतर से संबंध-विच्छेद हो गया है। अथवा तुम्हें पता नहीं है कि अपने भीतर गहरे कैसे जायें और ऊर्जा को कैसे प्राप्त करें। तुमने सोने की क्षमता, भी खो दी है। वह एक प्राकृतिक मार्ग था-भीतर जाने का। तब कोई सवेरे ताज़ा होता था-नई ऊर्जा से भरा, रि-चार्ज्ड। लेकिन अब हमने सोने की क्षमता खो दी है, और हमने यांत्रिक क्रान्ति के कारण उसे खो दिया है। क्योंकि अब तुम्हारा शरीर काम करने के लिए बाध्य नहीं है। कम काम के कारण तुम कम थके हुए हो, और कम थकान के कारण तुम सो नहीं सकते।

एक गाँव का आदमी अभी भी गहरी नींद सोता है, क्योंकि उसका शरीर इतना थक गया है कि वह गहरी नींद सो जाता है। तुम्हारा शरीर थका हुआ नहीं है, इसलिए तुम बिस्तर में करवटें बदलते रहते हो। मशीनों ने श्रम को हटा दिया, और अब तुम कम थके हुए हो-इसे स्मरण रखो। और इस कारण तुम सो नहीं सकते और इस तरह जो प्राकृतिक स्रोत था-नई ऊर्जा प्राप्त करने का-वह भी खो गया। सवेरे तुम और भी अधिक थके हुए उठते हो, शाम से भी अधिक, और फिर सारा दिन पुनः प्रारंभ होता है और तुम फिर अपने को थका हुआ पाते हो।

तुम एक थकान भरा जीवन जी रहे हो। ऐसा नहीं है कि तुम शाम को ही थके हुए हो। सवेरे भी तुम थके हुए हो। क्या हो गया है? मनुष्य को आंतरिक स्रोत से सतत संबंधित रहने की आवश्यकता है। इसलिए मुझसे यह नहीं पूछें कि कैसे थका हुआ आदमी ध्यान करे? यह ऐसा ही है जैसे कि तुम पूछो कि कैसे कोई बीमार आदमी औषधि ले। उसे आवश्यकता है। केवल उसे ही उसकी आवश्यकता है।

तुम थके हुए हो, इसलिए ध्यान तुम्हारे लिए दवा होगी। और यह भी न कहें कि तुम्हारे पास समय नहीं है। तुम्हारे पास बहुत समय है। इतना समय है कि तुम उसका उपयोग नहीं कर पाते। प्रत्येक आदमी न जाने कितने तरीकों से समय बर्बाद कर रहा है। लोग ताश खेल रहे हैं। यदि तुम उनसे पूछो तो वे कहेंगे कि हम समय काट रहे हैं। सिनेमाघर भरे हुए हैं। क्या कर रहे हैं वहाँ लोग? किलिंग टाइम। वे होटलों में जा रहे हैं, क्लब जा रहे हैं। क्या कर रहे हैं वहाँ वे लोग? किलिंग टाइम। समय काट रहे हैं?

परन्तु तुम समय को नहीं मार सकते। समय ही तुम्हें मार सकता ह। इसलिए आज कोई भी आदमी ऐसा नहीं है। जिसके पास समय नहीं है। और ऐसा भी न सोचें कि समय सीमित है। ऐसा नहीं सोचें कि समय सीमित है। ऐसा नहीं सोचें कि दिन चौबीस घंटे का होता है-नहीं। यह तुम पर निर्भर है। यह तुम पर निर्भर है कि तुम उसे कितने घंटे का बनाते हो। यह तुम पर निर्भर करता है।

किसी ने इमर्सन से पूछा, "तुम्हारी उम्र कितनी है?" उसने जवाब दिया, "तीन सौ साठ वर्ष।" यह अविश्वसनीय था, इसलिए उस आदमी ने कहा, "क्षमा करें, लगता है मैंने आपकी बात ठीक से नहीं सुनी फिर से कहें। आपने कितने वर्ष कहा?" इमर्सन ने जोर से कहा, "तीन सौ साठ वर्ष।" लेकिन उस आदमी ने कहा-"मैं विश्वास नहीं कर सकता। यह असंभव है। तुम साठ साल से ज्यादा के नहीं हो।" इमर्सन ने कहा, "यह बात सही है, तुम्हारी बात सही है। मेरी वास्तविक उम्र साठ वर्ष ही है, लेकिन मैं तुमसे छः गुना ज्यादा जीया हूँ। मैंने वास्तविक उम्र साठ वर्ष ही है, लेकिन मैं तुमसे छः गुना ज्यादा जीया हूँ। मैंने अपने साठ साल इस तरह से बिताये हैं कि वे तीन सौ साठ वर्ष साबित हुए हैं।"

वह आदमी करीब पचास वर्ष का था और इमर्सन ने कहा-"यदि तुम कहते हो कि तुम पचास साल के हो, तो वह मेरे लिए समस्या होगी। मैं उस पर विश्वास नहीं कर सकता क्योंकि तुम मुझे तीस से ज्यादा नजर नहीं आते। तुमने सिर्फ जीवन गंवाया है। तुम जिये नहीं।"

समय का खोना एक बात है, जीना दूसरी बात है। इसलिए हरेक दिन निश्चित बात नहीं है। एक बुद्ध उसे इस तरह उपयोग में ला सकते हैं वह एक जीवन हो जाये। कितना समय है इस पर कुछ भी निर्भर नहीं है। अंततः यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम इसमें कितना डाल पाते हो।

तुम ही निर्माता हो। हम स्वयं अपना समय निर्मित करते हैं, हम अपना क्षेत्र निर्मित करते हैं, उसे जीकर। इसलिए जीवन में तुम्हारी कोई भी स्थिति हो, कोई भी काम हो, कोई भी बाहरी स्थिति हो, उसे बहाना न बनायें। तुम उसी तरह ध्यान कर सकते हो। और ध्यान के लिए समय की आवश्यकता नहीं है। उसके लिए गहरी समझ की आवश्यकता है न कि समय की।

और वह किसी अन्य बातों के खिलाफ नहीं है। उदाहरण के लिए यदि तुम भोजन कर रहे हो, तो होशपूर्वक भोजन करो, अलग समय की जरूरत नहीं है। बल्कि इससे तुम्हारा समय बचेगा, क्योंकि तुम कम शक्ति खर्च करोगे। और सारे दिन के काम के बाद भी तुम सुबह की तरह ताज़ा होओगे, क्योंकि काम के कारण तुम नहीं थकते, केवल रुख के कारण थकते हो।

तुम अपने दफ्तर दो मील पैदल चलकर जाते हो, और तुम थक जाते हो। परन्तु यदि वह रविवार का दिन है और तुम सिर्फ घूमने निकले हो और तुम अपने दफ्तर तक भी चले जाते हो और वापस लौट आते हो, तब वह सिर्फ खेल है और उससे तुम नहीं थकते। बल्कि, उससे तुम ताज़ा हो जाते हो। यदि तुम किसी काम को काम की तरह कर रहे हो, तो वह तुम्हें थका देगा। यदि तुम किसी काम को खेल की तरह कर रहे हो, तो वह तुम्हें ताजा कर देगा। काम के कारण नहीं बल्कि तुम्हारे रुख के कारण ऐसा होता है। जो मन ध्यानी होता, वह खेल को भी काम बना लेता है।

जरा लोगों की ओर देखो जो कि ताश खेल रहे हैं। वे तनाव से भरे हैं। वे ताश नहीं खेल रहे हैं। यह उनके लिए काम हो गया है। यह अब जिन्दगी और मौत का सवाल है, अब यह कोई खेल नहीं है। यदि वे हार जायें, तो रात उन्हें नींद नहीं आयेगी। और यदि वे जीत भी जायें तो रात को उन्हें नींद नहीं आयेगी। दोनों तरह से वे उत्तेजित हो जायेंगे। यह खेल नहीं है, यह उन्हें ताजा नहीं करेगा, यह उन्हें थका डालेगा।

बच्चों को देखो। वे तुमसे ज्यादा काम कर रहे हैं, लेकिन वे कभी नहीं थकते। वे सदा ऊर्जा से भरे हुए है। क्यों? क्योंकि उनके लिए सभी कुछ खेल है। और औद्योगिकीरण के कारण, समग्र यांत्रिक संरचना और स्वचालित यन्त्रों के कारण आज नहीं कल आदमी के लिए एक ही आयाम होगा और वह होगा खेल का आयाम। काम तब बेकार हो जाएगा और पुरानी सब शिक्षाएँ कि काम ही परमात्मा का परम कर्तव्य है, वे सब व्यर्थ की बात हो जायेगी।

आराम, खेल, आनन्द, उत्सव-ये सब भविष्य के लिए विशेष अर्थ रखेंगे। गंभीरता को एक बीमारी समझा जाएगा, और मस्ती आनन्द को स्वास्थ्य का चिन्ह माना जाएगा। रोज-रोज ज्यादा समय बचेगा और वृद्धों को भी बच्चों की तरह खेलना पड़ेगा। तभी केवल वे बच सकेंगे। वरना उन्हें आत्म-हत्या करनी पड़ेगी।

अभी तक मनुष्य का सारा इतिहास कार्य-केन्द्रित रहा है, अब इसके द्वारा वह खेल-केन्द्रित होगा। और ध्यान तुम्हें नया बचपन प्रदान करता है, एक नई निर्दोषिता, एक नया उत्सव। तब यह सारा जीवन एक आनन्दोत्सव हो जाता है, काम नहीं रहता।

अतः बहाने न खोजो। वे तुम्हें ठीक दिखाई पड़ सकते हैं, लेकिन वे खतरनाक हैं। और ध्यान किसी भी चीज़ के खिलाफ नहीं है। यदि तुम अपने दफ्तर जा रहे हो तो ध्यानपूर्वक जाओ। यदि तुम दफ्तर में काम कर

रहे हो तो ध्यानपूर्वक करो, विश्रामपूर्वक करो। तब तुम थके हुए अनुभव नहीं करोगे। हर चीज़ को खेल की तरह लो, और तुम नहीं थकोगे। बल्कि तब कार्य भी खेल हो जायेगा।

ध्यान से तुम्हें मन की एक नई गुणवता मिलती है। अतः यह सवाल ही नहीं है कि तुम्हारे पास समय है या नहीं। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम तीन घंटे रोजाना ध्यान करो-कि तुम अपने जीवन में से तीन घंटे अलग निकाल लो, अपने काम की जिन्दगी में से-नहीं। यदि तुम निकाल सको, तो अच्छा है। यदि तुम नहीं निकाल सको, तो बहाना मत बनाओ। तब पीछे मुड़कर सिर्फ अपने कार्य को ही ध्यान में बदल लो। जो भी करो ध्यानपूर्वक करो।

तुम कुछ लिख रहे हो, पूरी सजगता के साथ लिखो। तुम जमीन में कोई गढ्ढा खोद रहे हो, तो होशपूर्वक खोदो। चाहे तुम सड़क पर काम कर रहे हो अथवा दफ्तर में, अथवा बाजार में, उसे पूरी सजगता से करो।

सदैव वर्तमान में रहो और फिर देखो कि तुम नहीं थकोगे। तुम्हारे पास ज्यादा समय होगा, ज्यादा ऊर्जा होगी, शक्ति कम नष्ट होगी। और अन्ततः तुम्हारा जीवन एक खेल हो जाएगा।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

दुःख--जागरण की एक विधि

प्रश्न

1. यद्यपि ज्ञान दुःख के प्रति सजग करता है क्या फिर भी वह जीवन को एक गहराई नहीं देता?

2. क्या बुद्ध की भाँति जीसस ने आंतरिक पूर्णचन्द्र चैतन्य की उस स्थिति को उपलब्ध कर लिया था?

भगवन्! आपने एक रात्रि कहा कि सजगता से ज्ञान होता है और ज्ञान आदमी को उसके भीतर की बहुत-सी समस्याओं, दुःखों के प्रति सजग करता है। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि सजगता और ज्ञान मनुष्य के जीवन को अधिक समृद्ध करते हैं, बढ़ाते हैं और एक गहराई देते हैं?

कृपया, आदमी की इस विरोधाभासी स्थिति के बारे में समझायें और ज्ञान के पार जाने की विधि पर भी प्रकाश डालें।

अज्ञान आनंदपूर्ण है क्योंकि अज्ञान में आदमी को किसी भी समस्या का पता नहीं होता। लेकिन साथ ही उसे अपनी आनन्दपूर्ण स्थिति का भी पता नहीं होता। वह एक आनन्द की स्थिति है वैसी ही, जैसे कि तुम गहरी नींद में सोये होते हो। तब वहाँ कोई दुःख नहीं है, कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि जब तुम सोये हो किसी समस्या की कोई संभावना नहीं है। ज्ञान के साथ ही कोई बहुत-सी समस्याओं के प्रति जागता है, और बहुत दुःख नहीं है, कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि जब तुम सोये हो किसी समस्या की कोई संभावना नहीं है। ज्ञान के साथ ही कोई बहुत-सी समस्याओं के प्रति जागता है, और बहुत दुःख पैदा होता है। यह दुःख रहेगा, जब तक कि कोई ज्ञान के भी पार नहीं चला जाता।

अतः मनुष्य के मन की तीन स्थितियाँ है : प्रथम है-अज्ञान-इग्नोरेंस, जिसमें कि तुम आनन्द में होते हो, पर तुम्हें उसका कुछ पता नहीं होता। दूसरी है-ज्ञान-नॉलेज, जिसमें कि तुम्हें पता तो होता है, किन्तु तुम आनन्दपूर्ण नहीं होते, और तीसरी स्थिति है बुद्धत्व जागरण की, जिसमें कि तुम जागे हुए भी होते हो और आनन्दपूर्ण भी। एक अिर् में जागरण अज्ञान की भाँति ही होता है और दूसरे अर्थ में ज्ञान की भाँति। एक अर्थ में यह अज्ञान की तरह होता है क्योंकि यह आनन्दपूर्ण होता है, और ज्ञान की भाँति नहीं होता क्योंकि कोई दुःख नहीं होता। दूसरे अर्थ में यह ज्ञान की तरह होता है क्योंकि होश तो पूरा होता है, और अज्ञान की भाँति नहीं होता क्योंकि अज्ञान में होश जरा भी नहीं होता।

एक सजगता से परिपूर्ण आनन्दमय स्थिति बुद्धत्व है। ज्ञान मार्ग है, वह एक यात्रा है। तुमने अज्ञान छोड़ दिया है, तुमने अभी जागरण उपलब्ध नहीं किया। तुम दोनों के बीच में हो। इसी कारण ज्ञान तनाव है। या तो तुम ज्ञान से पीछे की ओर लौट जाओ और या तुम पार चले जाओ। और पीछे लौटना संभव नहीं है। तुम्हें अतिक्रमण के लिए ही संघर्ष करना पड़ेगा।

पूछा गया है कि क्या ज्ञान से समृद्धि आती है, आदमी का जीवन बढ़ता और गहरा होता है? बिल्कुल होता है। वह समृद्धि प्रदान करता है। क्योंकि जैसे ही तुम सजग होते हो, उस बढ़ती हुई सजगता के साथ तुम भी बढ़ते हो, फैलते हो। उस बढ़ती हुई सजगता के कारण तुम और-और बढ़ते जाते हो, क्योंकि तुम तुम्हारी सजगता ही हो। जब अज्ञान में होते तो, जैसे तुम होते ही नहीं। तुम्हें पता भी नहीं होता कि तुम हो। अस्तित्व है

लेकिन बिना किसी गहराई के, बिना किसी ऊचाई के। ज्ञान के साथ, तुम अपने व आयामी अस्तित्व को महसूस करने लगते हो। लेकिन यह समृद्धि भी दुःख ही आती है।

दुःख समृद्धि के कुछ विपरीत नहीं है। दुःख ही तुम्हें समृद्ध करते हैं। दुःख पीड़ादायी है किन्तु वह तुम्हें गहराई देता है। एक जो कि कभी दुःखी हुआ, बहुत सतही होगा। जितना तुम दुःख भोगोगे-उतनी ही गहरी पर्तें तुम छू लोगे। इसीलिए एक बहुत संवेदनशील व्यक्ति अधिक भोगता है, और एक कम संवेदनशील व्यक्ति कम दुःख भोगता है। एक उथला मन कतई दुःख नहीं पाता। जितना गहरा मन होता है, उतनी ही पीड़ा गहरी हो जाती है।

इसलिए दुःख पीड़ा भी समृद्धि है। पशु दुःखी नहीं होते, केवल आदमी को दुःख होता है। पशु कष्ट में हो सकते हैं, लेकिन कष्ट दुःख नहीं है। जब कि मन पीड़ा को महसूस करने लगे और उसके बारे में सोचने लगे, उसके अर्थों के बारे में विचार करने लगे और उनके पार जाने की संभावना पर गौर करने लगे, तब वह दुःखी होता है। यदि तुम्हें सिर्फ पी़ा होती है, तो वह बहुत उथली बात है।

ऐसा देखा गया है कि चूहों की सोचने की क्षमता चार मिनट की होती है। वे चार मिनट भविष्य में और चार मिनट ही अतीत में सोच सकते हैं। चार मिनट से ज्यादा की बात उनके लिए नहीं है। उनकी सोचने की रेंज इतनी ही है। दूसरे चलनेवाले पशु है जिनके सोचने की रेंज बारह घंटे है। बन्दरों की रेंज चौबीस घंटे है। अतः जो संसार चौबीस घंटे पहले था, वह उनकी चेतना से गिर जाता है और चौबीस घंटे के बाद का संसार भी उनके लिए नहीं होता है। उनके दिमाग की सीमा चौबीस घंटे की होती है, इसलिए वे गहरे नहीं जा सकते।

मनुष्य की सीमा बड़ी होती है। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक की रेंज होती है, और जो अधिक संवेदनशील व्यक्ति होते हैं, उनके लिए सीमा और अधिक बड़ी होती है। वे अपने पिछले जीवन भी याद कर सकते हैं और वे इस जीवन के बाद भविष्य के बारे में पूर्वकथन कर सकते है। इस सीमा के साथ गहराई भी उपलब्ध होती है, लेकिन दुःख भी प्राप्त होता है।

यदि एक चूहा चार मिनट से ज्यादा की बात नहीं सोच सकता तो उसके लिए भविष्य में दुःख की बात ही असंभव हो गई, अतीत के लिए भी दुःख असंभव हो गया। तीन मिनट के दायरे में ही सारा संसार होता है। इसलिए यदि चार मिनट पहले कोई दर्द था तो वह चार मिनट बाद खो जाता है। कोई स्मृति नहीं होती। यदि चार मिनट बाद का कोई डर है तो वह भी नहीं होता। उसे सोचा भी नहीं जा सकता उसे देखा नहीं जा सकता। वह है ही नहीं।

आदमी के साथ दुःख गहरा हो जाता है क्योंकि मन अतीत में जा सकता है और भविष्य की कल्पना कर सकता है। इतना ही नहीं, मनुष्य किसी और को दुःखी होते भी महसूस कर सकता है। पशु इसे अनुभव नहीं कर सकते। ऊँचे पशुओं को थोड़ी बहुत झलक होती है जो कि निम्न पशुओं को नहीं होती। निम्न पशुओं में यदि कोई समूह का पशु मर गया हो, तो वे उसके बारे में भूल जाते हैं। वे ऐसे ही चलते चले जाते हैं। मृत्यु कोइ् समस्या ही नहीं है। न तो वे स्वयं अपनी मृत्यु की बात सोच सकते हैं और न ही वे ऐसा सोच सकते है कि उनके समूह के किसी सदस्य को कुछ हो गया है। यह असंभव है। यह ऐसा ही है जैसे कुछ भी न हो।

परन्तु आदमी सोचता है, महसूस करता है, विचार करता है-अपने दुःख के बारे में भी तथा दूसरों के दुःख के लिए भी। बहुत अधिक सहानुभूतिपूर्ण आदमी के लिए सहानुभूति स्वानुभूति भी हो जाती है। तुम्हें सख्त दर्द हो रहा है, मुझे महसूस हो रहा है कि तुम्हें दर्द हो रहा है। मैं जानता हूँ, और मैं सहानुभूति से भरा हूँ। परन्तु

यदि मेरा मन अधिक संवेदनशील हुआ, तो मैं वही दर्द अनुभव भी कर सकता हूँ। तब वह स्वानुभूति हो जाती है।

रामकृष्ण एक दिन नाव से गंगा नदी पार कर रहे थे। अचानक वे जोर-जोर से चिल्लाने लगे, "मुझे मत मारो" उन्हें कोई नहीं मार रहा था। जो भी वहाँ मौजूद थे, वे सब उनके शिष्य थे, परम भक्त थे। वे बोले, "आप क्या कहते हैं? आपको कौन मार रहा है?"

रामकृष्ण की आँखों में से आँसू बह रहे थे और वे चिल्ला रहे थे, "मुझे मत मारो।" शिष्यों की समझ में कुछ न आया, और तब रामकृष्ण ने उन्हें बताया कि दूसरे किनारे पर एक आदमी को कुछ लोग मार रहे थे। फिर उन्होंने अपनी पीछ खोलकर बतलाई, उनकी पीठ पर मार के निशान बने थे। जब वे उस किनारे पहुँचे, वे उस आदमी के पास गये जिसे कि पीटा जा रहा था। उन्होंने उनकी पीछ भी देखो। वे तो हतप्रभ रह गये। यह तो चमत्कार था। बिल्कुल वैसे ही निशान उसकी पीठ पर भी थे जैसे कि रामकृष्ण की पीठ पर थे।

यह स्वानुभूति है, एम्पैथी है। रामकृष्ण को तुमसे अधिक पीड़ा भोगनी पड़ती है क्योंकि अब दुःख उनका अपना ही नहीं है। सूक्ष्म रूप से सारे जगत की पीड़ा उनकी भी पीड़ा हो गई है। जहाँ कहीं दुःख है, रामकृष्ण को भी दुःख होगा। लेकिन इससे रामकृष्ण को गहराई उपलब्ध होगी। दुःख ही गहराई है। अतः ज्ञान से दुःख आता है और ज्ञान से गहराई भी मिलती है। यह जीवन को समृद्ध कर जाता है।

सकुरात ने कहा है कि यदि सुअर पूरी तरह भी आनन्द में है, तो भी मैं सुकरात होना ही पसन्द करूँगा, चाहे सुकरात होना दुखपूर्ण ही क्यों न हो। क्यों? यदि सूअर प्रसन्न है तो सूअर हो जाओ। क्यों सुकरात होते हो और दुःखी होते हो? कारण है गहराई। एक सूअर के पास गहराई नहीं होती। सुकरात के पास दुःख है, सबसे अधिक दुःख है, लेकिन फिर भी वह सुकरात होना ही पसदन्द करता है अपने सारे दुःखों के साथ।

यह जो दुःख है यह भी समृद्धि है। एक सूअर गरीब है। यह ऐसा है जैसे कि कोई व्यक्ति कोमा की स्थिति में मूर्च्छित पड़ा हो। उसे कोई दुःख नहीं है। क्या तुम कोमा की हालत में मूर्च्छित होना पसन्द करोगे? तो तुम्हें कोई दुःख नहीं होगा। यदि यह चुनाव नहीं हो, तो तुम, तुम होना पसन्द करोगे चाहे कितना भी दुःख क्यों न हो। तब तुम कहोगे कि मैं सचेतन रहूँगा और दुःख सहन करूँगा, बजाय कोमा की स्थिति में पड़े रहने के और बिना किसी यातना के। क्योंकि वह बिना दुःख की हालत मृत्यु के समान है। वहाँ दुःख है, लेकिन फिर भी एक समृद्धि है-अनुभूति की समृद्धि, मन की समृद्धि, जीवन की समृद्धि।

स्टनबेक ने कहीं पर अपनी डायरी में लिखा है, बिल्कुल ही प्रेम न करने के बजाय जीना और प्रेम करना अच्छा है। टेनीसन ने कहा है, बिल्कुल ही प्रेम न करने से तो प्रेम करना और फिर उसे खो देना अच्छा है। प्रेम का अपना दुःख होता है। वास्तव में, बिना किसी प्रेम के जीवन कम दुःखपूर्ण होता है। इसलिए यदि तुम प्रेम छोड़ सको तो तुम बहुत से दुःखों से छूट जाओगे। और यदि तुम प्रेम के लिए खुले हो, तो तुम अधिक दुःखी होओगे। परन्तु प्रेम गहराई देता है, समृद्धि देता है। इसलिए यदि तुमने प्रेम का दुःख नहीं भोगा है तो तुम वास्तव में जिए ही नहीं हो। प्रेम गहरा ज्ञान है।

जिसे हम नॉलेज कहते हैं, ज्ञान कहते हैं वह सिर्फ एक परिचय है-किसी को जानना, किसी वस्तु को जानना, सिर्फ बाहर से। जब तुम किसी को प्रेम करोगे, तो तुम उसे भीतर से भी जानोगे। अब यह परिचय नहीं है। जब तुम किसी के भीतर गहरे उतर गये हो तो अब तुम अधिक दुःख भोगोगे, लेकिन प्रेम तुम्हें जीवन का एक दूसरा ही आयाम प्रदान करेगा। इसलिए जिस आदमी ने प्रेम नहीं किया, वह मानव के तल पर जिया ही नहीं। और चूँकि प्रेम इतना दुःख लाता है कि हम उससे दूर भागते हैं। हर आदमी प्रेम से बचता है। हमने प्रेम से बचने

के लिए बहुत-सी तरकीबें खोज लीं हैं। क्योंकि प्रेम से दुःख आता है लेकिन यदि तुम प्रेम से बचने में सफल हो गये हो, तो तुम एक विशिष्ट गहराई से बचने में भी सफल हो गये हो, जो कि केवल प्रेम ही ला सकता है। ज्ञान में बढ़ो और तुम दुःख में बढ़ जाओगे। प्रेम में आगे बढ़ो और तुम और अधिक दुःख में बढ़ जाओगे-क्योंकि और भी गहरा ज्ञान है।

जिसे हम नॉलेज कहते हैं, ज्ञान कहते हैं वह सिर्फ एक परिचय है-किसी को जानना, किसी वस्तु को जानना, सिर्फ बाहर से। जब तुम किसी को प्रेम करोगे, तो तुम उसे भीतर से भी जानोगे। अब यह परिचय नहीं है। जब तुम किसी के भीतर गहरे उतर गये हो तो अब तुम अधिक दुःख भोगोगे, लेकिन प्रेम तुम्हें जीवन का एक दूसरा ही आयाम प्रदान करेगा। इसलिए जिस आदमी ने प्रेम नहीं किया, वह मानव के तल पर जिया ही नहीं। और चूँकि प्रेम इतना दुःख लाता है कि हम उससे दूर भागते हैं। हर आदमी प्रेम से बचता है। हमने प्रेम से बचने के लिए बहुत-सी तरकीबें खोज लीं हैं। क्योंकि प्रेम से दुःख आता है। लेकिन यदि तुम प्रेम से बचने में सफल हो गये हो, तो तुम एक विशिष्ट गहराई से बचने में भी सफल हो गये हो, जो कि केवल प्रेम ही ला सकता है। ज्ञान में बढ़ो और तुम दुःख में बढ़ जाओगे। प्रेम में आगे बढ़ो और तुम और अधिक दुःख में बढ़ जाओगे-क्योंकि और भी गहरा ज्ञान है।

समृद्धि तो होगी लेकिन यही विरोधाभास है और इसे गहराई से समझ लेना चाहिए। जब तुम अधिक चाहिए। जब तुम अधिक धनवान हो जाते हो, तो तुम्हें अपनी गरीबी का अधिक पता चलता है। जब कभी तुम्हें समृद्धि का पता चलेगा, तो साथ ही तुम्हें अपनी गरीबी का भी अधिक पता चलेगा। वास्तव में एक गरीब आदमी-एक वस्तुतः गरीब आदमी-अपने को कभी गरीब अनुभव नहीं कर पाता। केवल एक धनवान आदमी ही एक गहरी दरिद्रता का अनुभव करता है। यदि तुम एक भिखारी को देखो, तो वह अपने थोड़े से पैसों में प्रसन्न है। तुम सोच भी नहीं सकते कि वह कितना प्रसन्न है। वह सारे दिन में थोड़े से पैसे इकट्ठे कर पाता है, लेकिन फिर भी वह बहुत प्रसन्न है।

एक अमीर आदमी की ओर देखें। उसने इतना इकट्ठा कर लिया है कि वह उसका उपयोग भी नहीं कर सकता। लेकिन वह प्रसन्न नहीं है। क्या हो गया है? जितना तुम्हारा धन होता जाता है उतना ही अधिक तुम्हें अपनी दरिद्रता का अनुभव होता है। और ऐसा हर दिशा में होता है। जब तुम ज्यादा जानते हो, तो तुम्हें ज्यादा एहसास होता है कि तुम कुछ नहीं जानते। एक आदमी जो कि कुछ भी नहीं जानता उसे कभी महसूस नहीं होता कि वह अज्ञानी है। उसे अपने अज्ञान का पता ही नहीं चलता। यह असंभव है क्योंकि ऐसा महसूस होना भी ज्ञान का ही हिस्सा है। जितना अधिक तुम जानते हो, उतना ही तुम्हें पता चलता है कि और भी बहुत जानने को शेष है। जितना अधिक तुम जानते हो, उतना ही तुम्हें पता चलता है कि और भी बहुत जानने को शेष है। जितना अधिक तुम जानते हो उतना ही तुम्हें लगता है कि तुम कुछ भी नहीं जानते।

न्यूटन ने कहा है कि मैं समुद्र के किनारे खड़ा हुआ हूँ और जो कुछ भी मैंने इकट्ठा कर लिया है वह मेरी मुट्ठी में रेत है-उससे अधिक नहीं। यह एक अनंत असीम विस्तार ह। जो भी मैंने जाना है, वह मेरे हाथ में थोड़े से रेत के कण हैं और जो मैं नहीं जानता हूँ वह इस असीम सागर का विस्तार है। अतः न्यूटन को अपने अज्ञान का अनुभव होता है जितना कि तुम्हें भी नहीं होता, क्योंकि वह भाव भी ज्ञान का ही हिस्सा है।

यदि तुम प्रेम कर सको तो तुम्हें प्रेम की असम्भवता की अनुभूति होती है। तब तुम्हें पता चलेगा कि यह वस्तुतः असम्भव है कि कोई किसी को प्रेम कर सके। लेकिन यदि तुम किसी को प्रेम नहीं करते तो फिर तुम्हें कभी पता नहीं चलेगा कि प्रेम एक बड़ी कठिन यात्रा है। क्योंकि जब तुम किसी भी चीज़ के भीतर उतरते हो,

तभी तुम अपनी सीमित सामर्थ्य और असीम विस्तार के बारे में जान पाते हो। जब मैं अपने घर से बाहर निकलता हूँ, तभी मुझे आकाश का सामना करना पड़ता है। यदि मैं अपने घर के भीतर ही रहता चला जाऊँ, तो कभी सामना नहीं होगा। और अन्ततः मैं यह विश्वास करने लग जाऊँगा कि यह सारा विश्व है।

जितना कम तुम जानते हो उतने ही तुम दृढ़ होते हो। जितना अधिक तुम जानते हो उतना ही कम तुम्हारा विश्वास हाता है। जितना अधिक ज्ञान होगा, उतनी मन में हिचकिचाहट होगी कुछ भी कहने में-कि क्या सही है और क्या गलत है। जितना कम ज्ञान होगा उतना ही अधिक तुम दृढ़ होगे, निश्चित होगे।

अभी पचास साल पहले ही विज्ञान पूर्णरूप से निश्चित था, आन्तरिक रूप से निश्चित। सब कुछ स्पष्ट था, और पूरा था। और उसके बाद आया आइन्सटीन जो कि शायद पहला वैज्ञानिक था जिसे कि जगत के पूरे विस्तार का साक्षात किया था। तब सभी कुछ अनिश्चित हो गया। आइन्सटीन ने कहा किसी भीचीज के लिए निश्चित होने का अर्थ है कि तुम नहीं जानते। यदि तुम जानते हो तो ज्यादा-से-ज्यादा तुम सापेक्ष रूप से निश्चित हो सकते हो। सापेक्ष रूप से निश्चित होने का अर्थ है अनिश्चित होना। आइन्सटीन कहता है, जब हर चीज सापेक्ष है जब विज्ञान कभी निरपेक्ष, अबसोल्यूट नहीं हो सकता। और अब हम इतना कुछ जान गये हैं। इस सारे ज्ञान के कारण कि हर चीज़ गड़बड़ हो गई है और सब कुछ टूट गया है। सारी निश्चिततायें सो गई हैं।

मनुष्य जाति के इतिहास में, महावीर, जो कि बहुत ही गहन प्रवेश करनेवाली बुद्धि रखनेवाले व्यक्ति हैं : वे कोई भी वक्तव्य बिना पहले "शायद" लगाये नहीं बोलेंगे। यदि तुम उनसे पूछो कि क्या परमात्मा है? तो वे कहेंगे कि शायद परमात्मा है और शायद नहीं है। यदि तुम उनसे इतना भी पूछो कि क्या तुम वस्तुतः हो? तो वे कहेंगे, शायद मैं वस्तुतः हूँ, और शायद मैं वस्तुतः नहीं हूँ, क्योंकि किन्हीं अर्थों में मैं वास्तविक हूँ कि मैं वस्तुतः हूँ? एक दिन मैं वाष्पीभूत हो जाऊँगा और तुम नहीं कह सकोगे कि मैं कहाँ विलीन हो गया हूँ। तब फिर मैं कैसे कह सकता हूँ कि मैं वस्ुततः हूँ। एक दिन मैं वाष्पीभूत हो जाऊँगा और तुम नहीं कह सकोगे कि मैं कहाँ विलीन हो गया हूँ। तब फिर मैं कैसे कह सकता हूँ कि मैं वस्तुतः हूँ। मैं ऐसे ही खो जाऊँगा जैसे कि सुबह सपना खो जाता है। परन्तु फिर भी मैं निश्चित होकर यह बात नहीं कह सकता हूँ कि मैं वास्तविक नहीं हूँ। क्योंकि यह कहने के लिए कि मैं वस्तुतः नहीं हूँ, एक वास्तविकता की आवश्यकता है। सपना देखने के लिए किसी की आवश्यकता है जो कि वास्तविक हो। इसलिए वे कहेंगे-"शायद मैं वास्तविक हूँ, शायद मैं वास्तविक नहीं हूँ।"

इसके कारण ही महावीर बहुत-से अनुयायी इकट्ठे नहीं कर सके। कैसे तुम अनुयायी इकट्ठे कर सकते हो यदि तुम स्वयं ही इतने अनिश्चित हो? अनुयायियों को तो निरपेक्षता चाहिए, पूर्णरूपेण दृढ़ता चाहिए। कहो कि यह सही है और यह गलत है। चाहे वह सही है या नहीं-यह बात दूसरी है। लेकिन निश्चित होना जरूरी है तभी अनुयाइयों को आश्वस्त किया जा सकता है। क्योंकि वे जानने आये हैं, न कि खोजने। वे निश्चितता को जानने आये हैं। वे सिद्धांतों की खोज में आये हैं, न कि वास्तविक खोज के लिए इसलिए एक महावीर से कम जाननेवाला ज्यादा अनुयायी इकट्ठे कर लेगा, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति निश्चितता की खोज में है। तब वे अपने को सुरक्षित अनुभव करते हैं।

महावीर के साथ सभी कुछ अनिश्चित प्रतीत होगा। और वे इतने जोर देकर कहेंगे। कि यदि तुम एक प्रश्न पूछा, तो वे उसके सात उत्तर देंगे। वे सात उत्तर देंगे, और प्रत्येक उत्तर पहले को काटता हुआ होगा। तब सारी बात ही इतनी जटिल हो जायेगी कि आप पहले से भी अधिक मूढ़ होकर वहाँ से लौटेंगे।

आइन्सटीन के साथ ही कदाचित महावीर की प्रतिमा विज्ञान में प्रविष्ट कर गई है। सापेक्षता महावीर की धारणा है। वे कहते हैं कि हर चीज सापेक्ष है, कुछ भी निरपेक्ष नहीं है। और विपरीत ध्रुव भी सत्य हैं किन्ही-

किन्ही अर्थों में। परन्तु तब उनके कथन इतने रिलेटिव हो जाते हैं, इतने कोष्टक में होते जाते हैं कि तुम उनके बारे में जरा भी आश्वस्त नहीं हो सकते।

इसी कारण भारत में केवल पच्चीस लाख जैन रहते हैं। यदि महावीर ने पच्चीस लाख जैन रहते हैं। यदि महावीर ने पच्चीसकरोड़ हो गये होते। पच्चीस सदियों में केवल पच्चीस लाख? क्या हुआ? महावीर वस्तुतः किसी को बदल ही न सके। ऐसा तीव्र मस्तिष्क बदल नहीं सकता। उसके लिए कम प्रखर बुद्धि की आवश्यकता है। जितना मूर्ख नेता होता है, उतना ही अच्छा है, क्योंकि वह बड़ी दृढ़ता के साथ "हाँ" या "ना" कह सकता है बिना कुछ भी जाने।

वस्तुतः जब तुम्हें ज्ञान होता है तब होता है? तुम्हें अज्ञान का पता हो जाता है। और वस्तुतः समृद्धि का अर्थ होता है दोनों विपरीत ध्रुव को जानते हो। जब तुम दोनों विपरीत ध्रुवों को जानते हो, जब तुम दोनों आखिरी सिरों को जानते हो, तब ही तुम समृद्ध होते हो।

उदाहरण के लिए यदि तुम सुन्दरता को जानते हो और तुम्हें कुरूपता का कोई पता नहीं है, तो तुम्हारा सौन्दर्य का भाव कोई बहुत गहरा नहीं है। कैसे हो सकता है? वह सदैव उसी अनुपात में होता है। जितने अधिक सौंदर्य का पता चलता है, उतना ही अधिक तुम्हें कुरूपता का भी पता चलने लगता है। वे दो चीज़ें नहीं हैं, किन्तु एक ही चीज़ की दो गतियाँ है, एक अर्थ में, दो भिन्न दिशाओं में। किन्तु संवेदना एक ही है। तुम नहीं कह सकते कि मैं सिर्फ सौन्दर्य को जानता हूँ। कैसे जान सकते हो? इस संवेदना के साथ ही, इस संवेदना के सत्य अनुभव के साथ ही, कुरूपता की अनुभूति भी आ जाती है। जगत अधिक सुन्दर हो जाता है लेकिन साथ ही ज्यादा कुरूप भी हो जाता है। और वही विरोधाभास है।

जब तुम्हें सूरज के डूबने के सौन्दर्य का आनन्द अनुभव होता है लेकिन तब तुम्हें चारों तरफ फैली गरीबी की कुरूपता का भी अनुभव होता है। यदि कोई आदमी कहता है कि मुझे सूरज के डूबने के सौंदर्य का अनुभव होता है और मुझे गरीबी और गन्दे झोपड़ों की कुरूपता का अनुभव नहीं होता, तो या तो वह स्वयं अपने को धोखा दे रहा है या फिर वह दूसरों को धोखा दे रहा है। यह असम्भव है। जबकि डूबता सूरज सुन्दर प्रतीत होता है, तो गन्दे झोपड़े, कुरूप दिखलाई देते हैं। और जब डूबते सूरज के संदर्भ में जब तुम गन्दी बस्तियों की ओर देखोगे, तो तुम एक साथ स्वर्ग और नर्क में होओगे। हर एक बात में ऐसा ही है और हर एक बात में ऐसा ही होगा। हर चीज़ अपना विपरीत पैदा कर देगी।

इसलिए यदि तुम सौन्दर्य को नहीं जानते, तो तुम करूपता को भी नहीं जान पाओगे। यदि तुम सौन्दर्य के प्रति सजग हो गये हो तो तुम कुरूपता के प्रति भी जाग जाओगे। तुम्हें आनन्द आयेगा। तुम सौन्दर्य के आनन्द का अनुभव करोगे और तब तुम दुःख पाओगे। यह विकास का हिस्सा है। विकास का अर्थ है दोनों ध्रुवों का ज्ञान होना जिससे कि जीवन निर्मित होता है। इसलिए जब भी आदमी सजग होता है तो वह यह जान पाता है कि वह बहुत-सी चीज़ों के बारे में नहीं जानता और इसलिए वह दुःखी होता है।

कई बार मैंने देखा है कि लोग मेरे पास ध्यान के लिए आते हैं। वे कहते हैं कि "मैं बहुत ज्यादा परेशान हूँ, भीतर बहुत दुःख है, पीड़ा है। किसी तरह मेरी मदद करें, कि मेरा मन शान्त हो जाये।" मैं उन्हें कुछ करने के लिए कहता हूँ। तब एक सप्ताह बाद वे फिर आते हैं और कहते हैं कि ये आपने क्या किया। यह तो मैं पहले से भी ज्यादा अशान्त हो गया। ऐसा कैसे हुआ? क्योंकि जब वे ध्यान करने लगे, थोड़ीशान्ति का अनुभव करने लगे, तो वे भीतर की अशान्ति का अनुभव भी अधिक करने लगे। उस शान्ति के विपरीत अशान्ति का और भी ज्यादा

अनुभव होगा। पहले वे सिर्फ अशान्त थे, बिना किसी भी भीतरी शान्ति के। अब उनके पास कुछ है जिसके विरुद्ध वे निर्णय कर सकते हैं, तुलना कर सकते हैं। अब वे कहते हैं कि मैं पागल हो जाऊँगा।

इसलिए यदि तुम ध्यान प्रारंभ करो और तुम्हें दुःख न हो, तो उसका अर्थ होता है कि वह ध्यान नहीं है बल्कि सिर्फ आत्म-सम्मोहन है। उसका अर्थ है कि तुम अपने को मूच्र्छित किये हो। तुम और अधिक मूच्र्छित हो रहे हो। वास्तविक, प्रामाणिक ध्यान से तुम अधिक सन्तप्त होओगे क्योंकि तुम अधिकाधिक जागरूक होओगे। तुम अपने क्रोध की कुरूपता को देखोगे, तुम अपनी ईर्ष्या की निर्दयता को अनुभव करोगे, अब तुम अपने ही व्यवहार के साक्षी होओगे। अब तुम अपने प्रत्येक व्यवहार में छिपे अपने एक पशु को देखोगे, और तुम्हें अधिक पीड़ा होगी। लेकिन इसी भाँति कोई विकसित होता है। एक बच्चा जब गर्भ से बाहर आता है, तो उसे पीड़ा होती है। इसलिए यह सही है कि सजगता और ज्ञान से मनुष्य के जीवन में अधिक समृद्धि और विकास तथा गहराई आती है। इसलिए नहीं कि आदमी पीड़ा नहीं पाता, बल्कि इसलिए कि वह पीड़ित होता है।

यदि किसी ने कृत्रिम जीवन ही जिया है, जैसा कि धनिक परिवारों में होता है। तुम्हें प्रतीत होगा कि तुम देखोगे कि यदि कोई आदमी धनिक परिवारों में होता है। तुम्हें प्रतीत होगा कि तुम देखोगे कि यदि कोई आदमी धनिक पैदा हुआ है, यदि वह बिना पीड़ित हुए जिया है, जीने के दुःख को बिना जाने जिया है, तो बिना कुछ जाने कि इधर मांग हुई और इधर उसकी मांग पूरी हो गई। उसने कुछ भी दुःख नहीं जाना। जो कुछ भी मांगा, वह दे दिया गया। बल्कि मांग होने के पहले ही दे दिया गया।

लेकिन तब ऐसे आदमी की आँखों में देखो : तुम्हें वहाँ कोई गहराई नहीं मिलेगी। यह ऐसा ही है कि वह जिया ही नहीं उसने कोई संघर्ष नहीं किया। उसे पता ही नहीं कि जीवन क्या है। इसलिए ऐसे आदमी में कोई भी गहराई पाना बड़ा कठिन है। वे बहुत उथले लोग हैं। यदि वे हँसते हैं तो उनकी हँसी ऊपरी है। वह सिर्फ होठों पर होती है, कभी हृदय में नीं होती। यदि वे रोते हैं तो उनका रोना भी ऊपरी होता है। वह उनके अस्तित्व की गहराई से नहीं होता, वह सिर्फ कोरी औपचारिकता होती है। जितना अधिक संघर्ष होता है, उतनी ही गहराई होती है। यह गहराई, यह समृद्धि, यह ज्ञान, ऐसी जटिलता उत्पन्न कर देगा कि तुम इससे बचना चाहोगे। जब तुम दुःख भोगोगे तो तुम इससे बचना चाहोगे। यदि तुम दुःख से बचने का उपाय कर रहे हो, तब शराब तुम्हें प्रीतिकर लग सकती है, एल.एस.डी. या मारीजुआना या कुछ ऐसा ही तुम्हें खींच सकता है।

धर्म का अर्थ होता है, दुःख से, पीड़ा से भागना नहीं बल्कि उसके साथ जीना। उसके साथ जीना, उससे भागना नहीं। और यदि तुम उसके साथ जीते हो, तो अधिकाधिक सजग हो जाओगे। यदि तुम बचकर भागना चाहो तो तुम्हें सजगता को छोड़ना पड़ेगा। तब तुम्हें किसी भी भाँति मूर्च्छित होना पड़ेगा।

बहुत-सी विधियाँ हैं। शराब सबसे सरल है, लेकिन एकमात्र विधि नहीं है और न ही सर्वाधिक बुरी। तुम चाहो तो जाओ और संगीत को सुनो और उसमें डूब जाओ। तब तुम संगीत का भी शराब की भाँति ही उपयोग कर रहे हो। तब कुछ समय के लिए तुम्हारा मन संगीत में लग जाता है आर तुम सब कुछ भुल जाते हो। संगीत सब कुछ के लिए शराब का काम कर रहा है। अथवा, तुम मंदिर जा सकते हो, या तुम मंत्र का जाप कर सकते हो। तुम इन चीजों का शराब की भाँति उपयोग कर सकते हो, एक मादक द्रव की तरह काम में ले सकते हो।

जो कुछ भी तुम्हें अपने दुःख के प्रति कम सजग करे, वह धर्म के खिलाफ है। कुछ भी जो तुम्हें अपने दुःख के प्रति और अधिक होश से भरे, और जो तुम्हारी मदद-उसका सामना करने के लिए करे, न कि बचकर भागने के लिए, वह सब धार्मिक है। यही मतलब है तप का। तप का यही अर्थ होता है : कि दुःख से बचकर नहीं

भागना, बल्कि वही रहना और पूरे होश के साथ रहना। यदि तुम नहीं भागते हो, यदि तुम अपने दुःख के साथ ही रहते हो, तो एक दिन दुःख विलीन हो जायेगा और तुम अपनी सजगता में और बढ़ जाओगे।

दुःख दो तरह से विलीन होता है : तुम मूर्च्छित हो जाओ, तब भी तुम्हारे लिए दुःख विलीन हो जाता है। लेकिन, वास्तव में दुःख तो वहाँ बचा रहता है। वह विलीन नहीं हो सकता। वह वहीं रहता है। वास्तव में, सिर्फ तुम्हारी चेतना चली गई है, इसलिए तुम्हें वह महसूस नहीं होता, तुम्हें उसका पता नहीं चलता। यदि तुम अधिक सजग हो जाओ, तो उसी बीच तुम्हें और दुःख भोगना होगा। परन्तु दुःख को विकास के एक हिस्से की भाँति स्वीकार कर लो-एक प्रशिक्षण, एक अनुशासन की तरह ले लो। और तब तुम्हारी चेतना एक दिन सब दुःखों के पार चली जाएगी। दुःख सिर्फ तुम्हारे लिए ही विलीन नहीं हो जाएगा, बल्कि वस्तुगत भी विलीन हो जाएगा।

दुःख का सीढ़ी की तरह उपयोग करो, उससे बचो मत। यदि तुम उससे बचोगे, तो तुम नियति से बच रहे हो, ज्ञान के पार जाने की संभावना से बच रहे हो। तुम दुःख का एक उपाय की भाँति उपयोग कर सकते हो।

महावीर ने कहा है, कभी-कभी ऐसा होता है कि जैसे कोई दुःख नहीं है, तब दुःख को पैदा करो। कोई भी क्षण ऐसा मत जाने दो जिसमें और अधिक सजगता पैदा नहीं की जाती। महावीर लम्बे उपवास पर चले जाते थे, ताकि दुःख पैदा हो-उसका सामना करो क्योंकि दुःख का साक्षात्कार करने से अवेयरनेस, सजगता बढ़ती है। वे नग्न रहते थे। चाहे गर्मी हो, चाहे सर्दी हो, चाहे वर्षा का मौसम हो, लेकिन वे नग्न रहते थे। हर गाँव में जहाँ भी नग्न जाते, लोग उनके दुश्मन हो जाते। वे लोग उनको बहुत तरह से सताने का उपाय खोजते थे, लेकिन वे चुप रहते। बारह वर्ष तक वे मौन रहे। यदि तुम उनको पीटो, तो भी वे न बोलेंगे। तुम कुछ भी करो, लेकिन वे प्रतिक्रिया न करेंगे। ये सब जानबूझ कर पैदा किए गये दुःख हैं।

बुद्ध महावीर की बात से सहमत नहीं थे, लेकिन फिर भी बुद्ध को महा-तपस्वी कहा गया है। वास्तव में महावीर की कोई तुलना नहीं है जानबूझ कर अपने लिए दुःख निर्मित करने में। क्यों? क्योंकि जब तुम होशपूर्वक दुःख में जीते हो, तब तुम बढ़ते हो। तुम उसका अतिक्रमण कर जाते हो। वास्तव में, जब भी तुम दुःख में होते हो, तो तुम्हारे पास एक अवसर होता है, अतः उसका उपयोग करो। जब तुम दुःख में नहीं हो, तो वह समय बेकार जाएगा। केवल वे ही क्षण जबकि तुम दुःख में हो, काम में लाये जा सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से, हम दुःख से बचने की कोशिश करते हैं। हम कितने ही जन्मों से ऐसा कर रहे हैं।

कोई एक प्रयोग करो-कोई भी एक प्रयोग और देखो कि क्या होता है। रात बड़ी है और तुम छत पर नंगे खड़े हो। सर्दी का अनुभव करो, उससे भागो मत। उसे रहने दो, और तुम भी रहो। उसे महसूस करो, उसके साथ चलो, उसके साथ जियो, और देखो कि क्या होता है। एक विशेष बिन्दु के बाद सर्दी भी होगी, तुम भी होओगे लेकिन तुम्हारे ओर सर्दी के बीच एक अंतराल होगा। अब वह ठंडक तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। तुम उसका अतिक्रमण कर गये।

तुम भूखे हो, भूखे रहो और एक बिन्दु के बाद तुम्हें, मालूम पड़ेगा कि तुम भूखे नहीं हो। भूख कहीं और है, और तुम्हारे और भूख के बीच एक गैप है। जब तुम्हें उस गैप का पता चलना शुरू हो जायेगा तब तुम उसके पार चले जाओगे।

लेकिन दुःख का निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दुःख पहले ही बहुत हैं। उसकी कोई जरूरत नहीं है। हर रोज दुःख को प्रभु की अनुकम्पा में बदल सकते हो।

और यही अर्थ है तप का। यह एक रासायनिक प्रक्रिया है। तब तुम निम्न को उच्चतर में बदल देते हो। मिट्टी को सोने में बदल देते हो। लेकिन उस निम्न धातु को अग्नि से गुजरना होगा और जो झूठ है उसे जल जाना होगा। तभी वह जो प्रामाणिक है, बाहर निकलेगा। अतः ज्ञान अग्नि है। अज्ञानी आत्मा को इस अग्नि से गुजरना होगा, और तभ शुद्ध सोना उसमें से निकलेगा।

वह शुद्ध सोना ही आत्मज्ञान है। जब तुमने सारे दुःखों को सजग रूप से भोग लिया, तो दुःख खो जाएगा, विलीन हो जाएगा, क्योंकि उसका जो मुख्य कारण था, वही खो गया। तुम आगे बढ़ते ही जाओगे और दुःख पीछे छूटता चला जाएगा, और तुम शिखर हो जाओगे। यह शिखर उसके पार चला जाएगा। यही आत्मज्ञान है, जागरण है, एनलाइटेनमेंट है।

तीन अवस्थाएँ हैं : अज्ञान, ज्ञान, परम-ज्ञान। अज्ञान के पार चले जाओ लेकिन यह मत भूलो कि ज्ञान अन्तिम नहीं है। वह केवल माध्यम है। तुम्हें उसके भी पार जाना है। और जब कोई ज्ञान के भ्ी पार चला जाता है, तो वह बुद्ध हो जाता है। तब वह बुद्धिमान है, न कि अधिक जानकारी रखने वाला। ऐसा नहीं है कि उसने बहुत ज्ञान का भंडार पा लिया है। वह सिर्फ अधिक विद्वान है, केवल अधिक जागरूक। इसलिए ज्ञान भी अच्छा है क्योंकि वह तुम्हें अज्ञान से बाहर लाता है, किन्तु यदि तुम उसी के साथ चिपक जाओ तो वह ज्ञान ठीक नहीं है। यदि वह एक पकड़ हो जाए, तो वह ठीक नहीं है। ज्ञान का उपयोग अज्ञान के पार जाने के लिए करो और फिर उसके भी पार चले जाओ।

बुद्ध एक कहानी कहते हैं जो कि उन्हें बहुत प्रिय थी। उन्होंने यह कहानी हजारों बार कहीं होगी। उन्होंने कहा कि ज्ञान एक नाव की तरह है। तुम नाव पर बैठकर नदी के पार जाते हो, और तब तुम नाव को छोड़ देते हो और आगे बढ़ जाते हो। बुद्ध कहते हैं कि पाँच बड़े ज्ञानी पंडित लोग थे। उन्होंने एक नदी को पार करने में मदद की है, अतः हमें इस नाव को सिर पर उठाकर ले जाना चाहिए। अब इसके प्रति अहसान कैसे भूलें। यह तो साधारण कृतज्ञता है।

अतः वे पाँचों ज्ञानी अपने सिरों पर उस नाव को लेकर बाजार में गये। तब वहाँ सारा गाँव इकट्ठा हो गया और उन्होंने पूछा, "यह तुम क्या कर रहे हो? यह तो एकदम नई बात है।" उन्होंने उत्तर दिया कि अब हम इस नाव को नहीं छोड़ सकते। इस नाव ने हमारी नदी पार करने में सहायता की है, और ये वर्षा के दिन हैं, और नदी में बाढ़ आई है। इस नाव के बिना पार जाना असींव था। यह नाव हमारी मित्र है, और हम कृतज्ञता जतला रहे हैं।

सारा गाँव हँसने लगा। उन्होंने कहा- "सच है कि यह नाव मित्र थी, लेकिन अब यह नाव शत्रु है। अब तुम इस नाव के कारण ही दुःख पाओगे। अब यह तुम्हारे लिए एक बन्धन हो जायेगी। अब तुम कहीं भी नहीं जा सकते, अब तुम कुछ भी नहीं कर सकते।"

ज्ञान नाव है-अज्ञान के पार जाने के लिए, लेकिन तब तुम्हें उसे सिर पर उठाकर घूमने की जरूरत नहीं है जैसा कि इन ज्ञानियों ने किया। वास्तव में, "ढोना" कहना भी ठीक नहीं होगा क्योंकि बोझ इतना ज्यादा होगा कि उसको लेकर अब वे कहीं भी नहीं जा सकते। इस नाव को फेंको। उसे फेंकना भी कठिन है क्योंकि इसने तुमको बचाया है। तुम नदी के पार आये हो और तुम्हारा तर्क कह सकता है कि यदि हम इस नाव को फेंक देंगे तो वापस उसी हालत में पहुँच जायेंगे, जिसमें कि हम पहले थे। यह तर्कसंगत लगता है, लेकिन ऐसा नहीं है क्योंकि जब नाव नहीं थी तो तुम नदी के किनारे पर थे। जब तुमने नाव का प्रयोग किया तो तुम दूसरे किनारे पर आ गये और यदि तुमने इसको फेंक दिया तो तुम फिर से उसी अवस्था में नहीं पहुँच सकते।

आदमी ज्ञान को उतारकर फेंकने से डरता है, क्योंकि उसको भय लगता है कि वह वापस अज्ञान की अवस्था में पहुँच जायेगा। तुम फिर से अज्ञानी नहीं हो सकते। जिसने एक बार जान लिया, वह फिर से अज्ञानी नहीं हो सकता। लेकिन यदि वह इस ज्ञान से चिपकेगा, इसे पकड़ेगा तो वह उसके पार नहीं जा सकेगा। फेंको इसे। तुम अज्ञान में गिरनेवाले नहीं हो। तुम संबोधि में उठनेवाले हो।

कोई जब अज्ञान को फेंक देता है, तो ज्ञान में उठता है, और जब कोई ज्ञान को भी फेंक देता है तो वह संबोधि में उठता है। अतः यह अच्छा है कि अज्ञानी को ज्ञान सिखाया जाये, और यह भी अच्छा है, कि जो सीख गया है उसको फिर से एक तरह से अनसीखा किया जाये। किसी को एक दूसरे ही आयाम में अज्ञानी होना पड़ता है, उसका गुणधर्म ही अलग हो जाता है-ज्ञान का फेंक देने से।

इसलिए यह भी अनिवार्य है कि कि कोई ज्ञान के पास आये। लेकिन तब यह अपरिहार्य नहीं है कि कोई वहीं रहे। तुम्हें उसके भी पार जाना होगा। यह भी जरूरी है। इसे भी छोड़ा नहीं जा सकता। लेकिन तुम वहीं मत रहो। तुम्हें चलना होगा, ज्ञान से आगे चलना होगा। यही तो अर्थ है। इस ज्ञान से कैसे आगे बढ़ें? जैसा मैंने कहा कि यदि तुम दुःख के प्रति सजग हो जाओ, तो तुम उसका अतिक्रमण कर जाते हो। यदि तुम इस ज्ञान के प्रति भी सजग हो जाओ तो तुम इसका भी अतिक्रमण कर जाओगे। सजगता ही एकमात्र विधि है अतिक्रमण की। चाहे कोई भी समस्या क्यों न हो। सजगता, होश, जागरूकता ही एकमात्र विधि है अतिक्रमण की।

तुम बहुत-सी बातें जानते हो। तुम उन सबसे तादात्म्य कर लेते हो तब यदि कोई तुम्हारे जानने को मना करे अथवा उसका विरोध करे, तो तुम्हें चोट लगती है। ऐसा लगता है कि जैसे वह तुम्हें ही मना कर रहा है-जैसे कि वह तुम्हारा ही विरोध कर रहा है। तुम्हारा जानना तुमसे कुछ भिन्न है। इस गैप को जानो। तुम तुम्हारा ज्ञान नहीं हो, तब उसके प्रति सजग रहो। इस बात के प्रति सजग रहो कि यह मैं जानता हूँ और यह मैं नहीं जानता हूँ और जो बात मैं जानता हूँ, वह सही हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। उस बात के लिए पागल मत हो जाओ, उसके साथ एक मत हो जाओ।

सुकरात कहा करता था, वह सदैव कहता था जहाँ तक मेरा ज्ञान है, वहाँ तक यह बात सत्य मालूम होती है-केवल सत्य मालूम होती है। और वह भी जहाँ तक मेरा ज्ञान जाता है। वह सच न भी हो क्योंकि ज्ञान उससे भी आगे जा सकता है, सह सत्य नहीं भी हो सकता है क्योंकि वह सिर्फ मुझे ही सत्य प्रतीत होता है। बल्कि वह आदमी उसकी मदद कर रहा है। उससे वह दुखी क्यों हो?

यदि कोई कहता है कि तुम गलत हो, तो वह तुम्हें और अधिक ज्ञान दे रहा है, कुछ भिन्न बता रहा है। यदि तुम तादात्म्य नहीं करो, तो तुम उसके प्रति कृतज्ञ होओगे, यदि तुम तादात्म्य किये हो, तो तुम्हें चोट लग जायेगी। तब यह ज्ञान का सवाल नहीं है। फिर यह अहंकार का चक्कर है। तब सवाल इस बात का नहीं है कि उसने कहा कि जो कुछ तुम कहते हो, वह गलत है, बल्कि अब तो यह सवाल हो गया कि उसने कहा है कि "तुम ही गलत हो"। तुम ऐसा अनुभव करते हो। और यदि तुम ऐसा अनुभव करते हो, तो तुम फिर कभी भी ज्ञान के प्रति सजग नहीं हो सकते। सजग रहो। यह इकट्ठा करना है, किन्तु इसने भी मदद की है। इसकी उपयोगिता है।

बौद्धों का, झेन बौद्धों का ज्ञान के लिए एक शब्द है-"उपाय" वे उसे सिर्फ साधन की तरह लेते हैं। उसका उपयोग करो, लेकिन पागल मत हो जाओ, उससे ही भर मत जाओ, उससे तादात्म्य मत करो। उसे अलग रहो, तटस्थ रहो। यह दूरी, यह तटस्थता पहली अनिवार्यता है। और तब होश रखो। जब भी तुम कुछ कहो, तो पूरा होश रहे कि यह तुम नहीं हो बल्कि यह सिर्फ तुम्हारा ज्ञान है। यह सजगता ही तुम्हें उसके पार ले जाएगी।

अतः जो भी समस्या हो, उसके साथ तादात्म्य करना मूच्र्छित करेगा और तुम पीछे गिर जाओगे। उसके प्रति होश रखने से सजगता निर्मित होगी और तुम उसके पार चले जाओगे।

भगवन्। एक रात्रि आपने कहा कि ईसाईयत अधूरी रह गई क्योंकि जीसस ईसाईयों के लिए तैंतीस वर्ष की अवस्था में ही मर गये जबकि वे आग से भरे थे, विद्रोही थे और सक्रिय थे और जबकि उनका आंतरिक केन्द्र सूर्य की तरह चैतन्य था।

क्या उसका अर्थ यह है कि जीसस पूर्ण आध्यात्मिक विकास, आंतरिक मौन, आंतरिक शान्ति तथा आंतरिक पूर्ण चन्द्र की स्थिति को उपलब्ध नहीं हो सके जिस तरह कि बुद्ध और महावीर हुए थे?

कृपया हमें इस बारे में समझायें?

बहुत-सी बातें ध्यान में रखनी पड़ेगी। पहली, जीसस ईसाईयत के लिए तैंतीस वर्ष की उम्र में मर गये। इसे याद रखें-ईसाईयत के लिए। क्योंकि वास्तव में, वे नहीं मरे, वे एक सौ बारह वर्ष तक जीवित रहे। लेकिन वह बिल्कुल दूसरी ही कहानी है, जिसका ईसाईयत से कोई सम्बन्ध नहीं है। और वे पूर्ण बुद्धत्व को उपलब्ध होकर ही मेरे जैसे कि महावीर बुद्ध अथवा कृष्ण। इसलिए यह पहली बात ठीक से समझ लेनी है।

ईसाईयत के पास सिर्फ इतना ही कहने के लिए है कि क्रॉस पर लटकाने के बाद भी उन्हें जीवित देखा गया। तीन दिन तक कुछ शिष्यों के द्वारा कहीं पर देखे गये और फिर कहीं और देखा गया किन्हीं और शिष्यों के द्वारा, और उसके बाद वे गायब हो गये। इसलिए एक बात पक्की है, और ईसाईयत भी ऐसा सोचती है कि चाहे वे क्रॉस पर मरे या नहीं, किन्तु क्रॉस पर लटकाये जाने के बाद तीन दिन तक उन्हें देखा गया।

वे सोचते हैं कि वे क्रॉस पर मर गये और फिर वे पुनर्जीवित हो गये परन्तु फिर उनके पास उन पुनर्जीवित जीसस का क्या हुआ? कहने के लिए कुछ भी नहीं है। बाइबिल इस बारे में मौन है। उस आदमी का क्या हुआ जो कि देखा गया था? वह फिर से कब और कहाँ मरा? वह कहीं-न-कहीं फिर से मरा ही होगा क्योंकि वह क्रॉस पर नहीं मरा था। अतः इस जीसस नामक आदमी का क्या हुआ? बाइबिल अधूरी है क्योंकि जीसस इजराइल से अदृश्य हो गये।

कश्मीर में एक कब्र है जिसे जीसस की कब्र माना जाता है। ये कश्मीर में रहे, भारत में, और जब मरे तब वे एक सौ बारह वर्ष के थे। क्रॉस पर चढ़ाने के समय वे चन्द्र के केन्द्र में प्रवेश ही कर रहे थे। उसी दिन वे उस केन्द्र में प्रवेश किये थे-क्रॉस पर लटकाने के दिन ही। यह दूसरी बात समझने की है।

बाइबिल में जीसस बुद्ध, महावीर अथवा लाओत्से की भाँति नहीं है। वे उनके जैसे नहीं हैं। तुम बुद्ध के बारे में कभी कल्पना भी नहीं कर सकते कि वे मन्दिर में जाकर सूदखोरों को मारेंगे। तुम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन जीसस ने ऐसा किया। वे मंदिर में गये, वार्षिक उत्सव मनाया जा रहा था। जेरुसलम के इस मंदिर से बहुत-सी चीजें जुड़ी हैं। उससे रुपये के लेनदेन का एक बहुत बड़ा व्यापार जुड़ा था। ये मंदिर के सूदखोर सारे देश का शोषण कर रहे थे। लोग वार्षिक त्यौहार तथा दूसरे त्यौहारों के दिन वहाँ आते थे, और वे ऊँचे ब्याज पर रुपया उधार लेते थे। और यह मंदिर अधिकाधिक समृद्ध होता जा रहा था। यह एक धार्मिक सामंतशाही थी। सारा देश गरीब था और दुःखी था, लेकिन इस मंदिर में रुपया अपने आप आता रहता था।

एक दिन जीसस हाथ में हंटर लेकर मंदिर में घुस गये। उन्होंने सूदखोरों के तख्ते पलट दिये, और फिर उन्हें मारना शुरू कर दिया और उन्होंने मन्दिर में एक तूफान खड़ा कर दिया। तुम बुद्ध के लिए ऐसा नहीं सोच सकते। असम्भव।

जीसस पहले कम्युनिस्ट थे। और, इसीलिए ईसाईयत, कम्युनिज़्म (साम्यवाद) को जन्म दे सकी। हिन्दू उसे कभी नहीं जन्मा सका। जीसस के साथ यह संगत है। वे पहले कम्युनिस्ट थे और वे अग्नि से भरे थे, तथा विद्रोही थे।

वे जो भाषा काम में लेते हैं वह भी भिन्न है। वे ऐसी चीजों के प्रति भी क्रोधित हो जाते हैं जिसका कि हम विश्वास भी नहीं कर सकते-जैसे कि अंजीर का वृक्ष। उन्होंने उसे नष्ट कर दिया क्योंकि वे और उनके शिष्य भूखे थे और वृक्ष कोई फल नहीं देता था। उन्होंने उसे नष्ट कर दिया। उन्होंने ऐसे डरानेवाले शब्दों का उपयोग किया कि बुद्ध कभी भूल के भी नहीं बोल सकते थे। जो भी उनमें और उनके परमात्मा के राज्य में विश्वास नहीं करेंगे वे नर्क की अग्नि में फेंक दिये जायेंगे-नर्क की शाश्वत अग्नि में-फिर वहाँ से वे कभी वापस न आ सकेंगे।

केवल ईसाई नर्क शाश्वत है। शेष सारे नर्क अस्थायी रूप से सजा देते हैं। तुम वहाँ जाते हो, सजा पाते हो और लौटकर आ जाते हो। लेकिन जीसस का तर्क शाश्वत है, इटरनल है। यह बड़ा अन्यायपूर्ण लगता है। पूर्णतया अन्यायपूर्ण बात है। चाहे कैसा भी पाप हो, लेकिन हमेशा-हमेशा के लिए सजा तो न्यायसंगत नहीं है। ऐसा हो नहीं सकता और क्या है पाप? बर्ट्रेंड रसेल कहते हैं कि यदि मैं वे सारे पाप जो कि मैंने सिर्फ सोचे हैं, कभी किये नहीं हैं स्वीकार कर लूँ, तब भी तुम मुझे पाँच साल से ज्यादा की सजा नहीं दे सकते। शाश्वत सजा। कभी खत्म नहीं होनेवाली सजा?

जीसस एक क्रान्तिकारी की भाषा बोलते हैं। क्रान्तिकारी सदैव दूसरे सिरे पर देखते हैं, अतिशयोक्ति करते हैं। वे धनवान आदमी को कहते हैं-ऐसा तुम बुद्ध और महावीर को कहते हुए कभी नहीं सोच सकते "चाहे ऊँट सुई के छेद से निकल जाएँ किन्तु धनवान आदमी मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता।" वह नहीं गुजर सकता। य कम्युनिज़्म का बीज है-बुनियादी बीज। जीसस एक क्रान्तिकारी थे। वे केवल अध्यात्मवादी ही नहीं थे वरन उनका संबंध अर्थशास्त्र, राजनीति तथा सबसे था। वस्तुतः वे यदि केवल आध्यात्मिक ही होते तो उन्हें सूली पर नहीं लटकाया जाता, लेकिन चूँकि वे हर बात के लिए खतरनाक थे, सारे सामाजिक ढाँचे के लिए ही-वैसा जो कुछ भी था उस सब के लिए ही-इसीलिए उन्हें क्राँस पर लटकाया गया।

परन्तु वे लेनिन व माओ की तरह भी क्रान्तिकारी नहीं थे। फिर भी मार्क्स व माओ इतिहास में जीसस के बिना नहीं सोचे जा सकते। वे उस जीसस से संबंधित थे, शुरू के जीसस से जो कि क्रॉस पर लटकाया गया था। वह एक आग से भा हुआ आदमी था-विद्रोही, हर चीज को नष्ट करने को तत्पर। लेकिन वह कोरा क्रान्तिकरी ही नहीं था। वह आध्यात्मिक आदमी भी था। वह किसी भाँति महावीर व माओ का मिश्रण था। परन्तु माओ को तो क्रॉस पर लटका दिया गया और अंत में महावीर रह गए।

जिस दिन जीसस को क्रॉस पर टांगा गया था उस दिन उन्हें सिर्फ सूली ही नहीं लगी, वह उनके लिए एक गहरे आंतरिक रूपान्तरण का दिन भी था। जिस दिन उन्हें क्रॉस पर लटकाया जानेवाला था, पाइलेट, एक रोमन गवर्नर ने उससे पूछा, सत्य क्या है? जिसस मौन रह गये। यह जीसस जैसा व्यवहार नहीं था। यह तो एक झेन गुरु की तरह हुआ। यदि तुम जीसस की पहले की सारी जिन्दगी देखो, तो यह चुप रह जाना-ऐसा पूछे जाने पर-तो बिल्कुल भी जीसस का स्वभाव नहीं था। वे ऐसे गुरु नहीं थे कि मौन रह जाएँ।

वे चुप क्यों रह गये? क्या हो गया था? क्यों नहीं बोल रहे थे वे? किस बात से मौन हो गये क्या था जिसने उन्हें नहीं बोलने दिया? वे दुनिया के महानतम वक्ताओं में से एक थे या हम बिना हिचकिचाये यह कहें कि वे महानतम वक्ता थे। उनके शब्द भीतर उतर जाते थे। वे बोलनेवाले आदमी थे, चुप रहनेवाले नहीं।

अचानक फिर वे मौन क्यों हो गये? वे क्रॉस की तरफ कदम उठा ही रहे थे कि पाइलेटने पूछा कि सत्य क्या है? वे क्रॉस की तरफ कदम उठा ही रहे थे कि पाइलेट ने पूछा कि सत्य क्या है? अपने सारे जीवन भर वे वही एक बात समझा रहे थे। सारी जिन्दगी वे केवल सत्य के बारे में बोलते रहे थे। इसीलिए पाइलेट ने पूछा था। लेकिन वे चुप रह गये।

जीसस के भीतरी जगत में क्या हो गया था? इसके बारे में कभी भी कुछ नहीं कहा गया क्योंकि यह बहुत कठिन है कहना कि क्या हो गया था। और ईसाई धर्म उथला रह गया क्योंकि जीसस के भीतरी जगत की व्याख्या केवल भारत में हो सकती है और कहीं भी नहीं हो सकती। केवल भारत ही आंतरिक रूपांतरण को जानता है कि भीतर क्या हो गया था।

अचानक क्या हो गया है? जीसस मरने के करीब हैं। उन्हें क्रॉस पर लटकाया जानेवाला है। अब सारी क्रान्ति बेकार हो गई है। जो कुछ भी वे बोल रहे थे सब व्यर्थ हो गया है। जिसके लिए भी वे अब तक जी रहे थे वह अे अन्त पर आ गया है। सभी कुछ खत्म होने जा रहा है। और चूंकि मृत्यु इतनी निकट है, अब उन्हें भीतर सरक जाना चाहिए। अब समय नहीं खोया जा सकता है। एक क्षण भी अब खोया नहीं जा सकता। उन्हें भीतर चले जाना है। इसके पहले कि उन्हें क्रास पर चढ़ाया जाए, उन्हें आंतरिक यात्रा पूरी कर लेनी है।

वे अपनी आंतरिक यात्रा पर थे किन्तु वे बाहर भी थे, बाहरी समस्याओं में उलझे थे और बाहरी समस्याओं के कारण ही वे अपने अंतस के उस शीतल बिन्दु को नहीं पहुँचे थे जिसे कि उपनिषद "चन्द बिन्दू" कहते हैं। वे अग्नि की भाँति उष्ण रहे-गरम। एक तरह से वे उसे जानकर ही कर रहे थे।

एक कथा है कि विवेकानन्द को समाधि की पहली झलक जब लगी जिसे कि सतोरी कहते हैं तो रामकृष्ण ने कहा कि अब इस कुंजी को मैं अपने पास रखूँगा। अब मैं इसे तुम्हें नहीं दूँगा। यह तुम्हें तुम्हारी मृत्यु के तीन दिन पहले यह कुंजी तुम्हें वापस दे दी जाएगी। अब समाधि की ओर झलक नहीं, बस।

विवेकानन्द तो रोने लगे और उन्होंने कहा-"क्यों? मुझे कुछ और नहीं चाहिए। मुझे जगत का सारा माग्राज्य भी नहीं चाहिए। मुझे केवल मेरी समाधि दे दें। एक झलक भी इतनी सुन्दर थी कि मुझे कुछ और नहीं चाहिए।" रामकृष्ण ने कहा, "संसार को तुम्हारी जरूरत है, और कुछ करना अभी शेष है। और यदि तुम समाधि में चले गये तो तुम कुछ भी नहीं कर सकोगे। इसलिए जल्दी मत करो। तुम्हारे लिए समाधि रुकी रहेगी। संसार में यात्रा करो और मेरा संदेश पहुँचाओ। और जब संदेश पहुँच जाएगा, तब चाबी तुम्हें वापस मिल जाएगी।"

रामकृष्ण तो मर गये, लेकिन ये कोई दिखाई देनेवाली चाबी नहीं थी। और अपनी मृत्यु के ठीक तीन दिन पहले, विवेकानंद को समाधि उपलब्ध हुई-केवल तीन दिन पहले। इसलिए यह एक बहुत सचेतन बात थी कि जीसस "चन्द्र" बिन्दु को पहले नहीं चले गये क्योंकि एक बार तुम वहाँ पर चले जाओ, तो तुम पूर्णतया निष्क्रिय हो जाते हो।

एक कहानी और-जीसस की दीक्षा जॉन बाप्टिस्ट द्वारा हुई थी। वे जॉन बाप्टिस्ट के शिष्य थे जो कि स्वयं एक बहुत बड़ा क्रान्तिकारी था और एक महान आध्यात्मवादी भी। वह जीसस के लिए वर्षों से प्रतीक्षा कर रहा था। जिस दिन जॉरडन नदी में उसने जीसस को दीक्षित किया उस दिन जीसस से कहा था कि अब तुम मेरा काम संभालो ताकि मैं अदृश्य हो सकूँ। अब बहुत हो गया। और उस दिन के बाद मुश्किल से ही उसे देखा गया। वह जंगल में अदृश्य हो गया। आंतरिक भाषा में वह सूर्य बिन्दु से चन्द्र बिन्दु पर चला गया। वह मौन हो गया। उसका काम समाप्त हो गया और उसने उस काम को दूसरे को सौंप दिया जो कि उसे पूरा करे।

क्रॉस पर लटकाये जानेवाले दिन जीसस को अवश्य यह प्रतीत हुआ होगा कि जो काम वे कर रहे थे, वह पूरा हो गया। उन्होंने ऐसा सोचा होगा कि अब और ज्यादा संभावना नहीं है। मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकता। अब मुझे भीतर चले जाना चाहिए। यह अवसर नहीं खोना चाहिए। इसीलिए जब पाइलेट ने पूछा कि सत्य क्या है, तो वे चुप रह गये। यह जीसस की तरह व्यवहार नहीं था। यह तो झेन मास्टर की भाँति था, यह बुद्ध से अधिक मेल खाता था। और इसीलिए जो चमत्कार घटित हुआ वह ईसाइयत के लिए रहस्य ही रह गया।

यह चमत्कार घटित हुआ कि इसीलिए जब वे अपने इस सर्द सर्वाधिक सर्द बिन्दु-"चन्द्र" बिन्दु पर सरक रहे थे, उन्हें क्रास पर लटका दिया गया। और जब कोई पहली दफा चन्द्र बिन्दु पर आता है उसकी श्वास रुक जाती है, क्योंकि श्वास लेना भी सूर्य बिन्दु की क्रियात्मकता है। हर चीज मौन हो जाती है, हर चीज जैसे मृत हो जाती है।

वे भीतर चन्द बिन्दु को चले गये जबकि उन्हें क्रॉस पर लटकाया गया। और उन्होंने सोचा कि मर गये जबकि वे वास्तव में नहीं मरे थे। यह एक गलत धारणा है, नासमझी है। जो उन्हें क्रॉस पर लटका रहे थे उन्होंने सोचा कि वे मर गये, किन्तु वे सिर्फ "चन्द्र" बिन्दु पर थे जहाँ कि श्वास भी रुक जाती है। तब कोई भीतर आती, बाहर जाती श्वास नहीं होती। वे उस अंतराल में थे।

जब कोई अंतराल में होता है तो वह एक इतना गहरा सन्तुलन होता है कि वह वस्तुतः मृत्यु ही होती है। लेकिन वह मृत्यु नहीं थी। इसलिए वे, जो कि जीसस को क्रॉस पर लटकाने वाले थे, जीसस को मौत के घाट उतारने वाले थे उन्होंने सोचा कि जीसस मृत हो गये, इसलिए उन्होंने शिष्यों को शरीर को नीचे उतारने दिया। जैसा कि यहूदी परम्परा में प्रचलित था उनके शरीर को पड़ोस की गुफा में तीन दिन तक संभालकर रखा जाता था और उसके बाद परिवार के लोगों को उसे दे दिया जानेवाला था। ऐसा कहा जाता है और ईसाईयत के पास केवल कुछ अंश है कि जब उनका शरीर गुफा की ओर ले जाया जा रहा था तो वह किसी पत्थर से टकरा गया और उससे खून बहने लगा। यदि वे सचमुच ही मर गये थे, तो खून का बहना असंभव था।

वे मृत नहीं हुए थे। और जब तीन दिन बाद गुफा को खोला गया तो वे वहाँ नहीं थे। मृत शरीर अदृश्य हो चुका था। और इन तीन दिनों में उन्हें देखा गया था। चार या पाँच आदमियों ने उन्हें देखा था, लेकिन किसी ने उनका भरोसा नहीं किया। वे लोग गाँव में गये और उन्होंने कहा कि जीसस पुनर्जीवित हो गये, लेकिन उनकी बात का किसी ने विश्वास नहीं किया।

अतः वे जेरुसलम से निकल गये। वे कश्मीर में आ गये और वहाँ रहे। लेकिन तब यह जीवन जीसस का जीवन नहीं था, बल्कि क्राइस्ट का जीवन था। जीसस सूर्य-बिन्दु थे और क्राइस्ट चन्द्र-बिन्दु थे। और वे पूर्णतः मौन रहे। इसीलिए इसका कोई रिकॉर्ड नहीं है। वे कुछ नहीं बोले, उन्होंने कोई संदेश नहीं दिया, कोई उपदेश नहीं दिया। उसके बाद वे समग्ररूप से मौन रहे। 5तब वे क्रान्तिकारी नहीं थे। वे सिर्फ एक मास्टर (गुरु) थे जो कि अपने मौन में जी रहा था। इसलिए अब बहुत कम लोग उसके पास यात्रा करके जायेंगे।

जिन्हें बिना किसी बाह्य सूचना के उनकी खबर लगेगी, वे ही उन तक यात्रा करेंगे। और ऐसे लोग बहुत कम भी नहीं थे, बहुत थे। कम केवल संसार की तुलना में-वैसे बहुत थे। और उनके चारों ओर एक गाँव बस गया। उस गाँव को अब भी बिथलहेम के नाम से जाना जाता है। कश्मीर में उस गाँव को आज भी जीसस के जन्म स्थान बिथलहेम के नाम से लोग जानते हैं और वह कब्र भी संभालकर रखी हुई है जो कि जीसस की कब्र है।

मैंने कहा कि ईसाईयत अधूरी है क्योंकि उसे पहले के जीसस का ही पता है और इसी कारण से वह कम्युनिज्य को जन्म दे सकी। लेकिन जीसस एक पूर्ण बुद्धत्व को उपलब्ध होकर मरे। एक पूर्ण चन्द्र की भाँति।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

मैं ही "वह" हूँ

सोऽहं भावो नमस्कारः।

मैं वही हूँ, यह भाव ही नमस्कार है।

अस्तित्व एक है। या कि कहें कि अस्तित्व एकता है, वन-नेस्। अलहिलाज मन्सूर को जिन्दा काट डाला गया क्योंकि उसने कहा कि मैं ही वह हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही परमात्मा हूँ, मैं ही हूँ वह-जिसने इस जगत का निर्माण किया। इस्लाम इस तरह की भाषा से बिल्कुल परिचित नहीं था। यह भाषा बुनियादी रूप से हिन्दू है। जब भी, जहाँ भी मनुष्य ने चिन्तन किया है मनुष्य एक द्वैत पर पहुँचा है : परमात्मा-सर्जक और संसार-सृजन। हिन्दू धर्म ने सबसे बड़ी हिम्मत का कदम उठाया यह कहकर कि जो सृजन है, वही सर्जक है। दोनों में बुनियादी भेद नहीं है।

इस्लाम को अथवा दूसरे द्वैतवादियों को यह कुफ्र की बात लगती है। यदि परमात्मा और संसार में कोई भी अन्तर नहीं है, यदि आदमी और परमात्मा एक ही है, तब, द्वैतवादियों को लगता है कि धर्म की संभावना नहीं हो सकती, तब कोई पूजा-अर्चना नहीं हो सकती, तब कोई सम्बोधन का सवाल ही न रहा। यदि तुम ही परमात्मा हो, तो फिर तुम किसकी पूजा करने जा रहे हो? यदि तुम स्वयं ही सर्जक हो, तो फिर तुमसे और बड़ा कौन है? पूजा तब असम्भव है।

किन्तु यह सूत्र कहता है कि यही एक मात्र पूजा है, यही एकमात्र सम्बोधन है : यह भाव कि मैं वहीं हूँ-इसकी प्रतीति ही-सम्बोधन है। साधारणतः यह सूत्र अर्थहीन है, विरोधाभासी है, क्योंकि यदि तुमसे कोई और ऊँची सत्ता नहीं है, यदि तुम ही सबसे ऊँचे हो, तो फिर तुम किसे प्रणाम करने जा रहे हो? तब तुम किसे आदर देने के लिए उद्यत हुए हो।

यही कारण है कि मन्सूर की हत्या कर दी गई, उसे मार डाला गया। यह बात ही गलत है। लोगों ने कहा कि यह नास्तिक है। यदि तुम कहते हो कि तुम ही परमात्मा हो, तो तुम परमात्मा को मना करते हो। तब तुम ही सर्वशक्तिमान हो जाते हो।

द्वैतवादी चिन्तकों को यह बात बड़ी अहंकारपूर्ण लगती है। भेद जारी रखना ही चाहिए। तुम निकट, और निकट आते जाओ, लेकिन तुम्हें स्वयं लौ नहीं बन जाना चाहिए। तुम परमात्मा की शक्ति से बिल्कुल ही निकट आ जाओ, लेकिन उसके साथ एक मत हो जाओ। तभी आदर संभव है, पूजा संभव है।

इसलिए तुम परमात्मा के चरणों तक पहुँच सकते। कैसे सृजन सर्जक हो सकता है। और यदि सृजन सर्जक हो जाता है तो इसका यह अर्थ हुआ कि कोई सर्जक ही नहीं है।

यह एक तरह की धार्मिक विचारणा है-द्वैत की। इसके भी अपने तर्क हैं और साधारण मस्तिष्क को ठीक लगते हैं। इसलिए वस्तुतः जो हिन्दू की तरह पैदा हुए हैं वे भी हिन्दू नहीं हैं जब तक कि वे इस धारणा को आत्मसात न कर लें कि सर्जक के साथ हम एक हैं। कोई हिन्दू, पैदा हो सकता है, लेकिन बुनियादी रूप से हिन्दू में या मुसलमान में या ईसाई के रुख में कोई भेद नहीं होता। एक हमारा वास्तविक रुख होता है-एक रुख तो वह है जो कि हम सीखते हैं और एक वह है जो कि हम व्यवहार में लाते हैं।

एक हिन्दू वास्तव में एक गहरी अर्थहीनता में होता है क्योंकि वह एक असंभव छलाँग लगता है : कि सृजन सर्जक बन जाता है। और यह सूत्र कहता है कि यही एकमात्र बम्बोधन है। यदि परमात्मा वहाँ कहीं ऊपर बैठा है और तुम यहाँ नीचे खड़े हो, यदि तुम्हारे भीतर कोई चीज़ दिव्य नहीं है तो फिर कोई सेतु संभव नहीं है। तुम परमात्मा से संबंधित नहीं हो सकते। तुम उससे तभी संबंधित हो सकते हो जबकि तुम उससे पहले से ही संबंधित हो, अन्यथा एक ऐसा अन्तराल होगा कि जिस पर कोई सेतु संभव नहीं हो सके। परमात्मा तब परमात्मा रहेगा और तुम मात्र सृजन रहोगे।

इसके कारण ही एक तीसरी धारणा विकसित होती है-जैनों की धारणा। वे परमात्मा को बिल्कुल मना ही कर देते हैं क्योंकि वे कहते हैं कि यदि कोई परमात्मा है सर्जक की भाँति और हम सिर्फ सर्जित लोग हैं तो फिर हम कभी परमात्मा नहीं हो सकते। कैसे कोई चीज जो कि तुमसे निर्मित है तुम हो सकती है? सर्जित चीज जो कि तुमसे निर्मित है तुम हो सकती है? सर्जित चीज़ "सृजक" का अर्थ यह भी होता है कि नष्ट करने की क्षमता, समाप्त कर देने की शक्ति। यदि परमात्मा ने यह संसार बनाया है तो वह हमें इसी क्षण नष्ट भी कर सकता है। वह तुम्हारे प्रति उत्तरदायी नहीं है। तुम उससे नहीं पूछ सकते कि क्यों? क्योंकि तुमने उससे कभी भी नहीं पूछा कि उसने यह दुनिया क्यों बनाई। इसलिए यदि परमात्मा की इसी क्षण कोई तुनक आ जाये, तो वह दुनिया को मिटा सकता है। तुम्हारे सारे पवित्र लोगों के साथ वे सारे पापियों के साथ यह दुनिया इसी क्षण नष्ट की जा सकती है।

इसलिए यदि कोई परमात्मा है तो जैन कहते हैं कि मनुष्य की कोई आत्मा नहीं है। तब वह सिर्फ एक बनायी गई चीज़ है, क्योंकि तब उसकी अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं है। यदि परमात्मा ही सर्जक है तो फिर आदमी स्वतंत्र नहीं है और तब सभी कुछ अर्थहीन हो जाता है। परमात्मा सर्वशक्तिमान हो जाता है। वह कुछ भी कर सकता है, वह कुछ भी अनकिया कर सकता है। और वह तुम्हारे प्रति उत्तरदायी भी नहीं है। यदि तुमने कोई यांत्रिक चीज बनाई है, तो तुम उसे नष्ट भी कर सकते हो। तुम अपने यांत्रिक सृजन के प्रति उत्तरदायी नहीं हो। एक चित्रकार एक चित्र बनाता है, वह चाहे तो उसे नष्ट भी कर सकता है। चित्र नहीं कह सकता कि तुम मुझे नष्ट नहीं कर सकते। और यदि परमात्मा सर्जक है और आदमी सिर्फ एक सर्जित वस्तु है, तो वह सर्जित वस्तु कैसे बढ़कर परमात्मा हो सकती है? यह असंभव है। इसलिए जैन कहते हैं कि कोई परमात्मा नहीं है। केवल तभी मनुष्य दिव्य हो सकता है, क्योंकि केवल तभी आदमी स्वतंत्र हो सकता है। परमात्मा के रहते, हम दास ही रहेंगे, बिना किसी परमात्मा के ही हम स्वतंत्र हो सकते हैं।

नीत्शे ने यह बात कही है कि अब परमात्मा मर गया है और मनुष्य स्वतंत्र है। उसे पता नहीं था कि महावीर ने उसके पहले भी यह बात कही है। महावीर के साथ भी वही समस्या थी। यदि परमात्मा है तो मनुष्य स्वतंत्र नहीं हो सकता है। परमात्मा का होना ही मनुष्य की गुलामी है। परमात्मा का न होना ही मनुष्य की स्वतंत्रता है। इसलिए महावीर कहते हैं कि कोई परमात्मा नहीं है, और तभी केवल तुम दिव्य हो सकते हो। मुसलमान, ईसाई यहूदी, ये सब कहते हैं कि परमात्मा है, मनुष्य है लेकिन मनुष्य एक निर्मित अस्तित्व है। वह दिव्य की पूजा कर सकता है और उसके निकट आ सकता है। जितना वह निकट आ जायेगा, उतना ही वह दिव्य के साथ एक नहीं हो सकता, क्यांकि अगर वह दिव्य के साथ एक हो सके, तो इसका अर्थ हुआ कि कहीं बीज रूप में वह दिव्य ही था। क्योंकि इस जगत में वह कभी भी नहीं हो सकता जो कि बीज रूप में मौजूद न हो।

एक वृक्ष बड़ा होता है क्योंकि वृक्ष बीज में था। यदि तुम दिव्य हो सकते हो, तो तुम पहले से ही दिव्य हो। इसलिए यहूदी, ईसाई, मुसलमान कहते हैं कि यदि तुम पहल से ही दिव्य हो, तब फिर पूजा, प्रेम व्यर्थ है। यदि

तुम बीज रूप में दिव्य हो, तो फिर कोई विकास नहीं हुआ। तब क्या विकास हुआ? और फिर तुम कुछ करो या न करो, तुम दिव्य तो रहते ही हो। ईसाई, यहूदी व मुसलमानों का मानना है कि धार्मिक विकास तभी संभव है जबकि मनुष्य मनुष्य है और परमात्मा परमात्मा है। तुम उसके निकट और निकट आते हो और वह निकट आना ही विकास है।

यह तुम्हारा चुनाव है? तुम निकट न आओ, तुम और दूर चले जाओ, यही तुम्हारी स्वतंत्रता है। लेकिन यदि तुम सचमुच ही ईश्वर स्वरूप हो, तो यहूदी, मुसलमान व ईसाई कहते हैं कि तब कोई वास्तविक विकास नहीं हुआ। तब फिर सारा विकास ही श्रम हो गया-एक स्वप्न जगत का विकास हो गया। तुम ईश्वरीय होने ही वाले हो क्योंकि बीज में पहले से ही दिव्य हो। तब सारी बात ही गड़बड़ हो जाती है, सारा विकास ही अर्थ-हीन हो जाता है।

हिन्दू इन दोनों के बीच अपना दृष्टिकोण खड़ा करते हैं। वे जैनों से सहमत हैं कि मनुष्य दिव्य है और वे ईसाई, यहूदी व मुसलमानों से भी सहमत हैं कि ईश्वर है-एक स्त्रष्टा के रूप में। और फिर भी वे कहते हैं कि विकास होता है। इवोल्यूशन होता है। लेकिन उनके लिए विकास का अर्थ है सिर्फ खुलना, अनफोल्डमेंट। एक बीज अंकुरित होता है और उसका उगना वास्तविक है, प्रामाणिक है क्योंकि एक बीज बीज भी रह सकता है। वह बिना उगे रह सकता है। भीतरी कोई आवश्यकता नहीं है कि वह उगे लेकिन एक बीज उगता है, एक खास वृक्ष होने के लिए, क्योंकि वह वृक्ष ही उसमें बीज रूप में छिपा है।

मनुष्य मनुष्य रह सकता है, मनुष्य चाहे तो नीचे भी गिर सकता है और पशु हो सकता है, अथवा वह चाहे तो दिव्य भी हो सकता है। यह उसका चुनाव है, यह उसकी स्वतंत्रता है। परन्तु यह संभावना कि मनुष्य दिव्य हो सकता है, यह बताती है कि कहीं गहरे में भीतर मनुष्य अपने बीज रूप में दिव्य है।

इसलिए यह एक प्रकार से खिलना है। कुछ जो भीतर छिपा था वास्तविक हो जाता है। कोई प्रसुप्त बीज प्रकट हो जाता है। कुछ जो कि हमें बीज की तरह दिखाई पड़ता था, वृक्ष हो जाता है। एक तरह से हिन्दू ईश्वर, मुसलमानों व ईसाइयों से बिल्कुल भिन्न ढंग का है क्योंकि हिन्दुओं के लिए मनुष्य परमात्मा हो सकता है और वे कहते हैं कि यदि तुम परमात्मा नहीं हो सकते तो वह निकट, और निकट आने की धारणा भी गलत है। क्योंकि यदि तुम उस ज्योति में छलाँग नहीं लगा सकते हो उसके निकट और निकट आने की धारणा भी गलत है। क्योंकि यदि तुम उस ज्योति में छलाँग नहीं लगा सकते तो उसके निकट और निकट आने का क्या अर्थ हुआ? तब तुममें और किसी और में क्या अन्तर हुआ जो कि निकट नहीं आया? यदि तुम निकट आते हो, तो तार्किक निष्पत्ति यह होगी कि तुम और निकअ आओ, निकटतम आते चले जाओ और अन्त में उसके साथ एक हो जाओ।

यदि तुम उसके साथ एक नहीं हो सकते, तो फिर एक सीमा है। और उस सीमा से आगे तुम में और परमात्मा में एक गैप है, एक अन्तराल है। यह दूरी, यह गैप सहन नहीं किया जा सकता तो फिर सारी कोशिश ही फिजूल है। हिन्दू कहते हैं-जब तक तुम स्वयं ही परमात्मा न हो जाओ, अभीप्सा पूरी नहीं होगी। और जितने निकट तुम होते हो, उतनी ही दूरी तुम्हें अधिक लगेगी, और उतनी ही तुम्हें यातना होगी। और जब तुम सीमा-रेखा पर जाते हो, जहाँ से कि कोई विकास सींव नहीं है, तो फिर तुम सड़ोगे और तब तो संताप असहनीय हो जायेगा-पूर्णरूप से असहनीय।

मनुष्य दिव्य हो सकता है क्योंकि वह पहले से ही दिव्य है। और हिन्दुओं का कहना है कि तुम वही हो सकते हो जो कि तुम पहले से ही हो। तुम वह नहीं हो सकते जो कि तुम नहीं हो। तुम कुछ और नहीं हो सकते विकसित होकर; तुम केवल तुम ही हो सकते हो।

इस धारणा के कई आयाम हैं। एक है-परमात्मा स्रष्टा है : हम उसकी कल्पना एक चित्रकार के रूप से कर सकते हैं, लेकिन हिन्दूओं ने उस भाँति नहीं सोचा। उन्होंने कहा कि स्रष्टा चित्रकार नहीं है, वरन्, वह एक नर्तक है। इसलिए एक धारणा है शिव की नटराज के रूप में। नृत्य में एक नर्तक कुछ सृजन कर रहा है लेकिन सृजन उससे भिन्न नहीं है, अलग नहीं है। चित्रकला में, चित्रकार तथा चित्र दो अलग चीज़ें हैं। और जिस क्षण भी चित्र पूरा हुआ कि वह चित्रकार से स्वतंत्र हो जाता है। अब वह अपनी राह ले सकता है।

हिन्दुओं का कहना है कि परमात्मा स्रष्टा है एक नटराज की भाँति-एक नर्तक नाच रहा है, उसका नृत्य ही सृजन है। लेकिन तुम उसे नर्तक से अलग नहीं कर सकते। यदि नर्तक मर जाए, तो नृत्य भी मर जाएगा। और यदि नृत्य चलता है तो नर्तक भी वहाँ होगा।

एक बात और जो कि बुनियादी है और महत्वपूर्ण भी है : कि नृत्य नहीं हो सकता बिना नृत्यकार के, किन्तु नृत्यकार हो सकता है बिना नृत्य के। हिन्दू कहते हैं कि यह संसार एक सृजन है इसी भाँति। परमात्मा नाच रहा है, इसलिए जो भी सृजन होता है, वह उसी का हिस्सा है।

दूसरी बात : एक चित्रकार चित्र बनाता है। वह चित्र पूरा करके आराम से सो सकता है। लेकिन एक नृत्य सतत प्रक्रिया है सृजन की। परमात्मा सो नहीं सकता। इसलिए यह संसार किसी खास दिन नहीं बनाया गया था, यह तो सतत्, हर क्षण बनाया जा रहा है। ईसाई सोचते हैं कि यह संसार एक खास दिन व तारीख को बनाया गया, और उस दिन के पहले यह संसार नहीं था। वे कहते हैं कि छः दिन में परमात्मा ने इस सारे जगत को बनाया, और सातवें दिन वह आराम करने चला गया। अब यदि वह हो, तो भी उसकी कोई जरूरत नहीं है। इस बीच में वह मर भी गया हो यह हो सकता है। चित्रकार मर सकता है और चित्र चलता जा सकता है। चित्रकार पागल भी हो गया, तो भी चित्र में कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह वैसा ही रहता है।

हिन्दू कहते हैं कि ऐसा नहीं है कि संसार बनाया गया था बल्कि ऐसा है कि संसार सतत हर क्षण बनाया जा रहा है। यह सृजन की सतत प्रक्रिया है, यह सृजन का सतत बहाव है। इसलिए यदि तुम चीजों को इस भाँति देखो, तो फिर परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा एक शक्ति है। तब परमात्मा कुछ ऐसा नहीं है जो कि ठहरा हुआ है बल्कि एक गति है। वह गत्यात्म है क्योंकि एक नृत्य गत्यात्मक प्रक्रिया है। तुम्हें उसमें हर क्षण होना पड़ेगा, केवल तभी वह हो सकता है। नृत्य एक अभिव्यक्ति है, एक आकर्षक प्रदर्शन है और तुम्हें उसमें सतत रहना पड़ता है।

यह संसार एक नृत्य है, न कि एक चित्र। और हर चीज इस नृत्य का हिस्सा है, और उसकी हर अभिव्यक्ति दिव्य की अभिव्यक्ति है। इसलिए हिन्दू एक बहुत मजेदार बात कहते हैं कि यदि हर चीज़ दिव्य नहीं है तो फिर कुछ भी दिव्य नहीं है। यदि हर चीज़ पवित्र नहीं है, तो फिर कुछ भी पवित्र नहीं है। यदि सभी कुछ परमात्मा नहीं है, तो फिर कुछ भी पवित्र नहीं है। यदि सभी कुछ परमात्मा नहीं है, तो फिर परमात्मा होने की कोई संभावना नहीं है। यह एक आयाम है, एकता को देखने का। वे नहीं कहते कि वह एक है, वह एक है। वे सदैव इतना ही कहते हैं कि वह दो नहीं है। क्योंकि हिन्दुओं का सोचना है कि यह कहना कि संसार एक ही है, अस्तित्व एक है, इससे भी यह बोध होता है कि एक भी तभी हो सकता है जबकि कुछ और भी साथ में हो। एक भी संख्या है। यदि दूसरी संख्याएँ भी हों-दो, तीन, चार तो ही एक भी हो सकता है। यदि और कोई संख्याएँ ही नहीं हों तो "एक" भी कहना व्यर्थ है। तब तुम्हारे एक का भी क्या अर्थ है? चूँकि एक से लेकर नौ तक संख्या है, एक का अर्थ है। वह संख्याओं के संदर्भ में ही अर्थ रखता है। यदि सिर्फ एक ही हो, तो तुम इतना भी नहीं कह सकते कि एक ही है। तब संख्या व्यर्थ हो जाती है।

हिन्दू कहते हैं कि अस्तित्व अद्वैत है, न कि एक। उनका मतलब एक से है, लेकिन वे कहते हैं कि अद्वैत है। वे कहते हैं कि वह दो नहीं है। यह एक अप्रतिबद्ध कथन है। यदि तुम कहते हो कि एक ही है तो फिर तुमने कमिटमेंट कर दिया-प्रतिबद्धता कर ली। तो फिर तुमने बहुत तरह से कुछ कह दिया। यदि तुम कहते हो "एक" है तो इसका यह अर्थ होता है कि तुमने नाप-जोख लिया। यदि तुम कहते हो "एक" तो तुम कह रहे हो कि अस्तित्व सीमित है।

हिन्दू कहते हैं कि यह दो नहीं है। उनका अर्थ एक से ही है लेकिन वे उसे घुमा-फिरा कर कहते हैं, और यह बड़ा अर्थपूर्ण है। वे कहते हैं कि यह अद्वैत है, यह दो नहीं है। इससे वे इतना ही इशारा करते हैं कि यह एक है। इसे सीधा कभी भी नहीं कहा गया लेकिन इंगित किया गया। वे सिर्फ इतना ही कहते हैं कि वह दो नहीं है।

यह बहुत अर्थपूर्ण है क्योंकि जब हम कहते हैं कि नर्तक और नृत्य एक ही है, तब बहुत-सी कठिनाइयाँ खड़ी हो जाती है यदि नृत्य रुक जाता है, तो नर्तक भी खो जाता है-यदि वे एक ही हैं। इसलिए हिन्दू कहते हैं कि वे दो नहीं है। क्योंकि तब नृत्य रुक जाये तो भी नर्तक रहेगा। लेकिन नर्तक रुक गया, तो नृत्य नहीं चल सकता।

यह अद्वैत का होना छिपा हुआ है, और यह अनेक का होना प्रकट है। यह अनेकता प्रकट है, एकता छिपी हुई है। परन्तु यह "अनेकता" तभी हो सकती है जबकि एकता कहीं छिपी हो। वृक्ष अलग है, पृथ्वी अलग है, सूर्य अलग है, चन्द्रमा अलग है, लेकिन अब विज्ञान कहता है कि नीचे गहरे में वे सब एक दूसरे से संबंधित हैं और एक हैं। वृक्ष पैदा नहीं हो सकते यदि सूर्य नहीं हो। लेकिन हमने सिर्फ इस एक तरफा बात को ही जाना है। हमने इतना ही जाना है कि यदि सूर्य नहीं हो तो वृक्ष नहीं हो सकती और फूल नहीं खिल सकते। लेकिन हिन्दू साथ ही यह भी कहते हैं कि यदि वृक्ष नहीं हों तो सूर्य भी नहीं हो सकता। यह दोनों तरफ जाती धारा है, हर चीज़ एक दूसरे से जुड़ी है।

जैन कहते हैं-यदि परमात्मा है, तो फिर मानव गुलाम होगा। मुसलमान कहते हैं कि यदि मनुष्य यह घोषणा करता है कि "मैं परमात्मा हूँ" तो उसका मतलब होगा कि परमात्मा को सिहासन से उतार दिया गया और गुलाम मालिक बनने की कोशिश कर रहा है। हिन्दू कहते हैं कि न तो स्वतंत्रता है और न परतंत्रता है। अस्तित्व एक परस्पर-तंत्रता है, इन्टर डिपेन्डेन्स है। इसलिए स्वतंत्रता तथा परतंत्रता की भाषा में बात करना व्यर्थ है। सर्व एक परस्पर-तंत्रता की भाँति होता है। यहाँकुछ भी ऊँचा नहीं है, और कुछ भी नीचा नहीं है, क्योंकि ऊँचा भी हो नहीं सकता बिना उसके, जिसे कि तुम नीचे कहते हो।

क्या शिखर हो सकता है बिना घाटी के? क्या महात्मा हो सकता है बिना पापी के? क्या सौंदर्य हो सकता है बिना उसके जिसे कि तुम कुरूपता कहते हो? और यदि सौंदर्य व्यर्थ नहीं हो सकता बिना कुरूपता के तो फिर वह कुरूपता पर निर्भर है। और यदि शिखर नहीं हो सकता बिना घाटी के तो फिर शिखर को कुछ ऊचा कहने और घाटी को कुछ नीचा कहने में क्या अर्थ है?

हिन्दू कहते हैं कि वह जो सर्वाधिक नीचा है, वही सर्वाधिक ऊँचा है, और जो सबसे ऊँचा है, वह सर्वाधिक नीचा है। इस घोषणा से उनका अर्थ है कि सारा अस्तित्व एक परस्पर-तंत्रता के ढाँचे में बना है। और सारे धर्म निरपेक्ष हैं। ये सोचने के लिए विश्लेषण करने के लिए, समझने के लिए ठीक हैं, लेकिन वे आधारभूत रूप से झूठ हैं। और यह बड़ी-से-बड़ी छलाँग है।

ऋषि कहता है "सोऽहं भावो नमस्कारः"-यह प्रतीति कि मैं वही हूँ, यही नमस्कार है।

जब तक कि निम्नतम यह महसूस नहीं कर लें कि वह उच्चतम है तब तक वह इस जगत में चैन से नहीं बैठ सकता। लेकिन यह कोई घाषणा नहीं है, यह तो प्रतीति है। तुम यह घोषणा भी कर सकते हो कि "मैं परमात्मा हूँ" वह तुम्हारी गहरी प्रतीति नहीं भी हो सकती है। वह मात्र एक अहंकार की घोषणा भी हो सकती है। यदि तुम कहते हो कि मैं परमात्मा हूँ और कोई दूसरा परमात्मा नहीं है तब तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। जब यह प्रतीति होती है, तब तुम्हारी और से यह कोई घोषणा नहीं होती। यह तो सारे अस्तित्व की ओर से घोषणा है।

ऋषि कहता है कि मैं परमात्मा हूँ, मैं ही वह हूँ। वह यह कह रहा है कि प्रत्येक चीज़ परमात्मा है, प्रत्येक चीज वही है। उसके साथ सारा अस्तित्व ही यह घोषणा कर रहा है। इसलिए यह कोई व्यक्तिगत कथन नहीं है। अलहिल्लाज मन्सूर को काट डाला गया क्योंकि इस्लाम को इस भाषा का कुछ भी पता नहीं है। जब उसने कहा कि "मैं खुदा हूँ" तो उन्होंने सोचा कि अलहिल्लाज कह रहा है कि वह खुदा है। वहां कोई अलहिल्लाज नहीं था सिर्फ इतनी ही बात थी कि अलहिल्लाज के मार्फत घोषणा कर रहा था। अलहिल्लाज तो अब बचा ही नहीं था क्योंकि यदि वह बचा होता, तो यह एक व्यक्तिगत कथन हो जाता। अतः यह एक दूसरा आयाम है।

मनुष्य तीन श्रेणियों में, तीन केटेगरीज़ में जीता है। एक जबकि वह कहता है कि "मैं हू" बिना जाने कि वह कौन है। यह साधारण अस्तित्व है सबका-यह प्रतीति कि "मैं नहीं हूँ" क्योंकि इस "हूँ" को तुम जितनी गहराई से सोचोगे, जितने गहरे तुम इसे खोदोगे, उतना ही तुम जानोगे कि तुम नहीं हो और "मैं" की सारी घटना ही विलीन हो जाती है, तुम उसे नहीं खोज सकते। इसलिए उसे विलीन करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। तुम सिर्फ उसे नहीं खोज पाते हो; वह वहाँ नहीं है।

यदि तुम बिना खोज किए होते हो, तो तुम्हें लगता है कि मैं हूँ। यदि तुम खोज करना शुरू करो तो तुम पाओगे कि तुम नहीं हो। यह दूसरी अवस्था है जबकि आदमी को पता चलता है कि वह नहीं है। पहले वह इस बात के भीतर गहरे खोज रहा था कि "मैं हूँ। अब वह इस बात के भीतर गहरे खोजता है कि "मैं नहीं हूँ।"

यह सर्वाधिक कठिन है। पहली बात कठिन है-बहुत कठिन है। दूसरी स्थिति तक आना भी एक लम्बी यात्रा है। बहुत से तो पहली पर रुक जाते हैं। वे कभी इसमें नहीं खोजते कि "मैं कौन हूँ"। बहुत थोड़े से लोग ही इस खोज पर जाते हैं जो कि इस बात की गहरी खोज करते हैं कि वह कौन है, भीतर जो कि कहता है कि "मैं हूँ"। फिर उन बहुत थोड़े से लोगों में से कुछ लोग एक नई यात्रा पर निकलते हैं, यह पता लगाने कि यह कौन है, जो कि कहता है कि मैं नहीं हूँ। यह मैं नहीं हूँ कि प्रतीति भी क्या है? यद्यपि मैं हूँ, फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि मैं हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे गहरी रिक्तता हो।

हिन्दुओं ने कहा है कि यह पहली स्थिति है "मैं हूँ" की है; दूसरी "हूँ" की है। "मैं" गिर गया है, लेकिन मेरा अस्तित्व अभी है। यद्यपि मैं खाली हूँ, कुछ भी नहीं हूँ, फिर भी मैं "हूँ"। इसे "हूँ" कहते हैं। पहले को वो कहते हैं अहंकार-ईगो, दूसरे को वे कहते-हैं-अस्मिता-ऐमनेस-"हूँ" का होना। यदि कोई भीतर गहरे जाता है अहंकार के, तो वह अस्मिता को पहुँचता है। और अब यदि कोई और भी गहरे जाए इस "हूँ" के तो वह दिव्यता को पहुँच जाता है। तब वह कहता है, "मैं ही वह हूँ-अहं ब्रह्मास्मि : मैं ही ब्रह्म हूँ।" इस रिक्तता से ही कोई सर्व हो जाता है। इस नहीं होने से ही कोई होने का आधार बन जाता है। खोकर, मिटकर ही कोई वस्तुतः सब कुछ हो जाता है।"यह सूत्र-"सोऽहं भावो नमस्कारः"-यह तीसरी अवस्था की प्रतीति है। जबकि आदमी पूरी तरह खो जाता है, अहंकार विलीन हो गया है। यहाँ तक कि "हूँ" भी अब नहीं रहा। अब कोई मूल स्रोत को ही पा गया, जैसे कि अब कोई नृत्य की कोरी भाव-भंगिमा ही रह गया-सिर्फ नृत्य की भाव-भंगिमा। उसने गहरी खोज की और अब वह उस नर्तक तक आ पहुँचा। अब नृत्य की भाव-भंगिमा ही है कि "मैं ही वह नर्तक हूँ।"

यह भीतर की यात्रा है। पहले तुम अपने भीतर जाते हो, लेकिन तुम विश्व से संबंधित हो। इसलिए यदि तुम जाते जाओ, तो तुम अस्तित्व में गहरे उतरते जाओगे। यदि तुम जाते जाओ तो तुम परिधि से एक दिन केन्द्र पर पहुँच जाओगे।

जैसे हवा में लहराते हुए पत्ते का एक अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है। यदि पत्ता अपने भीतर की यात्रा पर निकले तो देर-अबेर से वह अपने पार चला जाएगा, और शाखा मेंप्रवेश करेगा। यदि वह यात्रा करता ही चला जाए तो जल्दी ही वह पत्ता नहीं रह जायेगा, वह शाखा भी नहीं रहेगा, वह वृक्ष ही हो जाएगा। यदि वह यात्रा करता ही जाये तो वह वृक्ष भी नहीं रहेगा, वह वृक्ष ही हो जाएगा।

लेकिन पत्ता बिना भीतर की यात्रा पर गये भी रह सकता है। तब पत्ता सोच सकता है कि "मैं हूँ" यह पहली अवस्था है। यदि पत्ता भीतर जाता है, तो देर-अबेर वह पाएगा कि "मैं पत्ता नहीं हूँ; मैं कुछ ज्यादा हूद, मैं शाखा हूँ।" और फिर मैं शाखा नहीं हूँ, मैं उससे भी ज्यादा हूँ, मैं वृक्ष ही हूँ।" और फिर "मैं वृक्ष ही नहीं हूँ, मैं उससे भी ज्यादा हूँ, मैं जड़ें भी हूँ-छिपी हुई जड़ें।" और यात्रा चलती ही चली जाए तो जड़ों में से भी छलाँग लग जाएगी और वह पूरा अस्तित्व ही हो जाएगा।

यह एक प्रतीति है, एक बोध है। और यह और भी कठिन मामला है क्योंकि तुम्हारा अहंकार बुद्धि से यह घोषणा करना चाहेगा कि मैं परमात्मा हूँ, कि मैं दिव्य हूँ। बुद्धि हमेशा ऊपर होना चाहती है-शिखर पर। अहंकार की सारी कोशिश ही बड़ा होने की है। इसलिए यह तुम्हें आकर्षित कर सकता है। यह अहंकार को अच्छा लग सकता है। वह कह सकता है कि "ठीक है, मैं परमात्मा हूँ।"

लेकिन यह सूत्र कहता है कि यही नमस्कार है। और नमस्कार एक गहरी विनम्रता है। यह कोई तुम्हें शिखर पर रखने की बात नहीं है क्योंकि तब वहाँ कोई नहीं है जिसे तुम नमस्कार कर सकते हो। यही समस्या इस्लाम के सामने पैदा हुई जब अलहिल्लाज ने घोंषणा की। उसने अपने को ही परमात्मा घोषित कर दिया और इस्लाम को लगा कि यह तो विनम्रता नहीं है; यह तो अहंकार की आखिरी सीमा हो गई। इसलिए जिन्होंने उसे काट डाला और उन्होंने सोचा कि उन्होंने बिल्कुल ठीक किया, धर्मानुसार किया। यह तो अहंकार की अन्तिम सी हो गई थी।

यह सूत्र विरोधाभासी है। यह कहता है कि तुम वही हो और यही नमस्कार है। यदि यह प्रतीति हो जाये, यदि इसका बोध हो जाये तो फिर शिखर घाटी को नमस्कार कर सकता है, क्योंकि अब ऐसा कुछ भी नहीं है, जो कि दिव्य न हो। और अब शिखर को भी मालूम पड़ेगा कि वह भी घाटी पर निर्भर है। तब प्रकाश अन्धकार को नमस्कार करेगा, और जीवन मृत्यु को प्रणाम करेगा क्योंकि सभी कुछ एक दूसरे पर निर्भर करते हैं और अन्र्तसंबंधित हैं।

इस बोध के शिखर पर ही कोई विनम्र होता है-क्योंकि यह घोषणा कि "मैं वही हूँ" यह किसी के विरुद्ध नहीं है। यह सबके लिए है। अब "मेरे" द्वारा हर चीज़ अपनी दिव्यता की घोषणा कर रही है।

जब अलहिल्लाज को मारा गया तब वहाँ बहुत से लोग मौजूद थे, बहुत से लोग पत्थर फेंक रहे थे। वह हँस रहा था, वह प्रार्थनापूर्ण था, वह प्रेम से भरा था। उस भीड़ में एक सूफी फकीर भी मौजूद था। सारी भीड़ उस पर पत्थर बरसा रही थी, और उस सूफी फकीर ने, सिर्फ भीड़ के साथ एक होने के ख्याल से कि वह भीड़ से अलग नहीं है, कि कोई ऐसा नहीं सोचे कि वह उनसे अलग है, उसने एक फूल उसकी तरफ फेंका। वह पत्थर तो नहीं फेंक सका, इसलिए उसने एक फूल फेंका, सिर्फ, भीड़ के साथ एक होने के ख्याल से-ताकि सब यही सोचें कि वह भी उनमें से ही एक है, उन्हीं के साथ एक है।

मन्सूर रोने लगा। जब सूफी का फूल उसको लगा तो वह रोने लगा। सूफी बड़ा बेचैन हुआ। वह नजदीक आया और उसने मन्सूर से पूछा, "जब दूसरे तुम पर पत्थर मार रहे हैं और तुम पर हँस रहे हैं तो तुम उनके लिए प्रार्थना कर रहे हो। मैंने तो सिर्फ एक फूल ही फेंका है।" मन्सूर ने कहा, "तुम्हारा फूल मुझे चोट पहुँचाता है क्योंकि तुम जानते हो। यह घोषणा "मेरे" लिए नहीं है। मैंने यह घोषणा तुम्हारे लिए की है। और यह तुम जानते हो, इसलिए तुम्हारा फूल भी चोट पहुँचा रहा है। उनके पत्थर भी फूलों की तरह हैं क्योंकि वे नहीं जानते। किन्तु यह घोषणा उन्हीं के लिए है।" "यदि मन्सूर परमात्मा है," मन्सूर ने कहा, "तो फिर सभी कुछ परमात्मा है। मन्सूर यदि परमात्मा हो सकता है, तो फिर प्रत्येक चीज़ परमात्मा हो सकती है।" मन्सूर ने कहा, "मेरी तरफ देखो, मैं कुछ भी न था और फिर भी मैंने घोषणा की कि मैं दिव्य हूँ। तो अब हर चीज़ दिव्य हो सकती है।"

यह अहंकार की घोषणा नहीं है। यह निरंहकार के बोध की घोषणा है। जब किसी को प्रतीति हो कि वह कुछ भी नहीं है, केवल तभी कोई इस जगह पहुँच सकता है। तब यह विनम्रता है। तब यह एक सर्वाधिक विनम्रता की संभावना बन जाती है। यह नमस्कार हो जाता है-सारे अस्तित्व को नमस्कार हो जाता है। तब यह सारा अस्तित्व ही दिव्यता है।

रहस्यवादियों ने मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों को मना कर दिया, इसलिए नहीं कि वे अर्थहीन हैं बल्कि इसलिए कि सारा अस्तित्व ही सारी समष्टि ही मंदिर है। रहस्यवादियों ने मूर्तियों के लिए मना कर दिया; इसलिए नहीं कि वे निरर्थक हैं बल्कि इसलिए कि सारा अस्तित्व ही परमात्मा की प्रतिमा है। लेकिन उनकी भाषा समझना कठिन है। वे हमें धर्मविरोधी दिखाई पड़ते हैं, प्रतिमाओं को मना करते हैं। मंदिर, गिरजा, शास्त्र जिसे भी हम धार्मिक समझते हैं उन सबका वे निषेध करते हैं। वे सिर्फ इसलिए मना करते हैं कि सारा अस्तित्व ही दिव्यता है। और यदि तुम एक हिस्से पर जोर देते हो, तो उसका अर्थ होता है कि तुम्हें संपूर्ण का कोई पता नहीं है।

यदि मैं कहता हूँ कि यह मंदिर दिव्य है, तो मात्र इतना कहने से ही मैंने कह दिया कि यह सारा जगत दिव्य नहीं है। यदि यह मंदिर किसी बड़े मंदिर का हिस्सा है तो फिर बात दूसरी है। लेकिन यदि यह मंदिर सर्व के विरुद्ध है-दूसरे मंदिरों के खिलाफ है, और दूसरे मंदिरों के विरुद्ध ही नहीं, यदि यह मंदिर किसी सामान्य घर के भी विरुद्ध है, यदि यह मंदिर कहता है कि दूसरे घर पवित्र नहीं है और केवल मंदिर ही पवित्र है तो यह भी सर्व का निषेध हो गया।

सर्व के लिए रहस्यवादियों ने अंशों को मना कर दिया। लेकिन हमारे लिए कोई वर्ग नहीं है। हम सर्व के बारे में कुछ भी नहीं जानते। इसलिए जबकि एक हिस्से को भी मना किया जाये, तो भी यह असुविधापूर्ण है क्योंकि इतना ही तो हम जानते हैं। यदि कोई कहता है कि कोई मंदिर नहीं है, तो हमारे लिए यह काफी है कि वह आदमी धार्मिक नहीं है। हो सकता है कि वह कह रहा हो कि चूँकि सभी कुछ मंदिर है, इसलिए किसी एक को मंदिर न बनाओ, क्योंकि सभी कुछ मंदिर है। यही नमस्कार है।

हम भी पूजा करते हैं। हम मंदिर भी जाते हैं, मस्जिद भी जाते हैं। हम शारीरिक क्रिया ही होती है। हमारे भीतर का अहंकार तो अडिग ही रहता है। बल्कि वह और भी अकड़ जाता है, क्योंकि तुम मंदिर गये थे, क्योंकि तुम तीर्थ को गये थे, पवित्र धाम को गये थे, क्योंकि तुम काबा गये थे। अब तुम कोई साधारण आदमी नहीं हो। अब तुम धार्मिक आदमी हो, इसलिए तुम झुके हो। लेकिन वह तुम्हारा शारीरिक हावभाव ही है। तुम्हारा अहंकार के लिए भोजन हो गया। तुम्हारा अहंकार जीवन्त हो गया, वह मरा नहीं।

इसलिए तथाकथित धार्मिक लोग ज्यादा अहंकारी होंगे-बजाय साधारण सांसारिक लोगों के। उनके पास कुछ ज्यादा है जो तुम्हारे पास नहीं है। वे "धार्मिक" हैं, वे रोजाना प्रार्थना करते हैं। जब तुम सिनेमा जाते हो, तो तुम्हारे अहंकार को कोई बल नहीं मिलता। लेकिन जब तुम मंदिर जाते हो, तो उसे बल मिलता है क्योंकि मंदिर में तुम्हें कभी अपराध का भाव महसूस नहीं हो सकता। सिनेमा हाल में तुम्हें लग सकता है कि तुम अपराधी हो। एक होटल में तुम्हें लग सकता है कि तुम अपराधी हो। तुम वहाँ अपने को महान समझते हो, तुम और भी सम्मानित अनुभव करते हो, इससे तुम्हारे अहंकार में थोड़ी वृद्धि और हो जाती है।

मंदिर से निकलते हुए लोगों के चेहरे देखो। देखो कि उनका अहंकार और बढ़ गया है। ये कुछ पाकर लौट रहे हैं-यह उनके लिए विटेमिन है। तुम बिना झुके भी झुक सकते हो और वही समस्या है। झुकना तो आंतरिक होना चाहिए। और जब शरीर भी झुके तो फिर वह एक गहरा अनु

भव है। शरीर में भी एक गहरा अनुभव है। यदि तुम आंतरिक रूप से झुक रहे हो, इस भाव से भी कि सारा जगत ही दिव्य है तो फिर तुम जहाँ भी झुको, वहीं परमात्मा के चरण है। यदि तुम्हारा शरीर इस भाव से झुके, तो तुम्हारे शरीर को भी बहुत गहरा अनुभव होगा। और तब उसमें से तुम अधिक साधारण, अधिक निर्दोष, अधिक नम्र होकर बाहर आओगे।

तो फिर क्या करना चाहिए? आदमी ने बहुत उपाय खोजे हैं लेकिन उनसे कोई मदद नहीं मिली है। और आदमी का अहंकार इतना सूक्ष्म और चालाक है कि वह तुम्हें ऐसे सूक्ष्म मार्गों से धोखा देता है कि तुम उसे हरा नहीं सकते। यदि कहीं कोई परमात्मा स्वर्ग में बैठा है, तो तुम उसके आगे झुक सकते हो और सारे अस्तित्व के साथ तुम अहंकारपूर्ण व्यवहार कर सकते हो, क्योंकि तुम्हें लगता है कि यह संसार दिव्य नहीं है। तुम्हारी दिव्यता, तुम्हारा परमात्मा कहीं ऊपर स्वर्ग में हैं। इस जगत के साथ तुम कैसा ही व्यवहार करते रह सकते हो जैसे कि तुम पहले कर रहे थे। और अब तुम और भी खराब व्यवहार कर सकते हो क्योंकि अब तुम एक सर्वाधिक महान शक्ति से संबंधित हो। अब तुम्हारा सीधा संबंध है, तुम किसी भी क्षण उससे नम्बर मिला सकते हो। उससे तुम कुछ भी करने के लिए कह सकते हो।

जीसस एक गाँव के पास से गुजर रहे हैं। गाँव उनके बहुत खिलाफ है। जीसस के शिष्यों को उस गाँव में विश्राम नहीं करने दिया जाएगा। गाँव के लोगों ने मना कर दिया है। वे भोजन भी नहीं देंगे। पानी तक भी नहीं दिया जाएगा। इसलिए उन्हें आगे के गाँव में जाना पड़ेगा। शिष्यों ने जीसस से कहा-"यही क्षण है। कुछ चमत्कार दिखाओ। इस गाँव को नष्ट कर दो। ऐसे अधार्मिक लोग जिन्दा रहने के योग्य भी नहीं हैं।" ये ही लोग थे जिन्होंने बाद में ईसाइयत को निर्मित किया। उन्होंने कहा कि इसी क्षण इस गाँव को नष्ट कर दो। यही समय है, अपने चमत्कार दिखाओ। ये जीसस से कह रहे थे कि सिद्ध कर दो कि तुम परमात्मा के बेटे हो, एक मात्र अकेले बेटे। अब अपने पिता, जो कि ऊँचे स्वर्ग में बैठे हैं उनसे कहो कि इस गाँव को नष्ट कर दें।

यह क्रोध क्यों है? क्यों है इतनी नाराजगी? और वे सब बड़े प्रार्थना करने वाले लोग थे। वे रोज प्रार्थना करते थे, वे जीसस के साथ रहते थे। फिर इतना क्रोध क्यों? गाँव में सीधे साधारण लोग रहते थे। उन्होंने सिर्फ उन्हें भोजन देने के लिए ही तो मना किया था। यह कोई पाप तो नहीं है, यह उनकी मरजी की बात है। यदि मैं तुम्हारे घर आऊँ और तुम मुझे भोजन देने से मना कर दो, ठीक है, कोई बात नहीं। यह तुम्हारी मरजी की बात है। यह आक्रोश क्यों? और फिर सारे शहर ने तो मना नहीं किया था, केवल कुछ थोड़े से लोगों ने मना कर दिया था। लेकिन शिष्यों ने कहा, इस सारे गाँव को नष्ट कर दो। यह सारा गाँव अभी और इसी वक्त नष्ट कर देना चाहिए।

वृक्षों ने उन्हें शरण देने से मना नहीं किया, लेकिन वे जीसस से कह रहे थे कि जो कुछ भी इस गाँव में हो उसे नष्ट कर दें। क्यों? प्रार्थना से, सम्बोधन से, पूजा से वे और भी क्रोधी हो गये। वे विनम्र नहीं हुए। विनम्रता उनसे बहुत दूर है। और यदि वे विनम्र नहीं हैं, तो वे धार्मिक कैसे हो सकते हैं। ऐसा सींव कैसे हुआ? क्योंकि परमात्मा स्वर्ग में है। तब उन्हें ऐसा लग सकता है कि जिस आदमी ने हमें भोजन देने के लिए मना कर दिया, वह दिव्य नहीं है, गाँव दिव्य नहीं है। परमात्मा कहीं स्वर्ग में है और हम उसके चुने हुए लोग हैं। ये लोग परमात्मा-विरोधी लोग हैं, इसलिए इन्हें नष्ट कर दो।

वास्तविक विनम्रता तभी संभव है जबकि परमात्मा दूर न हो। वह तो तुम्हारा पड़ोसी ही है-हर क्षण। जहाँ भी तुम हो, वहीं वह है। परमात्मा को कहीं भी दूर रखना बहुत आसान है, सुविधापूर्ण भी है क्योंकि तब तुम जैसा चाहो, वैसा अपने पड़ोसी से व्यवहार कर सकते हो और परमात्मा तुम्हारी तरफ होगा।

मैं कुछ पढ़ रहा था। एक फ्रांसीसी जनरल एक अंग्रेज जनरल से बात कर रहा था। दूसरे महायुद्ध के बाद की बात है। उस फ्रेंच जनरल ने कहा कि हम लगातार हारते गये और तुम नहीं हारे। ऐसा क्यों हुआ? अंग्रेज जनरल ने कहा, यह हमारी प्रार्थना का फल है। हम लड़ने के पहले प्रार्थना करते हैं। फ्रेंच जनरल ने कहा कि वह तो हम भी करते हैं। अंग्रेज जनरल ने कहा कि वो तो ठीक है, लेकिन हम अंग्रेजी में प्रार्थना करते हैं और तुम फ्रांसीसी भाषा में। यह तुमको किसने बताया कि परमात्मा को फ्रेंच भी आती है? उसे आ ही नहीं सकती।

इसी तरह तथाकथित मन दंभी हो जाता है। संस्कृत ही एक मात्र पवित्र भाषा है। तुम इस घटना पर हँस सकते हो। लेकिन क्या तुम इस बात पर भी हँस सकते हो कि संस्कृत ही एक मात्र भाषा है और वेट ही केवल शास्त्र हैं जो कि स्वयं परमात्मा ने रचे हैं। कुरान? यह कैसे संभव है? तुमको यह विचार ही कहाँ से हुआ कि ईश्वर को अरबी भाषा भी आती है। उसे सिर्फ संकृत ही आती है। फिर तुम कहते हो कि परमात्मा हमेशा मेरी तरफ है। यदि वह मेरी ओर नहीं होता है, तो मैं मेरा ईश्वर बदल लेता हूँ। यह सदैव मेरी सामर्थ्य में है। इस डर से वह सदा मेरी तरफ रहता है। वह मेरा परमात्मा है, उसे मेरा अनुकरण करना है।

ऐसा रुख इसलिए निर्मित होता है क्योंकि तुम्हारे लिए सारा अस्तित्व दिव्य नहीं है। यदि सारा अस्तित्व ही दिव्य है, तब फिर परमात्मा वृक्षों की भी भाषा समझता है, न केवल अरबी और संस्कृत, बल्कि पत्थरों की भाषा भी उसे आती है। और तब भाषा की कोई समस्या नहीं। तब भाषा असंगत है। अब प्रार्थना अर्थपूर्ण नहीं है, बल्कि प्रार्थनापूर्ण हृदय। और प्रार्थनापूर्ण हृदय प्रार्थना करने वाले मन से बिल्कुल भिन्न ही बात है।

यह सूत्र कहता है कि यही एक मात्र नमस्कार है प्रार्थना है-एक साथ विनम्रता है जो कि संभव है, लेकिन बड़े ही विरोधाभासी ढंग से।

मैं ही ईश्वर हूँ : इसे अनुभव करना ही नमस्कार हैं।"

हम तो कहना पसन्द करते कि तुम परमात्मा हो और तब नमस्कार करना सरल है। लेकिन यह सूत्र कहता है कि मैं ही परमात्मा हूद्द-यही एक मात्र नमस्कार करने की। नमस्कार करने की आवश्यकता क्या है। यह कोई क्रिया तो नहीं है, यह तुम्हें करना नहीं है। यदि सारा अस्तित्व ही दिव्य है, तब तुम जो भी कर रहे हो, वही नमस्कार है।

बुद्धत्व के बाद भी कबीर वही करते रहे जो कि वे करते थे। तो उनसे पूछा गया। वे एक बुनकर थे, वे कपड़ा बुनते रहे। दूर-दूर से शिष्य आते और वे उनसे कहते कि आप यह क्या करते हैं? आप बुद्धत्व को उपलब्ध हैं, अब आप स्वयं ही बुद्ध हैं। अब भी आप कपड़ा क्यों बुनते रहते हैं? कबीर कहते, यही एक मात्र प्रार्थना है जो कि मैं जानता हू। मैं एक जुलाहा हूँ इसलिए मैं यही एक ढंग जानता हूँ, उसको नमस्कार करने का। लेकिन किसी

ने कबीर से कहा कि बुद्ध जब ज्ञान को उपलब्ध हो गये, तो सब कुछ छोड़ दिया। कहते हैं कबीर ने कहा-कि वे एक राजा थे। उन्हें सिर्फ एक ही रास्ता पता था-राजा होने का। लेकिन मैं जुलाहा हूँ-एक गरीब जुलाहा, इसलिए मैं सिर्फ यही मार्ग जानता हूँ। यही मेरी प्रार्थना है। और जब मैं कपड़ा बुन रहा होता हूँ, तो मैं परमात्मा के लिए ही बुनता हूँ।

और फिर कबीर बाजार जाते उस कपड़े को बेचने के लिए। इसलिए किसी ने उनसे कहा कि लेकिन तुम तो बाजार भी जाते हो, उन्हें बेचने के लिए। तुम कहते हो कि ये कपड़े परमात्मा के लिए हैं, तो फिर मंदिर क्यों नहीं जाते और परमात्मा के चरणों में क्यों नहीं रख देते? कबीर कहते-"मैं तो प्रभु के चरणों में ही रख देता हूँ, लेकिन मेरे परमात्मा बाजार में मेरी प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। मेरा राम वहाँ मेरा इंतजार करता है। और मैं जीवित परमात्मा में विश्वास करता हूँ।"

ऐसे रुख को किसी नमस्कार की आवश्यकता नहीं है। अब यह कोई कृत्य नहीं है जो कि करना है। बल्कि यह तो जीने का ढंग है। तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारे कृत्य का एक हिस्सा हो सकती है-एक काम बहुत से कामों में। लेकिन कबीर जैसे लोगों के लिए, यह कोई काम नीं है। यह जीने का एक ढंग है। इसलिए कबीर ने कहा, जो करूँ सो पूजा। ऐसा हो सकता है, लेकिन तब पूरा अस्तित्व ही दिव्य होना चाहिए। तब जो भी तुम कर रहे हो-यदि तुम भोजन कर रहे हा, तो भी यह प्रार्थना है क्योंकि वह भी अस्तित्व को ही जाता है। तब तुम नहीं खा रहे हो, किन्तु अस्तित्व ही तुम्हारे द्वारा भोजन कर रहा है। तब जब तुम चल रहे हो, तो भी प्रार्थना है क्योंकि अस्तित्व ही तुम्हारे द्वारा चल रहा है, गति कर रहा है।

जब तुम मर रहे हो तो वह भी प्रार्थना है क्योंकि तब अस्तित्व वापस ले रहा है, जो भी दिया गया था। जो प्रकट हुआ था वह वापस अप्रकट हो रहा है। तब तुम बीच में नहीं हो। तुम हो ही नहीं, तुम तो सिर्फ द्वार हो-अस्तित्व के लिए द्वार-एक खिड़की। अस्तित्व ही तुम्हारे द्वारा चलता है, भीतर और बाहर। तुम इस "न-होने" के बीच कहीं भी नहीं आते। तब आदमी कह सकता है, "अहं ब्रह्मास्मि।" मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही वह हूँ।

यह कोई अहंकार की घोषणा करो, तो तुम्हें-पैराडोक्सीकल-विरोधाभासी होने की जरूरत नहीं है। तुम तार्किक हो सकते हो। इसे समझना पड़ेगा। केवल साधारण सत्य ही बहुत कठिन होते हैं-व्यक्त करने के लिए, क्योंकि जितने वे साधारण उतने ही द्वंद्वातीत होते हैं। और जब केन्द्र पर आते हैं तो उन्हें सब प्रकार के द्वन्द्वों को अपने में समा लेना पड़ता है।

इसे इस प्रकार देखें : उपनिषद कहते हैं, "परमात्मा सबसे निकट है और परमात्मा सबसे दूर है।" यदि तुम कहो कि वह सिर्फ निकट है तो वह झूठ हो जायेगा। यदि तुम कहो कि वह दूर है तो यह बात भी झूठ हो जायेगी, क्योंकि जो निकट है, वह दूर हो सकता है और जो दूर है, वह निकट आ सकता है। तुम यात्रा कर सकते हो-तुम कर ही रहे हो। "वह सब कुछ है"-इस साधारण से सत्य को बड़े ही विरोधाभासी ढंग से कहना पड़ता है कि वह दूर-से-दूर है और निकट से भी निकट है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, और विराट से भी विराट है। वह बीज भी है और वृक्ष भी है। वह मृत्यु भी है और जन्म भी है। क्योंकि यदि वह जीवन है, तब फिर उसे दोनों होना पड़ेगा-जन्म भी और मृत्यु भी।

इतना ही, क्योंकि नहीं कहे कि वह जीवन है? क्योंकि हमारे मन में जीवन मृत्यु के विपरीत है। इसलिए इस साधारण सत्य को, इस साधारण ढंग से नहीं कहा जा सकता। इसे विरोधाभासी ढंग से ही कहना पड़ेगा। वह जन्म भी है और मृत्यु भी। वह दोनों है। वि सिर्फ जीवन है क्योंकि वह दोनों है। वह मित्र भी है और शत्रु भी। वह दोनों है। हमें अच्छा लगता है जबकि वह सिर्फ मित्र की तरह ही हो और शत्रु की तरह न हो। लेकिन हमारी

पसंद सत्य नहीं होती। वस्तुतः जब तक हमारी पसन्द और ना-पसन्द खो नहीं जाती, तब तक हम सत्य तक नहीं पहुँच सकते। हम उस तक नहीं पहुँच सकते क्योंकि हम चुनाव करते ही जायेंगे और प्रक्षेपण करते जायेंगे।

यह कथन एक विरोधाभास है। इसका पहला हिस्सा-यह प्रतीति कि मैं ही दिव्य हूँ, मैं ही वह हूँ-यही शिखर है; और दूसरा-"ही नमस्कार है", यह घाटी है। यह शिखर व घाटी दोनों है। पहले सबसे अधिक अहंकार की घोषणा है-" मैं ही वह हूँ।" और फिर गिरना है हर चीज के चरणों तक झुक जाना है-नमस्कार है। ये दो सीमायें है, दो विपरीत ध्रुव हैं। और बहुत-सी बातें इनमें जुड़ी हैं।

यदि तुम अनुभव करो कि तुम निम्न हो और फिर तुम झुको तो वह नमस्कार नहीं है। यह सिर्फ तुम्हारी निम्नता का हिस्सा है। यदि तुम कहो कि तुम श्रेष्ठ हो, और तुम नहीं झुक सकते तो तुम वास्तव में श्रेष्ठ नहीं हो सकते। और जो झुक नहीं सकता वह मुर्दा है, वह श्रेष्ठ नहीं हो सकता। और जो झुक नहीं सकता, वह कहीं-न-कहीं अपनी श्रेष्ठता के प्रति भयभीत है। उसे डर है कि यदि मैं झुका तो मैं श्रेष्ठ नहीं रहूँगा। केवल वही जो अपने श्रेष्ठ होने के प्रति आश्वस्त है, झुक सकता है। केवल वही जो हीनता के पार चला गया है, झुक सकता है। और "मैं वही हूँ। यही सबसे ऊँचा शिखर है जो कि संभव हो सकता है और तब तुम झुकते हो, वहाँ से।

बुद्ध ने अपनी पिछली जिन्दगी के बारे में बताया है। एक जीवन में, वे कहते हैं कि मैं बिल्कुल अज्ञानी था। मुझे कुछ भी पता नहीं था। तब एक व्यक्ति, जो कि बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया था वह मेरे गाँव से गुजरा। मैं उसके चरण छूने के लिए गया। मैंने उसके चरण छूए लेकिन साथ ही मैंने देखा कि वह भी कुछ कर रहा है। वह नीचे झुक रहा था और फिर उसने मेरे पाँव छू लिए। मैं तो डर गया और बोला कि आप यह क्या कर रहे हैं। मुझे आपके चरण छूने चाहिए। यह होना चाहिए। लेकिन आप मेरे पाँव क्यों स्पर्श कर रहे हैं?

वह व्यक्ति जो कि ज्ञान को उपलब्ध हो गया था, बोला, तुम मेरे चरण छू रहे हो क्योंकि मैं बुद्धत्व हो गया हूँ। लेकिन मैं तुम्हारे पाँव इसलिए छू रहा हूँ क्योंकि तुम भी बुद्ध ही हो। गौतम बुद्ध ने अपनी पिछली जिन्दगी में तब उसे उत्तर दिया-"लेकिन मैं तो बुद्ध नहीं जानता हूँ। मैं तो कुछ भी नहीं हूँ।" उस बुद्ध व्यक्ति ने कहा कि चूँकि तुम यह नहीं जानते कि तुम क्या हो, तुम यह भी नहीं जानते कि तुम क्या हो सकते हो? तुम वर्तमान बुद्ध के आगे झुक रहे हो, लेकिन मैं भविष्य में होनेवाले बुद्ध के आगे झुक रहा हूँ। मैं प्रकट हो गया हूँ, तुम प्रकट होने को हो। केवल समय की ही बात है।

यह जो ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति का झुकना है, वही इस सूत्र का रहस्य है। वह एक शिखर था और वह एक अज्ञानी के सामने झुक रहा था। अब वह इस शिखर से दूसरे शिखर देख सकता है जो कि अज्ञान में छिपे हैं। वे उसके लिए नहीं छिपे हैं, उसके लिए तो, वे बिल्कुल साफ हैं।

तुम इस साधारण अस्तित्व के आगे झुक सकते हो लेकिन तभी जबकि तुम्हें इस बात की प्रतीति हो कि तुम वही हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब तक परमात्मा ही नहीं हो जाते, तुम नमस्कार नहीं कर सकते। जब तक परमात्मा ही नहीं हो जाते तुम विनम्र नहीं हो सकते। जब तक परमात्मा ही नहीं हो जाते, तुम निर्दोष नहीं हो सकते। वह निर्दोषिता ही इस सूत्र में अभिव्यक्त की गई है। नमस्कार हम जानते हैं, हम परमात्मा के बारे में भी जानते हैं, हम प्रणाम करना भी जानते हैं। लेकिन यह सूत्र बहुत कठिन है। इसे समझना असंभव है। यह तुम्हें परमात्मा ही बना देता है। और यह सूत्र तुम्हारे परमात्मा होने को नमस्कार की शर्त बना देता है।

हमारे लिए, हम सदा अपने से बड़े को अभिवादन करते हैं-उसे जो कि हमसे बड़ा है। लेकिन यह सूत्र तुम्हें सबसे बड़ा बना देता है और वही इसकी बुनियादी शर्त है। किसे नमस्कार करना है? तुम सबसे ऊँचे हो,

इसलिए अब जो सबसे नीचा है, उसे नमस्कार करो। नीचे की तरफ से ऊपर को नमस्कार करना-यह बिल्कुल साधारण बात है। इसमें कुछ भी नहीं है। यह तो साधारण मन काम कर रहा है। राजनीतिक मन, महत्त्वाकांक्षी मन काम कर रहा है। वह अपने से ऊँचों को नमस्कार करने का काम कर रहा है। लेकिन तुम सबसे अधिक ऊँचे हो। अब मन कहेगा कि अब तुम्हें किसी को नमस्कार करने की आवश्यकता नहीं, अब तो सारा अस्तित्व ही तुम्हें प्रणाम करे। तुम सबसे ऊपर हो। अब सारे जगत को तुम्हें प्रणाम करने को आना चाहिए अब सारे अस्तित्व को ही तुम्हारे चरणों में झुक जाना चाहिए।

अब तुम्हारी भावना ऐसी होगी। यदि जैसे तुम हो, यदि तुम इस सूत्र को वैसे ही समझो, तो यही तुम्हारी भावना होगी कि सारा जगत आये और तुम्हारे चरणों में सिर रख दे। लेकिन यह सूत्र कहता है कि यही आधारभूत शर्त है, तुम्हारे लिए परमात्मा को नमस्कार करने की।

जब कोई भी नहीं हो जिसे कि तुम प्रणाम करने के लिए कह सको, तो अहंकार मरने लगता है। जब तुम्हें हीन भावना लगती है, तो तुम चाहते हो कि कोई तुम्हें प्रणाम करे। यह भूख है-भोजन के लिए भूख। यह इस बात की खबर देता है कि अभी भी तुम मन की पहली ही सीढ़ी पर खड़े हो। और इस सीढ़ी के नीचे शून्यता है। इसलिए जो भी तुम इसमें डालते हो कि "मैं हूँ" वह गहरे नीचे खाई में गिर जाता है और "मैं" सदैव खाली का खाली ही रहता है।

एक दिन एक साधक मुल्ला नसरुद्दीन के पास आया, यह पूछने कि सत्य को कैसे खोजें। नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हें शिष्य के रूप में स्वीकार किया जाये, इसके पहले बहुत-सी शर्तें हैं। इसलिए मेरे साथ आओ, मैं कुएँ पर पानी भरने जा रहा हूँ। वह वहाँ गया। रास्ते में उसने उस होने वाले शिष्य से कहा कि कुछ भी प्रश्न मत पूछना क्योंकि मैंने तुम्हें अभी शिष्य की तरह स्वीकार नहीं किया है। जब मैं तुम्हें स्वीकार कर लूँ, तब तुम पूछ सकते हो। केवल देखना, बीच में कुछ पूछना मत। यदि घर वापस लौटने के पहले तुमने कुछ भी पूछा, तो फिर तुम्हें अयोग्य समझा जायेगा।

अतः उस भावी शिष्य नें सोया कि यह तो कोई कठिन काम नहीं है कि कुएँ पर जाना है, पानी भरता है और लौट के आ जाता है। मैं बिल्कुल चुप रहूँगा, उसने सोचा। अतः वह चुप रहा। लेकिन मुल्ला ऐसी मूढ़ता का काम कर रहा था कि चुप रहना असंभव था। उसके पास दो बाल्टियाँ थीं, एक पानी खींचने के लिए और बड़ी बाल्टी से पानी खींचता और फिर उस बिना पेंदे वाली बड़ी बाल्टी में भरता। पानी बाहर बह जाता और तब वह फिर उसे भरने लग जाता।

इसलिए इस होनेवाले शिष्य ने कहा कि यह आप क्या कर रहे हैं? मुल्ला ने कहा, तुम अयोग्य साबित हो गये। अब कोई प्रश्न नहीं, बस अब तुम जाओ। यह तुम्हारे लिए नहीं है। तुम कौन होते हो, मुझसे पूछने वाले? उस होनेवाले शिष्य ने कहा, मैं जा रहा हूँ। और मुझे चले जाने के लिए कहने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि मेरे लिए आपके पास रुकने की आवश्यकता नहीं है। मैं जा रहा हूँ, लेकिन एक सलाह आपको देना चाहता हूँ। तुम इस बाल्टी पर अपनी सारी जिन्दगी भी मेहनत करो, तो भी यह भरने वाली नहीं है।

मुल्ला ने कहा, "मेरा संबंध ऊपरी सतह से है, न कि पेंदी से। मैं सतह पर देख रहा हूँ। जब सतह ठीक है, तो मैं अपने घर वापस चला जाता हूँ यह सोचकर कि पेंदी से क्या लेना-देना। वह भावी शिष्य चला गया लेकिन रात वह सो नहीं सका। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि आखिर वह आदमी किस तरह का है। उसका रहस्य क्या है? और वह बहुत-सी बातें सोचने लगा, और धीरे-धीरे उसके समझ में आने लगी कि हो सकता है कि वह मेरी परीक्षा ले रहा था कि मैं ऐसी स्थिति में भी मौन रह सकता हूँ, जहाँ चुप रहना असंभव हो।

अतः वह सुबह दौड़ता हुआ मुल्ला नसरुद्दीन के पास गया और बोला, मुझे क्षमा कर दें, मुझसे भूल हो गई। मुझे माफ करें, मेरी गलती थी। मुझे चुप रहना चाहिए था। लेकिन उसका रहस्य क्या था?

मुल्ला ने कहा, चूँकि मैं तुम्हें अपने शिष्य की तरह स्वीकार नहीं करने वाला हूँ, इसलिए मैं तुम्हें रहस्य बता देता हूँ। रहस्य यह है कि वह बाल्टी कुछ और नहीं बल्कि मनुष्य के मन की पहली अवस्था है। तुम उसे भरते जाओ और वह कभी भी नहीं भरता। लेकिन किसी को भी पेंदे से मतलब नहीं है, सब लोग सतह से ही मतलब रखते हैं। तुम उसे ध्यान से, प्रतिष्ठा से, धन से, भरते चले जाते हो। तुम सिर्फ सतह की परवाह करते हो। एक दिन तुम्हारा अहंकार भर जाता है, लेकिन किसी को भी पेंदी से मतलब नहीं है-कि इस बाल्टी के पेंदी भी है या नहीं।

शिष्य तो रोने लगा और कहने लगा कि मुझे स्वीकार कर लें, आप ही सही आदमी हैं। मुल्ला ने कहा कि अब तो देर हो गई। यह बाल्टी मेरे लिए बड़े काम की है। जब कभी कोई आदमी मेरे पास शिष्य बनने आता है तो यह बाल्टी उसको अयोग्य साबित कर देती है। और इसने बहुतों को अयोग्य साबित कर दिया है और मुझे बहुत से श्रम से बचा दिया है। लेकिन यह बाल्टी उस आदमी को अयोग्य साबित नहीं कर सकती जो कि यह जानने आया है कि उसका मन इस बाल्टी की तरह बिना पेंदे के है। तब वह मेरा शिष्य होने के योग्य है क्योंकि सारी शिष्यता "मैं हूँ" से "मैं नहीं हूँ" की और है।

इसलिए पेंदे से खड्ड में गिर जाना मन की दूसरी पर्त पर चले जाना-एक प्रकार से शिष्य होने के लिए है। तब फिर शून्यता होती है और शून्यता के पार ही उसकी प्रतीति होती है : "अहं ब्रह्मास्मि। मैं ही वह हूँ।"

आज इतना ही।

ग्यारहवां प्रवचन

संतुलन का मध्यबिंदु

प्रश्न

1. ज्ञान और भक्ति में क्या अंतर है?

2. यदि धर्म निषेधात्मक तथा विधायक दोनों विरोधी ध्रुवों को समाविष्ट कर लेता है तो फिर रूपान्तरण का क्या अर्थ हुआ?

3. आप अंतर्राष्ट्रीय नव-संन्यास के अन्तर्गत क्या कर रहे हैं?

भगवान सोऽहं-"मैं ही वह हूँ" अथवा "अहम ब्रह्मास्मि" अर्थात "मैं ही ब्रह्म हूँ" या "अनलहक"-ये सारे कथन ज्ञानी के कथन मालूम पड़ते हैं। कल रात्रि का सूत्र कहता है, " सोऽहं-मैं ही वह हूँ-यही नमस्कार है। इसका दूसरा भाग भवन का कथन प्रतीत होता है, जबकि पहला भाग ज्ञानी का मालूम पड़ता है। ऐसा जोड़ मुश्किल से ही कभी होता है। कृपया, बतायें कि क्यों एक ज्ञानी और भक्त के कथन को साथ-साथ रखा गया है?

1. इस संदर्भ में कृपया यह भी बतलायें कि ज्ञानी व भक्त में क्या अन्तर है?

2. किस भाँति कपिल ऋषि व शंकर जैसे ज्ञानी चैतन्य व मीरा जैसे भक्तों से भिन्न हैं?

3. क्यों महान भक्तों ने अपने को भगवान से अलग रखा, जैसे मीरा ने कृष्ण से?

4. क्या ज्ञान भक्ति में परिणत होता है और भक्ति ज्ञान में?

वह जो अल्टीमेट है, आत्यंतिक है वह जो एक है, लेकिन उसे बहुत-से कोणों से देखा जा सकता है। उसे देखने के बहुत से दृष्टिकोण हो सकते हैं। वह तो एक ही है लेकिन जब उसे अभिव्यक्त किया जाता है तब उसकी अभिव्यक्ति अंतर रूप ले सकती है। वह तो एक हीहै, लेकिन जब कोई उसकी ओर जाता है तो मार्ग अलग-अलग होते हैं। और एक मार्ग से जो भी कहा जाएगा वह पूर्ण सत्य नहीं होगा, वह सत्य का सिर्फ एक पहलू ही होगा। वह पूर्ण सत्य नहीं होगा।

समग्र का अनुभव तो संभव है, लेकिन समग्र की अभिव्यक्ति संभव नहीं है। अभिव्यक्ति हमेशा ही आंशिक हैं तुमे समग्र को अनुभव कर सकते हो। लेकिन जैसे ही तुम उसे व्यक्त करने जाते हो, वैसे ही वह एक दृष्टिकोण हो जाता है, वह कभी भी समग्र नहीं होता।

ये दोनों आधारभूत मार्ग हैं, उस तक पहुँचने के-ज्ञान का मार्ग तथा प्रेम का मार्ग। मनुष्य का मन इन दो में बँटा हुआ है। ये दो उस आत्यंतिक सत्य के विभाजन नहीं हैं, ये मनुष्य के मन के दो विभाजन हैं। सत्य की ओर मन कभी ज्ञानी की भाँति भी देख सकता है और प्रेमी की तरह भी। यह उस आखिरी सत्य पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह तुम पर निर्भर करता है। यदि तुम एक प्रेमी की आँख से देखो, तो तुम्हारा अनुभव तो वही होगा जबकि तुम एक ज्ञानी की आँख से देखो, लेकिन तब तुम्हारी अभिव्यक्ति में अन्तर होगा। जब तुम प्रेम से देखोगे तब तुम्हारी अभिव्यक्तिबिल्कुल ही अलग होगी।

यह भेद क्यों है? यह इतना भेद क्यों है? क्योंकि प्रेम की अपनी भाषा है, ज्ञान की अपनी भाषा है। प्रेम की अपनी एक अलग ही भाषा है। ये भाषायें एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। उदाहरण के लिए, ज्ञान सदैव

एक के लिए कोशिश करता है, और प्रेम असंभव हैं यदि वहाँ दो नहीं हो तो। प्रेम संभव ही तब है जबकि वहाँ दो हों। लेकिन मैं शीघ्रता से यह भी जोड़ना चाहता हूँ कि प्रेम एक बहुत ही रहस्यपूर्ण अनुभव है। यह दो के बीच एकता है। दो होने ही चाहिए, लेकिन वहाँ दो हों, तो जरूरी नहीं है कि प्रेम होगा ही। जब दो आपस में एक गहरी एकात्मता अनुभव करने लगें, तब प्रेम होता है।

प्रेम में दोहरा द्वैत होता है : दो में एकता। द्वैत वहाँ होना ही चाहिए और फिर भी एक होने का अनुभव हो। और प्रेम की भाषा इस द्वैत को बनाये रखेगी? प्रेमी व प्रेमिका। ये दो ध्रुव हैं। इन दो ध्रुवों में एकता का अनुभव किया जाता है, किन्तु वह एकता इन दो ध्रुवों के बिना नहीं हो सकती।

प्रेमी कहेगा, "मैं मेरी प्रेमिका के साथ एक हो गया मेरी प्रेमिका मुझ में ही है।" लेकिन वह ज्ञान की बात नहीं कर सकता। लेकिन वह नहीं कह सकता कि द्वैत खो गया है। वह इतना ही कहेगा कि दो का होना भ्रामक है। हम दो हैं किन्तु फिर भी हम दो नहीं हैं। यह विरोधाभास कि हम दो हैं किन्तु भी दो नहीं हैं, यह विरोधाभास कि हम दो हैं फिर भी दो नहीं हैं, यह प्रेम का भाषा है। यह गणित की बात नहीं है, यह भावना की भाषा है।

तुम बिना एक हुए भी एक होने का अनुभव कर सकते हो। एक होने की कोई जरूरत भी नहीं है, वह असंगत है। तुम बिना मिले भी, बिना डूबे भी एक हो सकते हो। तुम बाहरी रूप से दो रह सकते हो और भीतर तुम एक हो सकते हो। और भक्ति का मार्ग, प्रेम का मार्ग कहता है कि एक होने का मतलब यदि दो का मिट जाना है, तो ऐसी ऐक्यता किसी काम की न होगी, वह बिल्कुल सपाट होगी। उस एक होने में कोई काव्य नहीं होगा, वह बिल्कुल रूखी होगी। वह गणित की तरह एक होना होगा। प्रेम कहता है कि एक होना एक जीवंत बात है, वह गणित की एकता नहीं है। प्रेमी और प्रेमिका दोनों होते हैं, फिर भी वे महसूस करने लगते हैं कि वे खो गये हैं। दुई रहती है लेकिन वह अधिकाधिक भ्रामक होने लगती है। एक होना ज्यादा वास्तविक मालूम पड़ता है बजाय दो होने के, किन्तु दो होना बना रहता है।

प्रेम के पथ पर चलने वाला साधक कहता है कि यही उसका सौन्दर्य है और उससे अनुभव समृद्ध होता है। और गणित की एकता का अर्थ होता है कि अनुभव समृद्ध होता ही नहीं। सीधा-सीधा कहें तो दो चीजें खो गईं और एक ही बची। इसमें कम रहस्य है। प्रेमी कहते हैं कि हम दो हैं और फिर भी हम दो नहीं हैं, और वे इस द्वैत में अद्वैत की बात करते चले जाते हैं, इस दो में एक होने की भाषा बोलते रहते हैं। एक होना बुनियादी बात है। सतह पर प्रेमिका प्रेमिका है और प्रेमी प्रेमी है और एक अन्तराल। लेकिन भीतर गहरे में यह अन्तराल विलीन हो गया है। प्रेम अस्तित्व की ओर काव्यात्मक ढंग से जाना है। और मन भिन्न-भिन्न होते हैं।

मुझे एक ब्रिटिश वैज्ञानिक की एक घटना का स्मरण आता है जो कि नोबल पुरस्कार भी प्राप्त कर चुका था। उसका नाम था डेरिक। डेरिक के एक मित्र ने जो कि एक रशियन वैज्ञानिक था, जिसका कि नाम कपिक्सज़ा था, उसे डोस्टेवस्की का एक बहुत प्रसिद्ध उपन्यास-"क्राइम एण्ड पनिशमेंट"-पढ़ने के लिए दिया। कपिक्सज़ा ने डेरिक से कहा कि इस उपन्यास कोढ़ जाओ और फिर मुझे अपने इंप्रेशन्स, अपने मनोभाव बतलाना। जब डेरिक ने वह किताब लौटाई तब उसने कहा कि यह उपन्यास अच्छा है लेकिन इसमें एक कमी है, एक गलती है कि लेखक कहता है कि दिन में दो बार सूरज उगता है। एक ही दिन में दो बार सूरज उगता है।

कहानी में डोस्टेवस्की से यह भूल हो गई कि सूरज एक ही दिन में दो बार उगता है। इसलिए डेरिक कहता है कि यही बस एक गलती है और मुझे कुछ भी नहीं कहना है। और यही एक मात्र बात वह डोस्टेवस्की के महान उपन्यास-"क्राइम एण्ड पनिशमेंन्ट" के बारे में बोला। और वह कोई साधरण आदमी नहीं है, लेकिन एक

ैानिक का रुख, एक गणितज्ञ का रुख। एक कवि का रुख नहीं है, एक कलाकार, एक प्रेमी का रुख नहीं है। यह जो रुख है बिल्कुल पक्षपात रहित है, एक णितज्ञ का ढंग है। केवल इतना ही उसके पास कहने के लिए था कि एक ही गलती है कि एक ही दिन में सूरज दो बार नहीं उग सकता। इतने बड़े सृजन में, इतनी बड़ी कलाकृति में केवल यह बात उसके ख्याल में आई।

क्यों? क्योंकि मस्तिष्क का प्रशिक्षण ही एक पक्षपातरहित ढंग से देखने का हुआ है, एक गणितज्ञ की आँख से देखने का हुआ है। इस गलती को कभी किसी ने भी नहीं खोजा था। वह पहला आदमी था। बहुतों को डोस्टेवस्की के उपन्यास में एक गहरी अंतर्दृष्टि का अनुभव हुआ था, एक गहरे मनोविज्ञान, एक महान काव्य, एक महान नाटक का दर्शन हुआ था किन्तु इस गलती को कोई भी न खोज पाया था, यह इस बात पर निर्भर करता है कि तुम जगत को किस भाँति देखते हो।

एक प्रेमी दूसरी ही आँख से देखता है। जब एक प्रेमी उस आत्यंतिक अनुभव तक आता है, वह जानता है कि अब सब कुछ हो गया है, लेकिन वह कहता है कि यदि यह एकता साधारण एकता है, खाली एकता है, तो फिर मुर्दा है। यह एक जीवन्त एकता है, यह एक जीवन्त, गत्यात्मक घटना है। यह एक एकता है, एक गति है; एक जीवन्त प्रक्रिया है, जब कोई मुर्दा एकता नहीं है।

और सत्य कोबिल्कुल विपरीत दृष्टियों से भी देखा जा सकता है। वह जो गणितज्ञ का मन है, एक द्रष्टा का मन, तटस्थ द्रष्टा (यानी एक ज्ञान की राह पर चलनेवाला) वह कहेगा कि या तो दो हैं या फिर एक ही है। दोनों असंभव हैं।

यह एक तर्कयुक्त दृष्टिकोण है। तुम कैसे कह सकते हो कि एक ही है जबकि दो भी मौजूद है? या तो दो को मिटाओ, तब एक हो सकता है, या फिर एक की बात ही मत कहो, दो की बात करो। और वह भी अपनी तरह से ठीक है। यह उसका ढंग है। वह कहता है कि यदि तुमने एकता को उपलब्ध कर लिया है, तो फिर न तो प्रेमी ही है और न प्रेमिका ही है। दोनों खो गये, अब कोई भेद नहीं है। तुम प्रेमिका की, परमात्मा की, दिव्य की बात ही नहीं कर सकते। तुम भक्त की बात ही नहीं कर सकते। वह सब बेकार है। बन्द करो इसे और अब भी तुम इसे चालू रखते हो, इस द्वैत को, तो फिर तुम अभी एक पर नहीं आये हो, क्योंकि दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

यह एक गणित की भाँति सोचने का ढंग है। लेकिन जीवन गणित नहीं है और जीवन विरोधी को भी समा लेता है, विपरीत को भी जगह दे देता है। इसलिए मैं इसे दूसरी तरह से ही समझाने की कोशिश करूँगा, वह आसान भी होगा।

इस सदी ने विज्ञान के जगत में बड़ी-से-बड़ी क्रान्ति को देखा है, और वही गणित को सिंहासन से नीचे उतार देती है। इलेक्ट्रॉन की खोज के बाद पुराने तर्क की व्यवस्था, बेकार हो गई है, कालबाह्य हो गई है।

तुमने शायद एक जर्मन विचारक इमैनुअल कांट के बारे में सुना होगा। उसके पास दो बिल्लियाँ थीं। एक बड़ी थी, एक छोटी थी। दोनों बिल्लियाँ उसके साथ सोती थीं, लेकिन एक कठिनाई थी। कभी-कभी वे समय पर नहीं आती थीं और तब कांट को बहुत परेशानी होती थी क्योंकि कांट समय का बड़ा पाबन्द था। वह घड़ी के हिसाब से चलता था। उसे बिल्लियों के लिए ठहरना पड़ता था, और तभी वह दरवाजा बन्द कर सकता था। अतः एक दिन उसने अपने नौकर को कहा कि किसी बढ़ई को बुलाकर लाये और दरवाजे में दो छोड़ कर दे-एक बड़ी बिल्ली के लिए और एक छोटी बिल्ली के लिए, तब बिल्लियाँ कभी भी आ सकती हैं और मैं मजे में सो सकता हूँ, उसने कहा।

नौकर ने उसे पागल समझा क्योंकि बिल्लियाँ एक छिद्र में से भी आ सकती हैं। दो छिद्रों की कोई भी जरूरत नहीं थी। लेकिन गणित के हिसाब से कांट की बात ठीक है। वास्तव में वह बिल्कुल बेवकूफी की बात है, लेकिन गणित से वह बिल्कुल सही है। खैर, नौकर ने सोचा एक छिद्र काफी होगा, इसलिए उसने एक छिद्र बनवा दिया। जब कांट यूनिवर्सिटी से लौटकर आया तो उसने बड़ा छेद देखा बड़ी बिल्ली के लिए, तब उसने कहा कि मेरी छोटी बिल्ली भीतर कहाँ से घुसेगी? दूसरा छिद्र कहाँ है? नौकर ने उत्तर दिया कि वह भी इसी छिद्र से प्रवेश कर सकती है, वह कोई इतनी बड़ी दार्शनिक नहीं है। बिल्लियाँ व्यावहारिक हाती हैं, वे सैद्धान्तिक नहीं होतीं। इसलिए उनके बारे में चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। लेकिन यह बात कांट के समझ में नहीं आई, अतः वह रुका। और जब उसने अपनी आँखों से दोनों बिल्लियों को एक ही छेद में से आते हुए देखा तब उसे चैन पड़ा।

हमें इस बात पर हँसी आती है, लेकिन अब ससे भी अधिक पागलपन की बात हुई है। इलेक्ट्रॉन की खोज के साथ भौतिकशास्त्र की सारी चीजें गड़बड़ हो गई हैं, क्योंक एक इलेक्ट्रॉन को यदि शीशे पर फेंका जाये, एक पर्दे पर फेंका जाये जिस पर कि दो छिद्र हों तो वह दोनों छिदों में से एक ही साथ पार निकलता है। एक इलेक्ट्रॉन को एक ही छिद्र से निकलना चाहिए। यदि तुम्हें खिड़की से बाहर फेंका जाए तो तुम दो खिड़कियों से एक साथ बाहर कैसे निकलोगे? लेकिन एक इलेक्ट्रॉन निकलता है।

जब इस बात को पहली दफे देखा गया तो इलेक्ट्रॉन बिल्कुल ही अव्यवावहारिक मालूम पड़ा। सारी बात ही जादुई लगने लगी। कैसे एक ही इलेक्ट्रॉन एक साथ दो छिद्रों में से निकल सकता है? लेकिन वह निकलता है, और इलेक्ट्रॉन कोई दार्शनिक तो होते नहीं हैं। अतः अब क्या करें और इस घटना को कैसे समझें?

विज्ञान को नई धारणा को विकसित करना पड़ा। अब वे कहते हैं कि इलेक्ट्रॉन जो है वह कण भी है और लहर भी है। वह दोनों है। इसलिए जब तुम उसे पर्दे पर फेंकते हो तो वह एक साथ दो छिद्रों से निकल जाता है क्योंकि एक लहर दो छिद्रों में से एक साथ गुजर सकती है लेकिन एक पदार्थ का कण नहीं निकल सकता। लेकिन जब तुम उसकी तरफ देखते हो, तो वह कण होता है, लेकिन वह व्यवहार लहर की तरह करता है।

अब पुराना गणित, पुरानी ज्यामिति, पुराना युक्लिड का गणित इस बात के लिए राजी नहीं होगा। क्योंकि एक कण, एक लहर नहीं कर सकते। हमें अपना गणित के हिसाब से चलो, तुम तर्क के हिसाब से चलो। भौतिकशास्त्र ने बहुत ही अजीब जगत की खोज की है जहाँ कि हमारे सब नियम गड़बड़ हो गये हैं। यदि तुम इलेक्ट्रॉन को देखो तो वह तुम्हें कण दिखलाई पड़ेगा-एक बिन्दु की तरह। यदि तुम उसका व्यवहार देखो तो वह एक लहर की तरह लगेगा-एक रेखा की भाँति।

यही बात आत्यंतिक सत्य के लिए भी है। यदि तुम उसे प्रेम की आँख से देखो तो वह एक लहर की तरह व्यवहार करता है। यदि तुम एक ज्ञाता की दृष्टि से देखो तो वह कण दिखाई पड़ता है। एक जानने वाले की आँख से वह एक दिखाई पड़ता है, और एक प्रेमी की आँख से वह दो दिखलाई पड़ता है। यह देखनेवाले पर निर्भर करता है। वह दोनों हैं, और दोनों ही नहीं है।

इसके कारण ही यदि कोई अपने ही बिन्दु पर जोर देता ही चला जाए तो फिर वह बिन्दु दूसरे की तुलना में विपरीत दिखाई पड़ेगा-क्योंकि यदि कोई कहता है कि इलेक्ट्रॉन कण है, और मैंने स्वयं देखा है, तो वह सही है इसमें कुछ भी गलत नहीं है। लेकिन तब वह दूसरे को छोड़ देता है। तब दूसरा अपने आप ही गलत हो जाता है। यदि वह कहता है कि चूँकि मैं सही हूँ, तुम गलत हो, क्योंकि मैंने इलेक्ट्रॉन को एक कण के रूप में देखा है, वह लहर नहीं हो सकता, तब तुमने बिल्कुल ही मना कर दिया। तब विरोध पैदा होगा।

लेकिन यही बात दूसरे भी कह सकते हैं जिन्होंने कि उसे लहर की भाँति बर्ताव करते देखा है, जिन्होंने कि अपनी स्वयं की आँखों से दो छिद्रों में से एक साथ निकल जाते देखा है। तब वे कहते हैं कि यह कण जरा भी नहीं है, क्योंकि एक कण लहर की तरह व्यवहार नहीं कर सकता। तब वे उस पर जोर देते चलें जाते हैं। तब फिर वे संप्रदाय निर्मित करते हैं-अलग-अलग संप्रदाय।

यह सूत्र अनूठा है, यह दोनों को समाविष्ट कर लेता है। यह कहता है कि जब तुम जानते हो कि तुम्हीं वह हो, तभी नमस्कार होता है। पहला हिस्सा ज्ञान के मार्ग का है, और दूसरा हिस्सा भक्ति के मार्ग का है, प्रेम के मार्ग का है। दूसरे शब्दों में कहना चाहिए यह सूत्र कहता है कि जब तुम यह भी जान पाते हो कि तुम दो हो। अथवा, जब तुम्हें यह पता लगता है कि तुम दो हो, तभी तुम्हें उस आंतरिक एकता का अनुभव होता है।

यह दो का भाव तथा एक का भाव तुम्हारा ही है, सत्य का नहीं। सत्य तो दोनों ही है या दोनों नहीं है। एक प्रेमी की आँख के सामने यह दो कि भाँति व्यवहार करता है, यह दो में, प्रेमी व प्रेमिका में विभाजित हो जाता है। एक जानने वाले की आँख के सामने यह एक कण की तरह व्यवहार करता है-जैसे एक हो। वास्तव में कोई विपरीतता नहीं है, बल्कि वे दोनों एक दूसरे पर हँसेंगे। ज्ञान के मार्ग के खोजी भक्ति के मार्ग पर चलने वालों के लिए सदैव ऐसा महसूस करेंगे कि जैसे वे कुछ चूक रहे हैं, कि वे उस परम को नहीं पा सकेंगे। वे सही हैं-एक तरह से, क्योंकि उनके दृष्टिकोण से ऐसा ही है।

मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ जो कि मैंने एक दिन सुनी थी। एक सुबह जरा तड़के ही हुआ। सूर्य अभी उगने को है। एक केंचुआ आधा जागा है, आधा सोया है वह विश्राम कर रहा है अपने को चारों ओर से समेटकर। फिर सूर्य उगने लगता है, कोहरा खोने लगता है और इस केंचुए को दूसरे केंचुए की उपस्थिति का पता चलना शुरू होता है। वह पत्थर के चारों ओर देखता है। दूसरी तरफ से दूसरा केंचुआ भी आ रहा है। वह उसे देखकर उसके प्रेम में पड़ जाता है जैसी कि आदमी की और केंचुए की आदत होती है कि वे पहली ही नजर में प्रेम में पड़ जाते हैं। और जब उनके प्रेमालाप की प्राथमिक बातें पूरी हो जाती हैं तो पहला केंचुआ दूसरे से कहता है, "बेबी, मैं गहरे प्रेम में डूब गया हूँ। अब मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। इसलिए मुझ से विवाह कर लो।" दूसरा अब तक चुपचाप था, वह हँसने लगा और बोला, "बेवकूफ। मैं तुम्हारा ही दूसरा छोर हूँ।"

ज्ञान के मार्ग पर, भक्त मूर्ख नज़र आते हैं। लगता है कि वे अपने ही दूसरे छोर से बातें कर रहे हैं। वे परमात्मा को, प्रेमी, प्रेमिका नाम दे रहे हैं, दिव्य कहकर पुकार रहे हैं, लेकिन वे अपने ही दूसरे छोर से बातें कर रहे हैं। जो ज्ञान के मार्ग पर चलने वाले लोग हैं, उन्हें वे मूर्ख लगते हैं। किन्तु वे अच्छे लोग हैं, क्योंकि वे अपनी मूर्खता को स्वीकार कर लेते हैं।

संत फ्रांसिस ने अपने को सदा परमात्मा कोमूर्ख कहकर पुकारा-गॉडस फूल। वह कहता कि मैं मूर्ख हूँ, लेकिन मूर्ख ही रहने दो। मैं विद्वान बनना नहीं चाहता, क्योंकि मैंने विद्वानों को देखा है। मैं भले ही पागल होऊँ लेकिन मुझे पागल ही रहने दो। यह मुझ में और परमात्मा में प्रेम काफी है।

भक्त मूर्ख हैं, लेकिन विधिपूर्वक। वे पागल हैं, लेकिन विधिवत। वे कहते हैं कि यह पागलपन ही एक मात्र बुद्धिमानी है। यदि तुम अपने को ही प्रेम नहीं कर सकते, तो फिर तुम प्रेम ही नहीं कर सकते। कोई हर्ज नहीं यदि वह दूसरा छोर ही हो, लेकिन प्रेम करना इतना अच्छा है, इतना सुन्दर है कि यदि किसी को स्वयं अपने आप को दो में भी बाँटना पड़े, प्रेम करने के लिए, तो भी बाँट देना चाहिए। इसीलिए तो भक्तों ने, प्रेमियों ने कहा कि यह संसार लीला है। राधा ही कृष्ण भी हैं-भेष बदले हुए हैं। परमात्मा स्वयं को ही प्रेम कर रहा है, कितने ही भेषों में। इसलिए भक्त इतने गंभीर नहीं हैं। वे कहते हैं कि हम मूर्ख लोग हैं, हम पागल आदमी हैं,

लेकिन हम अपने पागलपन में प्रसन्न हैं। और हमें तुम्हारा रूखा ज्ञान नहीं चाहिए। माना कि वह एकदम सही है लेकिन रूखा है, मृत है। हमारा पागलपन जीवंत है।

वे जो कि ज्ञान के मार्गी हैं, उनके लिए प्रेम को समझना कठिन है। वे कहते हैं कि यदि तुम प्रेम करते हो, तो तुम जान नहीं सकते। प्रेम से पक्ष हो जाता है। तुम अलग नहीं रह सकते। एक खोजी को, तो अलग रहना चाहिए, उसे जुड़ नहीं जाना चाहिए। उसे तो अलग, दूर रहना है। उसे तो बाहर खड़े आदमी की तरह निरीक्षण करना है, उसे स्वयं प्रक्रिया में नहीं उतर जाना चाहिए।

एक प्रेमी अलग नहीं रह सकता। तुम मजनू को लैला से अलग रहने के लिए नहीं कह सकते, वह असंभव है। वह कहेगा कि लैला ही एकमात्र सुन्दर स्त्री है-इस समय की नहीं, बल्कि सारे समय की। यह बात बिल्कुल बेकार है, लेकिन वह प्रेम में डूबा है। प्रेम इस भावना को जन्म दे रहा है। वह प्रामाणिक है। जो भी वह कह रहा है, वैसा वह अनुाव भी कर रहा है। लेकिन प्रतीति एक आसक्त आदमी की है-उसकी, जो कि जुड़ गया है। वह चाहिए नहीं है।

वह लैला की तरफ तटस्थ होकर नहीं देख सकता, इसलिए ज्ञान के पथ के अनुयायी कहेंगे कि वह कभी भी सत्य तक नहीं पहुँच सकता। वह सदैव अपनी ही भ्रान्तियों में जीयेगा। जो भी वह कह रहा है, वह उसकी वैयक्तिक प्रतीति है, यह कोई वस्तुगत सत्य नहीं है। वे कहेंगे कि भक्त अपनी-अपनी भ्रांतियों की बात करते रहते हैं। यदि तुम्हें सत्य को जानना है, तो वस्तुगत आब्जेक्टिव बनो। तब फिर प्रेम नहीं होगा। वास्तव में तो प्रेम बाधा बन जायेगा क्योंकि वह हर चीज को रंग देता है।

संस्कृत में एक शब्द है "राग" राग का अर्थ होता है, आसक्ति और राग का अर्थ होता है रंग। कोई भी राग वस्तु को रंग दे देता है। यह प्रक्षेपण है। ज्ञान का मार्ग कहता है कि बिल्कुल निरपेक्ष रूप से अलग रहो। वीतरागी बनो। कोई लगाव नहीं, कोई प्रेम नहीं, कोई भक्ति भाव नहीं। तभी केवल तुम सत्य तक पहुँच सकोगे।

यह बहस अनन्त तक चल सकती है क्योंकि हर बिन्दु पर ज्ञान के मार्गी भिन्न होंगे। और मैं कहूँगा कि वे सही हैं जहाँ तक उनका संबंध है। जो कुछ भी वे अपने बारे में कह रहे है वह सही है, लेकिन जेसे ही वे दूसरों के बारे में कहते हैं, वे वहीं गलत हो जाते हैं। जब ज्ञान मार्गी भक्तों के बारे में कुछ भी कहते हैं, तो वह गलत हो जाता है क्योंकि भक्तों का अनुभव उनका जरा भी अनुभव नहीं है। जो कुछ भी वे प्रेम के बारे में जानते हैं, वह एक बात है। और जो भी एक भक्त प्रेम के बारे में जानता है वह दूसरी ही बात है।

एक भक्त के लिए जो कि प्रेम के मार्ग पर चल रहा है, यह प्रक्षेपण नहीं है क्योंकि प्रेमी कहता है कि मैं तो अब हूँ ही नहीं, इसलिए अब प्रक्षेपण भी कौन करे? मेरी कुछ अपेक्षा नहीं है, कोई मांग नहीं है, कोई अच्छा भी नहीं है। तो फिर बिना किसी इच्छा के कोई प्रक्षेपण भी कैसे करेगा? जब कोई आकांक्षा नहीं, कोई अपेक्षा नहीं है, तो कैसा प्रक्षेपण? भक्त कहता है कि मैंने अपने को मिटा ही दिया है ताकि परमात्मा के लिए जगह हो जाये और वह मेरे भीतर उतर सके, और अब परमात्मा उतर गया है।

यह प्रेम, यह एक होना कोई प्रक्षेपण नहीं है, क्योंकि प्रक्षेपण सदा इच्छाओं से होता है। अतः यदि तुम कुछ इस एकता से चाह रहे हो, तो वह प्रक्षेपण नहीं हो सकता। इसलिए भक्तों ने कहा है कि हमें तुम्हारा मोक्ष नहीं चाहिए, हमें तुम्हारे वैकुण्ठ की, स्वर्ग की भी अपेक्षा नहीं है, हमें कोई पुण्य मिल जाये, यह भी हम नहीं चाहते, हम तो सिर्फ तुम्हें ही चाहते हैं।

भक्तों का कहना है कि जो लोग ज्ञान के मार्ग पर चल रहे हैं उन्हें मोक्ष चाहिए। उन्हें मोक्ष मुक्ति चाहिए, उन्हें स्वर्ग की कामना है। वे शुद्धता चाहते हैं। उन्हें मुक्ति की इच्छा है। उनका प्रयत्न महत्वाकांक्षी है। भक्त कहते

हैं कि यदि वैकुण्ठ वहाँ है, स्वर्ग वहाँ है और तुम्हारे चरण यहाँ हैं तो फिर हम तुम्हारे चरण ही चुनते हैं। उन्होंने कभी मोक्ष, मुक्ति, स्वर्ग नहीं चाहा। वे कुछ भी नहीं मांगते। एक भक्त ने गीत गाया है कि मुझे वृन्दावन में कुत्ता ही हो जाने दो, मुझे वृन्दावन में सिर्फ वहाँ की धूल ही हो जाने दो, इतना काफी है और मैं तुम्हारे चरणों के लिए अनन्त तक प्रतीक्षा करूँगा। मुझे कुछ और नहीं चाहिए।

वस्तुतः गहराई में भक्त हमें ज्ञानी से कम महत्वाकांक्षी दिखलाई पड़ते हैं, लेकिन वे दोनों एक दूसरे को नहीं समझ सकते, वह कठिन है। तुम उन्हें नहीं समझा सकते, वह कठिन है। तुम उन्हें नहीं समझा सकते। उनमें बातचीत असंभव है, क्योंकि वे अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं। उनके क्षेत्र भी अलग-अलग हैं। वे अपने शब्दों को भिन्न ही अर्थ देते हैं। भक्त कहते हैं कि प्रेम ही एकमात्र मुक्ति है-एकमात्र मुक्ति। जो लोग ज्ञान के मार्ग पर हैं उनके लिए ज्ञान ही मुक्ति है, न कि प्रेम। प्रेम बन्धन है। जिस क्षण भी तुम प्रेम में होते हो, तुम बन्धन में होते हो। और भक्त कहते हैं कि प्रेम मुक्ति है, और यदि तुम्हें प्रेम बंधन लगता है तो फिर तुमने प्रेम जाना ही नहीं। वे भिन्न भाषाएँ बोल रहे हैं, उनका मिलना नहीं हो सकता।

केवल कभी-कभी, बहुत कम, कभी ऐसी घटना घटती है कि कोई आदमी दोनों होता है। यह एक बहुत कम घटित होने वाली घटना है। शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीत जाती हैं कि कोई दोनों हो पाता है। लेकिन तब उसकी भाषा तुम्हारे लिए समझना और भी कठिन हो जाती है। इसे ऐसे देखें- एक भक्त एक ज्ञानी की बात नहीं समझ पाता है, एक ज्ञानी एक भक्त की बात नहीं समझ पाता है। लेकिन कोई व्यक्ति दोनों हैं तो लोग उसकी बात नहीं समझ पायेंगे। अपने आप में हर एक ही भाषा कठिन है। और जब दोनों भाषाएँ एक होती हैं, तो उसे समझना असंभव हो जाता है। ऐसा आदमी भक्तऔर ज्ञानी दोनों की बात समझ सकता है, लेकिन जन-समूह उसे बिल्कुल नहीं समझ सकता क्योंकि वह सदा अपना ही विरोध करता हुआ मिलेगा।

जब कभी वह ज्ञान के मार्ग की बात करेगा तो यह एक बात कहेगा और जब कभी वह प्रेम की भाषा बोलेगा; तो वह विरोधाभासी, एकदम विरोधाभासी भाषा बोलेगा। वह अपने ही विरोध में बोलता चला जाएगा और तुम सिर्फ उलझन में पड़ोगे। इसका मतलब क्या है? यह बहुत कम होता है, लेकिन जब कभी भी होता है तो ऐसी आदमी बिल्कुल समझ में नहीं आता।

यह उपनिषद ऐसे व्यक्ति का है जो कि दोनों है। तुमने कदाचित ध्यान नहीं दिया, इस उपनिषद का नाम ही है- आत्म पूजा। यह बड़ी फिजूल बात है। यह शीर्षक ही अर्थहीन है, विरोधाभासी है। तुम्हारी अपनी पूजा? पूजा तो सदैव किसी और की होती है, लेकिन यहाँ तुम ही पूजा करने वाले हो और तुम्हींपरमात्मा भी हो। पूजा का सारा अर्थ ही खो गया, और यह व्यक्ति लगातार विरोधाभासी भाषा बोल रहा है। हर एक वाक्य भक्त और ज्ञानी दोनों के लिए है। वह भक्त के प्रतीकों का उपयोग करता है और फिर ज्ञानी के अर्थ देने लगता है, न कि प्रेमी के। लगातार सारा उपनिषद यही कर रहा है। प्रतीक भक्तों के हैं-पूजा के, किन्तु जो अर्थ दिये हैं वे ज्ञानियों के हैं।

यह प्रतीति कि मैं हीवह हूँ-"सोऽहं"-यही नमस्कार है।

इस सूत्र में भी यही बात है। यदि तुम जान गये कि तुम्हीं वह हो, तो वही पूजा है, नमस्कार है। इस असंगतिपूर्ण "संगति के रुख के कारण ही यहऋषि लगातार अपने ही विरोध में कहता जाता है और दोहरी भाषा का उपयोग करता है। यह दो भिन्न क्षेत्रों को मिश्रित कर रहा है। इस उपनिषद है और एक बहुत ही सुन्दर भी।

इसकी व्याख्या करना बहुत कठिन है, क्योंकि व्याख्याकार भी दो तरह के हैं। वे जो कि ज्ञान के मार्गी है, उनके लिए सारी भाषा ही दूसरे मार्ग की है। और प्रेम के मार्ग पर चलने वालों के लिए, सारे अर्थ पहले मार्ग वालों के लिए हैं। तो यह आत्म पूजा उपनिषद ऋषि सचमुच किसी मार्ग का नहीं है। और इसीलिए, यह उपनिषद उपेक्षित रहा। कभी इस पर किसी ने नहीं बोला।

इसलिए पहली बात यह है कि ये दो भाषाएँ हैं। प्रेम की अपनी भाषा होती है, ज्ञान की अपनी भाषा होती है। और वे दोनों ऊपर सतह पर नहीं मिल सकतीं। वे केवल व्यक्ति में मिल सकती हैं, न कि बातचीत में। कोई व्यक्ति इस अवस्था को उपलब्ध हो सकता है। लेकिन यह बहुत कम होता है। और बहुत कम क्यों? क्योंकि जब तुम एक मार्ग से चलकर मंजिल पर आ गये, तो फिर दूसरे मार्गों की फिक्र क्यों करना? कोई जरूरत नहीं है। तुम एक मार्ग से मंजिल पर पहुँच गये।

रामकृष्ण ने इसकी कोशिश की। वही एक व्यक्ति था जिसने कि इस युग में इस पर प्रयोग किया। वे चेतना की एक अवस्था तक पहुँच जाते और फिर उसे छोड़ देते और फिर दूसरे मार्ग से चलना शुरू करते, और फिर तीसरे मार्ग से। और वे तब रुके जबकि उन्होंने पाया कि वे कई मार्गों से उसी अवस्था में पहुँच सकते हैं। उन्होंने सूफियों का मार्ग अपनाया, उन्होंने बौद्धों की ध्यान की पद्धति अपनाई, उन्होंने हिन्दू विधियों का अनुसरण किया। गहरे में वे एक भक्त थे। बुनियादी रूप से वे प्रेम के मार्ग पर चलने वाले थे। किन्तु उन्होंने वेदान्त पर प्रयोग किया-ज्ञान का मार्ग। यह बहुत कठिन था, क्योंकि यह कोईआसान मामला नहीं था कि प्रेम के मार्ग से ज्ञान के मार्ग पर चले जाएं। तब सब कुछ विरोधी हो जाता है।

वे तोतापुरी से सीख रहे थे जो कि अपने समय का एक बड़ा भारी वेदान्ती था। और तोतापुरी निरपेक्ष रूप से वेदान्ती था-ज्ञान के मार्ग का अनुसरण करनेवाला। अतः वह रामकृष्ण पर हँसता और कहता कि तुम मूर्ख हो। यह रो-रोकर तुम क्या कर रहे हो? रो रहे हो, चिल्ला रहे हो, नाच रहे हो, प्रार्थना कर रहे हो। वहाँ कोई भी नहीं है। किससे प्रार्थना कर रहे हो? फिर रामकृष्ण उसके शिष्य हो गये। और यह एक कभी-कभार घटने वाली घटना है क्योंकि रामकृष्ण ने वह सब पा लिया था जो कि तोतापुरी ने उपलब्ध किया था। यह उनकी विनम्रता थी। वे तोतापुरी के शिष्य हो गये। उन्होंने कहा कि मुझे बताओ, अब तुम्हारे मार्ग से चलूंगा।

तोतापुरी उनका गुरु हो गया और वह एक बड़ा कठोर गुरु था-एक बड़ा मास्टर था। और वह रामकृष्ण को भी उसी तरह सिखाता था जैसे ि कवह दूसरों को अ, ब, स से सिखाता था। अतः रामकृष्ण बुरी तरह रोने लगते। फिर तोतापुरी कहता कि इस बचपने से काम नहीं चलेगा।

एक दिन रामकृष्ण ने कहा कि यह तो कठिन है, यह असंभव है। जब भी मैं आँख बन्द करता हूँ, काली की प्रतिमा होती है। और मैं उसके चरणों में झुका हूँ, और तुम कहते हो, इसे फेंक दो, काट दो, नष्ट कर दो। मैं ऐसा कैसे करूँ? मैं देवी की प्रतिमा को कैसे नष्ट करूँ? और फिर यह इतनी सुन्दर है और इसका अनुभव भी इतना प्यार है। और मैं ऐसी सुख मनःस्थिति में होता हूँ कि मैं इस जगत में होता ही नहीं।

तोतापुरी ने कहा कि यह सब भ्रम है, तुम्हारे मन का प्रक्षेपण है। अपने हाथ में एक तलवार उठाओ और प्रतिमा के दो टुकड़े कर दो। मार डालो। रामकृष्ण ने कहा कि लेकिन तलवार कहाँ से लाऊँ? तोतापुरी ने कहा कि वही से जहाँ से कि यह प्रतिमा लाये हो-अपने भीतर से, कल्पना से, जहाँ से तुम इसे नष्ट नहीं करते हो, तो फिर मैं चलता हूँ। और तुमने शपथ ली है कि जो मैं कहूँगा करोगे और मेरे पीछे चलोगे। इसलिए जो कहा गया है, वह करो। वरना मैं इसी क्षण विदा होता हूँ।

अतः रामकृष्ण ने आँखें बंद कीं। वे रो रहे थे, उनकी आँखों में से आँसू बह रहे थे। और तोतापुरी ने हँसते हुए कहा कि क्या मूर्खता है। क्यों रो रहे हो? कोई भी सत्य तक रोते हुए नहीं पहँच सकता है। पुरुष बनो और देवी को समाप्त कर दो। और त बवह एक कांच का टुकड़ा उठा लाया और रामकृष्ण के ललाट पर उससे काट दिया है, उसी तरह तुम भी भीतर काट डालो।

और रामकृष्ण ने प्रतिमा काट डाली। यह अति कठिन काम था। किसी भी भक्त ने कभी नहीं किया। यह पहली दफा किया गया। लेकिन कोई भी भक्त इस मार्ग पर नहीं चलेगा। इसकी कोई जरूरत भी नहीं है।

और तब रामकृष्ण ने कहा कि आखिरी बाधा गिर गई। वह ज्ञान के मार्ग पर आखिरी बाधा थी, इसलिए तोतापुरी प्रसन्न था, आनंदित था। उसने कहा कि अब तुमने पा लिया। अब तुम मोक्ष को प्राप्त हुए।

और दूसरे दिन रामकृष्ण काली के मंदिर में थे और रो रहे थे। और उन्होंने स्वयं कहा था कि आखिरी बाधा गिर गई। और तब तोतापुरी उन्हें छोड़कर चले गये। उन्होंने कहा कि तुम लाइलाज हो।

लेकिन यह कोई मामला चिकित्सा का नहीं है। वे सिर्फ उसी बिन्दु को कई मार्गों से पहुँचने की कोशिश कर रहे थे। वे छः माह के लिए मुसलमान हो गये। तब वे काली के मंदिर में भी प्रवेश नहीं करते थे, क्योंकि एक मुसलमान काली के मंदिर में कैसे घुस सकता था? इसलिए वे बाहर तक जाते और अपनी देवी के बारे में पूछताछ कर लेते और तब वापस चले जाते। वे मस्जिद में ही सोते और छः माह तक सूफी ढंग से साधना करते। उस समय के लिए वे मुसलमान थे। फिर एक दिन वे वापस हँसते हुए लौट आये और बोले कि मैं अब वापस आ गया हूँ। माँ, मैं वापस आ गया हूँ। मैं वहाँ मुसलमान विधि से भी पहुँच गया हूँ।

कभी-कभी ही ऐसा किया गया है। यह उपनिषद ऐसे आदमी का है जो कि दोनों रास्ते जानता था और गहराई से जानता था, इसलिए वह एक से दूसरे मार्ग की भाषा बदलता जाता है। और वे दोनों भाषाएँ विरोधी हैं। यदि तुम इस बात को समझ लो, तो फिर कोई उलझन नहीं होगी।

भगवान, आपने कहा कि जीवन विपरीत ध्रुवों में जीता है-जन्म और मृत्यु, शुभ और अशुभ, शान्ति और हिंसा, दया और निर्दयता, सुन्दरता और कुरूपता।

ऐसा लगता है कि ये विपरीत ध्रुव अपरिहार्य हैं, और होंगे ही। तब हम धर्म के द्वारा किस बात के लिए प्रयत्न कर रहे हैं? तब फिर आध्यात्मिक रूपान्तरण का क्या अर्थ होता है?

संत और पैगंबर एक आध्यात्मिक समाज व संस्कृति को निर्मित करने को बदलना चाहते हैं? और यदि हम एक स्वस्थ आध्यात्मिक समाज निर्माण करने में सफल हो जायें, तो दूसरी विरोधी ध्रुव की बातों का-जैसे निर्दयता, हिंसा तथा कुरूपता का क्या होगा?

यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण समस्या है और इसके बारे में बहुत गलत फहमी पैदा हुई है। इसलिए पहले तो इसे ठीक से समझ लो कि धर्म कोई नीतिशास्त्र, कोई नैतिकता नहीं है। नैतिकता उन सब के विरुद्ध काम करती रहती है जो कि अशुभ है, बुरा है, अनैतिक है, पाप है। इसलिए नैतिकता एक लड़ाई है, एक संघर्ष है, बुराई के खिलाफ। नैतिकता एक नैतिक संसार बनाने का प्रयत्न् कर रही है, जहाँ कि कोई अनैतिकता नहीं होनी चाहिए। यह असंभव है। केवल तुम बदल सकते हो, लेकिन सन्तुलन वही रहता है।

यह प्रकृति का एक गहनतम नियम है किवह दो विपरीत ध्रुवों में जीती है। यदि तुम एक को नष्ट करो, तो दूसरा भी नष्ट हो जाएगा। जिस संसार में कुछ भी अशुभ नहीं है, वहाँ कुछ भी शुभ भी नहीं होगा। जहाँ कोई पापी नहीं होगा, वहाँ कोई संत भी नहीं होगा। वे एक दूसरे पर भी निर्भर हैं। इसलिए नैतिकता से ऐसा संसार

निर्मित नहीं हो सकता, जहाँ केवल शुभ ही हो। यह एक कभी पूरी नहीं होनेवाली आशा है। और यह कभी भी पूरी नहीं होगी। ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि इसका अर्थ बुनियादी नियम को ही अस्वीकार करना होगा।

अभी भौतिकशास्त्री कहते हैं कि पदार्थ है ही इसलिए क्योंकि कुछ है जो कि पदार्थ के विपरीत है, ऐण्टी-मैटर है। एक ऐण्टी-मैटर का समानान्तर जगत मौजूद है। प्रकृति एक सन्तुलन है, तुम उस सन्तुलन को नष्ट नहीं कर सकते। यदि तुम एक ही ध्रुव की बात पर जोर देते चले जाओ, तो दो बातें संभव होंगी- या तो तुम उसे और भी मजबूत कर दोगे, और तब दूसरा ध्रुवीय तत्व भी उतना ही मजबूत हो जायेगा। या तुम दूसरे को नष्ट कर दोगे। तब जिसे तुम मजबूत करने का प्रयत्न कर रहे हो, वह भी नष्ट हो जायेगा।

जीवन एक प्रकार का सन्तुलन है, इसलिए नैतिकता एक व्यर्थ प्रयास है। जब मैं ऐसा कहता हूँ तो मेरा मतलब यह नहीं है कि नैतिक न होओ, क्योंकि तब फिर तुम सन्तुलन बिगाड़ दोगे। इसलिए वही होओ जो कि तुम हो सकते हो।

धर्म बिल्कुल दूसरे ही जगत की बात है। धर्म कोई अशुभ के खिलाफ शुभ जगत निर्मित नहीं करता। धर्म तो एक संतुलित जगत निर्मित करने के पीछे है, न कि किसी चीज़ के खिलाफ। जहां कि शुभ और अशुभ दोनों ही सन्तुलित हो जाते हैं, वे दोनों एक-दूसरे को काट देत हैं। और जब कोई व्यक्ति न तो साधु होता है और न असाधु, तब वह संत होता है। यह एक सन्तुलन व्यक्ति है-न तो साधु है और न असाधु। बस एग कहरा सन्तुलन है, एक आंतरिक सन्तुलन है दोनों विपरीत ध्रुवों-विरोधी की शक्तियों में।

जब दोनों ध्रुव सन्तुलित हो जाते हैं, तो तुम दोनों के पार हो जाते हो। इसे इस तरह देखो : कभी-कभी तुम्हें प्रतीत होता है कि तुम स्वस्थ हो। यह असन्तुलन है। कभी-कभी तुम्हें लगता है कि तुम अस्वस्थ हो। यह भी असन्तुलन है। कभी-कभी तुम्हें न तो स्वस्थता का बोध होता है, और न ही अस्वास्थ्य का, यही सन्तुलन है, एक आंतरिक सन्तुलन है दोनों विपरीत ध्रुवों-विरोधी की शक्तियों में।

जब दोनों ध्रुव सन्तुलित हो जाते हैं, तो तुम दोनों के पार हो जाते हो। इसे इस तरह देखो : ध्रुव सन्तुलित हो जाते हैं, तो तुम दोनों के पार हो जाते हो। इसे इस तरह देखो : कभी-कभी तुम्हें प्रतीत होता है कि तुम स्वस्थ हो। यह असन्तुलन है। कभी-कभी तुम्हें लगता है कि तुम अस्वस्थ हो। यह भी असन्तुलन है। कभी-कभी तुम्हें न तो स्वस्थता का बोध होता है, और न ही अस्वास्थ्य का, यही सन्तुलन है।

यह महसूस करना कि तुम स्वस्थ हो, इसका अर्थ होगा कि तुम दूसरे छोर पर पहुँच गये। अब तुम रुग्ण होओगे। इसे याद रखो, जब भी तुम्हें मालूम पड़े कि तुम स्वस्थ हो, तो तुम किनारे पर ही हो, अब तुम बीमार पड़ोगे। ऐसा रोज़ होता है, लेकिन तुम्हें इसका बोध नहीं है। जब कभी तुम्हें लगता है कि मैं प्रसन्न हूँ, प्रसन्नता खो जाती है। जब भी तुम्हें किसी चीज की प्रतीति होती है, तो इसका अर्थ होता है कि तुम दूर चले गये। अब लौट आओ। सन्तुलन वापस पाना है, और उस सन्तुलन को पाने के लिए तुम्हें उसके विरोधी छोर पर लौटना पड़ेगा।

यह ऐसा ही है जैसे कि सरकस में एक आदमी रस्से पर चलता है, वह लगातार बायें से दायें और दायें से बायें डोलता रहता है। लेकिन क्या कभी तुमने ध्यान दिया कि जब भी वह एक तरफ ज्यादा झुक जाता है तो उसे फौरन दूसरी तरफ लौटना पड़ता है, सन्तुलन बनाने के लिए। ज बवह देखता है कि बायें अधिक चला गया है और अब वह गिरेगा तो इसे सन्तुलित करने के लिए उसे दायें जाना पड़ेगा।

हम सब उस रस्सी पर चलने वाले आदमी की तरह हैं-लगातार शुभ से अशुभ, अशुभ से शुभ, स्वस्थ से अस्वस्थ और अस्वस्थ से स्वस्थ की ओर जाते रहते हैं। बुद्ध पुरुष वह है जो कि रस्से से नीचे उतर गया है। अब उसे बायें या दायें नहीं जाना है। वह दोनों के पार चला गया है।

धर्म अतिक्रमण है।

बुद्ध पुरुष जानता है कि अशुभ को नहीं मिटाया जा सकता क्योंकि वह सन्तुलन का एक हिस्सा है। शुभ अकेला नहीं हो सकता। दोनों आवश्यक हैं। इन्हीं दोनों विपरीत ध्रुवों के बीच अस्तित्व खड़ा है। इसे देखकर इसको जानकर वह जो कि ज्ञानी है, वह सिर्फ अपने को सन्तुलित करता है-दोनों के बीच। काई चुनाव नहीं है। उसने अशुभ के विरुद्ध शुभ को नहीं चुना है। यदि तुमने शुभ को अशुभ के खिलाफ चुना है, तो आगे-पीछे तुम्हें अशुभ कोशुभ के खिलाफ चुनना पड़ेगा। क्योंकि तुम एक दिशा में आगे बढ़ गये, तो तुम्हें दूसरी दिशा में भी आगे बढ़ना पड़ेगा।

इसलिए संत पाप की ओर बढ़ते रहते हैं और पापी संतत्व की ओर बढ़ते रहते हैं। संतों के भी अपने पाप के क्षण होते हैं, और पापियों के भी अपने संतत्व के क्षण होते हैं। हर एक में संत व पापी दोनों की संभावना बनी हुई होती है। और जब कभी भी पाप ज्यादा बढ़ जाता है तो पापी उसको सन्तुलित कर लेता है। इसलिए जो जानते हैं, वे कहते हैं कि तुम चौबीस घंटे संत नहीं रह सकते। तुम नहीं रह सकते। यह बहुत ज्यादा है। यह उबा देगा और बोझ हो जाएगा, इसलिए इससे भी भागना पड़ता है। इसलिए संतों को भी अपनी तरकीबें होती हैं कि इससे कैसे बचा जाए।

तुम सारे समय पापी भी नहीं रह सकते। यह कठिन है, असंभव है। तुम नीचे गिर जाओगे। तुम मर ही जाओगे। तुम्हें वहाँ से हटना ही पड़ेगा। इसलिए कभी-कभी ऐसा होता है कि तुम पापियों को ऐसे साधु कर्म करते हुए पाओगे जैसे कि संत भी नहीं कर सकते। कभी-कभी पापी इतने संतों की तरह होते हैं कि विश्वास नहीं होता। लेकिन वे सब सन्तुलन करते हैं।

धर्म का शुभ और अशुभ से कोई संबंध नहीं है। किसी चुनाव से कुछ संबंध नहीं है। धर्म तो एक चुनावरहित अतिक्रमण है। अस्तित्व की इस विरोधता को जानते हुए, ज्ञानी, वह जो कि इस विरोध को जानता है वह चुनना ही छोड़ देता है। तब फिर वह न तो दायें जाता है, और न बायें जाता है। वह बीच में रहता है। बुद्ध ने इसे "मज्झिम निकाय" कहा है-मध्य मार्ग। बुद्ध कहते है हैं कि मैं चुनाव नहीं करूँगा। मैं बीच में रहूँगा-बिल्कुल ठीक बीच में।

जब तुम चुनाव नहीं करते, तो तुम बीच में होते हो और तब तुम अतिक्रमण कर जाते हो। यह संभव है। ऐसा हो सकता है, या नहीं भी हो सकता है, किन्तु यह संभव है। एक ऐसा जगत संभव है जहाँ कि हम इस लगातार दायें से बायें चुनने के चक्कर से अतिक्रमण कर जायें। पाप और संतत्व शुभ और अशुभ, अच्छाई और बुराई में डोलते रहने का अतिक्रमण कर जायें-जिसमें कि यह सारा संसार सन्तुलित है। वही एक धार्मिक जगत होगा। वह नैतिक नहीं होगा, वह अनैतिक भी नहीं होगा। वह सिर्फ धार्मिक होगा। इसलिए यह धर्म कोई नैतिकता नहीं है। नैतिकता चुनाव है, किसी चीज के खिलाफ और किसी चीज के पक्ष में।

मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ। एक बार मुल्ला नसरुद्दीन एक बहुत बड़े विद्वान को सुन रहा था। वह विद्वान एक बहुत बड़ा धार्मिक आदमी था। बड़ा धर्मगुरु भी था। अतः जब प्रवचन पूरा हो गया तो उस धर्मगुरु ने जो लोग वहाँ मौजूद थे, उन सबसे पूछा कि तुममें से स्वर्ग कौन जाना चाहता है? जो स्वर्ग जाना चाहते हैं, वे

अपना हाथ खड़ा करें। सबने अपने-अपने हाथ खड़े कर दिये, मुल्ला नसरुद्दीन को छोड़कर और वह सामने की ही कतार में बैठा था।

ऐसा पहली बार ही हुआ था। उस धर्मगुरु ने यह सवाल बहुत से गाँवों में पूछा था और कभी ऐसा नहीं हुआ था कि जो सामने ही बैठा हो, उसने हाथ नहीं उठाया हो-स्वर्ग में जाने के लिए। इसलिए पहली बार उसे दूसरा सवाल पूछना पड़ा। उसने वह सवाल पहले कभी नहीं पूछा था। उसने पूछा कि नर्क में कौन जाना चाहता है? जो नर्क जाना चाहते हैं अब वे अपना हाथ उठायें। किसी ने भी हाथ नहीं उठाया। मुल्ला नसरुद्दीन ने भी नहीं उठाया। तब उस विद्वान ने पूछा कि तुम मेरी बात सुनते भी हो? क्या तुम बहरे हो? कहाँ जाना चाहते हो तुम? मैंने स्वर्ग के लिए पूछा, तुम चुप रहे, मैंने नर्क के लिए पूछा और तुम तब भी चुप रहे। आखिर तुम जाना कहाँ चाहते हो?

मुल्ला ने जवाब दिया कि बस दोनों के बीच में। मैं कहीं भी नहीं जाना चाहता क्योंकि मैं जानता हूँ उनको जो कि स्वर्ग जाते हैं और नर्क में गिर जाते हैं। मैं नर्क भी नहीं चुनता क्योंकि नर्क से तुम फिर कहाँ जा सकते हो? तुम सिर्फ स्वर्ग ही जा सकते हो। इसलिए संभव हो, तो कृपया मुझे दोनों के बीच में ही रहने दें। तभी मैं शान्ति से रह सकूँगा। अन्यथा तो असंभव है। स्वर्ग में नर्क आकर्षक हो जाता है। नर्क में स्वर्ग का आकर्षण खींचता है। इसलिए यदि संभव हो तो मुझे दोनों के बीच में रहने दें।

अचुनाव का यह ढंग है। धर्म अचुनाव है, चुनाव रहितता है। लेकिन हम चाहें तो नैतिकता की भाषामें सोचते रह सकते हैं। और उसे धर्म समझने की भूल कर सकते हैं। नैतिकता रोजमर्रा की बात है। और नैतिकता से तुम नैतिक जगत नहीं बना पाये। वस्तुतः आदमी जितना अधिक नैतिकता के प्रतिजागरूक होता है उतनी ही अनैतिकता बढ़ती चली जाती है। असल में मामला यह है कि तुम नैतिकता के प्रति अत्यधिक सजग हो गये हो। संसार अनैतिक नहीं हुआ है, आदमी नैतिकता के प्रति अधिक सजग हो गया है। इसलिए संसार इतना अनैतिक दिखलाई पड़ता है। यह एक सन्तुलन है।

अभी हम युद्ध की सब जगह निंदा कर रहे हैं। अब युद्ध समग्ररूप से अनैतिक बात है। क्या तुम्हें पता है कि इतिहास में पहले हमने युद्ध को इतनी निंदा कभी नहीं की? हमने युद्ध लड़े हैं, लेकिन हमने उनकी कभी निंदा नहीं की। पहली बार हमने युद्ध की इतनी निंदा की है और और हम एटम बम बना रहे हैं। ये दोनों बातें सन्तुलित कर रही हैं। जितना युद्ध अधिक संघातक हो जायेगा, उतने ही अधिक हम युद्ध के विरुद्ध हो जायेंगे। और जितने हम विरुद्ध हो जायेंगे, उतने ही अधिक युद्ध संघातक हो जायेंगे

इसलिए जिस बात को तुम जितना मना करते हो, उतना ही तुम उसे निर्मित भी करते हो। दुनिया इतनी गरीब कभी भी न थी। और हम एटम बम बना रहे हैं। ये दोनों बातें सन्तुलित कर रही हैं। जितना युद्ध अधिक संघातक हो जायेगा, उतने ही अधिक हम युद्ध संघातक हो जायेंगे।

इसलिए जिस बात को तुम जितना मना करते हो, उतना ही तुम उसे निर्मित भी करते हो। दुनिया इतनी गरीब कभी भी न थी। और जब मैं यह बात कहता हूँ तो मेरा मतलब है कि दुनिया अपनी गरीबी के प्रति इतनी सजग कभी भी नहीं थी। दुनिया सदा से गरीब थी, आज से भी ज्यादा गरीब। दुनिया हमेशा ही इससे भी ज्यादा गरीब थी। जितने पीछे हम जाएँ उतनी ही गरीब दुनिया हमें मिलेगी। लेकिन गरीबी स्वीकृत थी, और धनवान होना अनैतिक नहीं था। अब धनवान होना अनैतिक हो गया है। धनवान आदमी अपने को अपराधी समझता है। और तुम्हारे पास में जो गरीब रहता है, वह तुम्हारा पाप है। पहली बार हम इतने अधिक नैतिकवादी हुए है कि धनी होना भी अपराध है और चारों और जो गरीबी है, वह धनिकों के द्वारा किया गया पाप है।

यह एक बात है : बहुत अधिक सजगता, बहुत अधिक इसका बोध, बहुत अधिक नैतिकता। और साथ ही, जो गरीब थे, वे और भी गरीब हो गये हैं। आर्थिक दृष्टि से वे नहीं हुए, लेकिन अब गरीबी उनकी छाती पर बोझ जैसी लगती है। अतः जो भी हम करें, वह दो दिशाओं में चला जाता है। वह दोनों तरफ एक साथ बराबर चढ़ जाता है, और उसके कारण हमेशा एक सन्तुलन निर्धारित हो जाता है।

धर्म कोई समृद्ध जगत के लिये नहीं है। क्योंकि समृद्ध जगत गरीबी-गहन गरीबी के बिना हो नहीं सकता। सभी आयामों में तुम परिस्थिति बदल सकते हो, नये नाम दे सकते हो, और तब वही बात नया मुखौटा पहने फिर खड़ी हो जाएगी। धर्म तो एक सन्तुलित जगत के लिए है-न अमीर, न गरीब। इसे समझने की कोशिश करें : न अमीर, न गरीब, बल्कि एक सन्तुलित संसार जहाँ कि कोई भी गरीबी के प्रति सजग नहीं है; और न कोई धन के प्रति सजग है। इसलिए एक धार्मिक जगत, एक बहुत ही गहन घटना है। यह एक असंभव क्रान्ति जैसी प्रतीत होती है। ये ध्रुवीय-विपरीततायेंह ैं और वे सदैव होंगी। तुम केवल इतना ही कर सकते हो कि तुम इनका अतिक्रमण कर जाओ।

उदाहरण के लिए, हम इसको एक दूसरी दिशा से देखें। आदमी सदा से मृत्यु से लड़ रहा है। मनुष्य का सारा इतिहास कुछ नहीं है, बल्कि मृत्यु के विरुद्ध युद्ध है। वैद्यक का इतिहास, मानव-मन का इतिहास, मृत्यु के खिलाफ लड़ाई है। अभी मने जीवन को लम्बा कर दिया है। अब आदमी ज्यादा-से-ज्यादा जी रहा है, किन्तु कोई भी मानव समाज मृत्यु से इतना डरा हुआ नहीं था, जितने कि हम डरे हुए हैं। अब, उन्होंने पश्चिम में इस पृथ्वी पर लम्बी-से-लम्बी जिन्दगी खोज ली है।

हमने सुना है और हम बात भी करते रहते हैं कि पुराने समय में, स्वर्ण युग में मनुष्य सौ साल तक जीता था। यह कोई तथ्य नहीं है। यह सिर्फ एक कल्पना है। लेकिन इसके पीछे भी वास्तविकता छिपी है। हर एक आदमी को ऐसा लगता था ि कवह सौ साल जी लिया क्योंकि पीछे कोई गिनता नहीं था। गिनना तो एक नई बात है। किसी का जन्म-दिन याद रखना बिल्कुल नई बात है। लेकिन, स्मरण रहे, जब भी तुम जन्म-दिन याद करोगे, मृत्य-दिवस भी सदा तुम्हारे सामने उपस्थित रहेगा।

कोई भी पशु मृत्यु से भयभीत नहीं है क्योंकि कोई भी पशु जन्म के प्रति सजग नहीं है। अविकसित समाज मृत्यु भी वैसे ही होती है, जैसे जन्म होता है, और इसमें किसी प्रकार की गिनती नहीं होती ि कवे कितने समय तक जिये। जितनी बारीक तुम्हारी गिनती होती है, उतने ही अधिक तुम मृत्यु से भयभीत हो जाते हो। अभी अमेरिका मृत्यु की गिरफ्त में है। सभी हैं, लेकिन अमेरिका सबसे ज्यादा है मृत्यु की पकड़ में क्योंकि समय का बोध शिखर पर पहुँच गया है। हर कोई ही सजग है। लम्बी-से-लम्बी जिन्दगी संभव है, लेकिन तब मृत्यु बहुत ज्यादा डरावनी हो जाती है। क्यों? यह एक गहरा सन्तुलन है।

यदि तुम अपने जीवन को लम्बाते जाओ तो तुम अपनी मृत्यु को भी लम्बा कर दोगे। यदि तुम लम्बे समय तक जीते हो, तो तुम्हारी मृत्यु भी लम्बा मामला ही जायेगा। दोनों साथ-साथ ही बराबर बढ़ते हैं। तुम बच नहीं सकते, तुम चुनाव नहीं कर सकते।

वास्तव में, हमने बीमारियों से लड़ने के सारे संभव उपाय खोज लिये हैं। लेकिन फिर भी आदमी बीमार है- पहले से अधिक बीमार है। क्यों? क्यों तुम्हारी दवाइयों की खोज की दिशा में की गई प्रगति, बीमारी की भी प्रगति हो जाती है?

कार्ल गुस्ताव जुंग ने एक बड़ा अद्‌भुत विचार प्रस्तुत किया है। वह उसे "सिन्क्रोनिसिटी" कहता है। वह कहता है कि जो कुछ भी किया जाता है उसके समानान्तर जगत भी बनता जाता है। और तुम कुछ भी नहीं कर सकते। यदि ज्ञान बढ़ता है, तो अज्ञान भी गहरा होता जाएगा। यदि स्वास्थ्य बढ़ता है तो बीमारियाँ भी बढ़ेंगी।

यदि तुम अच्छे हो जाते हो, तो कहीं कोई बुरा हो जाता है। और उसमें कोई भी गलत बात नहीं है, यह सिर्फ सन्तुलन है। यह संसार सिर्फ अच्छे सन्तुलन है। यह संसार सिर्फ अच्छे आदमियों से ही नहीं चल सकता। तब यह संसार एक बहुत उबाने वाला हो जाएगा। क्या तुम एक ऐसे संसार की कल्पना कर सकते हो, जिसमें सिर्फ महात्मा-ही-महात्मा हों? सारा संसार फिर आत्महत्या कर लेगा, क्योंकि तब एक दिन के लिए जीना भी इतना मुश्किल मामला होगा। चारों तरफ महात्मा-ही-महात्मा। तुम उनके मारे ही मर जाओगे।

जीवन एक सतत द्वन्द्वात्मकता है। उस विपरीत छोर से ही उसमें समृद्धि आती है। क्योंकि दोनों विपरीत छोर एक साथ जीते हैं। धर्म इन दोनों में चुनाव नहीं करता है। धर्म सिर्फ इस द्वन्द्वात्मक को समझता है और तब अचुनाव का रूख रखता है, कुछ भी चुनना नहीं है।

एक धार्मिक आदमी चुनाव नहीं करता। वह बिना चुने ही रहता है। यदि वह स्वस्थ है तो वह स्वस्थ है, यदि वह बीमार है, तो वह बीमार है। जब वह बीमार है, तो वह अपनी बीमारी में प्रसन्न है। तब वह स्वास्थ्य के लिए आकांक्षा नहीं करता। जब वह स्वस्थ है, तो वह अपनी स्वस्थता से प्रसन्न है। वह उसके प्रति भी सजग नहीं है। वह इन दोनों विपरीत ध्रुवों में आराम से घूमता रहता है-बिना किसी चुनाव के। और धीरे-धीरे उसका कंपन, उसका घूमना कम हो जाता है। वह कंन छोटा, और छोटा, और छोटा हो जाता है। और एक क्षण ऐसा आता है कि फिर कोई हलन-चलन नहीं होती, कोई कंपन नहीं होता। यह निश्चलता इस अ-चुनाव से ही आती है। यदि तुम चुनाव करते हो, तो तुम कंपोगे। तुम यहाँ-वहाँ डोलोगे। यदि तुम चुनाव करते हो, तो तुम विपरीत को निर्मित कर दोगे।

यह बड़ा विरोधाभासी लगता है, लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि अच्छे बनने की कोशिश मत करो, वरना तुम बरे हो जाओगे। कुछ भी होने की चेष्टा मत करो वरना तुम उसके बिल्कुल विपरीत हो जाओगे। बिना किसी चुनाव की स्थिति में रहो। अ-चुनाव का रुख रखो। जो भी होता है, उसे होने दो; उसे होने देने में मदद करो।

यह बहुत कठिन है। यदि क्रोध आता है, तो उसे होने दो, चुनाव मत करो। यदि प्रेम घटित होता है, तो उसे होने दो, चुनाव मत करो। और जल्दी ही एक दिन ऐसा आएगा, जबकि न क्रोध आएगा और न प्रेम घटित होगा। यदि तुम चुनाव करते हो, तो तुम पकड़ में हो। तब तुम चक्र में हो, और तब पकड़ स्वचलित है। तब तुम एक से दूसरे में बदलते रहोगे। और यह एक सतत दोहरानेवाली प्रक्रिया रहेगी। तब सारा जीवन ही एक कंपन, एक बिन्दु से दूसरे पर जाना हो जाना है। रस्से पर सरकसबाजी मत करो; उससे नीचे उतर जाओ।

इसे इस तरह से देखो, तुम जमीन पर चल रहे हो। तुम एक संकरी पट्टी पर भी चल सकते हो। हम एक पट्टी चॉक से बना देते हैं-जमीन पर एक सफेद पट्टी और तुम उस पर चल सकते हो, बिना दायें गये कि बायें झुके। क्यों? अब हम दो मकानों के बीच उतनी ही चौड़ी पट्टी लगा देते हैं, उनकी छत्तों से। अब उस पर चलो। तुम उस पर नहीं चल सकोगे। तुम जमीन पर उतनी ही पट्टी पर बड़ी आसानी से चल सकते थे संतुलन बनाकर। लेकिन जब उतनी ही बड़ी पट्टी दो छातों से लगा दी गई है तो तुम एक कदम भी नहीं चल सकते। क्यों?

अब तुम सजग हो गये हो कि तुम नीचे भी गिर सकते हो। अब तुमने कुछ चुनाव कर लिया है, तुमने नीचे नहीं गिरने का चुनाव किया है। अब तुम आराम से नहीं चल सकते। चुनाव है कि नीचे नहीं गिरना है। तुमने

चुनाव कर लिया है। इस चुनाव के कारण ही हर एक कदम गिरने की तरफ होगा। इसलिए तुम्हें बायें और दायें चलना पड़ेगा सन्तुलन बनाये रखने के लिये।

जीवन एक रस्सी है- एक कहुत संकरी रस्सी। यदि तुम चुनाव करते हो, तो तुमने यहां-वहां जाने को चुन लिया, कंपन को चुन लिया। न तो अच्छा न बुरा-वही एक शुभ है। न यह न वहा, यही एक मात्र धर्म है। उपनिषदों ने कहा है- "नेति, नेति," न यह, व वह। तुम चुनाव मत करो। यह एक बिना प्रयासरहित समझना है। यह सिर्फ एक सरल समझ है।

भगवन्! अंतर्राष्ट्रीय नव-संन्यास में आप क्या कर रहे हैं? क्या आजा की दुनिया की अधार्मिक स्थिति का सन्तुलन कर रहे हैं, अथवा आप दूसरा विपरीत ध्रुव निर्मित कर रहे हैं?

दूसरा विपरीत ध्रुव निर्मित नहीं किया जा सकता क्योंकि नव-संन्यास कोई चुनाव नहीं है। यह संसार के विपरीत नहीं है। यदि संन्यास संसार के विपरीत हो, तो यह चुनाव है। इसलिए यदि संन्यास संसार के विरुद्ध है तो हम एक बहुत ही सांसारिक समाज निर्मित कर देंगे। हमने ऐसा भारत में किया है। ये पाँच हजार साल भारत में संन्यास के लिए जान-बूझकर चुनाव के थे। त्याग के। त्याग, संन्यास लक्ष्य था। और भारतीय मन को देखो-सर्वाधिक सांसारिक है-सारे संसार में। क्यों? क्योंकि हमने निरपेक्ष रूप से एक अलग समाज निर्मित करने की कोशिश की। लेकिन भारतीय मन को देखो : सबसे अधिक लोभी। हम कहते रहे कि धन का मतलब कुछ भी नहीं होता वह मिट्टी है, और देखो हमारे समाज को-धन ही वहाँ सब कुछ है।

ऐसा क्यों हुआ? यह एक जान-बूझकर किया गया चुनाव था। हम संसार के विरुद्ध बातें करते रहते हैं। और सांसारिक ढंग से जीते रहते हैं।

यही बात लौटकर उलटी तरह से पश्चिम में होगी। उन्होंने संसार को चुना है, और अब उनके बच्चे संसार के खिलाफ जा रहे हैं। समाज के खिलाफ, संस्था के खिलाफ, उस सबके खिलाफ जा रहे हैं जो भी कीमती है। अमेरिका का धन के पक्ष में खड़ा हुआ और उसके बच्चे हिप्पी हो रहे हैं। वे धन के विरुद्ध हैं। अमेरिका एक साफ-सुथरा समाज था-सफाई, स्वच्छता को परमात्मा के बाद नम्बर दो पर जगह दी जाती थी, और अब हिप्पी इसके खिलाफ जा रहे हैं। वे सर्वाधिक गन्दे हैं।

क्यों? यदि तुम किसी भी चीज़ के खिलाफ जाते हो, तोकुछ न कुछ ऐसा होगा जो कि उसे सन्तुलित करेगा। यदि तुम धन को चुनते हो, तो तुम्हारे बच्चे धन के खिलाफ होंगे। यदि तुम कोई दूसरा संसार चुनते हो तो तुम्हारे बच्चे यह संसार चुनेंगे।

नव-संन्यास कोई चुनाव नहीं है। यह एक गहरी स्वीकृति है, न कि चुनाव। ने तो ये पक्ष में ही है, और न विपक्ष में। यह एक गहरी समझ है-दोनों के बीच में रहने की। चुनना नहीं, सिर्फ जीना। चुनना नहीं, मात्र बहना। यदि तुम बह सको अपने भीतर एक गहरी स्वीकृति से तो देर-अबेर वह दिन आयेगा जब कि तुम दोनों का अतिक्रमण कर जाओगे। संसार और संन्यास-दोनों का। मेरे लिए संन्यास का अर्थ त्याग नहीं, बल्कि अतिक्रमण है।

आज इतना ही।

बारहवां प्रवचन

आंतरिक एकालाप का भंजन

पंद्रहवाँ सूत्र

मौनं स्तुतिः।

मौन ही प्रार्थना है।

मौन ही प्रार्थना है। प्रार्थना से हमारा मतलब सदा परमात्मा से कुछ कहने का होता है। लेकिन उपनिषद कहते हैं कि जो कुछ भी तुम कहोगे वह प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना की नहीं जा सकती। तुम प्रार्थना नहीं कर सकते, वह कोई कृत्य नहीं है। वह तुम्हारा करना नहीं है। इसलिए वस्तुतः तुम प्रार्थना नहीं कर सकते। तुम केवल प्रार्थना "हो" सकते हो। प्रार्थना तुम्हारे कुछ भी करने से संबंधित नहीं है। वह तुम्हारे अस्तित्व का किसी खास स्थिति में होना है।

इसलिए पहली बात जो कि समझ लेनी है, वह यह क मनुष्य के अस्तित्व में दो आयाम हैं। एक है उसका होना, उसका अस्तित्व, दूसरा है उसका करना। प्रार्थना दूसरे का हिस्सा नहीं है। तुम उसे नहीं कर सकते, और जोप्रार्थना तुम कर सकते हो, वह झूठी होगी, अप्रामाणिक होगी। तुम हो सकते हो-प्रार्थना तुम्हारे होने के आयाम से संबंधित है।

यह शरीर जा भी करे वह प्रार्थना नहीं हो सकती। शरीर प्रार्थना में हो भी नहीं सकता। मन प्रार्थना नहीं कर सकता, प्रार्थना में हो भी नहीं सकता। शरीर कुछ करने के लिए बना है, यह करने के लिए साधन है। मन भी करने के लिए, किसी कृत्य के लिए साधन है। सोचना क्रिया का हिस्सा है, वह भी कृत्य है।

इसलिए तुम अपने शरीर से ऐसा कुछ भी नहीं कर सकते जो कि प्रार्थना बन सके, न ही मन से तुम ऐसा कुछ कर सकते हो जो कि प्रार्थना कहला सके, क्योंकि ये दोनों ही करने के, कृत्य के आयाम से जुड़े हैं। प्रार्थना शरीर और मन के पार होती है। अतः यदि तुम्हारा शरीर पूर्णतया अक्रिया में है, निष्क्रिय है, और तुम्हारा मन भी खो गया है, रिक्त हो गया है, तभी प्रार्थना संभव है।

यह सूत्र कहता है, मौन ही प्रार्थना है। जब मन काम नहीं कर रहा है, जब शरीर भी निष्क्रिय हो गया हो, तब मौन है। जो कुछ भी उस मौन में जाना जाता है वह मन का हिस्सा नहीं है। इसलिए जब भी हम कहते हैं कि उसका मन शांत हो गया है तो वह अर्थहीन बात है। मन कभी शांत नहीं हो सकता। मन के होने का मतलब ही अशांति होता है। मन यानी शोरगुल, शांति नहीं अतः जब हम कहते हैं कि उसका मन शांत हो गया है, तो वह गलत बात है। यदि कोई सच में ही चुप हा गया है, तब हमें कहना चाहिए उसके पास मन नहीं है।

"शांत मन" यह स्वविरोधी शब्द है। यदि मन होगा तो वह मौन नहीं हो सकता। और यदि मौन है तो मन नहीं होगा। इसलिए झेन फकीर "अ-मन" शब्द का उपयोग करते हैं, वे कभी भी शांत मन नहीं कहते। "अ-मन" ही मौन है। और जैसे ही मन नहीं होता, तुम्हें अपने शरीर की भी प्रतीति नहीं होती, क्योंकि मन की राह से ही शरीर की प्रतीति होती हैं यदि कोइ मन नहीं हो, तो तुम्हें ऐसा नहीं लग सकता कि तुम शरीर हो। चेतना से

शरीर विलीन हो जाता है। इसलिए प्रार्थना में न तो मन रहता है और न शरीर ही केवल शुद्ध अस्तित्व को मौन के द्वारा इंगित किया है।

इस प्रार्थना को कैसे उपलब्ध करें-इस मौन को? इस प्रार्थना में कैसे हुआ जाये? इस मौन में कैसे डूबा जाये? जो भी तुम करोगे वह व्यर्थ होगा, यही सबसे बड़ी समस्या है। एक धार्मिक साधक के लिए यह बड़ी से बड़ी समस्या है, क्योंकि वह जो भी करेगा उससे वह कहीं न पहुँचेगा-क्योंकि करने से उसका कुछ संबंध नहीं है। तुम किसी विशेष आसन में बैठ जाओ, वह भी करना होगा। तुमने बुद्ध का आसन देखा होगा। तुम भी बुद्ध के आसन में बैठ सकते हो, वह भी करना होगा। बुद्ध के लिए यह आसन घटित हुआ है। यह कोई उनके मौन का कारण नहीं है। बल्कि, वह बाई-प्रोडक्ट है, उसकी सह-उत्पति है।

जब मन नहीं हो जाता है, जबकि अस्तित्व पूरी तरह मौन हो जाता है तोशरीर छाया की तरह पीछे-पीछे चलता है। तब शरीर एक विशेष आसन ग्रहण करता है-सर्वाधिक विश्रामपूर्ण, सबसे अधिक निष्क्रिय। लेकिन तुम इससे उलटा नहीं कर सकते। तुम पहले ऐसा नहीं कर सकते कि आसन ग्रहण कर लो और पीछे-पीछे शान्ति उतार लो। चूँकि हम बुद्ध को एक विशेष आसन में बैठे हुये देखते हैं तो हम सोचते हैं कि हम भी यदि इस आसन में बैठ जायें तो आंतरिक शान्ति भी आ जायेगी। यह गलत श्रृंखला है। बुद्ध के लिए अन्तर की बात पहले घट गई है, और उसके बाद यह आसन आया है।

इसे अपने अनुभव से देखोः जब तुम्हें क्रोध आता है, तोशरीर एक विशेष मुद्रा ले लेता है। तुम्हारी आँखें लाल हो जाती हैं, तुम्हारे चेहरे पर एक प्रकार का भाव आ जाता है। क्रोध भीतर होता है और शरीर उसका अनुकरण करता है। बाहर से ही नहीं, भीतर से भी शरीर की सारी रासायनिक प्रक्रिया बदल जाती है। तुम्हारा खून तेज गति से दौड़ने लगता है, तुम्हारी साँस दूसरी ही तरह से चलने लगती है। तुम लड़ने के लिये, अथवा भागने के लिये तैयार हो जाते हो। लेकिन पहले क्रोध होता है और फिर शरीर उसका अनुकरण करता है।

दूसरे ध्रुव से शुरू करें : अपनी आँखें लाल कर लें, साँस की गति तेज कर लें, जो-जोशरीर करता हो वह सब करें, जबकि क्रोध आता है। तुम क्रोध की नकल कर सकते हो, लेकिन तुम भीतर क्रोध को पैदा नहीं कर सकते। एक अभिनेता यही तो कर रहा है सारे समय। जब वह प्रेम का पार्ट अदा कर रहा है, तो वह शरीर से बही सब कर रहा है, जो प्रेम में घटता है। परनतु भीतर कोई प्रेम नहीं है। और हो सकता है कि एक अभिनेता तुमसे ज्यादा अच्छा कर रहा है, लेकिन उससे प्रेम पैदा नहीं होगा। वह तुमसे ज्यादा भली प्रकार क्रोधित होगा, जितना कि तुम असली क्रोध में भी नहीं हो सकोगे, लेकिन वह सब झूठ है। भीतर कुछ भी नहीं हो रहा है।

जब भी तुम बाहर से कुछ करते हो, तो तुम एक झूठी स्थिति निर्मित करते हो। असली तो पहले भीतर केन्द्र पर घटित होता है, और उसके बाद उसकी तरंगें बाहर परिधि पर पहुँचती हैं। इसीलिए यह सूत्र कहता है कि प्रार्थना मौन है। यह प्रार्थना में अन्तस्थ केन्द्र है। यहीं से प्रारंभ करो।

लेकिन यह बहुत कठिन है। और कई कारणों से यह कठिनाई पैदा होती है। पहली बात तो यह है कि तुमने कभी मौन जाना ही नहीं, इसीलिए वस्तुतः यह शब्द ही अर्थहीन है। तुमने यह शब्द सुना है, तुम जानते हो कि इसका अर्थ क्या है? लेकिन वस्तुतः इसकी अनुभूति का तुम्हें कुछ भी पता नहीं। मौन का अनुभव कैसा होता है यह तुम नहीं जानते। इसीलिए इससे कुछ भी मतलब नहीं निकलता। यह शब्द कानों में मूंजता है, हम सोचते हैं कि हम जानते हैं, लेकिन उससे कुछ भी नहीं समझा जाता। यह शब्द ही हमसे बिल्कुल अपरिचित है। जहाँ तक अनुभव का प्रश्न है, केवल शब्द की ध्वनि का ही हमें पता है।

मुल्ला नसरुद्दीन मस्जिद में अपने तीन और मित्रों के साथ मौन का अीयास कर रहा था। वह एक धार्मिक दिन था और उन्होंने चौबीस घंटे के लिए मौन रहने की प्रतिज्ञा की थी। यही उनकी प्रार्थना थी। "मौन ही प्रार्थना है"-उन्होंने यह बात सुनी थी। पाँच-दस मिनट बाद ही उन्होंने बोलना शुरू कर दिया। पहले आदमी ने कहा, मुझे शक है कि मैंने अपने घर पर ताला लगाया है या नहीं। दूसरे ने कहा कि यह तुमने क्या किया, तुमने मौन तौड़ दिया। अब तुम्हें फिर से प्रारंभ करना पड़ेगा। तीसरे ने कहा कि ओ मूर्ख! तूने भी मौन तोड़ दिया? मुल्ला नसरुद्दीन चौथा था। उसने कहा कि अल्लाह की बड़ी मेहरबानी है, मैं ही केवल बचा हूँ जिसने कि अभी तक मौन नहीं तोड़ा। उन्होंने "मौन" शब्द तो सुना है, उन्होंने यह सुना था कि मौन ही प्रार्थना है।

ऐसा क्यों होता है? जब कोई दूसरा मौन तोड़ता है, तो हर एक उसके प्रति सजग हो जाता है। लेकिन जब कोई स्वयं ही मौन तोड़ता है, तो वह अपने ही प्रति सजग नहीं होता। क्यों? क्योंकि उनके लिए बात करना, कुछ भी बोलना ही मौन तोड़ना था। वास्तव में, जो कुछ भी तुम बोलते हो, उसे तुम खुद कभी नहीं सुनते, जब कोई दूसरा कहता है तो तुम उसे सुनते हो। तुम अपनी आवाज और ध्वनि से इतने परिचित हो कि तुम जानते ही नहीं कि तुम क्या कह रहे हो, कि तुम क्या बोले चले जा रहे हो।

दूसरी कठिनाई यह है कि तुम सतत अपने भीतर बोल रहे हो, इसलिए यदि तुम बाहर कुछ बोलते हो, तो उसमें कोई भी अन्तर नहीं पड़ता। भीतर तो तुम बोल ही रहे थे। अब तुमने बाहर भी कुछ बोल दिया, लेकिन जहाँ तक तुम्हारा सवाल है, तुम्हारे लिए इससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जब कोई और बोलता है तो तुम्हारे लिए कुछ नई बात होती है। अब तक वह चुप था, अब वह कुछ बोला है। जब तुम भीतर बोल रहे हो, तब यदि तुम कुछ भी बाहर बोलोगे, तो तुम्हें उसका पता नहीं रहेगा। कोई दूसरा ही जान पाता है कि तुमने मौन तोड़ दिया।

तुम्हें दूसरों का पता ही इसलिए चलता है कि तुम भीतर सतत अपने से ही बोल रहे हो। एक एकालाप, एक सतत एकालाप भीतर चल रहा है। जागे हो अथवा सोये हो, तुम लगातार बोल रहे हो। यह लगातार बातचीत ऐसी एक आदत बन गई है कि तुमने इसका कोई इन्टरवेल ही नहीं जाना। जब तुम भीतर नहीं बोलते और बाहर दूसरों से बात कर रहे हो, तो तुम एक भार से मुक्ति का अनुभव करते हो, विश्राम अनुभव करते हो क्योंकि जब तुम दूसरों से बोलते हो, तो स्वयं से बोलने के एक कर्तव्य से मुक्त हो जाते हो। और अपने आप से बोलना इतना उबाने वाला है। तुम पहले ही जानते हो कि तुम क्या कहोगे, और फिर भी तुम उसे कहते हो।

कोई भी तुम्हारे लिए इतना उबाने वाला नहीं होगा जितने कि तुम स्वयं हो। तुमने वही वही बात लाख बार कही होगी, और फिर भी तुम कहे ही चले जाते हो। तुम कोई आविष्कारक नहीं हो। तुम एक वर्तुल में घूमते रहते हो, उसी बात को पुनरुक्त करते हुए। इस पर ध्यान दो। एक चौबीस घंटे के लिये इस बात को देखो और नोट करो कि तुम अपने से क्या कह रहे हो। तब तुम्हें बड़ा अजीब लगेगा कि तुम वही बात अपने से सारी जिन्दगी कहे चले जाते हो।

एक दिन में ही तुम अपने को पुनरूक्त करते चले जाते हो। यह एक गहरी आदत बन गई जिसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। और जब कोई चीज़ गहरी जड़ जमा लेती है तो तुम्हें उसका होश नहीं रहता। वह स्वचालित हो जाती है। शरीर का जो रोबोट पार्ट है, शरीर की जो यांत्रिकता है, वह उसे ले लेती है और उसे चलाती रहती है। इसीलिए मौन इतना कठिन है, क्योंकि मौन का अर्थ होता है कि भीतर के एकालाप को तोड़ना। यह कोई किसी और से बात करने का सवाल नहीं है। मौन दूसरे से संबंधित नहीं है। भीतर गहरे यह तुमसे ही संबंधित है।

अपने आप से बात मत करो। यह बहुत कठिन है। अतः हमें कारण खोजने पड़ते हैं कि क्यों हम अपने से बात करते हैं। असल में, क्या हम अपने से बात करते ही रहते हैं? यदि तुम ध्यान दो तो तुम कारण खोज सकते हो। कारण यह है कि कुछ भी जीवन में पूरा नहीं है, सभी कुछ अधूरा है। तुम भोजन कर रहे हो और दफ्तर की बात सोच रहे हो। अतः भोजन करना तृप्तिदायी नहीं होगा, उससे संतुष्टि नहीं होगी। तुम संतोष अनुभव नहीं करोगे। वह अधूरा ही रह जायेगा।

तुम जल्दी-जल्दी भोजन कर लेते हो। तुम जैसे-जैसे अपने पेट को भर लेते हो और दफ्तर दौड़ जाते हो। एक प्रक्रिया अधूरी रह गई। फिर जब तुम दफ्तर में होओगे तो अपनी पत्नी, बच्चों की सोचोगे, घर की हजारों चीज़ों के बारे में सोचोगे। तब तुम दफ्तर में नहीं होओगे। सारे दिन तुम दफ्तर में थे, फिर भी तुम वहाँ नहीं थे। दफ्तर का काम भी अधूरा ही रह गया, और अब तुम अपने घर आ गये हो। अब फिर दफ्तार के बारे में सोच रहे हो। तुम अपनी पत्नी के साथ हो, लेकिन तुम हो नहीं। तुम अनुपस्थित हो।

यह एक बड़ी मुश्किल बात है कि कोई पति अपनी पत्नी के साथ होता है-मुश्किल से कभी ऐसा होता है, और इससे बड़ी चोट पहुँचती है क्योंकि पत्नी को मालूम पड़ जाता है। पति को भी ऐसा लगता है कि पत्नी मौजूद नहीं है। कोई भी मौजूद नहीं है। सभी कुछ अधूरा है। तुमने जो अधूरा छोड़ दिया है वह मन को पूरा करना पड़ता है। इसलिए मन वर्तुल में घूमता रहता है। वह उन चीजों को पूरा करता रहता है जिन्हें कि तुमने अधूरा छोड़ दिया है।

क्या तुम्हें ऐसा कुछ भी स्मरण है जो कि तुमने पूरा किया है? क्या तुम्हारे जीवन में ऐसा कोई भी क्षण, केई भी अनुभव है जिसे कि तुम कह सको कि पूरा है-समग्र? यहद एक भी अनुभव ऐसा है जो कि पूरा हो, तो मन पीछे कभी नहीं जायेगा। फिर कोई भी जरूरत नहीं है। फिर वह व्यर्थ है। मन सिर्फ पूरा करने की कोशिश करता रहता है हर चीज़ की। मन की आदत है पूरा करने की। और जरूरी भी है, अन्यथा जीवन असंभव हो जाएगा।

इसलिए, यह जो सतत एकालाप भीतर चल रहा है यह तुम्हारे जीवन को गलत ढंग से जीने के कारण है, अधूरा जीने के कारण है। कुछ भी पूरा नहीं होता और तुम नई चीज़ों की शुरूआत करते रहते हो। तब फिर मन अधूरी चीज़ों से भर जाता है। वे कभी भी पूरी नहीं होंगी, लेकिन वे तुम्हारे मन पर एक बोझ हो जाएगी-एक सतत बोझ, एक सदैव बढ़ता हुआ बोझ, और उसी से एकालाप पैदा होता है।

इसीलिए जैसे-जैसे तुम बड़े होते हो, तुम्हारा एकालाप बढ़ जाता है, और बूढ़े लोग जोर-जोर से बड़बड़ाने लगते हैं। वस्तुतः बोझ इतना बढ़ जाता है कि उस पर से नियंत्रण खो जाता है। अतः बूढ़े लोगों को देखो, व बैठे हैं, लेकिन उनके पैर चल रहे हैं, और वे बात कर रहे हैं, और हावभाव बना रहे हैं। वे क्या कर रहे हैं तुम सोचते हो कि वे पागल हो गये हैं, कि वे बूढ़े हो गये है और अब वे मूर्ख हो गये हैं।

नहीं ऐसी बात नहीं है। उनकी एक लम्बी अधूरी जिन्दगी रही है, और अब मृत्यु निकट है और मन जल्दी में है कि उस सब को पूरा कर लें। और यह असंभव लगता है। इसलिए यदि तुम इस एकालाप को ताड़ना चाहते हो, तो जो भी तुम हो, उसे पूरा करो। और नई चीजें शुरू मत करो। तुम विक्षिप्त हो जाओगे। जो भी कर रहे हो उसे पूरा करो-छोटी-से छोटी चीज़ को भी।

तुम स्नान कर रहे हो, उसे भी पूरी तरह करो। उसे पूरा कैसे करें? वहीं मौजूद रहो। तुम्हारी उपस्थिति से हो जाएगा। वहीं होओ, आनंद लो, उसे जिओ, अनुभव करो। तुम्हारे ऊपर जो पानी गिर हा है, उसको अनुभव करो। अपने स्नानघर से तभी बाहर आओ जबकि उसे पूरा कर लो। अन्यथा स्नान तुम्ळारा पीछा करेगा। वह

छाया हो जाएगा, वह तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगा। जब तुम भोजन कर रहे हो तो भोजन की करो। तब सभी कुछ भूल जाओ। तब इस सांर में दूसरी कोई भी बात मौजूद नहीं है, सिवाय तुम्हारे उस कृत्य के। जो भी तुम करो, उसे इतने पूरी तरह करो, इतने शांत भाव से बिना किसी जल्दबाज़ी के करो कि मन निखरने जाये, वह सन्तुष्ट हो जाये। तभी उसको छोड़ा।

लगातार तीन महीने तक हर कार्य को पूरा करने का होश रखने के बाद कभी-कभी तुम्हारे एकालाप में अन्तराल आने लगेंगे। तब पहली बार तुम्हें मालूम पड़ेगा कि यह एकालाप तो तुम्हारे कार्यों को अधूरा रखने के कारण था।

बुद्ध ने एक शब्द का प्रयोग किया है : राइट लिविंग-सम्यक जीवन। उन्होंने आठ सिद्धान्त बताये हैं। एक है सम्यक जीवन। सम्यक जीवन का अर्थ होता है समग्र रूप से जीना। गलत जीवन का अर्थ होता है कि अधूरा जीना।

यदि तुम क्रोध में हो तो, पूरी तरह क्रोध करो। प्रामाणिक रूप से क्रोध करो, उसे पूरा करो। उसकी पीड़ा कोझेलो। उसमें कोई नुकसान नहीं हैं, क्योंकि पीड़ा से ही तुम्हें प्रज्ञा उपलब्ध होगी। पीड़ा झेलने में कोई नुकसान नहीं है क्योंकि पीड़ा से ही कोई अतिक्रमण करता है। अतः उसके दंश कोझेलो। लेकिन प्रामाणिकरूप से क्रोधित होओ।

और तुम क्या कर रहे हो? तुम क्रोधित हो और तुम मुस्कुरा रहे हो अब यह क्रोध तुम्हारा पीछा करेगा। तुम सारी दुनिया को धोखा दे सकते हो लेकिन तुम अपने मन को धोखा नहीं दे सकते। मन भली-भाँति जानता है कि मुस्कुराहट झूठी थी। अब क्रोध भीतर-भीतर चलेगा वही एकालाप हो जायेगा। तब तुमने जो भी नहीं कहा, उसे तुम भीतर कहोगे। जो कुछ भी तुमने नहीं किया, उसे तुम कल्पना करोगे कि किया। अब तुम एक स्वप्न निर्मित कर लोगे। तुम अपने शत्रु से लड़ाई करोगे, इस क्रोध के कारण मन तुम्हें कुछ पूरा करने में मदद कर रहा है।

लेकिन वह भी असम्भव है क्योंकि तुम दूसरी बातें कर रहे हो। यह भी सहायक हो सकता है : अपना कमरा बन्द कर लो। तुम क्रोधित नहीं हुए थे, स्थिति ऐसी थी कि तुम क्रोधित नहीं हो सकते थे। अपना कमरा बन्द कर लो, और अब क्रोध कर लो। लेकिन इस एकालाप को चालू मत रखो। उसे कर लो। किसी पर क्रोध करने की जरूरत भी नहीं है, एक तकिया काफी है। उसके साथ लड़ो। अपने क्रोध को पूरा कर डालो, व्यक्त कर दो। लेकिन वह प्रामाणिक हो, वास्तविक हो। इसे सच्चा होना चाहिए, और तब तुम्हें भीतर अचानक विश्राम का भाव महसूस होगा। तब एकालाप टूट जायेगा। अब एक अन्तराल होगा, एक गैप होगा। यह गैप ही मौन है।

इसलिए पहली बात : इस एकालाप को तोड़ो। और तुम यह तभी कर सकते हो जबकि तुम्हारा जीवन सम्यक हो जाये, पूर्ण हो जाये। कभी अधूरा मत करो। भीतर की विक्षिप्तता को विसर्जित करो। एक ही जीवन की नहीं बहुत-से अधूरे जीवन थे-ऐसी हमारी स्थिति है। जब तुम प्रेम भी करते हो, तब भी तुम हजारों चीजें एक साथ कर रहे होते हो। तब प्रेम एक झूठ हो जाता है।

अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यदि तुम किसी को प्रेम कर रहे हो और उस समय एक विचार भी तुम्हारे मन से गुजरा, तो तुम प्रेम करने से चूक गये। तुम अने प्रेम के विषय से दूर चले गये। एक गैप आ गया, संवाद टूट गया। जब दो प्रेमी प्रेम में होते हैं, तो बाकी कुछ भी नहीं होता सिर्फ प्रेम ही होता है : और कुछ भी नहीं। वे एक दूसरे के शरीर से खेल रहे हैं, उसमें पूरे खो गये हैं। उनकी चेतना से सारा संसार गायब हो गया है, कुछ भी नहीं बचा है। तब प्रेम पूरा हुआ। और तब मौन के पीछे पागल नहीं होंगे। तब उनके मन विकृत नहीं होंगे।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि डान जुआन, बायरन जैसे लोग जो कि अपने प्रेम-पात्र बदलते रहते हैं, वे सचमुच प्रेम करने के काबिल ही नहीं होते। ऐसा कहा जाता है कि बायरन ने अपने जीवन में साठ स्त्रियों से प्रेम किया, और उसका जीवन बहुत छोटा था। ये तो जाने हुए मामले हैं। वास्तव में कितने किये होंगे, इसका कोई पता नहीं। उसे समाज से बाहर कर दिया गया था क्योंकि प्रत्येक उससे डरा हुआ था। और वह इतना सुन्दर पुरुष था लेकिन यह विक्षिप्तता क्यों?

कोई सोच सकता है कि वह एक बहुत बड़ा प्रेमी था। ऐसी बात नहीं थी। वह प्रेमी जरा भी नहीं था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि वह प्रेमी जरा भी नहीं था। वह मैनिआक था, पागल था-बस एक विकृत मन था। वह एक भी प्रेम को पूरा नहीं कर सका। और इसके पहले कि कोई भी प्रेम पूरा होता, वह दूसरा प्रारीं कर देता।

ऐसा कहा जाता है कि उसे जबरदस्ती एक लड़की से विवाह करना पड़ा। सच ही उसके साथ जबरदस्ती की गई थी क्योंकि उसने तो मना कर दिया था। वह विवाह कर भी कैसे सकता था क्योंकि दूसरे दिन वह किसी दूसरी स्त्री के पीछे भागेगा। जब उसके साथ जबरदस्ती की गई थी तब वह चर्च के बाहर आ रहा था। चर्च की घंटियाँ बज रही थीं, और अभी मेहमान भी चर्च में ही थे। वह सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था, उसकी पत्नी का हाथ उसके हाथ में था, और अचानक वह रुका, उसने हाथ छोड़ दिया। सामने एक स्त्री सड़क पार कर रही थी। उसकी आँखें उस स्त्री का पीछा कर रही थीं। एक तरह से ईमानदार आदमी होने के नाते उसने अपनी पत्नी से कहा कि अब मेरे लिये तुम्हारा कुछ मूल्य नहीं है, अब वह स्त्री ही सब कुछ हो गई है।

उसे दुख उठाना पड़ा, क्योंकि प्रेम एक ग्रोथ है, विकास है। प्रेम एक लम्बा विकास है। और वह जितना बढ़ता है, उतना ही वह गहरा चला जाता है। तितलियों वाले मन प्रेम में विकसित नहीं हाते। वह असींव है, क्योंकि तब प्रेम की जड़ें ही नहीं लगतीं। इसके पहले कि प्रेम की जड़ें फूटें, वे हट जाते हैं। इस प्रकार के मन वाले लोग दुःखी होंगे क्योंकि वे प्रेम नहीं कर पायेंगे और वे प्रेम पा भी नहीं सकेंगे। कुछ भी कभी पूरा नहीं होता है, कुछ भी कभी पक नहीं पाता है। तब सारी जिन्दगी एक तरह से घावों से सनी होगी-अधूरे घाव। और यही सब क्षेत्रों में भी होता है।

न तो तुमने कभी प्रेम किया, न तुमने कभी क्रोध किया, न ही कभी तुमने स्वयंस्फूर्त कुछ किया, न ही तुमने सचमुच कभी भोजन किया, न ही तुम कभी समग्ररूप से सोये। तुमने कुछ भी अपने को पूरा उड़ेल कर कभी नहीं किया कि तुमने उसमें अपने को पूरा ही लगा दिया हो। तुम सदा उसके साथ-साथ कुछ और भी करते रहे।

बोकोजू से किसी ने पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है? तुम इस निर्जन जंगल में क्या करते हो? क्या कर रहे हो? बोकोजू ने कहा कि मैं कुछ भी नहीं करता, मेरी कोई साधना नहीं है, कोई विधि भी नहीं है। जब मुझे भूख लगती है, मैं भोजन कर लेता हूँ, मुझे भूख नहीं लगती तो मैं नहीं खाता। जब मुझे लगता है कि झोपड़ी ठंडी हो गई है, तो मैं बाहर धूप में चला जाता हूँ। जब धूप तपने लगती है और बर्दाश्त नहीं होती, तो मैं वृक्षों की छाया में चला जाता हूँ। लेकिन जहाँ भी मैं होता हूँ, समग्र होता हूँ। जब मुझे नींद आती है, तो पड़कर सो जाता हूँ। इतना ही मैं यहाँ करता हूँ।

उस आदमी ने कहा कि यह तो कुछ ीी नहीं है। इतना तो प्रत्येक कर रहा है। बोकोजू ने कहा कि यदि सब कोई करता होता, तो यह जगत एक दूसरा ही स्थान होता-मौन, शान्त, प्रेमपूर्ण। तब मुक्ति की मांग करने की जरूरत नहीं होती। यह जगत ही मोक्ष हो जाता।

वैसा कोई भी नहीं कर रहा। बोकोजू का उत्तर बहुत साधारण लगता है, लेकिन यह साधारण नहीं है। यह अति कठिन है। यह बड़ा कठिन है कि सोओ और सपने नहीं आते हों, क्योंकि सपनों का अर्थ होता है कि एक अधूरा दिन। अब वह रात सपनों में पूरी हो रही है। जो ुछ भी तुमने दिन में अधूरा छोड़ दिया है वह सपनों में पूरा हागा। इसलिए यदि तुम अच्छे आदमी थे-दिन में, यदि तुमने अच्छे आदमी बनने की चेष्टा की-दिन में और अच्छाई तुम्हारे लिए स्वाभाविक नहीं थी, स्वतःस्फूर्त नहीं थी बल्कि थोपी हुई थी, तब सपने में तुम दूसरे छोर पर चले जाओगे। यदि तुम चेष्टा करके ईमानदार रहे थे, तो सपने में तुम किसी को धोखा दोगे। तब सब पूरा होगा।

अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यदि सपने आने बन्द हो जायें, तो तुम पागल हो जाओगे क्योंकि सपने बहुत-से अधूरे कार्यों को पूरा कर देते हैं जो कि तुमने अधूरे छोड़ दिये थे। और जब तक वे पूरे न हो जायें, तब तक वे विलीन नहीं होते। वे तुम्हारे अन्तस से वाष्पीात नहीं होते। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सपने एक दैनंदिन रेचन की प्रक्रिया है। इसलिए यदि तुम ठीक से नहीं सोए हो, तो तुम बेचैनी अनुभव करोगे। यह इसलिए नहीं है कि तुम ठीक से नहीं सोए बल्कि ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम सपने नहीं देख सके।

अब वे कहते हैं कि नींद जरूरी नहीं है। एक आदमी बिना नींद के भी बहुत दिनों तक रह सकता है, यहाँ तक कि कई महीने व साल भी रह सकता है। वे कहते हैं कि नींद इतनी आवश्यक नहीं है। सपने जरूरी हैं, और तुम बिना नींद के सपने नहीं देख सकते, इसलिए नींद की जरूरत है। इसलिए नींद की आवश्यकता सपने देखने के लिए है। लेकिन नींद की आवश्यकता क्यों है? तुम किसी को मारना चाहते थे और मार नहीं सके, तो तुम उसे नींद में मार डालोगे, उससे तुम्हारा मन हल्का हो जायेगा। सबेरे तुम ताजा हो जाओगे तुमने मार डाला।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि जाओ और किसी को मार डालो ताकि तुम्हें सपने नहीं आयें। लेकिन इसे याद रखो : यदि तुम किसी की हत्या करना चाहते हो, तो अपना कमरा बन्द कर लो, हत्या करो, ध्यान करो, और सचेतन रूप से हत्या कर दो। जब मैं कहता हूँ कि उसे मार डालो, तो मेरा मतलब है कि तकिये को मार डालो। उसका एक पुतला बनाओ और उसे मार डालो। यह सचेतन प्रयास, यह सचेतन ध्यान तुम्हें तुम्हारे बारे में एक गहरी अन्तर्दृष्टि प्रदान करेगा।

एक बात स्मरण रखो, हर बात को पूरी करो। प्रत्येक क्षण को ऐसे जिओ कि जैसे उसके ओ कोई दूसरा क्षण नहीं है। तभी तुम उसे पूरा कर सकोगे। ध्यान रखो कि मृत्यु किसी भी क्षण धटित हो सकती है। यह क्षण आखिरी हो सकता है। इस अनुभव करो कि यदि मुझे करना है तो मुझे अभी और यहीं पूरा करना है, समग्ररूप से।

मैंने एक यूनानी वजीर के बारे में एक कहानी सुनी है। किसी कारण से राजा उसके विपरीत हो गया। दरबार में कुछ शडयंत्र चल रहा था, और उस दिन वह वजीर अपना जन्म दिवस मना रहा था। वह अपने मित्रों के साथ आनन्द मना रहा था। अचानक दोपहर राजा का सन्देशवाहक आया और उसने वजीर से कहा कि मुझे क्षमा करें, राजा ने तय किया है कि आज शाम छः बजे तुम्हें फांसी दी जायेगी। अतः छः बजे तैयार रहें। वहाँ सारे मित्र भी मौजूद थे, संगीत चल रहा था, शराब उड़ रही थी, खाना-नाचना चल रहा था। वह उसका जन्म-दिन था।

इस समाचार से सारा वातावरण ही बदल गया। वे सब उदास हो गये। लेकिन वजीर ने कहा कि उदास न हों क्योंकि यह मेरे जीवन का अन्तिम दिन है, इसलिए हमें नृत्य को पूरा करने दो, और हमें उस दावत को भी पूरा करने दो, जो कि हम कर रहे थे। और दूसरी कोई संभावना नहीं है, इसलिए हम भविष्य में पूरा नहीं कर

सकते। और मुझे इस उदास वातावरण में विदा मत दो, अन्यथा मेरा मन इसकी बार बार चाह करता रहेगा, और यह रुका हुआ संगीत और ठहर गया, राग रंग मेरे मन पर एक बोझ हो जायेगा। इसलिए इसे पूरा करने दो। अब तो इसे रोकने का जरा भी वक्त नहीं है।

उसके कारण वे लोग नाचते रहे, लेकिन नाचना बड़ा कठिन था। वह अकेला पूरे जोश से नाच रहा था, वह अकेला ही सबसे अधिक उत्सव मना रहा था। बाकी सारा समूह तो जैसे वहाँ था ही नहीं। उसकी पत्नी रो रही थी, लेकिन वह नाचता, मित्रों से बात करता रहा। और वह इतना प्रसन्न था कि सन्देशवाक ने राजा के पास लौटकर कहा कि यह आदमी अद्‌भुत है। उसने खबर सुनी लेकिन वह उदास नहीं हुआ। और उसने उसखबर को दूसरी ही तरह से लिया-हम तो सोच भी नहीं सकते। वह तो हँस रहा है- और नाच रहा है और आनन्द मना रहा है। और वह कहता है कि चूँकि ये क्षण आखिरी हैं, और इनके आगे कोई भविष्य नहीं है, वह उन्हें बर्बाद नहीं कर सकता, उसे उन्हें जीना ही पड़ेगा।

राजा स्वयं देखने आया कि आखिर वहाँ क्या हो रहा था। केवल वह वजीर नाच रहा था, गा रहा था, और पी रहा था। राजा ने पूछा, यह तुम क्या कर रहे हो? वजीर ने कहा, यह मेरे जीवन का सिद्धान्त है कि इस बात को ध्यान रखूँ कि किसी भी क्षण मृत्यु घटित हो सकती है। इस सिद्धान्त के कारण ही, मैं हर क्षण को उसकी पूरी संभावना में जिया। लेकिन आपने आज इसे इतना स्पष्ट कर दिया, कि मैं आपका बड़ा आभारी हूँ। अब तक यह सिर्फ मेरा सोचना था। कहीं मन में तो यह विचार छिपा चल ही रहा था कि अगले क्षण मृत्यु होने वाली है। भविष्य मौजूद था, लेकिन आज आपने भविष्य बिल्कुल गिरा दिया। आज की शाम-आखिरी शाम होगी। जिन्दगी अब बहुत छोटी हो गई है, अब मैं इसे स्थगित नहीं कर सकता।

राजा इतना आनंदित हुआ कि वह उस वजीर का शिष्य हो गया। उसने कहा कि मुझे सिखाओ। यही एकमात्र कीमिया है। यही एक ढंग है जीवन को जीने का। यही कला है। इसलिए मैं तुम्हें फांसी नहीं दूँगा, लेकिन तुम मेरे गुरु हो जाओ। मुझे सिखाओ कि हर क्षण कैसे जिया जाये।

हम स्थगित करते रहते हैं। यह स्थगन ही भीतरी संवाद हो जाता है, एक आंतरिक एकालप हो जाता है। स्थगित मत करो। अभी और यहीं में रहो। और जितना अधिक तुम वर्तमान में रहोगे, उतनी कम तुम्हें इस सतत सोचतने-विचारने की जरूरत पड़ेगी उतना ही कम तुम्हें सोचना पड़ेगा। यह सोचना है ही स्थगित करने के कारण। और हम हर चीज को स्थगित करते चले जाते हैं। हम सदैव कल में रहते हैं जो कि कभी नहीं आता, और जो कभी आ भी नहीं सकता वह असंभव ह। जो भी आता ह, वह आज हाता है, और हम आज को कल के लिए बलिदान करते रहते हैं, जो कि कहीं भी नहीं है। तब फिर मन अतीत की बात सोचता रहता है जो कि तुमने नष्ट कर दिया, जो कि तुमने किसी ऐसी बात के लिए बलिदान कर दिया जो कि पूरी नहीं हुई। और तब हम दूसरे आने वाले कलों के लिए स्थगित करते रहते हैं। जो कुछ भी तुम चूक गये हो, तुम सोचते हो कि तुम कहीं भविष्य में पकड़ लोगे।

तुम उसे कभी भी नहीं पकड़ सकोगे। यह अतीत और भविष्य के बीच में लगातार तनाव, यह वर्तमान को लगातार चूकते जाना, यही आंतरिक शोर है। जब तक यह नहीं रुक जाता है, तब तक तुम उस मौन को प्राप्त नहीं हो सकते जो कि प्रार्थना है। अतः पहली बात, हर क्षण समग्र होने का प्रयत्न करो। दूसरी बात, तुम्हारा मन इतने शोगुल से भरा है क्योंकि तुम सोचते हो कि दूसरे शोर पैदा कर रहे हैं, और तुम उसके लिए जिम्मेवार नहीं हो। इसलिए तुम सोचते ही रहते हो कि किसी और अच्छे संसार में-इससे अच्छी पत्नी के सा ा, इससे अच्छे घर

में, अच्छी बस्ती में सब कुछ ठीक हो जायेगा। और तुम मौन हो जाओगे। तुम सोचते हो कि तुम चुप नहीं हो क्योंकि तुम्हारे चारों ओर सब कुछ गड़बड़ है। इसलिए तुम शान्त कैसे हो सकते हो?

यदि तुम इस भाँति सोचते हो, यदि यही तुम्हारा तर्क है, तो वह बेहतर दुनिया कभी नहीं आएगी। सब जगह यही जगत है, सब जगह ऐसे ही पड़ोसी है, और सब जगह ऐसी ही पत्नियाँ, ऐसे ही पति हैं और ऐसे ही बच्चे हैं। तुम एक भ्रम निर्मित कर सकते हो कि कहीं स्वर्ग मौजूद है, लेकिन सब जगह नर्क ही है। इस प्रकार के मन के साथ, सब जगह नर्क है। यह मन ही नर्क है।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी रात देर से अपने घर आये। घर में डाका पड़ गया था, इसलिए पत्नी चीखने चिल्लाने लगी। फिर उसने मुल्ला से कहा कि सब कसूर तुम्हारा है, तुमने जाने के पहले ताला ठीक से देखा क्यों नहीं?

और तब तक तो सारे पड़ोसी वहाँ इकट्ठे हो गये। यह एक बड़ी सनसनीखेज बात थी। मुल्ला के घर चोरी हुई थी। हर एक आदमी शोर में शामिल हो गया। एक पड़ोसी ने कहा, मुझे पहले ही शक था। तुम्हें पहले कभी शक नहीं हुआ? तुम बड़े ही लापरवाह हो। दूसरे ने कहा, तुम्हारी खिड़कियाँ खुली हुई हैं। तुमने जाने के पहले उन्हें बन्द क्यों नहीं किया? तीसरे पड़ोसी ने कहा, तुम्हारे ताले ही बहुत बेकार मालूम पड़ते है, तुमने उन्हें बदला क्यों नहीं? और इस तरह हर आदमी मुल्ला का ही कसूर निकाल रहा था।

तब मुल्ला ने कहा कि एक मिनट भाइयों, मेरा कोई कसूर नहीं है। तब तो सारे पड़ोसी एक साथ बोले कि फिर किसका दोष है? यदि तुम्हारा नहीं है, तो फिर किसका दोष है? तब मुल्ला ने कहा कि चोर के बारे में क्या ख्याल है?

मन सदैव दूसरों को दोषी ठहराता रहता है। पत्नी मुल्ला नसरुद्दीन पर दोष डालती है, सारे पड़ोसी भी उसे ही दोषी ठहराते हैं और वह बेचारा वहाँ किसी पर भी दोष नहीं डाल सकता, इसलिए वह कहता है कि चोर के बारे में क्या ख्याल है?

हम एक दूसरे को दोषी ठहराते रहते हैं। इससे तुम्हें ऐसा भ्रम होता है कि तुम दोषी नहीं हो, कहीं कोई और ही गलत है-अ-ब-स। और यह हमारे तथाकथित मन का एक बुनियादी रुख है। हर बात में कोई और ही कसूरवार है। और जैसे ही हमें कोई बचने का रास्ता मिलता है, हम आराम से हो जाते हैं। तब बोझ फिंक जाता है। एक आध्यात्मिक साधक के लिए मन किसी भी काम का नहीं है, वह एक बाधा है। यह मन ही बाधा है। हमें यह बात ठीक से जान लेनी चाहिए कि चाहे कोई भी मामला हो, कैसी ीी स्थिति हो, हम ही उसके लिये जिम्मेवार हैं, और कोई जिम्मेवार नहीं है।

यदि तुम्हीं जिम्मेवार हो, तो फिर कुछ हो सकता है। यदि कोई और जिम्मेवार है, तो फिर कुछ भी सींव नहीं है। यही बुनियादी झगड़ा है, द्वंद्व है एक धार्मिक मन और एक गैर-धार्मिक मन में। गैर-धार्मिक मन सोचता है कि कोई और जिम्मेवार है। समाज को बदलो, परिस्थिति में परिवर्तन करो, आर्थिक स्थिति में सुधार करो, राजनीति को बदलो, कुछ-न-कुछ बदलो, और सब ठीक हो जायेगा।

हमने कितनी ही वार हर चीज बदल डाली है, और कुछ भी ठीक नहीं हुआ है। धार्मिक मन कहता है कि अगर तुम्हारा यही मन रहा तो कोई भी परिस्थिति क्यों न हो, तुम नर्क में ही रहो, तुम दुःख में होओगे, तुम उस मौन को नहीं पा सकोगे।

अपने ही ऊपर जिम्मेवारी थोपो। उत्तरदायी बनो, क्योंकि तभी कुछ हो सकता है। तुम अपने साथ ही कुछ कर सकते हो। तुम संसार में किसी को भी नहीं बदल सकते, केवल तुम अपने को ही बदल सकते हो। केवल वही क्रान्ति एकमात्र संभव है।

केवल एकमात्र रूपान्तरण सींव है और वह है स्वयं का। लेकिन वह तभी समझा जा सकता है जबकि हम यह अनुभव करें कि हम ही उत्तरदायी हैं। तुम भीतर इतने शोगुल से क्यों भरे हो? इतनी भीतरी चिनता क्या है? तुम ही जिम्मेवार हो, यह पहला कदम है। तब तुम कारण को बदले नहीं जा सकते। कारण भीतर ही है, तभी वह बदला जा सकता है।

उसी परिस्थिति में जिसमें कि तुम परेशान हो, हो सकता है कोई दूसरा बिल्कुल परेशान न हो। एक बुद्ध उसी परिस्थिति में जरा भी विचलित न होकर उससे गुजर जायेंगे, किसी प्रकार की खरोंच भी नहीं लगेगी। क्यों? तुम ऐसी परिस्थितियों में बेचैन क्यों हो उठते हो? तुम तैयार ही थे। तुम परिस्थिति की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। कोई तुम्हारे विरुद्ध क्रोधित है, तुम भी क्रोधित हो जाते हो। तुम कहते हो कि उसने ऐसा कुछ किया। तुम कहते हो कि उसने ऐसा कुछ किया। ुम कहते हो कि उसने कारण पैदा कर दिया, मैंने तो सिर्फ सुना, मैं तो क्रोधित नहीं था, उसने मुझे क्रोधित कर दिया।

किन्तु धार्मिक विश्लेषण िान्न है, धर्म कहता है कि क्रोध सदैव तुम्हारा है। क्रोध वहाँ पहले ही से मौजूद था-पैदा होने के लिए। उसने उसे भड़का दिया, यह सच है, लेकिन पहले ही से कुछ मौजूद था। वह ऊर्जा, वह प्रवृत्ति, वह क्रोध करने की आदत पहले ही वहाँ थी। इसी कारण वह उसे भड़का सका। यदि ऊर्जा ही नहीं होती, कोई इकट्ठा हुआ क्रोध नहीं होता, कोई दबा हुआ क्रोध नहीं होता, कोई आदत नहीं होती, तो वह चाहे कुछ भी करता, तुम्हें स्पश

र् नहीं कर सकता था। वह तुम्हें स्पर्श करता है क्योंकि तुम स्पर्शित होने के लिये तैयार ही थे। तुम भड़क उठने को उद्यत ही थे। उसने तो सिर्फ स्थिति पैदा की और तुम्हारी सहायता की। वह तो तुम्हारा सहायक है। यदि वहाँ कोई स्थिति मौजूद करनेवाला नहीं होता तो तुम्हीं पैदा कर लेते। तुम्हें उसकी जरूरत थी। तुम्हें उसकी बुरी तरह आवश्यकता थी।

स्मरण रखो : जब भी तुम दुबारा क्रोध करो, पूरी स्थिति का विश्लेषण करना, उसका ध्यान करना, और तब तुम जानोगे कि तुम पहले ही से तैयार थे। तुम तैयार ही थे और तुम प्रतीक्षा कर रहे थे, और इस आदमी ने तो सिर्फ तुम्हें मौका दिया।

मुल्ला नसरुद्दीन पर कोर्ट में मुकद्दमा था। अचानक बिना किसी कारण के उसने अपने ग्राहक को पीटा और फिर घर से बाहर चला गया। इसलिए मजिस्ट्रेट ने पूछा, "क्या कारण था? तुमने अचानक ऐसा क्यों किया? कोई लड़ाई भी नहीं हुई थी, कुछ भी नहीं था, तुमने अचानक ऐसा क्यों किया?"

मुल्ला ने कहा, "मैं दरवाजे पर खड़ा था, और दरवाजा खुला था और सड़क खाली थी और कोई भीड़ भी नहीं थी, और डंडा भी पास में था और पत्नी भी घर में भीतर की ओर देख रही थी, इसलिए मैने सोचा कि ऐसा अवसर मुझे नहीं चूंकना चाहिये।"

तुम अवसर पैदा कर लोगे यदि तुम्हें नहीं भी मिला तो। तुम उसे नहीं चूकोगे, तुम उसे निर्मित कर लोगे। यदि तुम घटना के प्रति जागो, तो कुछ हो सकता है। तो फिर तुम्हारे काबू में है कुछ करना। स्रोत भीतर है, लेकिन तुम उसे बाहर प्रक्षेपित करते हो। तब तुम कुछ नहीं कर सकते। यदि तुम बिना ही कारण प्रक्षेपित करते रहोगे, तो फिर तुम कुछ नहीं कर सकते, तुम निरुपाय हो। फिर तुम कर भी क्या सकते हो? यदि कोई तुम्ॅहें

उत्तेजित कर देता है, तुम्हारे भीतर क्रोध उत्पन्न कर देता है, तो फिर तुम क्या कर सकते हो? तब तुम तो सिर्फ एक निःसहाय शिकार हो।

दूसरी बात : स्मरण रहे कि जो भी तुम हो, उसके लिए तुम्हीं उत्तरदायी हो। यदि कोई तुम्हें अवसर भी देता है, तब भी वह तुम्हें अपने को ही व्यक्त करने का अवसर देता है। सदैव तुम्हीं हो जो कि आत्यंतिक रूप से जिम्मेवार हो। यह जिम्मेवारी पर इतना जोर क्यों है? क्योंकि यदि मैं ही जिम्मेवार हूँ, तो मैं प्रतिक्रियान्वित होने से अपने को रोकूँगा। तुम कुछ करते हो, मैं प्रतिक्रिया करता हूद्द। प्रतिक्रिया सिर्फ गुलामी है। तुम मुझे चला रहे हो। तुम मुझे सुखी कर रहे हो, तुम मुझे दुःखी कर रहे हो। तब तुम मेरे मालिक हो गये, मैं तुम्हारा गुलाम हो गया।

यदि तुम मेरी और देखकर मुस्कुराते हो, तो मैं प्रसन्न हो जाता हूँ; और जरा भी आँख गुस्से की दिखी और मैं दुःखी हो जाता हूँ। तब तुम मेरे मालिक हो। यदि मैं सोचता हूँ कि तुम जिम्मेवार हो, तो तुम मेरे मालिक बने रहते हो और मैं तुम्हारा गुलाम रहता हूँ। यदि मैं ही जिम्मेवार हूँ, तो चाहे तुम मुस्कुराओ, और चाहे तुम कुछ भी करो, मैं तुम्हारे कारण प्रतिक्रिया करने वाला नहीं हूँ, मैं अपने हिसाब से चलता हूँ।

मुल्ला एक मस्जिद में प्रार्थना करने के लिये बैठा था। उसका कुर्ता थोड़ा छोटा था, तो उसके पीछे बैठे आदमी ने सोचा कि यह जरा ठीक नहीं लगता, तो उसने उसे जरा नीचे खींच दिया। तुरन्त मुल्ला ने अपने आगे बैठे आदमी का कुर्ता भी नीचे खींच दिया। उस आदमी ने पूछा कि, "यह तुम क्या कर रहे हो?" उसने जवाब दिया, "मुझसे मत पूछो। यह जो आदमी मेरे पीछे बैठा है उसी ने यह सब चालू किया है। मैं जिम्मेवार नहीं हूँ। मैंने तो सिर्फ प्रतिक्रिया की है। यदि यही तरीका है-मजिस्द में प्रार्थना करने का-तो मुझे उसका अनुकरण करना चाहिये।"

तुम कुछ भी करते रहते हो क्योंकि वैसा लोगों ने तुम्हारे साथ किया है। तुम उसे दूसरों तक पहुँचाते रहते हो। चाहे तुम्हें उसका पता न भी हो। क्या तुम्हें पता है कि जब तुम कोईबात अपने बच्चों को कह रह होते हो तो तुम वही बात दोहरा रहे हो जो कि तुम्हारे पिता ने तुम्हें कही थी? यही मुल्ला नसरुद्दीन है। क्या तुम्हें इसका पता है? तुम जिस तरह अपनी पत्नी से व्यवहार कर रहे हो, वह वही है जो कि तुमने अपने पिता को अपनी माँ से कहते देखा था। तुम सिर्फ, चीजों को हस्तांतरित कर रहे हो। तुम खुद कुछ भी नहीं हो, केवल एक रास्ता हो। यह तुम क्या कर रहे हो?

जब तुम अपने नौकर के साथ होते हो, क्या तुमने कभी ख्याल किया है कि तुम किस तरह व्यवहार करते हो? क्या यही वही ढंग नहीं है, जिस तरह कि तुम्हारा मालिक दफ्तर में तुम्हारे साथ व्यवहार करता है? क्या कर रहे हो तुम? तुम सिर्फ एक लम्बी श्रृंखला के एक हिस्से हो। तब तुम मौन नहीं हो सकते। कैसे हो सकते हो मौन? तुम्हें सब तरफ से खींचा और घसीटा जा रहा है, और तुम्हें कोई भी चीज प्रभावित कर सकती है- कोई भी फालतू बात। यदि कोई क्रोधित होता है, तो तुम कहते हो कि मैं तो सिर्फ प्रतिक्रियान्वित हुआ था। वह मुझ पर क्रोधित क्यों हुआ? क्यों? वह क्रोधित हुआ, यह उसकी समस्या है। तुम्हारा उससे क्या लेना-देना? लेकिन नहीं, तुम इसे अपना कर्तव्य समझते हो, और तुम उसे बड़ी कर्तव्य बुद्धि से निभाते हो-तुम्हारे साथ कुछ भी किया जाये।

स्मरण रहे, कि तुम गुलाम नहीं हो और कसी ने भी तुम पर यह गुलामी आरोपित नहीं की है। यह तुम्हीं ने आरोपित की है। इसे फेंको। मालिक बनो। केवल तभी तुम शांत हो सकते हो। केवल एक मालिक ही मौन हो सकता है। और जब मैं कहता हूं "मालिक" तो मेरा मतलब है उस आदमी से जो कि अपने भीतर से कृत्य करता

है, जो कि प्रतिक्रियान्वित नहीं होता। हम तो सदैव प्रतिक्रिया करते रहते हैं, हमारे जीवन में कोई क्रिया ही नहीं है। जिस क्षण भी तुम कुछ क्रिया करते हो, तुम अपने भीतर एक गहरे मौन का अनुभव करते हो क्योंकि अब तुम मालिक हुए। अब तुम्हें कोई बेचैन नहीं कर सकता। अब तुम निःसहाय नहीं हो।

बुद्ध एक जगह से गुजर रहे हैं। कोई उन्हें गाली देने लगता है। बुद्ध उसकी बात सुनते हैं और तब वे आनंद की ओर मुड़ कर कहते हैं कि आनंद, यह एक पुरानी उधारी थी। अब यह चुका दी गई। किसी जीवन में मैंने इसे जरूर गाली दी होगी। अब कोई श्रृंखला नहीं, "मित्र, धन्यवाद।" बुद्ध ने उस आदमी से कहा, "अब हिसाब पूरा हुआ। मै प्रतिक्रिया करने वाला नहीं हूं। बुद्ध कहते हैं कि प्रतिक्रिया ही पुनर्जन्म है। यदि तुम प्रतिक्रिया करते हो, तो तुम्हें बार-बार जन्म लेना होगा क्योंकि तुम एक श्रृंखला मे बंधे हो। हिसाब बंद नहीं हुए हैं, खाता खुला है।

अतः तीसरी बात, मालिक बनो। जो भी तुम करो, उसे क्रिया की भांति करो, प्रतिक्रिया की भांति मत करो। प्रतिक्रिया करने के प्रलोभन को रोको। वही एक बुराई है, एक मात्र पाप-प्रतिक्रिया करना। हंसों, यदि हंसने का मन हो, किन्तु प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मत हंसो। रोओ यदि तुम्हें रोना आ रहा हो, लेकिन प्रतिक्रिया में मत रोओ। प्रतिक्रिया करना छोड़ो, क्रिया करो। यदि ये तीन बातें पूरी हों, तो तुम उसे मौन में गिर जाओगे जो कि प्रार्थना है।

यह सूत्र कहता है, मौन ही प्रार्थना है। "मौनं स्तुति"।

जब तुम्हारे भीतर कोई एकलाप नहीं चल रहा होता है और तुम मौन होते हो, भीतर कोई तनाव नहीं, कोईप्रतिक्रिया नहीं, कुछ भी अधूरा नहीं, कुछ भी लटका हुआ नहीं, सभी कुछ पूरा और समाप्त हो गया ते तुम एक आकाश हो जाते हो- सिर्फ एक आकाश। असीम आकाश। क्योंकि सारी सीमाएं तुम्हारी प्रतिक्रियाएं हैं। सारी सीमाएं तुम्हारी चिन्ताएं है। तुम्हारे स्वरूप् की सारी चिन्ताएं तुम्हारी विक्षिप्तताऐं हैं। जब तुम मौन होते हो, तो तुम एक असीम, अन्नत आकाश होते हो।

लेकिन यह सूत्र इसे प्रार्थना क्यों कहता है? यह बीच में प्रार्थना को लाने का क्या अर्थ है? अच्छा होता है कि इसे ध्यान कहते। प्रार्थना क्यों कहा? जब तुम मौन होते हो, तो वह ध्यान है। फिर प्रार्थना को बीच में क्यों लाये? इसे यूंह ी बीच में नहीं लाया गया। क्योंकि जब तुम एक असीम आकाश होते हो, तभी परमात्मा तुम्हारे भीतर उतरता है। तुमने पुकार लिया उसे, तुमने बुलावा दे दिया। जब तुम पूरी तरह मौन होते हो, तो तुम एक आतिथेय हो गये। अब दिव्य अतिथि आ सकता है। और केवल ऐसे ही खालीपन में, इसी मौन में इसी शून्यता में वह दिव्य अतिथि आ सकता है। यही एकमात्र निमंत्रण है, एक मात्र बुलावा है। यही एक मात्र प्रार्थना है।

प्रार्थना का अर्थ होता है परमात्मा को आने के लिए बुलावा देना, परमात्मा से कहना कि जाओ, मेहमान बना मेरे। कोरे शब्दों से कुछ भी न होगा, खाली निमंत्रण भेज देने से कुछ भी न होगा। तुम चाहे कुछ भी करो- रोओ, चिल्लाओ, उसे कुछ भी न होगा। पहले मेजबान बनो। मौन का मतलब है मेजबान बनना, आतिथेय बनना। अब तुम तैयार हो। अब प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। अब तो परमात्मा उतरता है। जब तुम मौन होते हो, तो परमात्मा वहां मौजूद हो जाता है।

अच्छा होगा कि दूसरे शब्दों में कहें कि परमात्मा वहां सदा ही मौजूद है, लेकिन तुम्हें उसका पता नहीं चलता क्योंकि तुम मौन ही नहीं हो। मेहमान मौजूद है, किन्तु मेजबान सोया पड़ा है। अतिथि वहां उपस्थित है किन्तु आतिथेय को कुछ खबर नहीं है। आतिथेय के पहले ही अतिथि आ चुका है किन्तु आतिथेय ही कहीं और भटक रहा है। वह भटकना ही मन है।

क्या तुमने कभी ख्याल किया कि तुम्हारा मन एक भटकन है? मन का अर्थ ही होता है घूमना। तुम यहां मौजूद नहीं हो, यही मतलब होता है मन का। तुम कहीं और ही हो। यदि तुम यहीं होओ तो फिर मन नहीं है। तब कहीं कोई घूमना नहीं है। मन वर्तमान में नहीं हो सकता, वह सिर्फ अतीत अथवा भविष्य में ही हो सकता। मन यहां और अभी में नहीं हो सकता। वह सिर्फ वहां और कभी में होता है। वह सदा भटकता रहता है। जब तुम मन होते हो, तो तुम कहीं-न-कहीं घूमते रहते हो। परन्तु अतिथि तो सदैव उपस्थित रहता है।

जब बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ, तो बुद्ध से पूछा गया कि आपको क्या मिला? उन्होंने कहा, कुछ भी नहीं क्योंकि जो भी मुझे लगता है कि मिला है वह मिला ही हुआ था, केवल मुझे पता नहीं था। इसलिए अच्छा होगा कहना कि मैंने कुछ पाया नहीं बल्कि बहुत कुछ खो दिया। मैंने अपने को ही खो दिया- जो कि बहुत ज्यादा था, मैंने अपने को खो दिया और उसे पाया जो कि सदा-सदा से था, जो कि मौजूद ही था।

हमें अपने घर लौटना है। यह घर लौटना ही मौन है। यह तुम्हारा घर वापस आ जाना ही मौन है। और ऋषि कहता है कि यही प्रार्थना है क्योंकि जब तुम मौन होते हो तो निमंत्रण पहुंच जाता है। तुमने बुला लिया। तुमने प्रार्थना कर ली।

और फिर प्रार्थना में बहुत-सी बातें शामिल ही हैं। यदि तुम प्रार्थना करते हो, और यदि वस्तुतः ही यह प्रार्थना है, तो फिर तुम्हारी प्रार्थना का उत्तर आने में कोई भी अन्तराल नहीं है। यदि बीच में अंतराल है तोप्रार्थना झूठी है।

यदि तुम मौन हो, तो परमात्मा उपस्थित ही है। फिर कोई भी अन्तराल नहीं है। यदि तुम मौन हो और तुम पाते हो कि परमात्मा उपस्थित नहीं है, तो याद रखना कि तुम मौन नहीं हो। यह विचार भी कि "परमात्मा को मेरे पास आना चाहिए" सब गड़बड़ कर देता है।

बुद्ध ने कहा है कि परमात्मा की आकांक्षा करना भी बाधा बन जाती है। तब तुम समग्ररूप से मौन नहीं हो सकते। तुम मांग रहे हो, इसलिए तुम दूर चले गये। तुम भटक गये, तुम दूर निकल गये। यदि तुम मोक्ष भी मांग रहे हो-शाश्वत जीवन, अमरत्व, स्वर्ग या कुछ भी मांग रहे हो, तो तुम चले गये। समग्र मौन का अिर् होता है, समग्र स्वीकार जो भी है उसका। अतः आखिरी बात यह समझ लेनी है कि मौन का मूलभूत अर्थ होता है समग्र स्वीकार।

अस्वीकार ही हमारे मन में, हमारे स्वरूप में शोर उत्पन्न करता है जब भी तुम किसी बात के लिए "ना" कहते हो, तो तुम्हारा मनचला मन काम करने लगा। जब भी तुम "हां" कहते हो, तो तुम्हारा मन रुक जाता है। "ना" ही शुरू करनेवाला है, "हां" रोकनेवाला है। आस्तिक का अर्थ होता है, थीइस्ट। संस्कृत में, आस्तिक का अर्थ होता है, जिसने हर बात के लिए आखिरी "हां" कह दी। अब वह कभी "ना" नहीं कहेगा। अब वह "हां" ही अन्तिम है। अब इससे पीछे नहीं लौटना।

स्वीकार का अर्थ होता है कि अब तुम जो भी है उसे स्वीकार करते हो। यदि क्रोध है, तो तुम स्वीकार करते हो। यदि दुख है, तो तुम स्वीकार करते हो। यदि लोभ है, उसे भी तुम स्वीकार करते हो। यदि चिन्ता है, परेशानी है, उसे भी स्वीकार करते हो। तुम हर बात को स्वीकार करते हो। तब तुम कैसे अशांत हो सकते हो? इसलिए आखिरी विशेषण में मौन का अर्थ होता, समग्र स्वीकार।

बुद्ध ने उसे नाम दिया है : वे उसे कहते हैं, तथाता-सचनेस। वे कहते हैं कि जो भी कुछ है, वह है। जो भी कुछ है, है। उसे स्वीकार करो, और तुम मौन हो जाओगे। कहो "ना", मना करो, बदलने का प्रयत्न करो और तुमने

अशान्ति को पैदा कर दिया। यह जो मौन है, यह प्रार्थना है। और इस मौन को पैदा नहीं किया जा सकता है, ऊपर से थोपा नहीं जा सकता है।

जीवन में, जो भी कीमती है, जो भी मूल्यवान है, वह सदा बहुत-सी चीजों का परिणाम है। तुम उस तक सीधे नहीं पहुँच सकते। उदाहरण के लिए-सुख, प्रसन्नता। तुम उसे सीधे नहीं पा सकते। और जो लोग भी कीमती है, जो भी मूल्यवान है, वह सदा बहुत-सी चीजों का परिणाम है। तुम उस तक सीधे नहीं पहुँच सकते। उदाहरण के लिए-सूख, प्रसन्नता। तुम उसे सीधे नहीं पा सकते। और जो लोग भी सुख को सीधे पाना चाहते हैं, वे सर्वाधिक दुःखी होते हैं-और सिर्फ अपने प्रयास के कारण। जब भी तुम कुछ करते हो, उसमें पूरी तरह डूब कर करो, तो सुख मिलता है।

एक चित्रकार चित्र बनाता है। वह उसके बनाने में अपने को पूरी तरह भूल गया। वह वहाँ पूरी तरह मौजूद है, फिर भी वस्तुतः, वह वहाँ नहीं है। सचमुच एक महान चित्रकार चित्र कभी नहीं बनाता, चित्र भी बनता है।

वानगॉग से एक बार पूछा गया कि तुम्हारे सारे चित्रों में से सबसे सुन्दर चित्र कौन-सा है? तो वानगाग ने कहा कि मैंने तो कोई भी चित्र नहीं बनाया। मैं नहीं बता सकता। और यदि तुम बहुत ही जोर देते हो, तो कहता हूँ कि यह जो कि अभी बनाया जा रहा है, अभी लेकिन मैं उसका चित्रकार नहीं हूँ, चित्र तो बन रहा है। चित्रकार मौजूद नहीं है।

वानगॉग को एक आनंद मिल सकता है लेकिन वह इस जगत का नहीं होगा। एक गायक, एक नृत्यकार आनंदित हो सकते हैं लेकिन वह आनंद किसी और जगत का होगा। और वस्तुतः वह किन्हीं और बातों के परिणामस्वरूप होगा।

मौन भी बहुत-सी बातों के परिणामस्वरूप होता है-सम्यक जीवन, सम्कयक कृत्यु, सम्यक स्वीकार, सम्कयक आतिथेय होने के परिणामस्वरूप। तब अचानक मौन घटित होता है। वह वहाँ है ही। वह वहाँ सदा ही उपस्थित है।

आज इतना ही।

तेरहवां प्रवचन

संतोष तथा स्वीकार से विकास

प्रश्न

1. क्या विकास असन्तोष तथा अस्वीकार का परिणाम नहीं है?

2. व्यक्ति अथवा परिस्थिति-कौन जिम्मेवार है, तथा क्या धार्मिक व्यक्ति की समाज को बदलने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए?

भगवन! कल रात्रि आपने कहा कि समग्र स्वीकार से कोई विकसित रह गया जबकि पश्चिम अस्वीकार व संतोष के कारण ही विकसित हुआ।

इसलिए, क्या यह स्पष्ट नहीं है कि असंतोष व अस्वीकार ही विकास और आगे बढ़ने के लिए एकमात्र सिद्धान्त है?

कृपया समझायें।

बहुत-सी बातें समझनी पड़ेंगी।

एक-लाओत्से, कृष्ण, बुद्ध, महावीर इन सब को मिलाकर भी उनमें समूचा पूर्व नहीं समाता। उन्होंने स्वीकार सिखाया लेकिन पूर्व में किसी ने भी स्वीकार को नहीं समझा। और जिन्होंने भी उसे समझा वे विकसित हुए। लाओत्से मनुष्य की शुद्धतम संभावना को उपलब्ध हुआ-बड़ी-से-बड़ी संभावना को पहुँचा जहाँ कि मनुष्य पहुँच सकता है। बुद्ध स्वीकार व संतोष से एक दिव्य विभूति को उपलब्ध हुए। लेकिन पूर्व ने इन सिद्धान्तों का अनुकरण नहीं किया। सिर्फ इसलिए कि वे पूर्व में पैदा हुये थे, इसका यह अर्थ नहीं है कि पूर्व उन्हें मानता रहा है। तो यह पहली बात है।

दूसरी बात, पश्चिम विकसित हुआ है, लेकिन एक ऐसे संकट की स्थिति तक, एक मन की ऐसी रुग्ण अवस्था तक विकसित हुआ है कि पश्चिम अब पूर्व की ओर देख रहा है। पश्चिम ने असंतोष के सिद्धान्त को माना है, और एक अर्थ में पश्चिम पूर्व से ज्यादा ईमानदार है। पूर्व बेईमान है।

हम कृष्ण की पूजा करते चले जाते हैं, बुद्ध और महावीर की उपासना करते चले जाते हैं, ओर हम सोचते हैं कि हम उनका अनुकरण कर रहे हैं। हमने कभी उनका अनुकरण किया ही नहीं। केवल होंठो तक ही बात रही। किन्तु, पश्चिम ने उसे माना और अब वह उसके शिखर पर पहुँचा गया है। अब उन्हें लगता है कि सारा जीवन ही अर्थहीन है क्योंकि जो कुछ भी उन्होंने प्राप्त किया है, वह सब अर्थहीन सिद्ध हो रहा है। वस्तुओं का विकास हुआ है, न की चेतना का। उन्होंने बहुत कुछ इकट्ठा कर लिया है, लेकिन मनुष्य और-और रिक्त हो गया है।

और अब जबकि सब कुछ उपलब्ध कर लिया गया है, अब जबकि पश्चिम अपनी आकांक्षा की पूर्ति में सफल हो गया है, तो असमता स्पष्ट हो गई है। आदमी खाली-का-खाली है-अविकसित। इसलिए पश्चिम के विचारक पश्चिम के महान बुद्धिजीवी लोग बुद्ध, लाओत्से तथा महावीर की भाषा में सोचने लगे हैं। अब उन्हें असंतोष की अनुपयोगिता का पता चल गया है। असंतोष और अधिक असंतोष को जन्म देता है और तृप्ति असंभव हो जाती है। एक असंतोष से तुम दूसरे असंतोष को जाते हो, और उससे तीसरे को, और इस तरह सन्तोष व शान्ति को कभी नहीं पहुँचते।

यही बात उपनिषद कहते हैं। वे कहते हैं कि यदि तुम सन्तोष व शान्ति से शुरू करो तो तुम शान्ति हो। क्योंकि प्रारंभ ही अन्त है, बीज ही वृक्ष है। जो बीज में नहीं है वह वृक्ष में भी नहीं हो सकता। यदि सन्तोष शुरू में है, आधार है, तुम्हारे मन की भूमि है, जड़ें हैं, केवल तभी सन्तोष के फूल लग सकते हैं। वे फूल कहीं और से नहीं आ रहे हैं। वे तुम्हारे ही भीतर से उगते हैं, वे तुम्हारा ही विकास हैं। अतः यदि प्रारंभ में तुम सन्तुष्ट हो, तो तुम उसे अन्त में भी पाओगे।

यदि तुम असंतोष से प्रारंभ करो, तो असंतोष ही पैदा होगा और वह कभी भी सन्तोष में परिवर्तित नहीं होगा। जितना तुम उसके पीछे भागोगे उतना ही अधिक वह वहाँ होगा। और यदि असंतोष बढ़ता ही जाये तो अन्ततः परिणामस्वरूप विक्षिप्तता उपजेगी। एक विक्षिप्त मनुष्य का मतलब होता है एक ऐसा आदमी जो कि पूरी तरह असंतुष्ट है, जिसे कोई आशा नहीं है, पूरी तरह निराशा से घिरा है।

अब पश्चिम एक तृप्ति को पहुंच गया है-अपनी आकांक्षा की तृप्ति को। पश्चिम प्रामाणिकरूप से ईमानदार है। उसने एक खास रास्ता अपनाया था और जब तुम कहीं, किसी रास्ते पर चलते हो, तो ही पता चलता है कि यह कहीं पहुँचता है या नहीं।

पूर्व को कुछ स्पष्ट नहीं रहा। इसके नेता संतोष की बात करते रहे और यहां के लोग अपने को धोखा देते रहे। ये लोग संतुष्टि की चर्चा करते रहे और असंतोष में जीते रहे। पूर्व ऊपर से बुद्ध के साथ रहा, केवल ऊपर से। वास्तव में वह बुद्ध के साथ जरा भी नहीं रहा। जब मैं कहता हूँ "पूर्व", तो मेरा मतलब पूर्व के अधिकतम लोगों से है। वे उतने ही भौतिकवादी हैं जितने कि पश्चिम के लोग, किन्तु एक झूठे चेहरे के साथ, एक मुखौटे को लगाये हुए।

पूर्व भी उतना ही अधार्मिक है, जितना कि पश्चिम किन्तु बेईमानी के साथ। हम सोचते चले जाते हैं कि हम धार्मिक लोग हैं, लेकिन हम हैं नहीं। इसलिए हम एक गहरी खाई में पड़े हैं, एक गहरे उलझाव में हैं। हम कहीं भी नहीं पहुंचे-उपनिषदों के कारण से नहीं, बल्कि सच तो यह है कि हम उनके अनुसार कभी चले ही नहीं। हम चले ही नहीं क्योंकि हम दो नावों पर सवार रहे। हम दो विपरीत दिशाओं में यात्रा करते रहे। हमारा मन अध्यात्म की बात करता रहा, और हमारा मन भौतिकवाद के पीछे चलता रहा।

यही कारण है कि पूर्व सब आयामों में दरिद्र रह गया-केवल भौतिक व आर्थिक अर्थों में ही नहीं, अध्यात्म में भी, क्योंकि किसी भी आध्यात्मिकविकास के लिए ईमानदारी आधारभूत बात है। अच्छा है कि अधार्मिक हों बजाय झूठे धार्मिक होने के क्योंकि एक ईमानदार अधार्मिकता से धर्म भी पैदा हो सकता है। लेकिन एक बेईमान धार्मिक मनुष्य के साथ धर्म के विकास की कोई संभावना नहीं है।

इसलिए इसे स्मरण रखें कि पूर्व वस्तुतः पूर्व नहीं है। केवल थोड़े से लोग ही हैं जिन्हें कि हम पूर्व का कह सकते हैं। अतः वास्तव में पूर्व और पश्चिम कोई भौगोलिक स्थान नहीं हैं। यह विभाजन थोड़ा ज्यादा सूक्ष्म है। पश्चिम में ऐसे लोग हुए हैं जो कि पूर्व के हैं। जीसस पूर्व के हैं, इकहार्ट पूर्व के हैं, फ्रांसिस पूर्व के हैं, बोहमे पूर्व के हैं। ये सारे लोग पश्चिम के नहीं हैं। और तुम पश्चिम के लोग हो, तुम पूर्वी नहीं हो। इसलिए पूर्व और पश्चिम भौगोलिक विभाजन नहीं है। "पूर्व" का मतलब है कि जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण पश्चिम का अर्थ है कि एक खास प्रकार का दृष्टिकोण।

हम अचेतनरूप से भौतिकवादी हैं। इसलिए तुम भौतिकवाद में भी विकसित नहीं हो सकते, क्योंकि विकास का अर्थ होता है-एक सचेतन प्रयास। तुम भौतिकवाद में भी बढ़ नहीं सकते क्योंकि तुम सचेतन रूप से

भौतिकवादी नहीं हो, और तुम चेतना की दूसरी ऊँचाईयों को भी नहीं पहुँच सकते क्योंकि तुम झूठे हो बनावटी हो। इसलिए पहली बात यह है कि यह एक बड़ी उलझन है।

दूसरी बात : जब हम कहते हैं कि स्वीकार, तो हमारा क्या अर्थ होता है? जब उपनिषद कहते है, स्वीकार ही आनन्द है, निर्वाण है, तो उनका क्या अर्थ है? क्या इसका मतलब है, मर जाना, रुकना, सड़ना? नहीं। इसका अर्थ है कि जो भी होता है, जो भी है, और जो भी हो रहा है, हम उसके विरुद्ध नहीं हैं, हम उससे नहीं लड़ेंगे। हम उसके साथ बहेंगे।

उदाहरण के लिए-जैसे, कि एक बीज है। वह अपने को स्वीकार कर लेता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अब वह बीज विकसित नहीं होगा। एक बीज का अर्थ ही होता है एक विकास की संभावना, और तो उसका कुछ मतलब नहीं होता। एक बीज अपने को स्वीकार कर लेता है, इसका अर्थ है कि विकास को स्वीकार कर लिया। वह एक प्राकृतिक बात है। बीज वृक्ष होने का प्रयास नहीं करता, क्योंकि प्रयास का अर्थ है कि तुम ऐसा कुछ होने की कोशिश कर रहे हो जो कि तुम नहीं हो। इसे स्मरण रखें-प्रयास की आवश्यकता तभी है जबकि तुम कुछ और होने का प्रयत्न कर रहे हो जो कि तुम नहीं हो। और जो भी तुम नहीं हो, वह तुम कभी भी नहीं हो सकते, चाहे कितना ही प्रयत्न करो।

हम केवल स्वयं होने े लिये ही विकसित होते हैं, इसलिए प्रयत्न करो। गहरे अर्थों में बेकार है। तुम ऊर्जा व्यय कर रहे हो। संघर्ष व्यर्थ है, तुम ऊर्जा बर्बाद कर रहे हो। स्वीकार का अर्थ अविकास नहीं है। उसका अर्थ है विकास का प्राकृतिक रूप से बहाव, बिना किसी प्रकार के संघर्ष के। संघर्ष एक रुग्ण चित्त को निर्मित करता है। और संघर्ष भी क्यों? किसके विरुद्ध तुम संघर्ष कर रहे हो? जो भी तुम्हारे लिये संभव है तुम उसमें सरलता से विकसित हो सकते हो। स्वयं को समग्ररूप से स्वीकार करो और अस्तित्व के साथ बहो। विकास होगा और यह विकास नैर्सिंक होगा। स्वतःस्फूर्त होगा। इसमें कोई तनाव नहीं होगा। एक बुद्ध, बुद्ध हो जाते हैं। वस्तुतः उसमें कोई भी प्रयास नहीं है, उसमें सिर्फ बहाव है।

यदि तुम बुद्ध होना चाहो तो उसमें संघर्ष है। बहुतों ने कोशिश की है, हजारों ने बुद्ध होने का प्रयत्न किया है। तब वह एक संघर्ष है, क्योंकि वह बुद्धत्व उनका बीज नहीं है। वे कुछ और हो सकते हैं, उनकी नियति कुछ और है। लेकिन वे किसी और की नकल करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस तरह हजारों लोगों ने बुद्ध का अनुसरण किया, लेकिन वे एक भी बुद्ध को पैदा न कर पाये। उन्होंने नकली बुद्धों को पैदा किया, उन्होंने नकलें तैयार कीं, कॉरबन कापियाँ-झूठी, मुर्दा, निर्जीव। जब भी तुम किसी का अनुकरण करते हो, तो तुम्हें संघर्ष करना पड़ता है। जब भी तुम अपनी स्वयं की नियति स्वीकार कर लेते हो, तो फिर किसी संघर्ष की जरूरत नहीं होती। तुम उसमें विकसित होते हो। और प्रत्येक व्यक्ति अपूर्व है, और प्रत्येक व्यक्ति की अपनी नियति है।

स्वीकार का अर्थ है-वही हो जाओ जो कि समग्र अस्तित्व तुम्हारे द्वारा होना चाहता है। लड़ो मत। यदि तुम गुलाब का फूल हो, तो गुलाब ही हो जाओ। कमल होने का प्रयत्नम त करो। तब कोई संघर्ष नहीं है। एक गुलाब का फूल गुलाब का फल हो जाता है। लेकिन उसे सिखाओ, समझाओ, तो एक गुलाब की कली सोच सकती है, कल्पना कर सकती है किवह कुछ और है। तब उसमें संघर्ष होगा, तनाव और चिन्ता होगी। और सारी कोशिशें ही बेकार चली जायेगी। और उससे कोई विधायक नतीजा नहीं निकलेगा, इतना ही नहीं, बल्कि उससे निषेधात्मक परिणाम भी होगा।

यदि एक गुलाब का फूल, कमल का फूल होने का प्रयत्न करे तो वह असंभव है। अतः वह संभावना तो होती ही नहीं, लेकिन साथ ही उस प्रयास में, कमल होने के संघर्ष में, यह संभव है कि अब यह फूल गुलाब का फूल भी न हो पाये, क्योंकि उसकी ऊर्जा नष्ट हो गई। समग्र स्वीकार का सिद्धान्त यह है कि स्वयं को स्वीकार करो और प्रकृति के साथ बहो, जहाँ भी वह ले जाये। वही तुम्हारी नियति है। बीच में मत आओ, अपने को खींचकर कुछ और बनाने की कोशिश मत करो। वही संघर्ष है।

यही अर्थ है ताओ का, यही अर्थ है धर्म का, यही अर्थ है आंतरिक स्वभाव का। इसका अनुकरण करो। और जब मैं कहता हूँ, इसका अनुकरण करो, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि कुछ प्रयत्न करो। वस्तुतः मेरा मतलब है, उसे होने दो, तुम्हारी जो भी नियति है उसे होने दो, तुम्हारी नियति को विकसित होने दो। तब एक दूसरा ही विकास होता है-चेतना का विकास, वस्तुओं का नहीं। अतः स्वीकार से तुम्हें कोई बड़ा घर प्राप्त नहीं होगा किन्तु तुम्हें एक और बड़ी आत्मा उपलब्ध होगी। तुम आिर्न्थकरूप से धनवान नहीं हो जाओगे, लेकिन तुम अवश्यमेव आध्यात्मिक रूप से धनी हो जाओगे।

जीसस कहते हैं कि यदि तुम यह सारा संसार भी पा लो और अपने आप को खो दो, तो उसका क्या अर्थ होगा? तुम भिखारी हो, और तुम भिखारी ही रहोगे। और यदि तुम स्वयं को पा लो, और सारा संसार खोभी दो, तो तुमने कुछ भी नहीं खोया। यही पूर्व का बुनियादी रुख है जीवन के प्रति-क्योंकि पूर्व का कहना है कि सुख वस्तुओं में नहीं है किन्तु तुम्हारे चैतन्य में है। उसका वस्तुओं से कुछ लेना-देना नहीं है, उसका तुमसे लेना-देना है, तुम्हें विकसित होना है।

वस्तुएँ विकसित हो सकती हैं। वस्तुएँ ज्यादा, और ज्यादा हो सकती हैं। लेकिन उनको पाना "होना" नहीं है। तुम सारे संसार को पा सकते हो बिना भीतर किसी भी आत्मा के, और तुम सड़क के भिखारी भी हो सकते हो अपनी भीतरी बादशाहत के साथ। वह स्वरूप का विकास ही सही अर्थों में विकास है। और जब स्वीकार सिखाया जाता है तो वह हमारे स्वरूप के विकास के लिये ही सिखाया जाता है। जिन्होंने भी इस बात को सीखा है और इस पर चले हैं, वे विकसित हुए हैं। और उनकी कोई तुलना नहीं है।

हजारों, लाखों लोगों ने अस्वीकार, असन्तोष का अनुकरण किया है, सारे संसार ने, सारी मनुष्यता ने उसे ही अपनाया है, किन्तु अस्वीकार पर चलने वालों ने एक भी बुद्ध को जन्म नहीं दिया। एक भी जीसस अथवा एक भी लाओत्से को पैदा नहीं किया।

सचमुच बाह्य विकास असन्तोष पर ही निर्भर है, किन्तु आंतरिक विकास सन्तोष पर निर्भर है। अब यह तुम्हारी मर्जी है। यदि तुम वस्तुओं का ढेर लगाना चाहो, तो तुम लगा सकते हो, लेकिन तब तुम सिर्फ एक नौकर हो जो कि चीजों का ढेर लगाता जाता है। और तब मृत्यु आती है और सब खो जाता है, और जो कुछ भी तुमने पाया था, मृत्यु उस सबको मिटा डालती है।

एक और भी विकास है-आंतरिक विकास-जिसे कि मृत्यु भी नष्ट नहीं कर सकती। बुद्ध कहते हैं कि जब तक तुमने ऐसा कुछ उपलब्ध नहीं कर दिया है जिसे कि मृत्यु भी नहीं मिटा सकती, तब तक तुमने कुछ भी नहीं पाया। ऐसा कुछ पाओ जो कि मृत्यु भी नहीं मिटा सकती, तब तक तुमने कुछ भी नहीं पाया। ऐसा कुछ पाओ जो कि मृत्यु भी नहीं मिटा सकती, तब तक तुमने कुछ भी नहीं पाया। ऐसा कुछ पाओ जो कि मृत्यु का भी अतिक्रमण कर जाये। केवल तभी तुम विकसित हुए। अन्यथा मृत्यु भी नहीं मिटा सकती, तब तक तुमने कुछ भी नहीं पाया। ऐसा कुछ पाओ जो कि मृत्यु भी नहीं मिटा सकती, तअब तक तुमने कुछ भी नहीं पाया। ऐसा कुछ

पाओ जो कि मृत्यु का भी अतिक्रमण कर जाये। केवल तभी तुम विकसित हुए। अन्यथा मृत्यु तुम्हारा हर जीवन नष्ट कर डालती है और तुम फिर से भिखारी हो जाते हो और पुनः तुम्हें अ-ब-स से प्रारंभ करना पड़त है।

विकास का अर्थ होता है एक सातत्य, जीवन प्रवाह। लेकिन वस्तुएँ तुम्हारे साथ नहीं जा सकतीं। जो भी तुम्हारे पास है वह तुम्हारा नहीं है। वह सब मृत्यु का है, वह सब इस संसार का है। वह तुम्हारा नहीं है। तुम सिर्फ अपने को धोखा दे रहे हो। इस तरह तुम अपने को धोखा दे सकते हो। तुम्हारा विकास तुम्हारे सन्तोष से होता है। और जब मैं कहता हूं सन्तोष, तो मेरा मतलब लाचारी से नहीं है। इसे याद रखें।

अतः यह तीसरी बात है। एक व्यक्ति अपने को सांत्वना देने के लिए सन्तुष्ट आरोपित कर सकते हो। तुम कह सकते हो कि ठीक है, यही मेरी किस्मत है, इसे मैं स्वीकार करता हूं। लेकिन भीतर गहरे में यह स्वीकार नहीं है। यह सिर्फ स्वयं को सांत्वना देने के लिये है। यदि कोई अवसर अमीर होने का आ जाये, तो तुम उसे खोने वाले नहीं हो। और यदि कोई कहता है कि यह धन तुम अपने सन्तोष के बदले में ले लो, तो तुम अपना सन्तोष फेंक दोगे और वह धन स्वीकार कर लोगे।

अतः हारा हुआ सन्तोष, सन्तोष नहीं है। वह तो सिर्फ तुम्हारा चेहरा बचाने की तरकीब है। तुम हारे हुए अनुभव करना नहीं चाहते, इसलिए तुम सन्तोष का नाटक करते हो। बहुत से लोग ऐसे सन्तोष का पालन करते रहते हैं, लेकिन यह उपनिषदों की शिक्षा नहीं है। उपनिषदों के लिए सन्तोष का अर्थ लाचारी नहीं है, हारा हुआ होना नहीं है। वस्तुतः वह एक गहरी समझ है।

जीवन कुछ ऐसा है कि तुम सिर्फ उसके एक हिस्से हो, एक बहुत छोटे से हिस्से। और सर्व बहुत बड़ा है- एक आरगेनिक होल, एक जीवन्त सर्व है। यह ऐसे ही है जैसे कि मेरी उंगलियाँ मेरे जीवित शरीर के अंग हैं। वे मेरे शरीर के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकती, वे मेरे शरीर के खिलाफ कुछ चाह भी नहीं सकतीं। वे कुछ और नहीं हैं, बस मेरे शरीर का एक हिस्सा मात्र हैं। यदि मेरा शरीर बीमार हो जाये, तो वे बीमार हो जायेंगी। यदि मेरा शरीर मर जाये, तो वे भी मर जायेंगी। यह समझें कि मैं इस सर्व का एक हिस्सा मात्र हूँ, कि मैं इसके साथ बहूँगा, कि मैं इससे नहीं लडूंगा, यही सन्तोष है।

यह एक गहरी समझ है। स्मरण रहे कि सन्तोष शब्द का जो अर्थ किया जाता है, उससे यह सन्तोष एक इतनी भिन्न बात है कि इसे समझना भी बहुत कठिन है। इस प्रकार का आदमी हर हालत में सन्तुष्ट होगा। चाहे वह गरीब हो, चाहे अमीर हो। इस दूसरे हिस्से को भी याद रखें। वह गरीब होने का भी प्रयत्न नहीं करेगा क्योंकि वह भी प्रयास है। वह गरीब होने की भी कोशिश नहीं करेगा क्योंकि वह भी एक आकांक्षा है। तब फिर वह समग्र से लड़ रहा होगा; फिर वह किसी बात के लिए मना कर रहा होगा, स्वीकार नहीं कर रहा होगा।

यदि समग्र की यही मरजी है कि वह अमीर हो, तो ठीक है, वह अमीर होगा। यदि समग्र की मर्जी है कि वह गरीब हो, तो वह गरीब होगा। वह अमीरी से गरीबी में आसानी से आ-जा सकता है। वास्तव में, वह हवाओं में एक सूखे पत्ते की भाँति होगा। जहाँ कहीं भी हवाएँ ले जायें, वह चला जायेगा। उसकी कोई मरजी नहीं है, उसका कोई अहंकार नहीं है, उसकी अपी कोई व्यक्तिगत आकांक्षा नहीं है। समग्र की इच्छा ही उसकी इच्छा है। यही स्वीकार है। और जब कोई ऐसे स्वीकर में जीता है, तो वह आंतरिक विकास के उच्चत्तम शिखर पर पहुँच जाता है।

यह पूर्वीय धर्म का अंतरतम प्राण है, किन्तु पूर्व ने इसका अनुगमन नहीं किया। जिन्होंने इसका पालन किया वे विकास की अन्तिम ऊँचाईयों तक पहुँचे। जिन्होंने इसे नहीं माना और ऐसा दिखाया कि वे इसका पालन कर रहे हैं, वे आंतरिक संघर्ष में पड़े।

पूर्व में अधिकतम लोग इस प्रकर से आंतरिक सांर्ष में पड़े हैं। वे सोचते हैं कि वे धार्मिक हैं, और वे हैं नहीं। और यह विचार कि ये आध्यात्मिक हैं, बाधा बन जाता है, क्योंकि यदि कोई रुग्ण है और सोचता है कि स्वस्थ है तो फिर उसकी कोई चिकित्सा संभव नहीं है। एक रुग्ण आदमी को जानना चाहिए कि मैं रोगी हूँ, यह पहला कदम है स्वास्थ्य की तरफ या स्वास्थ्य की कोई भी संभावना की ओर।

अस्वस्थ आदमी स्वयं को स्वस्थ समझे, यही सबसे भयानक बीमारी है क्योंकि तब सब द्वार ही बन्द हो जाते हैं। लेकिन ऐसा होता है, और आदमी बड़ी आसानी सेअपने को धोखा दे सकता है। अतः यह संभव है कि पश्चिम और-और पूर्व हो जाये और पूर्व अधिक और अधिक पश्चिम हो जाये। यह हो ही रहा है।

वह दिन दूर नहीं है जबकि सूरज पश्चिम में उगेगा क्योंकि पश्चिम की जो शिखर की चेतनाएँ हैं, जो कि ऊँचे-से-उँचे प्रबुद्ध व्यक्ति हैं, जो कि आगे की ओर देख सकते हैं, वे सब पूर्व की ओर मुड़ रहे हैं। और पूर्व में इससे बिल्कुल उलटा हो रहा है। वह जो तथाकथित बौद्धिक वर्ग है, जो बुद्धिजीवी हैं वे कम्युनिस्ट हो रहे हैं। यदि पूर्व में तुम कम्युनिस्ट नहीं हो, तो कोई बुद्धिमान मानने को तैयार नहीं होगा। बिल्कुल यह संभव है कि तुम बुद्धिजीवी हो और साम्यवादी नहीं हो। लेकिन जो साम्यवादी नहीं हैं वे भी साहस के साथ नहीं कह सकते कि वे साम्यवादी नहीं हैं। और वे जो साम्यवादी नहीं हैं, वे अपने को कम-से-कम समाजवादी तो कहेंगे ही। यह उनका मुखौटा है। वे जो कि पूरी तरह साम्यवाद के विरोधी होंगे, वे भी साम्यवाद, समाजवाद, समानता की बातें करेंगे।

अभी तो पूर्व में एक भी पूर्वी मन ढूंढना बहुत कठिन है। बड़ा सोवियत रूस में भी साम्यवाद पुराना हो गया। सोवियत बौद्धिक वर्ग, सोवियत के अति बुद्धिजीवी लोग भी अब आंतरिक संसार की खोज कर रहे हैं। सारे संसार में सोवियत रूस ही एक अकेला देश है जो मनोवैज्ञानिक खोज में इतना अधिक धन खर्च कर रहा है कि अमेरिका भी उससे पीछे है। रूस के बहुत-से विश्वविद्यालयों में, मन-संगत खोज सारे अनुसन्धान कार्यक्रम का एक अनिवार्य अंग हो गई है।

मनुष्य केवल पदार्थ नहीं है, मनुष्य मन भी है। और जब तक हम कुछ मन के बारे में नहीं जान लेंगे, कुछ भी संभव नहीं है। आदमी को बदला नहीं जा सकता, कोई क्रान्ति संभव नहीं है। किन्तु पूर्व में, तथाकथित पूर्व में, भौगोलिक पूर्व में अध्यात्म, धर्म के बारे में बात करना अन्धविश्वास हो गया है। यदि पूर्व में आज कोई धर्म की बात करे, तो तथाकथित बुद्धिजीवी सोचते हैं कि यह प्रतिक्रियावादी है, क्यों हो रहा है ऐसा?

पश्चिम ने भौतिकवाद का अनुगमन किया है, लेकिन पूरी ईमानदारी के साथ, पूरे मन से। और ईमानदारी सदैव लाभ पहुँचाती है, वह सदा कुछ देती है। अब उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जो कुछ भी वे कर रहे थे गलत है। और वे बुनियादी रूप से गलत रहे हैं। और वे ईमानदार लोग हैं, इसलिए वे इसे स्वीकार करते हैं। हम लोग बेईमान हैं, हम कुछ भी स्वीकार नहीं कर सकते। हम बदलते रहते हैं लेकिन ऊपर सतह पर हम वही पुराना चेहरा लगाये रखते हैं। हम कभी मानने को राजी ही नहीं होते कि हम गलत रहे हैं। यह चित्त का लक्षण, एक बहुत ही स्वस्थ है कि कोई स्वीकार करे कि वह गलत है क्योंकि वह यह बताता है कि जो कुछ भी किया गया था, उसे अनकिया किया जा सकता है। अब तुम अपना मार्ग बदल सकते हो, तुम दूसरी दिशा में जा सकते हो।

पूर्व एक दोहरा जीवन जीता रहा है। वह सदा स्वर्ग की ओर देखता रहा है और सदा जमीन पर जीता रहा है। उससे ही सारी गड़बड़ पैदा होती है, क्योंकि जाते हो। तुम आकाश की तरफ देखते रहते हो, और वहाँ चलने के लिये कोई मार्ग नहीं है। अतः हमारा मन बँटा हुआ है, खंड-खंड है, स्किजसेफ्रेनिक है। एक साथ जीते हैं

हम-दो जीवन। जो कुछ भी तम कहते हो, तुम जानते हो कि सही नहीं है, उसे किया नहीं जा सकता। लेकिन फिर भी तुम उसे कहे चले जाते हो।

एक वृद्ध सज्जन यहाँ पर थे। वे एक बड़े प्रोफेसर रहे हैं-भारत के अग्रणी शिक्षा शास्त्रियों में से एक हैं-और उन्हें भारत की विश्वविद्यालयों की दशा से बहुत पीड़ा है। वे मुझे कह रहे थे कि उनकी सन्तान का भविष्य बहुत अंधकार पूर्ण है, और वे कह रहे थे कि मेरे स्वयं के बच्चे भी मेरी सुने के लिये राजी नहीं हैं। कोई नैतिकता नहीं है, कोई धर्म नहीं है, कोईईमानदारी नहीं है। यह सब क्या हो रहा है?

अतः मैंने उनसे कहा कि अपने बच्चों का तुम जो कुछ भी शिक्षा दे रहे हो, क्या तुम भी उसका अनुगमन करते हो? क्योंकि तुम जीवन में एक बहुत ही सफल व्यक्ति रहे हो-बहुत ही सफल। तुम चोटी तक पहुँचे। वे वाइस-चांसलर रहे और कितने ही पदों पर रहे। अतः मुझे ईमानदारी से बताओ कि जो कुछ भी शिक्षा तुम अपने बच्चों को दे रहे हो, क्या तुमने भी उसे माना?

वे बेचैन हो गये लेकिन वे ईमानदार आदमी थे। अतः कहने लगे कि मुश्किल है ईमानदार होना और साथ ही सफल होना। इसलिए मैंने पूछा कि वे अपने बच्चों से क्या चाह रहे हैं, ईमानदार होना या सफल होना? मैंने उनसे कहा कि वास्तव में, आपके बच्चे आपसे ज्यादा ईमानदार है क्योंकि वे इस पाखंड को देख पा रहे हैं। वे कहते हैं कि चूँकि हमें सफल होना है, ईमानदारी की बात क्यों करते हैं? तब बेईमानी की बात करो और सफल होओ। और यदि हमें ईमानदार होना है, तो सफलता की सारी महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़ो। तब असफल हो जाओ और ईमानदार रहो। इन विद्यार्थियों को उलझन में क्यों डालते हो?

लेकिन वे सोचते हैं कि वे एक नैतिक व्यक्ति हैं और उनके बच्चे अनैतिक हैं। बच्चे सिर्फ इतना ही कह रहे हैं कि तुम्हारा सारा सोचतने का ढंग और जीने का तरीका एक पाखंड है। यदि ईमानदारी का ही अनुगमन करना है तो फिर सफलता की उम्मीद ही मत करो। अगर फिर भी सफलता मिल जाये तो चमत्कार है। यदि ऐसा नहीं हो, तो उम्मीद करने की कोई जरूरत नहीं है। तब कम-से-कम कोई विषाद तो नहीं होगा कि तुमने ईमानदार होना चुना है। तब तुमने असफल होना ही चुना है।

लेकिन एक पिता का मन, हर एक पिता का मन यह चाहता है कि तुम ईमानदार भी रहो और सफल भी बनो। तब एक दोहरा मन निर्मित होता है। अतः बात ईमानदारी की करो, और बेईमान तथा सफलता का पाठ सिखाओ। सारी दौड़ जारी रखो-चूहों की दौड़।

यदि तुम आंतरिक विकास चाहते हो तो स्वीकार ही नियम हैं। मैं यह नहींकह रहा हूँ कि आंतरिक विकास के पीछे-पीछे बाहरी विकास भी आयेगा। उसकी कोई अभिवार्यता नहीं है। ऐसा हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। तुम गरीब बने रह सकते हो। लेकिन आंतरिक समृद्धि के साथ बाहरी दरिद्रता दुःख नहीं देती। दुःख नहीं देती। दुःख तभी होता है जबकि तुम भीतर और बाहर दोनों ओर से दरिद्र हो। बाहरी समृद्धि और आंतरिक दरिद्रता के साथ बहुत भारी पीड़ा होती है। लेकिन ऐसा कभी-कभी ही होता है कि तुम बाहर और भीतर दोनों तरफ से समृद्ध हो।

इसलिए इन दोनों के बीच चुनाव है। तुम्हारा जोर किस बात पर है? यदि तुम आंतरिक विकास और आंतरिक समृद्धि के पक्ष में हो तो उसका अनुगमन करो। तब फिर स्वीकार ही नियम है। किन्तु यदि तुम उसके पक्ष में नहीं हो, जाओ। तुम बाह्यरूप से समृद्ध हो सकते हो, लेकिन अन्ततः तुम्हें पता चलेगा कि तुमने अपना जीवन बर्बाद ही किया।

भगवन्! एक दिन आपने कहा कि जीवन अन्तर्संबंध है-कि यहाँ हर चीज एक दूसरे से संबंधित है। दूसरे दिन आपने कहा कि केवल तुम्हीं सब बात के लिए जिम्मेवार हो। लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की बुनियाद उसके प्रारंभिक बचपन में रख दी जाती है, तीन साल से सात साल की अवस्था के बीच, जिससमय कि वह कुटुम्ब तथा वातावरण के हाथों में निः सहाय होता है। क्या आप यह विरोधाभास हमें समझायेंगे?

दूसरी बातः इस विपरीतता के बावजूद मनुष्य का समग्र विकास व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रयास पर निर्भर है। अतः क्या यह आवश्यक नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति को समाज के ढांचे में आमूल परिवर्तन लाने का प्रयत्न करना चाहिये?

यह हमें विरोधाभासी प्रतीत होता है। एक दिन मैंने कहा कि हर चीज कि तुम्हीं जिम्मेवार हो। ये कथन विरोधाभासी लगते हैं, लेकिन ये हैं नहीं क्योंकि जब मैं कहता हूं कि "तुम्हीं जिम्मेवार हो" तो मेरा मतलब है कि तुम्हीं सर्व हो। कहीं से तो हमें प्रारंभ करना होता है, और तुम किसी अन्य से तो प्रारंभ नहीं कर सकते हो।

वस्तुतः तुम ही निकटतम बिन्दु हो जहां से कि सर्व को पहुँचा जा सकता है। तुम सर्व के अंग हो, और हर चीज एक-दूसरे पर निर्भर है। लेकिन दूसरे हिस्से जो कि निर्भर हैं वे तुमसे बहुत दूर हैं। तुम उनसे अपनी यात्रा शुरू नहीं कर सकते हो, तुम्हें अपने से यात्रा शुरू करनी पड़ेगी। अतः जब मैं कहता हूँ कि हर चीज एक-दूसरे पर निर्भर है तो यह एक दार्शनिक कथन है, एक सत्य है-उसका सत्य जो कि पहुँच गया। जब मैं कहता हूँ कि तुम्हीं जिम्मेवार हो तब यह भी सत्य है, लेकिन यह साधक का सत्य है, न कि सिद्ध का-उसका नहीं जो कि पहुँच गया।

लेकिन जिसे यात्रा करनी है वह कहाँ से अपनी यात्रा प्रारंभ करे? तुम मेरी जगह से तो यात्रा शुरू नहीं कर सकते। तुम किसी और के स्थान से यात्रा प्रारंभ नहीं कर सकते। तुम्हें वहीं से यात्रा करनी पड़ेगी जहाँ कि तुम हो। और यदि तुम सोचते हो कि तुम जिम्मेवार नहीं हो, तो तुम गिर जाओगे और वहीं सड़ जाओगे। तब तुमने सारी बात को ही गलत समझ लिया। तब वह सर्व की अंतर्निर्भरता बजाय सहायक होने के अवरोध बन गई। और ऐसा ही हो सकता है।

हम चाहें तो अमृत को भी जहर में बदल सकते हैं और हम जहर को भी अमृत बना सकते हैं। यह सब हम पर निर्भर है। अतः मैं कुछ उदाहरण दूँ। जैसे कि बुद्ध कहते हैं कि जो कुछ पाना है, वह पहले से तुम में मौजूद है। यह कथन दो व्याख्याओं पर ले जा सकता है : एक कि अब कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि जो भी पाना है, वह पहले से मिला ही हुआ है। अतः कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं। मैं जैसा भी हूँ, ठीक हूँ। अब तुमने एक कीमती सत्य को विषैला बना दिया।

इसकी दूसरी तरह से भी व्याख्या की जा सकती है, जो कि बिल्कुल ही भिन्न हो। जब बुद्ध कहते हैं कि तुम वह हो ही, जो कि तुम हो सकते हो तो यह एक आशा बंधाता है। अब यह असंभव जैसा नहीं लगता। तुम्हारे पास बीज है। बीज वृक्ष हो सकता है, तुम बीज से वृक्ष की ओर जा सकते हो। अब वृक्ष होना असंभव नहीं है। वह मुझमें छिपा है, अतः अब मैं विश्वास के साथ आगे बढ़ सकता हूँ, मैं आशा के साथ आगे जा सकता हूँ। मैं बिना किसी भय के अज्ञात में प्रवेश कर सकता हूँ। तब यह सहायक हो सकता है।

जब मैं कहता हूँ कि सारा जगत ही एक समष्टि है, कॉसमॉस है, अन्तर्संबंधित है, तो इसका अर्थ है कि हम अलग-थलग द्वीप नहीं हैं, बल्कि हम एक अनन्त महाद्वीप हैं, हम एक-दूसरे से जुड़े हैं। कोई छोटा नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति वास्तव में ही समग्र है।

रामतीर्थ ने कहा है कि "तुम मानो या न मानो, लेकिन यह जगत मैंने ही बनाया है। तुम विश्वास करो, चाहे तुम विश्वास न करो, लेकिन ये तारे मैं ही चलाता हूँ।"

वे पागल हैं। यदि तुम इस कथन के ऊपरी अर्थ की ओर देखो, तो वे पागल हैं। लेकिन यदि समग्र अस्तित्व अन्तर्निर्भर है, तो फिर वे पागल नहीं हैं। तब चाहे किसी ने भी जगत को बनाया हो, "मैं" भी उसका हिस्सा रहा हूँगा। मेरे बिना यह संसार बनाना असींव है। वे यह कह रहे हैं कि मैं एक अंग हूँ, और चाहे कोई भी इन तारों को चला रहा हो, मैं उसका अंग हूँ। मेरे बिना वे नहीं चल सकते।

जब मैं कहता हूँ कि हर चीज़ एक दूसरे पर निर्भर है, तो उका अर्थ है कि तुम सर्व हो। तुम केवल एक हिस्से नहीं हो, तुम अकेले नहीं हो, तुम छिटके हुए नहीं हो। तुम ही सर्व हो, सर्व ही तुममें उपस्थित है। यही अन्तिम बल्ल है, लेकिन तुम्हारे लिये यह एक सिर्फ सैद्वान्तिक वक्तव्य है। यह बुद्ध के लिये बोध हो सकता है, लेकिन तुम्हारे लिये तो केवल सिद्धान्त की बात है। यह तुम्हारा बोध नहीं है।

यह तुम्हारा बोध कैसे हो? कहाँ से प्रारंभ करें? यदि तुम कहते हो कि मैं सिर्फ एक हिस्सा हूँ, अतः मैं क्या कर सकता हूँ? मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, तब फिर कोई भी गति संभव नहीं है। तुम वहीं गिर कर मर जाओगे। यह जो महान सत्य है यह तुम्हारे लिये घातक सिद्ध होगा। यदि तुम चलो और इस सत्य का बोध करो तो तुम्हें जिम्मेवार होना पड़ेगा जो भी तुम हो, उसके लिये जिम्मेवार बनना पड़ेगा। तब तुम उसे बदल सकते हो। और तुम उसे बदल सकते हो क्योंकि तुम केवल तुम ही नहीं हो, यह सर्व भी तुम्हारे पीछे है। जिस क्षण भी तुम कहते हो कि मैं ही जिम्मेवार हूँ, तो उसी क्षण सर्व ने तुम्हारे भीतर घोषणा कर दी। जिस क्षण भी तुम कहते हो कि "मैं चलूँगा" उसी क्षण सर्व तुम्हारे साथ चलने लगा।

मैं एक दूसरा उदाहरण देता हूँ : हिन्दुओं ने हजारों-लाखों वर्षों से यह माना है कि प्रत्येक व्यक्ति आत्मा है, और आत्मा अमर है, आत्मा शुद्ध है, आत्मा ही परमात्मा है। गुरजिएफ ने इस सदी में कहा कि अपने आप को धोखा मत दो। आत्मा को उपलब्ध करना बड़ा कठिन है। प्रत्येक के पास आत्मा नहीं होती है, यह तो बहुत मुश्किल से कभी होता है कि कभी किसी ने आत्मा को पा लिया हो, अन्यथा तुम बिना आत्मा के ही हो।

यह बात तोबिल्कुल विपरीत दिखाई पड़ती है। वह कहता है कि बहुत थोड़े से लोग ही, विरले ही आत्मा को उपलब्ध कर पाते हैं। वह कहता है कि आत्मा एक उपलब्धि है। यह तुम्हें अपने जन्म के साथ नहीं मिलती। यह अभी इस समय तुम्हारे भीतर नहीं है। यह तभी संभव है जबकि तुम कुछ प्रयास करो। तब तुम आत्मा को निर्मित कर सकते हो। यदि तुम प्रयत्न नहीं करो तो तुम बिना आत्मा के ही मर जाओगे। गुरजिएफ कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति अमर नहीं है। केवल वे ही लोग जो कि आत्मा को पा लेते हैं, अमर होते हैं। अन्यथा तुम सिर्फ एक कचरा हो। प्रकृति तुम में हार गई। तुम जीवित नहीं बचोगे। हर आदमी बचनेवाला नहीं है।

यह बात हिन्दू, जैन, बौद्ध शिक्षा के बिल्कुल विपरीत दिखाई पड़ती है। ईसाइयत भी, मुसलमान भी- वस्तुतः सभी धर्म सिखाते हैं कि तुम्हारे पास आत्मा है, और गुरजिएफ कहता है कि "नहीं" है। और सचमुच वह इस सदी के जानने वालों में से एक था। लेकिन इतना जोर क्यों है? वह कहता है कि इस शिक्षा के कारण ही कि हर एक के पास आत्मा है, कोई भी प्रयास नहीं करता है। प्रत्येक यह विश्वास करता है कि ठीक है, आत्मा तो सदा-सदा शुद्ध है। गीता को पढ़ो-कृष्ण कहते हैं कि तुम चाहे कुछ भी करो; तुम्हारी आत्मा अस्पर्शित ही रह जाती है, वह शुद्ध-बुद्ध है।

यह बात बहुत खतरनाक हो सकती है। गुरजिएफ कहता है कि इन्हीं शिक्षाओं की वजह से मनुष्यता अधार्मिक हो गई है। वह कहता है कि यह बकवास बन्द करो। जब तक तुम पा न लो, तुम्हारे पास कोई आत्मा

नहीं है। अतः गुरजिएफ एक गहरा धक्का मारता है। वह कहता है कि तुम्हारे पास क्या है कि जगत को तुम्हारी सदा-सदा आवश्यकता हो? क्या है ऐसा तुम्हारे पास? कुछ भी तो नहीं। केवल तुम्हारी मूर्खताएँ। यह सोचना कि तुम्हारी मूर्खताएँ शाश्वत हो जायें, यह तो बहुत अन्धकारपूर्ण भविष्य हुआ।

तुम सोचते हो कि सारी मूर्खताएं शाश्वत हो जायेंगी क्योंकि हर आदमी शाश्वत है। लेकिन गुरजिएफ कहता है कि नहीं, यह जगत तुम्हें इतने लम्बे समय के लिये सहने के लिये तैयार नहीं है, जब तक कि तुम इस जगत के लिये अर्थपूर्ण न हो जाओ। जब तक कि तुम इस विश्व-सत्ता की नियति का एक हिस्सा न हो जाओ, तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। और तुम शाश्वत भी क्यों हो जाओ और तुम उसकी मांग भी क्यों करो? केवल इस मूर्खता को दोहराने के लिये, जो कि तुम कर रहे हो? गुरजिएफ कहता है कि पहले उपलब्ध कर लो। आत्मा हो जाओ। तुम हो सकते हो लेकिन वह एक क्रिस्टलाइजेशन है, एक प्रकार की केंद्रीभूत अवस्था है। तुम में सारे तत्त्व मौजूद हैं, उन्हें जोड़ लो, आंतरिक कीमिया से गुजर जाओ, और तब तुम्हारे भीतर एक नई चीज का जन्म होगा जो कि आत्मा होगी।

अतः वह कहता है कि बुद्ध के पास आत्मा है, जीसस के पास आत्मा है, और चूँकि उनके पास आत्मा है, वे कहते चले जाते हैं कि हर एक के पास आत्मा है। नहीं। उनकी बातों में मत आओ। उनके पास आत्मा है और वे अमर हैं, लेकिन तुम नहीं हो। इसलिए उनसे धोखा खाने की जरूरत नहीं। और सचमुच उसकी बात सहायक हो सकती है। लेकिन हम हर बात को नुकसान में बदल सकते हैं-गुरजिएफ की शिक्षा को भी तब हम कह सकते हैं कि यदि वह इतनी दुर्लभ है, तो फिर वह हमारे लिये नहीं है। वह हमसे पार है।

ऐसा कुछ भी मनुष्य से नहीं कहा जा सकता जिसका कि गलत उपयोग नहीं किया जा सके। वह मन नये अर्थ दे देगा। अतः जब मैंने कहा कि यह जगत एक कॉसमॉस है, समष्टि है, एक जीवन्त इकाई है, कि यहाँ सब अर्न्तबंधित है, तो मेरा मतलब यह था कि तुम एक महाविराट के हिस्से हो, तुम अकेले नहीं हो। तुम्हारे भीतर से अस्तित्व बढ़ रहा है, विकसित हो रहा है। तुम्हारा एक गहरा मिशन है, एक महान नियति है।

इसे जानने के लिये तुम्हें अपने सारे दृष्टिकोण को बदलना होगा। और वह रूपान्तरण तभी प्रारंभ होता है जबकि तुम अपने को जिम्मेवार समझो। यदि तुम महसूस करो कि तुम ही जिम्मेवार हो, तो तुम बदल सकते हो। अतः इस अन्तर्निर्भरता के सिद्धान्त को एक मदद रूप बना लो, इसे अपने आत्म-रूपान्तरण के लिए एक सीढ़ी बना लो, इसे बाधा मत बनाओ।

और यह बात सही है कि आदमी करीब-करीब बचपन में ही निर्मित कर दिया जाता है। उसमें बहुत-सी बातें सम्मिलित हैं। एक : मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तुम "तबुला रेसा"-यानी एक कोरे कागज की तरह पैदा होते हो। तुम्हारे प्रथम पाँच या सात वर्ष उस पर सब कुछ लिख देते हैं ओर वह तुम्हारी जिन्दगी का ढाँचा बन जाता है; तुम उसी को दोहराते रहते हो।

पहली बात तो यह है कि कोई भी "तबुला रेसा" की तरह पैदा नहीं होता क्योंकि यह बचपन ही प्रारंभ नहं है, यह जीवन ही हमारी शुरूआत नहीं है। तो हर बच्चा सिर्फ बच्चा नहीं है, बहुत बूढ़े लोग उसमें मौजूद हैं-बहुत जन्मों के। उसने बढ़ापा कई बार जिया है और वह सब स्मृतियाँ हर बार सुरक्षित रही हैं। मन उन सब स्मृतियों के साथ आगे चलता रहता है-तो यह सब बड़ा ही जटिल मामला है।

मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि तुम्हारे माता-पिता, तुम्हारी आनुवांशिकता यह चीजें सब तय करेंगी। लेकिन पूर्व कुछ ज्यादा जानता है। पूर्वीय मनीषा कुछ ज्यादा जानती है क्योंकि पूर्वीय मनीषा कहती है कि यह जीवन बहुत बड़ी श्रृंखला की सिर्फ एक कड़ी है। और अभी जो मानव के मन में बहुत गहरे गये हैं पश्चिम में उनका कहना है

कि- जैसे कि सी-जी-जुंग वे कभी ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि यह जीवन प्रारंभ नहीं है। कोई बच्चा बच्चा ही पैदा नहीं होता। उसके पास भी बहुत-सी स्मृतियाँ हैं।

पूर्वीय मनीषा का कहना है कि माता-पिता तुम्हारे जीवन को निश्चित नहीं करते। वस्तुतः तुमने उनको चुना है। तुमने विशेष माता-पिता के द्वारा जन्मा हूँ, तो यह मेरा अपना चुनाव है। वे मुझे निर्मित करेंगे क्योंकि मैंने उन्हें स्वयं को निर्मित करने के लिये चुना है। और मैंने उन्हें अपने को निर्मित करने के लिये चुना है क्योंकि उसके पीछे मेरे अतीत के जीवन के बहुत से कर्म हैं। यह एक श्रृंखला है।

अतएवं अन्त में मैं ही जिम्मेवार हूँ। यदि मैं एक बहुत हिंसक पिता को चुना हूँ, अथवा कि एक बहुत ही विद्वान व्यक्ति को, चाहे कुछ भी हो, वह मेरा ही चुनाव है। तब फिर वे मुझे निर्मित करते हैं लेकिन यह उनके द्वारा मेरा निर्माण, मेरी शिक्षा आदि अन्तिम नहीं है। अन्ततः तुम्हीं मालिक हो, तुम उसे कभी भी फेंक सकते हो। यह कठिन है, लेकिन यह संभव है।

यह बहुत ही कठिन है क्योंकि यह कोई कपड़े उतारकर फेंकना जैसा नहीं है। यह तो तुम्हारी चमड़ी बदलने जैसा है। यह तुम्हारे भीतर इतना गहरा उतर गया है, जो भी हुआ है, वह इतना गहरे चला गया है कि वह तुम्हारा खून और हड्डी बन गया है, तुम उसी से बने हो। अब तुम अपने को उससे अलग सोच भी नहीं सकते। तुम्हारा तादात्म्य उसके साथ एक हो गया है। लेकिन फिर भी उसे उतार फेंकना असंभव नहीं है। तुम उसमें से बाहर छलांग लगा सकते हो।

वास्तव में, सब योग इसी बात से संबंधित है कि कैसे उन सारे प्रभावों को जिन्होंने कि तुम्हें निर्मित किया है, तुम उनसे बाहर निकल सको-चाहे जो भी तुम हो, तुम उसमें से कैसे छलांग लगा जाओ, तुम कैसे पार चले जाओ-कि कैसे तुम अपने माता-पिता, तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारी वंश-परंपरा, कि कैसे तुम अपने विगत जीवन के पार चले जाओ। योग का सारा विज्ञान इसी बात से संबंधित है कि वह तुम्हें उस सबके पार जाने में मदद करे। अतः एक हम कुछ थोड़ी बातें समझ लें कि यह किस प्रकार संभव हो सकता है।

शिक्षा, लालन-पालन आदि तुम्हें एक प्रकार का व्यक्तित्व प्रदान करते हैं, एक प्रकार की आकृति है कि मैं यह हूँ। एक अच्छा आदमी, एक बुरा आदमी, एक धार्मिक आदमी, एक बुद्धिमान आदमी, एक मूर्ख आदमी-हर एक आदमी की अपनी एक आकृति है जो कि समाज के द्वारा दी गई है, माता-पिता द्वारा शिक्षा दी गई है। इस सबको कैसे फेंका जाये? संन्यास इस सबको फेंक देने का उपाय था।

शायद तुमने कभी ख्याल न किया हो कि हिन्दू समाज चार वर्णों में विभाजित है-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। लेकिन संन्यासी किसी भी जाति से संबंधित नहीं है। यदि एक ब्राह्मण संन्यासी हो जाये, तो वह सिर्फ एक संन्यासी है। यदि एक से पार है। जब तुम संन्यासी नहीं थे, किन्तु एक गृहस्थ थे तो तुम ब्राह्मण थे या कुछ और थे। जब तुम संन्यास में छलांग लगाते हो, तो तुम फिर ब्राह्मण नहीं हो और वह सब जो भी तुम्हारे ब्राह्मण होने से जुड़ा था, बिखर गया।

जब तुम एक संन्यासी हो जाते हो, तो तुम मृत्यु की प्रक्रिया से गुजरते हो। संन्यास का अर्थ था मृत्यु। इसलिए संन्यास की दीक्षा श्मशान पर दी जाती थी। और श्मशान पर होनेवाली सार-की-सारी प्रक्रिया पूरी की जाती थी। तुम्हारा सिर घुटा डाला जाता था जैसे कि हम मुर्दे का सिर घोट देते हैं। अब तुम समाज के लिये मर गये, जो कुछ भी तुम्हारा था, अब तुम उसके लिये नहीं हो।

तब फिर तुम्हारा नाम बदल दिया जाता था क्योंकि तुम्हारे नाम से भी तुम्हारा तादात्म्य था। अब तुम्हारा गुरु ही तुम्हारा पिता होता था। अब तुम्हारे कोई और माता-पिता नहीं थे। अब तुम्हें नये सिरे से सब

कुछ शुरू करना पड़ेगा। तुम्हारा कोई घर नहीं होगा, कोई जाति नहींहोगी, तुम्हारे कोई माता-पिता नहं होंगे, कोई पति, कोई पत्नी नहीं होगी, इस संसार से कोई संबंध नहीं होगा। नये नाम के साथ एक मोड़ एक अन्तराल आ जायेगा। अतत गिर गया। अब तुम्हें अ-ब-स से प्रारंभ करना पड़ेगा। ुम्हारे शत्रु थे, वह आदमी अब मर गया। मित्र थे, लेकिन अब तुम उनसे वैसा ही व्यवहार नहीं कर सकते, जैसा कि पहले करते थे। वह आदमी अब मर गया।

एक कहानी है। एक बौद्ध साधु एक गाँव से गुजर रहा था। वह उसी गाँव का रहने वाला था। संन्यास लेने के पहले वहां एक सुन्दर युवती उससे प्रेम करती थी। उसने उसका चेहरा पहचान लिया। हालांकि वह बिल्कुल बदल गया था और उसे पहचानना भी कठिन था, और फिर वह भिक्षुओं के साथ जा रहा था। इतने सारे बौद्ध भिक्षु थे, और वे सब एक जैसे दिखाई पड़ रहे थे, एक-से-कपड़े, मुंडे हुए सिर, कोई व्यक्तित्व नहीं। लेकिन फिर भी उस स्त्री ने उसे पहचान लिया, अतः वह उसके पीछे गई।

और तब उसने उस भिक्षु से कहा कि तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते। मैं तुम्हें पहचानती हूँ, तुम वही आदमी हो। उस भिक्षु ने कहा, केवल चेहरा वही है, लेकिन वह आदमी तो अब नहीं रहा, वह तो मर गया। उस युवती ने कहा, लेकिन तुम तो मुझे प्रेम करते थे। भिक्षु ने जवाब दिया, मैं फिर तुम्हें कहता हूँ कि वह आदमी मर गया। यदि मैं कभी उससे मिला, तो उसे तुम्हारी कहानी सुना दूँगा। मैं उसे कह दूंगा कि वह लड़की तुम्हें अब भी प्रेम करती है। लेकिन मैं नहीं सोचता कि अब कभी उससे मिलना संभव है। यह पुराने से टूटना और नये तादात्म्य को जीना ही बुनियादी रूप से संन्यास का अर्थ होता था।

बुद्ध अपने घर वापस लौटते हैं। बुद्ध के पिता बहुत क्रोधित हैं। लेकिन बुद्ध कहते हैं कि, "कृपा कर मेरी बात तो सुनें। मैं वही सिद्धार्थ नहीं हूँ जिसने कि घर छोड़ा था।" पिता तो और भी ज्यादा गुस्सा हो गये। उन्होंने कहा, "तुम मुझे सिखाते हो? मैं तुम्हारा पिता हूँ। मैंने तुम्हें जन्म दिया है, मैं तुम्हें भली-भाँति जानता हूँ। बुद्ध ने फिर कहा, "तुम अपने को ही नहीं जानते। तुम मुझे कैसे जान सकते हो?"

यह बात आग में घी का काम कर जाती है और पिता तो आग बबूला हो उठते हैं। वे चिल्लाकर कहने लगते हैं, "क्या हो तुम? यह कैसा बर्ताव है? मेरा अपना ही लड़का, मेरा अपना ही खून व हड्डी। तुम मुझे क्या कह रहे हो?" और गौतम बुद्ध कहते हैं, "आप शान्त हो जायें, कृपया क्योंकि जिस आदमी ने आपका घर छोड़ा था, जो कि आपके पास रहता था, वह कब का ही मर गया।"

इस तरह संन्यास की विधि से छलांग लगाने का उपयोग किया जाता था, उस चमड़ी से जो कि समाज ने आरोपित की थी। और फिर बहुत-सी विधियाँ थीं अनसीखा कने की। मैं तुमसे कितनी ही बार कह चुका हूँ कि ध्यान अनसीखा करने की विधि है। इसलिए जो भी तुमने सीख लिया है, उसे अनसीखा कर दो, उसे फेंक दो। पुनः खाली स्लेट हो जाओ। जो भी समाज ने उस पर लिख दिया है उसे धो डालो। और वह किया जा सकता है। ध्यान उसकी विधि है। तुम अनसीखा कर सकते हो।

शिक्षा कुछ सीखने की विधि है, ध्यान अनसीखा करने की विधि है। तब तुमने अपने व्यक्तित्व को अनसीखा कर दिया, जब तुमने अपने पुराने तादात्म्य को छोड़ दिया, तभी केवल कुछ संभव है। अन्यथा तुम वर्तुल में घूमते रहते हो। और वर्तुल बहुत मजबूत है। उसमें से छलांग लगाना बहुत कठिन है, लेकिन असंभव नहीं है। और यह कठिन है क्योंकि तुमने निर्णय नहीं किया है। यदि तुमने निर्णय कर लिया है तो फिर कुछ भी असंभव नहीं है। निर्णय के साथ ही परिवर्तन प्रारंभ हो जाता है।

महावीर के संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने अपना घर त्यागने का निर्णय किया। लेकिन माता जीवित थी, अतः उसने कहा कि नहीं जाओ, घर मत छोड़ो जब तक कि मैं मर न जाऊँ। फिर से संसार त्यागने की बात ही मत करना। तुम प्रेम की बात करो, तुम अहिंसा की बात करो लेकिन यदि तुमने संसार को त्यागा तो वह मुझे मार डालेगा। मेरी हत्या कर देगा। अतः उसकी बात ही मत करना। लेकिन माँ को भी बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि महावीर ने फिर वह बात ही नहीं उठाई। सारा परिवार आश्चर्य करने लगा। यह कैसा संन्यास था? यह किस तरह का त्याग था। केवल एक बार महावीर ने बात की और तब माँ क्राधित हो गई और वे रुक गये।

दो वर्ष तक उन्होंने बात ही नहीं की। फिर उनकी माँ की भी मृत्यु हो गई। वे एक दिन लौट रहे थे, तो उन्होंने अपने बड़े भाई से पूछा कि अब माँ तो मर गई है, अतः मुझे संसार त्यागने की आज्ञा दो। भाई तो बहुत क्रोध में आ गया। उसने कहा कि क्या बेकार की बात करता है तू? इसकी कभी बात ही मत उठाना। अतः दो वर्ष तक वे फिर कुछ नहीं बोले।

सारे परिवार को बड़ा धक्का लगा। यह किस तरह का त्याग था? लेकिन तब उन्होंने अनुभव करना शुरू किया कि महावीर घर में थे लेकिन वे वहाँ नहीं थे। वे पूरी तरह अनुपस्थित थे। किसी ने भी उन्हें घर में उपस्थित अनुभव नहीं किया। वे सिर्फ छाया हो गये। महीने बीत जाते और तब कभी कोई कहता कि महावीर कहाँ है? वे घर में ही थे। वे इतने अनुपस्थित हो गये कि एक दिन सारा परिवार इकट्ठा हुआ और उन्होंने कहा कि यदि तुम यही कर रहे हो, तो फिर हमारा कर्तव्य हो जाता है कि तुम्हें छोड़ने की आज्ञा दे दें। तुम जा सकते हो क्योंकि तुम तो पहले से ही जा चुके हो।

महावीर ने उसी दिन घर छोड़ दिया किसी ने पूछा कि आप भाग क्यों नहीं गये? आप बच कर क्यों नहीं निकल गये? उन्होंने कहा कि उसकी कोई भी जरूरत नहीं थी। मैंने आंतरिक छलांग लगा ली थी। जिस दिन मैंने निर्णय किया, उसी दिन मैं संन्यासी हो गया। केवल मेरी छाया वहाँ थी अन्यथा मेरी माँ को बहुत दुःख होता। घर छोड़ने की कोई भी जरूरत नहीं थी। वहाँ सिर्फ छाया ही थी, "मैं" वहाँ नहीं था। जिस दिन मैंने निर्णय किया उसी दिन घटना घट गई। ये चार वर्ष मेरे लिये कुछ भी नहीं थे। मैं सिर्फ छाया था। मैं उस घर में सारी जिन्दगी रह सकता था।

जिस दिन भी आदमी छलांग लगाने का निर्णय लेता है, छलांग पहले ही लग जाती है, क्योंकि निर्णय ही छलांग है। इतना भी पता होना कि मैं एक गहरे बंधन में पड़ा हूँ, इतना-सा बोध भी उससे बाहर ले आता है। अब देर-अबेर, यह बन्धन भी तुम्हारे लिये कारागृह नहीं रह जायेगा।

किन्तु पश्चिमी मनोविज्ञान एक बहुत ही हानिप्रद दृष्टि पैदा कर रहा है। वह कहता है कि तुम पहले से ही पूरे हो। जब तुम सात वर्ष के थे, तभी तुम्हारी नियति निर्वीत हो गई थी और अब कुछ भी नहीं किया जा सकता। यदि यह तुम्हारा विचार बन जाये, तो फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता-इसलिए नहीं कि तुम पूरे हो गये बल्कि तुम्हारे इस विचार के कारण। यदि तुम कहते हो कि अब कुछ भी और नहीं किया जा सकता क्योंकि मैं पहले ही पूरा हो चुका हूँ। जो कुछ भी हो सकता था, वह सब मेरे दिमाग में डाल दिया गया है, फिर मैं क्या कर सकता हूँ। अब मुझे इसी कारागृह में रहना पड़ेगा। यही मेरा जीवन है। यदि कोई इस तरह विचार करता है, तो यह सोचना बाधा बन जायेगा, अन्यथा दूसरी कोई बाधा नहीं है।

अतः पश्चिमी मनोविज्ञान के हिसाब से पश्चिमी मन की कोई जिम्मेदारी नहीं है। पश्चिम में युवकों का विद्रोह और दूसरे विद्रोह तथा अन्य विनाशकारी आन्दोलन ये सब वस्तुतः पिछले सालों के पश्चिमी मनोविज्ञान के द्वारा पैदा किये गये हैं। इस बात के लिये फ्राइड सबसे ज्यादा जिम्मेवार है, मार्क्स से भी ज्यादा-क्योंकि उसने

कहा कि तुम सात वर्ष की आयु में पूरे हो चुके। तुम्हारे माता-पिता जिम्मेवार हैं, तुम जिम्मेवार नहीं हो। इसलिए जो भी तुम कर रहे हो-यदि तुम अपराधी हो, यदि तुम कातिल हो-तुम उसके लिये कुछ भी नहीं कर सकते, तुम्हें यही होना था। और अब तुम्हारे मृत माता-पिता तो बदले नहीं जा सकते।

इसलिए फ्रायड भी उसी नतीजे पर पहुँचता है जहाँ कि ईसाइयत पहले पहुँच चुकी थी कि आदम ने पाप किया, उसके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं, वही जिम्मेवार है। आदम यानी कि पहला पिता। उसके कारण ही सब कुछ नियत हुआ। अब हम पाप में ही पैदा हुए और हमें पाप में ही मरना पड़ेगा। यदि तुम फ्रायड के साथ चले तो तुम इसी निष्कर्ष पर पहुँचोगे। यदि माता-पिता ही जिम्मेवार हैं तब तो फिर अन्ततः आदम और ईव ही जिम्मेवार हैं।

किन्तु आदम और ईव को तो बदला नहीं जा सकता। वह तो अब असंभव है। इसलिए जैसा भी है; वह चलता है। यह स्वीकार नहीं है, "यह तो हारना है। और इससे मनुष्य गौरव ही नष्ट हो जाता है। यदि तुम कुछ भी नहीं कर सकते, यदि तुम अपने को ही नहीं बदल सकते तो तुम मनुष्य की सारी गरिमा ही खो देते हो। तब तुम सिर्फ एक स्वचालित यन्त्र की भाँति हो जाते हो, एक मेकेनिकल चीज हो जाते हो। बस अब तुम दौड़ पूरी करोगे, चूँकि तुम्हारे माता-पिता ने चाबी भर दी है, तुम चक्कर पूरा करोगे, और फिर मर जाओगे। और इसी बीच में यदि तुम्हें अवसर मिला, तो तुम किसी और में चाबी भर दोगे, और इस तरह तुम चलते रहोगे।

यह तो बहुत अपमानजनग बात हो गई। मनुष्य अपने को बदल सकता है। वह संभावना सदा तुम्हारे साथ है। और यह धारणा कि मैं स्वयं को बदल सकता हूँ इससे ही बदलाहट प्रारंभ होती है। क्रान्ति शुरू हुई।

और अन्त में, पूछा गया है कि क्या यह अनिवार्य नहीं है कि धार्मिक आदमी समाज के ढाँचे में भारी परिवर्तन लाये? वह स्वयं ही समाज के ढाँचे में एक भारी परिवर्तन है-धार्मिक आदमी। वह समाज में कोई परिवर्तन लाने का प्रयत्न नहीं करेगा। वह स्वयं ही एक भारी परिवर्तन है।

आज इतना ही।

चौदहवां प्रवचन

संतोष : वासनाओं का विसर्जन

सर्व सन्तोषोविर्सनमिति स एवं वेद।

पूर्ण सन्तोष विसर्जन है, अर्थात पूजा की क्रिया की समाप्ति है। जो ऐसा जानता है वही ज्ञान को उपलब्ध है।

पूर्ण संतोष ही ज्ञान है।

तीन बातें समझ लेनी हैं। पहली बात, पूर्ण संतोष? दूसरी प्रज्ञा, ज्ञान क्या है? ज्ञानी हो जाना, ज्ञान को उपलब्ध हो जाने का क्या अर्थ है? और तीसरी बात, कि संतोष ज्ञान क्यों है? जो कुछ भी हम संतोष के बारे में जानते हैं वह सब नकारात्मक बात है। जीवन दुःख है, भारी दुःख है, और हमें अपने को सांत्वना देनी पड़ती है। ऐसे क्षण होते हैं कि आदमी कुछ भी नहीं कर सकता, इसलिए उसे संतोष की कोई धारणा पैदा करनी पड़ती है, अन्यथा जीना कठिन हो जायेगा।

अतः संतोष हमारे लिए सिर्फ जीने का एक साधन है-जीवित रहने का साधन। जीवन इतने दुःख से भरा है कि यह रुख निर्मित करना पड़ता है। यह रुख तुम्हारी उस सबसे रक्षा करता है जिसे कि वैसे सहन करना असंभव हो जाए। यदि यह संतोष का रुख नहीं हो, तो वह सब असहनीय हो जाए। लेकिन यह संतोष ऋषि का संतोष नहीं है। हमारे सबके लिए संतोष कोई ज्ञान नहीं है, वरन संतोष अज्ञान का हिस्सा है। जब तुम कुछ भी नहीं कर सकते तो स्थिति असहनीय हो जायेगी, आत्मघातक हो जायेगी।

इसलिए तुम सारी बात बदल देते हो। तुम इस व्याख्या करते हो, वस्तुतः तुम कुछ इस तरह कहना शुरू कर देते हो कि तुम चाहो तो बहुत कुछ कर सकते हो लेकिन तुम चाहते ही नहीं कि इतना-इतना संभव है, कि बात भिन्न हो सकती है, किनतु इसमें तुम्हारा कुछ रस नहीं है। यह जो बात के जोर को बदलता है यह प्रवंचना है। परंतु जीवन बहुत-सी भ्रांतियों के बीच जीता है। वे सहायक हैं।

नीत्शे ने कहा है कि बिना झूठ के जीना मुश्किल है। यदि कोई सत्य पर ही जीना चाहे तो वह नहीं जी सकता। इसलिए हम बहुत से असत्यों पर विश्वास करते चले जाते हैं। वे एक तरह से हमारे आधार हैं, वे हमारी इस पृथ्वी पर रहने के लिए मदद करते हैं। और बहुत से तथाकथित सत्य वस्तुतः सत्य नहीं हैं, तुम्हारे लिए। वे सिर्फ असत्य हैं। उदाहरण के लिए, तुम नहीं जानते कि आत्मा अमर है, लेकिन तुम इसमें विश्वास करते चले जाते हो। इससे मदद मिलती है। वह तुम्हारे लिए असत्य है, यह तुम्हारा अनुभव नहीं है किन्तु मृत्यु के साथ जीना असंभव हो जायेगा, इसलिए यह असत्य भी सहायक है। तब तुम मृत्यु को भूल सकते हो। तुम समझते हो कि जीवन चलता रहेगा। केवल शरीर मरने वाला है। तुम मरनेवाले नहीं हो, तुम तो रहोगे।

यह तुम्हारे लिए असत्य है। तुम्हें कुछ भी पता नहीं है क्योंकि तुम शरीर से ज्यादा कुछ भी नहीं जानते। तुम सिर्फ तुम्हारे शरीर से परिचित हो और वह भी उसकी पूरी समग्रता में नहीं। तुम ऐसा कुछ भी नहीं जानते जो कि अमर है। यदि तुम अपने भीतर किसी भी अमरत्व को जानते हो, तो फिर तुम्हारे लिए यह असत्य नहीं है। किन्तु उस अमरत्व को जानने के लिए तो किसी को जागे हुए मृत्यु से गुजरना पड़ेगा।

सब ध्यान सिर्फ सजगता से मरने का प्रयास है। यदि तुम होशपूर्वक मर सको, केवल तभी तुम उस अरमत्व को जान पाते हो जो कि कभी नहीं मरता। किन्तु हम आत्मा की अमरता में विश्वास करते हैं सिर्फ अपने को धोखा देने के लिए। इस विश्वास से जीवन सरल हो जाता है। तुमने समस्या का समाधान कर लिया बिना उसका हल किये। अब तुम्हारे लिए मृत्यु नीं है, और तुम इस तरह रह सकते हो जैसे कि तुम हमेशा ही जीवित रहनेवाले हो। केवल वे ही नहीं जो कि आस्तिक हैं, किन्तु े भी जो कि नास्तिक हैं जो कि आत्मा आदि में जरा भी विश्वास नहीं करते, और इसलिए उनके लिए आत्मा की अमरता में, विश्वास करने का सवाल नहीं है, वे भी इस तरह रहते हैं जैसे ि कवे सदा-सदा रहनेवाले हैं। उन्हें भी स्वयं को धोखा देना होता है कि मृत्यु नहीं है और भी कितने ही जीवन हैं।

काण्ट का कहना है कि यदि कोई परमात्मा नहीं है तो भी हमें उसका आविष्कार करना पड़ेगा, क्योंकि बिना परमात्मा के जीना कठिन है। क्यों? क्योंकि बिना परमात्मा के नैतिकता संभव नहीं है। बिना परमात्मा के नैतिकता का सारा स्तम्भ ही गिर जाता है। इसलिए काण्ट कहता है कि यदि परमात्मा नहीं भी है, तो भी उसकी आवश्यकता है। उसकी जरूरत है क्योंकि बिना उसके नैतिकता असंभव हो जाती है, और बिना नैतिकता के जीना बड़ा कठिन हो जायेगा।

हम अनैतिक व्यक्तियों की भाँति जी सकते हैं। हम ऐसे जी ही रहे हैं। हम अनैतिकता में जीने के लिए भी हमें नैतिकता की धारणाएँ चाहिए। इसलिए एक अनैतिक आदमी विश्वास करता चला जाता है। वह चाहे आज अच्छा न हो लेकिन कल वह अच्छा हो जानेवाला है। वह इस जीवन में अच्छा आदमी हो जानेवाला नहीं है। वह अगले जीवन में अच्छा आदमी ही जायेगा।

अतः पापी भी विश्वास करता चला जाता है कि वस्तुतः वह भी पापी नहीं है। किसी दिन भी वह संत हो जायेगा। वह सींावना मदद करती है। तब वह आशा कर सकता है कि संभावना है और वह जो भी है वैसा वह रहता चला जाता है। इसलिए जो भी वह है, वह सिर्फ एक छाया है। उसका पापी होना सिर्फ बदलती हुई बात है। वह कोई स्थायी चीज नहीं है। वह जल्दी ही संत होनेवाला है। वह संत होने की आशा कर सकता है और वह पापी बना रहता है। यदि तुम पापी होना चाहते हो तो तुम्हें तुम्हारे पापी होने के खिलाफ कोई आशा चाहिए। यदि तुम्हें कोई आशा नहीं हो, तो उसे चलाये रखना कठिन है। इसलिए वे लोग जो कि अनैतिक हैं उन्हें भी नैतिकता की जरूरत है। और परमात्मा की आवश्यकता है एक केंद्रीय सत्ता की तरह, एक शासकीय शक्ति की तरह, अन्यथा सब कुछ गड़बड़ हो जायेगा, अराजकता फैल जायेगी।

काण्ट तब कहता है कि ईश्वर को मना मत करो। काण्ट ने दो पुस्तकें लिखी हैं, बहुत ही कीमती पुस्तकें। पहले उसने पिछले दो-तीन सौ वर्षों में सर्वाधिक कीमती पुस्तकों में से एक कीमती पुस्तक लिखी। उस पुस्तक का नाम है-"द क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन" जिसमें वह कहता है कि परमात्मा नहीं है क्योंकि तर्क उसे सिद्ध नहीं कर सकता। और वह किताब शुद्ध तर्क पर आधारित है। अतः वह उस पर सोचता चला जाता है, विचार करता चला जाता है और अंततः वह यह कहने लगता है कि कोई परमात्मा नहीं है, क्योंकि तर्क के लिए परमात्मा का विचार करना भी असींव है, क्योंकि इस हाईपोथेसिस को, इस मान्यता को सिद्ध करने का कोई भी उपाय नहीं है। वह एक ईमानदार आदमी की तरह तर्क करता है और पाता है कि परमात्मा को सिद्ध नहीं किया जा सकता।

अतः चूँकि यह हाईपोथेसिस, यह परमात्मा होने की मान्यता तर्कपूर्ण नीं है, इसलिए वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि परमात्मा नहीं है। लेकिन तब उसको बेचैनी का अनुभव होता है, क्योंकि वह एक बड़ा नैतिक,

बड़ा धार्मिक व्यक्ति था। वह एक बड़ी तीक्ष्ण बुद्धि का आदमी था, किन्तु नैतिक था, इसलिए वह लगातार बीस साल तक बेचैनी का अनुभव करता रहा।

फिर उसने दूसरी पुस्तक लिखी-"क्रिटिक ऑफ प्रेक्टिकल रीजन"। पहली पुस्तक थी-"क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन"। उसने "प्योर रीजन" का शुद्ध तर्क का अनुसरण किया, जहाँ भी वह ले गया, किंतु वह परमात्मा तक नहीं जाता था। बीस वर्ष तक, इस निष्पत्ति के साथ कि परमात्मा नहीं है, उसे बड़ी बेचैनी का अनुभव हुआ, उसे लगा कि जैसे उसने कोई बड़ी गलत बात की है। और गलत बात यह नहीं थी कि परमात्मा के बिना काण्ट को कोई तकलीफ थी, किन्तु उसने देखा कि यदि परमात्मा नहीं है, तो फिर सारी दुनिया से नैतिकता उठ जाती है, वाष्पीभूत हो जाती है।

तब उसने दूसरी किताब में लिखा कि शुद्ध तर्क से, प्योर रीजन से परमात्मा को सिद्ध करना संभव नहीं है, किंतु प्रेक्टिकल रीजन के लिए, दुनियादारी के लिए परमात्मा की जरूरत है। इसलिए परमात्मा कोई तार्किक हाईपोथेसिस नहीं है, किंतु एक वास्तविक तर्कयुक्त हाईपोथेसिस जरूर है-इसलिए वह कहता है, परमात्मा है। इसलिए नहीं कि परमात्मा है बल्कि इसलिए कि परमात्मा की आवश्यकता है। बिना परमात्मा के मनुष्य संभव नहीं हो सकता। अतः यदि वह नहीं है तो उसका आविष्कार करना पड़ेगा, केवल तभी नैतिकता संभव हो सकती है।

हमारे लिए ऐसी कितनी ही मान्यताएँ हैं। हम उनमें विश्वास करते रहते हैं, इसलिए नहीं कि हम जानते हैं बल्कि इसलिए कि यदि हम उनमें विश्वास नहीं करें, तो हमें अपने अज्ञान की प्रतीति होती है, हमारे गहरे अज्ञान की। हम उसे हटाना चाहते हैं, हम उससे बचना चाहते हैं।

संतोष वस्तुतः हमारे लिए एक गहरा बचने का उपाय है। हम जीवन से सघर्ष नहीं कर सकते। हम कोशिश तो करते हैं, लेकिन हम उसमें सफल नहीं हो सकते। कोई भी कभी सफल नहीं होता। प्रत्येक के लिए बाधाएँ आ जाती हैं। सीमाए हैं। और ऐसा नहीं है कि कमजोरों के लिए ही बाधाएँ हैं, जो बलशाली हैं, जो दूसरों से अधिक बलशाली हैं और जो आगे बढ़ जाते हैं, उनके लिए भी बाधाएँ हैं। और उन बाधाओं से नहीं बचा जा सकता।

नेपोलियन को भी मरना पड़ता है, सिकन्दर के सामने भी वे चीजें आ जाती हैं जिन पर वह विजय नहीं पा सकता। तो फिर हम करें क्या? एक बात तो यह कि सदा असंतोष में रहें। वह तो कैंसर हो जायेगा। उसके साथ तो तुम सो नहीं सकते, उसे तो तुम किसी भी क्षण भूल नहीं सकते। वह तो एक सतत संताप हो जायेगा, एक आंतरिक कैंसर हो जायेगा-मन के भीतर। इसलिए संतोष का मुखौटा ओढ़ लो कि मैं एक संतुष्ट आदमी हूँ। ऐसा नहीं है कि मैं इन बाधाओं को नहीं जीत सकता, किनतु मैं इनको जीतना ही नहीं चाहता। यह रेशनलाइजेशन है, यह तर्क बिठाना कि मेरा जीतने में कोई रस ही नहीं है। तुम पीछे सरक जाते हो और तुम उसे एक तार्किक रंग दे देते हो। यह संतोष एक तर्कयुक्ति है-एक चालाक तर्क की युक्ति। यह तुम्हें एक प्रकार की आशा बंधा देती है कि अगर तुम चाहो तो यह कर सकते हो।

इसे इस भाँति देखो, मैंने बहुत से लोगों को देखा है। एक आदमी को मैं जानता हूँ, वह शराब का आदी है। तीस साल से वह शराब छोड़ने की कोशिश कर रहा है, लेकिन वह नहीं छोड़ पाता। यह उसके लिए असंभव हो गया है। लेकिन फिर भी वह कहता रहेगा, वह मेरे पास आयेगा और कहेगा कि जिस दिन मैं चाहूँ, छोड़ सकता हूँ। और उसने लगातार तीस साल तक कोशिश करके देख लिया। उसने कितनी ही बार संकल्प भी किया और

वह हार गया और फिर गिर गया, लेकिन फिर भी वह कहता है कि यदि मैं चाहूँ तो मैं इस आदत को एक क्षण में छोड़ सकता हूँ।

इस आशा के कारण कि "यदि मैं चाहूँ" वह अभी भी यह सोचता है कि वह हारा हुआ आदमी नहीं है। वह कब का ही हार चुका है लेकिन यह उम्मीद उसको चलाये जाती है। वह सोचता रहता है कि वह किसी भी क्षण उसे छोड़ सकता है। वह उसका गुलाम नहीं है। वह उसे छोड़ सकता है। वह उसे नहीं छोड़ रहा है क्योंकि वह छोड़ना ही नहीं चाहता। अतः एक दिन मैंने उससे पूछा कि तुम कहते रहते हो कि यदि मैं चाहूँ---- लेकिन क्या तुमने कभी कोशिश नहीं की? क्या तुमने कितनी ही बार नहीं चाहा कि इसको छोड़ दें? तब उसने कहा कि हां, मैंने कितनी बार कोशिश की, किन्तु मेरी कोशिश पूरे हृदय से नहीं की गई थी। अतः मैंने उससे पूछा कि क्या तुमने कभी कोशिश की जबकि तुम्हारी कोशिश सारे मन से थी। उसने कहा कि यदि मैं पूरे मन से चाहूँ, तो मैं इसी क्षण छोड़ सकता हूँ। मैंने उससे पूछा कि क्या तुम्हारे लिए पूरे मन से संकल्प करना संभव है? क्या यह तुम्हारी सामर्थ्य में है कि तुम पूरे मन से संकल्प कर सको? क्या तुम्हारा संकल्प तुम्हारा है?

तोवह घबरा गया क्योंकि जब तुम्हें लगे कि तुम्हारा संकल्प भी तुम्हारा नहीं है, तो तुम्हें अपनी दासता, अपने कारागृह का सामना करना पड़ेगा। इसलिए वह एक कारागृह में है, लेकिन वह यह विश्वास करता चला जाता है कि वह स्वतंत्र है। इससे तुम्हें कारागृह में रहने में मदद मिलती है कि जैसे तुम अपने घर में ही हो।

इस तरह हम तर्क बिठाते रहते हैं और यह आदमी शराब नहीं छोड़ सकता, जब तक कि वह इस तर्क जाल को नहीं छोड़ देता। यदि उसे ऐसा प्रतीत होने लगे कि यदि मैं चाहूँ, तो भी मैं इसे नहीं छोड़ सकता, तभी वह वास्तविक होगा। तब वह जमीन पर आ जायेगा। और यदि उसे ऐसा लगे कि यदि मैं चाहूँ तो भी मैं कुछ भी नहीं कर सकता, तभी वह कुछ कर सकता है क्योंकि तब वह भ्रांति में नहीं होगा, उसने वास्तविकता का सामना कर लिया होगा। और तुम वास्तविकता के साथ कुछ कर सकते हो, तुम भ्रांतियों के साथ कुछ भी नहीं कर सकते।

वास्तविकता से बचने के लिए, हम बहुत-सी मानसिक धारणायें बना लेते हैं। मैंने सुना है-फ्रायड ने कहा था कि धर्म आदमी पर सत्ता जमाये रखेगा, इसलिए नहीं कि धर्म सत्य है, बल्कि इसलिए कि मनुष्य को बहुत-सी भ्रांतियाँ चाहिए। और आदमी अभी भी प्रौढ़ नहीं हुआ, परिपक्व नहीं हुआ कि वह बिना धर्म के जी सके। एक तरह से वह सही है क्योंकि जहाँ तक ज्यादातर लोगों का संबंध है, धर्म एक तर्कपूर्ण भ्रांति है। केवल कभी-कभी ही-किसी बुद्ध के साथ, किसी पतंजलि के साथ, अथवा किसी कपिल के साथ ऐसा होता है कि धर्म एक भ्रांति नहीं रहता बल्कि एक आत्यंतिक सत्य हो जाता है। लेकिन दूसरों के लिए धर्म एक भ्रांति ही है। वह तुम्हारे जीवन के लिए परिपूरक है। तुम्हारा सत्य इतना भयानक है, इतना भयभीत करनेवाला है कि उसे पूरा करने के लिए तुम्हें कुछ भ्रांतियों की आवश्यकता है।

उदाहरण के लिए यदि कोई देश गरीब है तो वह इस जीवन के बाद स्वर्ग में विश्वास करेगा। यहाँ की कमी पूरी करेगा। वास्तविकता इतनी भयानक है इतनी कुरूप है और चारों ओर इतनी पीड़ा है कि कुछ भी नहीं किया जा सकता। लेकिन तुम एक काम कर सकते हो : तुम स्वर्ग में विश्वास कर सकते हो, इस जीवन के बाद, और यह बात तुम्हारी मदद करेगी-इस कुरूप गरीबी में जीने के लिए। तब तुम आसानी से जी सकते हो क्योंकि तब थोड़ो सालों की तो बात है या कुछ ही जीवनों का तो सवाल है। उसके बाद तो तुम स्वर्ग में होओगे। अतः यह गरीबी कोई स्थायी घटना नहीं जिसके लिए तुमको चिन्ता करने की जरूरत है। यह तो एक क्षणिक घटना है। जैसे कि तुम रेलवे स्टेशन के बेटिंग रूम में ठहरे हो। रहने दो उसको कुरूप, रहने दो उसे जैसा वह है क्योंकि

तुम्हें वहाँ तो रहना नहीं है, वह तुम्हारा कोई घर तो है नहीं। एक मित्र आयेगा और तुम वेटिंग रूम को छोड़कर उसके साथ चले जाओगे।

यदि इस जीवन के बाद कोई स्वर्ग है तब यह जीवन सिर्फ एक वेटिंग रूम, एक विश्रामगृह से ज्यादा नहीं। हर आदमी अपनी गाड़ी के लिए ठहरा है। जब गाड़ी आ जायेगी, तो वह चला जायेगा। तुम्हें चिन्तित होने की जरूरत नहीं है। तुम मजे से अपनी आँखें बंद कर सकते हो और गायत्री का जाप कर सकते हो, तुम अपनी आँखें बंद कर सकते हो कोई मन्त्र का जाप कर सकते हो। यह तो सिर्फ विश्रामगृह है। धार्मिक आदमियों ने सतत इस संसार की तुलना एक विश्रामगृह है। धार्मिक आदमियों ने सतत इस संसार की तुलना एक विश्रामगृह से की है। तुम यहाँ सदा तो रहनेवाले नहीं हो, अतः चिंता करने की जरूरत नहीं है।

लेकिन विश्रामगृह ही तुम्हारा घर होनेवाला हो, यदि वह वेटिंग रूम नहीं हो किन्तु संपूर्ण वास्तविकता हो, तो फिर वहाँ रहना असंभव हो जायेगा। तब वहाँ एक घंटा भी रहना असंभव हो जायेगा। लेकिन यदि वह विश्रामगृह हो, तो तुम वहाँ कई जिंदगियाँ बिता सकते हो क्योंकि तुम्हारी आशा कहीं और है। वस्तुतः तुम वहाँ नहीं हो। तुमने मानसिक रूप से अपने को कहं और के लिए रूपान्तरित कर लिया। यह तरकीब है। मन कहीं और के लिए रहने चला गया है। केवल शरीर ही यहाँ है, अतः तुम रह सकते हो।

धर्म का बहुत कुछ तथाकथित धर्म की एक परिपूरकता है, सांत्वना है। जो कुछ भी तुम जीवन में पाते हो कि नहीं है, उसी की कमी को तुम स्वप्न में पूरा कर लेते हो। जिस चीज़ की भी तुम्हारे पास कमी होती है, उसे ही तुम स्वप्न में पूरी कर लेते हो। इसी कारण तो हर देश, हर धर्म, हर जाति एक अलग ही प्रकार के स्वर्ग और नर्क में विश्वास करते हैं। तुम एक प्रकार के स्वर्ग में विश्वास करते हो। दूसरे देश में स्वर्ग की अलग ही धारणा होगी, क्योंकि तुम्हारी समस्याएँ अलग हैं और उनकी समस्याएँ अलग हैं। इसलिए तुम एक ही प्रकार के स्वर्ग से कमी पूरी नहीं कर सकते।

उदाहरण के लिए, तिब्बत के लोग विश्वास करते हैं कि उनका स्वर्ग थोड़ा गर्म होगा। भारतीय विश्वास करते हैं कि स्वर्ग में ठंडक होगी। भारतीयों का विश्वास है कि नर्क आग से जल रहा होगा। तिब्बती लोगों का ख्याल है नर्क बर्फ की तरह ठंडा होगा। यह इतना भेद क्यों है? यह भेद कमी को पूरा करने के लिए है।

वे पहले से ही भारत के स्वर्ग में रह रहे हैं, और भारत पहले से ही उनके नर्क में है। भारत कभी स्वर्ग में विश्वास ही नहीं कर सकता यदि वह वातानुकूलित नहीं हो। वह भी कोई स्वर्ग होगा जो कि वातानुकूलित नहीं हो? वह वातानुकूलित तो होना ही चाहिए। यह पूर्ति करना है। तुम्हारा संतोष एक क्षतिपूर्ति है। यह मन की एक चालाक तरकीब है।

इसलिए ऐसा मत सोचना कि जो हमारे में संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं, वे सरल लोग हैं। वे बड़े जटिल तथा चालाक लोग हैं। जब कभी आदमी कहता है कि मैं अपनी गरीबी से संतुष्ट हूँ, तो ऐसा मत सोचें कि वह सीधा-सादा आदमी है। उसने एक बहुत ही चालाकी का रुख अपनाया है।

एक बार मैं एक जैन साधु से मिला। वे एक बड़े नेता हैं, उनके बहुत से अनुयायी हैं। सैकड़ों जैन साधु उनको अपना गुरु मानते हैं। अतः जब मैं उनसे मिला, तो उन्होंने एक कविता मुझे सुनाई। वह कविता उन्होंने ही लिखी थी। वे एक वृद्ध पुरुष हैं, बहुत वृद्ध। वे नग्न रहते हैं।

उन्होंने मुझे अपनी वह कविता सुनाई। उस कविता का एक ही मुख्य भाव था जो कि बारबार दोहराया गया था, और वह भाव यह था कि तुम चाहे सम्राट होओ, तुम चाहे अपने स्वर्ण सिंहासन पर आरूढ़ होओ, किन्तु मैं अपनी धूल में आनंदित हूँ। मुझे तुम्हारे सिंहासनों की परवाह नहीं। मैं अपनी झोंपड़ी में प्रसन्न हूँ। तुम

चाहे महल में रहो, मैं अपनी झोंपड़ी में आनंदित हूँ। तुम्हारे पास चाहे कुछ भी हो वह मेरे लिये कुछ भी नहीं है, क्योंकि मृत्यु तुमसे सभी कुछ छीन लेने वाली है।

इस तरह वह सारी कविता चलती है। यह जो मन है, बड़ा चालाक है। वे क्या कह रहे हैं? यदि उनका सम्राट होने में कोई भी रस नहीं है तो इस तुलना की क्या जरूरत है? सदि सच में ही तुम अपनी धूल में राजी हो, तो स्वर्ण के सिंहासनों का ख्याल भी क्यों करना? मैंने आज तक एक भी कविता नहीं सुनी जिसमें कि किसी सम्राट ने कहा हो कि तुम अपनी धूल में चाहे आनंदित होओ, लेकिन मैं अपने स्वर्ण-सिंहासन पर ही संतुष्ट हूँ। क्यों किसी भी सम्राट ने ऐसा नहीं लिखा? उसका जरूर कुछ कारण होना चाहिए।

और फिर यह व्यक्ति क्यों कह रहा है कि जो भी तुम्हारे पास है, मृत्यु उसे छीन लेने वला है? उसे इस बात में सुख मिल रहा है कि "अच्छा, रहो अपने स्वर्ण सिंहासन पर। जल्द ही मैं देखूँगा कि मृत्यु सब कुछ छीन लेती है और तब तुम्हें पता चलेगा कि कौन सुखी था। मैं सुखी हूँ क्योंकि मृत्यु मुझसे कुछ भी नहीं छीन सकती।" यह जो रुख है एक बड़ा ही चालाकी का रुख है, यह कोई संतोष नहीं है। लेकिन वे सज्जन संतोष पर लिख रहे थे। उनकी कविता का शीर्षक था-संतोष।

क्या यह संतोष है? यदि यही संतोष है तो यह सूत्र इससे संबंधित नहीं। इस सूत्र का भिन्न ही अर्थ है-संतोष का दूसरा ही आयाम। वह क्या है? जहाँ तक तुम्हारा संबंध है तुम किसी चीज़ की कामना करते हो, लेकिन तुम्हें वह मिलती नहीं। अथवा यदि मिल भी जाती है, तो भी कामना अतृप्त ही रहती है। तब तुम तर्क बिठाते हो। तब तुम कहते हो-मुझे संतोष में जीना चाहिए क्योंकि इच्छा दुःख देती है, पीड़ा पहुँचती है, क्योंकि इच्छा के कारण चिंता पैदा होती है, और आकांक्षा से अकारण ही संताप उठाना पड़ता है। अतः मैं छोड़ता हूं, अब मैं इच्छा ही नहीं करता क्योंकि मैं दुःख पाना नहीं चाहता।

यह इस सूत्र का संतोष नहीं है। यह सूत्र बहुत-सी बातें बतलाता है, अतः अच्छा होता कि हम इस सूत्र में कई द्वारों से प्रवेश करें। हमारा संतोष आता है- इच्छा की विफलता के बाद यह संतोष आता है- इच्छा की शून्यता से। ऐसा नहीं है कि इच्छा संताप है, बल्कि यह है कि इच्छा करना ही बेकार है, कामना अर्थहीन है, मूर्खता है। इस बात को जानकर, इसका बोध होने पर, इसको अनुभव करने के बाद ही कोई अच्छा-शून्य होता है। तब कोई यह नहीं कहेगा कि मैं तुम्हारे महल की परवाह नहीं करता, मैं तुम्हारे सिंहासन की फिक्र नहीं करता। तब कोई तुलना नहीं करता और यह नहीं कहता कि मुझे अपनी झोपड़ी ही पसंद है।

बुद्ध ने अपना महल छोड़ दिया है। जिस रात उन्होंने महल छोड़ा, केवल उनका सारथी साथ आया है, उन्हें राज्य की सीमा पर छोड़ने के लिए। सारथी रो रहा है। वह उन्हें प्रेम करता है और उनसे उसका लगाव है। वह सोचता है कि यह बड़ी मूर्खता है। क्या हो गया है राजकुमार सिद्धार्थ को? वे यह क्या कर रहे हैं? महल छोड़कर जा रहे हैं? राज्य छोड़ रहे हैं? अपनी सुंदर पत्नी को छोड़ रहे हैं, सब छोड़ रहे हैं जो कि प्रत्येक पाना चाहता है? जरूर ये पागल हो गये हैं? अतः वह रोता जा रहा है। वह कुछ बोल भी नहीं सकता। वह बुद्ध के रथ का केवल सारथी है। लेकिन वह उन्हें प्रेम करता है, उसका उनसे लगाव है, और उसे लगता है कि राजकुमार सिद्धार्थ कोई बड़ी बेवकूफी का काम कर रहे हैं।

यह बात एक गरीब आदमी की कल्पना के बाहर है। उसकी प्रतिक्रिया प्राकृतिक है। वह सोचता है कि यह तो साफ विक्षिप्तता है। सिद्धार्थ क्या कर रहे हैं? फिर जब वे छोड़कर जाने लगते हैं, तो वे सिर्फ एक ही बात कहता है। वह कहता है-"मैं आपको कुछ भी कहनेवाला कौन होता हूँ? मैं सिर्फ एक सारथी हूँ। और फिर मेरा यह काम भी नहीं कि आपके काम में दखल दूं। आपकी आज्ञा मेरे लिए सब कुछ है, इसलिए मैं आपको राज्य की

सीमा पर ले आया हूँ। लेकिन यदि आप बुरा न मानें, तो मुझे कुछ कहने दें। आप यह क्या कर रहे हैं? यह तो पागलपन मालूम होता है। इसी को पाने के लिए तो आदमी जीता है। इसी सबकी तो आदमी कामना करता है। आप इसमें पैदा हुए। आप बहुत सौभाग्यशाली हैं। आप इसे को छोड़कर क्यों जा रहे हैं? स्मरण करें, राज्य का स्मरण करें और उन सुखों का, जो कि उससे मिलते हैं।"

बुद्ध कहते हैं, "मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि तुम क्या बात कर रहे हो। मैंने पीछे कोई महल नहीं छोड़ा है। मैंने कोई साम्राज्य भी नहीं छोड़ा है। मैंने केवल एक दुःख-स्वप्न ही छोड़ा है। सभी कुछ अग्नि में जला जा रहा था। मैं तो सिर्फ उससे भाग रहा हूँ। मैंने उसे त्यागा नहीं है-क्योंकि त्यागने का अर्थ ही यह होता है कि जैसे तुम बहुत कीमती कोई चीज़ पीछे छोड़ रहे हो। मै। ने पीछे कुछ त्याग नहीं किया है। कुछ त्यागने जैसा था भी नहीं। सभी कुछ अग्नि में जल रहा है। वह एक दुःख स्वप्न था। अतः मैं उससे बचकर जा रहा हूँ। और तुम्हारा बहुत धन्यवाद कि तुमने मेरी उसमें से निकलने में मदद की।"

उसके बाद बुद्ध ने कभी अपने महल की बात नहीं की, कभी अपने साम्राज्य की, अपनी सुंदर पत्नी की चर्चा नहीं की-कभी भी नहीं। यदि यह छोड़ना एक सौदा हो, यदि यह त्याग कुछ और चीज पाने के लिए हो-भविष्य में, यदि यह त्याग स्वर्ग, अथवा मोक्ष आदि पाने के लिए एक इनवेस्टमेंट हो, तो फिर तुम इसे आसानी से नहीं भूल सकते। वे उसे बिल्कुल ही भूल गये। क्यों? क्योंकि वे कुछ और पाने के लिए उस सबको नहीं छोड़ रहे थे।

यदि तुम कुछ पाने के लिये कुछ छोड़ते हो, तो वह इच्छा है। यदि तुम सिर्फ उसे छोड़ देते हो, तो वह इच्छा का शून्य हो जाना है। यदि तुम उसे किसी और चीज के लिए छोड़ते हो, तो वह अभी भी इच्छा ही है। यदि तुम सिर्फ उसे छोड़ देते हो, उसकी व्यर्थता जानकर उसकी मूर्खता को समझकर तो फिर इच्छा-शून्यता है। और जब मनुष्य इच्छाशून्य हो जाता है, तो वह संतुष्ट हो जाता है। यह पहला द्वार है। जब कोई आदमी निर्वासन को उपलब्ध हो जाता है, तब ही वह तृप्त होता है क्योंकि अब तुम उसे अतृप्त, असंतुष्ट कैसे करोगे? वह अब संतोष में ठहर गया है क्योंकि अब असंतोष संभव ही नहीं है।

च्वांगत्सु की पत्नी मर गई थी। सम्राट भी अपनी सद्भावना प्रकट करने आया था। च्वांगत्सु एक बहुत "बड़ा ज्ञानी था, इसलिए सम्राट भी आया था। वह उसका मित्र भी था। सम्राट च्वांगत्सु का मित्र था। और कभी वह च्वांगत्सु को अपने महल में बुलाता था, उससे ज्ञान प्राप्त करने के लिए। च्वांगत्सु तो भिखारी था, किन्तु ज्ञानी था। अतः सम्राट आया। उसने अपने मन में सब तैयारी कर रखी थी कि उसको क्या-क्या कहना है क्योंकि च्वांगत्सु की पत्नी की मृत्यु हो गई थी। उसने सारी अच्छी बातें याद कर रखी थीं-उसको सांत्वना देने के लिए। लेकिन जैसे ही उसने च्वांगत्सु को देखा, तो वह बहुत हैरान हुआ। च्वांगत्सु तो गीत गा रहा था। वह एक वृक्ष के नीचे बैठा था और अपनी खंजड़ी बजा रहा था तथा जोरों से गा रहा था। वह बड़ा आनंदित दिखलाई पड़ रहा था और सबेरे ही उसकी पत्नी मरी थी।

च्वांगत्सु ने कहा, सचमुच, मेरी पत्नी मर गई है। लेकिन मैं क्यों रोऊं? यदि वह मर गई है, तो मर ही गई है। और मैंने कभी अपेक्षा नहीं की थी कि वह सदा जीवित रहेगी। तुम रोते हो क्योंकि तुम अपेक्षा करते जीने की हो। मैंने कभी अपेक्षा नहीं की थी कि जीवित रहने वाली है। मैं सदा जानता था कि वह एक दिन मर जाने वाली है, और आज वैसा हो गया है। यह किसी दिन तो होने ही वाला था। और सब दिन ऐसे ही है मृत्यु के लिए जैसा कि आज का दिन है, इसलिए मैं क्यों नहीं गाऊं? यदि मैं तब नहीं गा सकता जबकि मृत्यु हो, तो फिर मैं जीवन में कभी भी नहीं गा सकता क्योंकि जीवन भी सतत मृत्यु है। हर क्षण मृत्यु घटित हो रही है- किसी-न-किसी

की- कहीं-न-कहीं। जीवन एक सतत मृत्यु ही हैं यदि मैं मृत्यु के क्षण में नहीं गा सकता, तो फिर मैं कभी भी नहीं गा सकता।

जीवन और मृत्यु दो चीजें नहीं हैं। वे एक ही हैं। जिस क्षण कोई पैदा होता है, मृत्यु का भी उसके साथ ही जन्म हो जाता है। जब तुम जीवन में बढ़ रहे होते हो, तब तुम मृत्यु में भी बढ़ रहे होते हो। और जो भी मृत्यु में जाना जाता है, वह कुछ और नहीं है बल्कि वह तुम्हारे तथाकथित जीवन का शिखर है। इसलिए मैं क्यों नहीं गाऊँ? और फिर वह स्त्री मेरे साथ इतने वर्ष रही, तो फिर तुम मुझे उसके प्रति कृतज्ञता में गाने भी नहीं दोगे? जब उसने यह संसार छोड़ दिया है तो उसे बड़ी शांति से बड़े सुसंवाद में, बड़े संगीत और प्रेम से प्रस्थान करना चाहिए। फिर मैं क्यों रोऊँ?

इस अंतर को देखो। हम इच्दा करते चले जाते हैं और तब विफलताएं आती हैं। तब हम संतोष धारण करने की कोशिश करते हैं। इस सूत्र को अर्थ है कि तुम इच्छा ही नहीं करते और इच्छा करने की सारी व्यर्थता को देख लेते हो। इसलिए दूसरा फर्कः हम संतोष को पैदा करते है, जब हम विफल होते हैं। जब तुम सफल होते होते हो तुम बहुत प्रसन्न होते हो। उससे पता चलता है कि तुम्हारा संतोष झूठा था। जब मैं विफल होता हूं तो मैं कहता हूं कि मैं संतुष्ट हूं। जब सफल होता हूं तो मैं आनंद से भर जाता हूं। यह असंभव है। तुम्हारे संतोष के पीछे, जरूर कुछ उदासी होनी चाहिए। अन्यथा तुम्हारी सफलता में ऐसा आनंद संभव नहीं है। यदि सफलता में तुम आनंदित होते हो, तो यह असंभव है कि जब तुम विफल होओ, तब तुम दुःखी ने होओ।

च्वांगत्सु जैसे लोगों के लिए, बुद्ध जैसे पुरुषों के लिए-चाहे वे जीवन में सफल हों अथवा विफल हों-कुछ अर्थ नहीं रखता। यह बात ही असंगत है। वे संतुष्ट ही रहते हैं। तुम्हारा झूठा संतोष तुम्हारी सफलता से टूट जायेगा। जब तुम विफल हो जाते हो, जब तुम दुःख में होते हो, तब तुम उसका केंद्र की भांति उपयोग करते हो। जब तुम सफल होते हो, तो तुम केंद्र से बाहर खुले आकाश में आ जाते हो, नाचते, कूदते हुए, खुशी मनाते हुए।

यह असंभव है। इससे यह मालूम पड़ता है कि तुम्हारा केंद्र झूठा था। वह सिर्फ आपात्कालीन व्यवस्था थी। वह तुम्हारा कोई स्वभाव नहीं है। एक व्यक्ति जो कि संतुष्ट है वह सफलता अथवा विफलता में कुछ भी भेद का अनुभव नहीं करेगा। वह कर ही नहीं सकता। अब उसके लिए कोई भेद नहीं है। जो भी हो, अब वह संतुष्ट है। चाहे वह सफल हो, चाहे विफल हो, अब यह उसकी चिंता नहीं है क्योंकि अब उसकी कोई मरजी नहीं है कि यह परिणाम आये या वह परिणाम आये : कि ऐसा हो भविष्य। चाहे जो भी हो, उसका भविष्य तरल है। वह उसे अपनाने को तैयार है- वह चाहे कैसा भी हो।

मन अधैर्यवान है, लेकिन जीवन नहीं है। मन अधीर है, परमात्मा अधीर नहीं है। मन क्षणभंगुर है; जीवन शाश्वत है। मन की एक सीमा है कि कहां तक वह प्रतीक्षा कर सकता है, कि कहां तक वह इच्छा कर सकता है, कि कहां त कवह अनुभव कर सकता है, कि कहां तक वह इंतजार कर सकता है पाने के लिए। जीवन की तो कोई सीमा नहीं है। वह तो चलता जाता है, चलता जाता है। उसकी प्रक्रिया अनंत है। यूंकि हम आशा करते हैं कि किसी इच्छा को भविष्य में पूरी करना है, मन सदा असंतोष में रहता है। जीवन की असीमता को देखते ही जीवन की अनंत प्रक्रिया को देखते हुए यदि कोई संतुष्ट् हो जाता है। यदि यह सन्तोष कोई आत्मरक्षा का उपाय नहीं है, तो यह प्रज्ञा

तीसरे : हम इसे एक और द्वार से देखें। संतोष का अर्थ होता है चेतना अभी और यहां; असंतोष का अर्थ होता है चेतना कहीं और-भविष्य में। असंतोष का संबंध है या तो अतीत से या भविष्य से। संतोष अभी और

यहां है, वर्तमान में हैं एक आदमी जो कि क्षण-क्षण जीता है, वह संतुष्ट होगा। लेकिन हम कभी भी क्षण-क्षण नहीं जीते। वस्तुतः हम कभी क्षण में नहीं जीते। हम सदा उसके पार जीते हैं- कहीं दूर भविष्य में। हम छाया का तरह चलते हैं और हम भविष्य में चलते चले जाते हैं। और जितने अधिक तुम भविष्य में जीते हो, उतने ही अधिक तुम असंतोष में जीते हो क्योंकि भविष्य कभी भी नहीं आता।

अस्तित्व में भविष्य नहीं होता। अस्तित्व में भविष्य जैसा कुछ भी नहीं होता। अस्तित्व वर्तमान में एक सातत्य है। अस्तित्व अभी और यहीं है। आशा कहीं औश्र् है, और वे कभी मिलत नहीं। उनका न-मिलना ही असंतोष है। तु आशा करते हो, और उसका कोई मिलना नहीं होता। तुम सपना देखते हो, ओर वह कभी पूरा नहीं होता। और एक अंतराल होता है-हमेशा एक अनंत अंतराल-तुमने और तुम्हारी आशाओं में, इसलिए तुम असंतोष में जीत हो। असंतोष का मतलब है एक गति, जो कि सदा भविष्य में है और कभी भी वर्तमान में नहीं है।

बुद्ध कहते हैं कि केवल यह क्षण ही सत्य है। वास्तविक है। इसलिए उनके दर्शन को क्षणिकवाद करते हैं। इस क्षणिकवाद का अर्थ है कि केवल यह क्षण ही वास्तविक क्षण है। इसके आगे मत जाओ। अभी और यहीं रहो। इस पर ध्यान दो। इस पर सोचो। यदि इस क्षण के लिए तुम अभी और यहीं हो, तो तुम असंतुष्ट कैसे होओगे।

भारत कहता है कि कुछ भी स्थायी नहीं है, कुछ भी स्थायी रूप् से नहीं हो सकता-परमात्मा की मूर्ति भी नहीं। क्योंकि तुमने ही उसे बनाया है, वह स्थायी नहीं हो सकती। अपने-आपको धोखा मत दो। जब समय पूरा हो जाता है, जाओ और उसे वापस फेंक दो। तुम्हारा परमात्मा भी स्थायी नहीं हो सकता। अपने परमात्माओं को भी फेंक दो-उन्हें बनाओ भी और विसर्जित भी कर दो। उनका उपयोग करो और उन्हें फेंक भी दो। केवल तभी तुम उस परमात्मा का प्राप्त हो सकोगे जो कि तुम्हारे द्वारा नहीं बनाया गया है। मूर्तियां तो तुम्हारे द्वारा निर्मित हैं, अतः उनकी साधन के रूप में उपयोगिता है। वे उपाय हैं। उनकी जरूरत है क्योंकि तुम अभी सत्य से, वास्तविकता से दूर हो और अभी तुम्हारे लिए अमूर्त परमात्मा को समझना कठिन है।

एक मूर्ति को निर्माण करो, लेकिन उस पर ही मत ठहरो। उससे चिपकना ठीक नहीं है। जब पूजा पूरी हो जाये, उसे फेंक दो। उसे फिर से कीचड़ में डाल दो। वह फिर कीचड़ हो जायेगी। अब उसे संभाल कर मत रखो। यह एक गड़ी मनोवैज्ञानिकक प्रक्रिया है क्योंकि परमात्मा को फेंकना बड़े साहस की बात है, परमात्मा को फेंकने के लिए बड़ी अनासक्ति की जरूरत है।

तुम तो पूजा करते थे, परमात्मा के चरणों पर पड़कर रोकर, चिल्लाकर, गाकर, नाचकर और अब तुम्हीं जाते हो और उसे समुद्र में फेंक देते हो। अतः यह एक उपाय था-उसमें कुछ भी स्थायी नहीं था। तुमने उसका साधना की तरह उपयोग किया। अब पूजा पूरी हो गई, इसलिए इसे फेंक दो और इसका फिर से निर्माण्ध कर लेना जब इसकी जरूरत हो। यह लगातार निर्मित करना और विसर्जित करना तुम्हें सदैव स्मरण दिलाता रहेगा कि तुम्हारे द्वारा बनाया गया परमात्मा असली परमात्मा नहीं है। वह सिर्फ प्रतीक है।

अतः झूठ चेहरे झूठी आकृतियां मत बनाओ। इससे ही विसर्जन कहते हैं। यह शब्द सुन्दर है। पहले आकृति का सर्जन करो, फिर उसका विसर्जन करो। वह नष्ट नहीं की जाती। विसर्जन का अर्थ होता है-सर्जन का नहीं कर दो। पहले सर्जन करो, फिर उसका विसर्जन करो, फिर सब तत्त्वों को अपने मूल तत्त्व में चले जाने दो।

हिन्दू कहते हैं कि मृत्यु विसर्जन है उसका, जो कि तुमने अपने जन्म में सर्जित किया था। तुम एक मिट्टी की मूरत हो। फिर मृत्यु में सारे तत्त्व अपने मूल-स्रोत को पहुँच जाते हैं। तुम विसर्जित हुए और वह जो कि तुम्हारे जन्म में पैदा नहीं हुआ था, जो कि तुम्हारे जन्म के पहले भी था, वह तुम्हारी मृत्यु के बाद भी बचेगा।

लेकिन तुम्हारी आकृति तो विसर्जित होगी। यही मानव कोईश्वर के साथ भी करना चाहिए-मानव-निर्मित ईश्वर। उन्हें निर्मित करो और फिर विसर्जित करो।

यह सूत्र कहता है कि संतोष ही विसर्जन हैं जब तुम पूरी तरह संतुष्ट हो, तो तुम जन्म के चक्कर से बाहर हो जाते हो। अब तुम पुनः जन्म नहीं लोगे क्योंकि इच्छा ही जन्म लेती है। न कि तुम, और इच्छा, वासना के कारण ही तुम उनको अनुकरण करते हो। तुम अपनी वासना की छाया हो जाते हो। वासनाएं आगे बढ़ती हैं और तुम पीछे-पीछे जाते हो।

सृजन का अर्थ होता है इच्छा। तुम बिना इच्छा के सृजन नहीं कर सकते। इच्छा से तुममें गति पैदा होती है, तुमसे प्रयत्न होता है और तब तुम सृजन करते हो। तब उसे विसर्जित कैसे करें? यदि इच्छा शेष हो, तो तुम विसर्जित नहीं करते हो। तब उसे विसर्जित कैसे करें? यदि इच्छा शेष हो, तो तुम विसर्जित नहीं कर सकते। विसर्जन का अर्थ हुआ कि अब कोई कामना नहीं है, इच्छा-शून्यता, संतोष, तृप्ति। इसीलिए यह सूत्र विसर्जन से संतोष को जोड़ता है। यदि मनुष्य पूरी तरह तृप्त है, तब सभी कुछ विसर्जित हो जायेगा।

इसी को बौद्ध निर्वाण कहते हैं। इच्छा का न हो जाना। बुद्ध कहते हैं कि जब कोई इच्छा, वासना नहीं रह जायेगी तो तुम मिट जाओगे, तुम ब्रह्मांड में लीन हो जाओगे। फिर भी हमारा वासना से भरा मन पूछता है लेकिन मैं तो कहीं रहूँगा। क्या मैं कहीं भी नहीं रहूँगा? तो फिर मैं कहाँ होऊँगा? बुद्ध कहते हैं कि दीये की लौ को बुझ जाना होगा।

क्या तुम पता लगा सकते हो कि वह कहाँ है? कि वह कहाँ गई? तुम एक दीये को बुझा देते हो-लौ खो जाती है। कहाँ है वह? इसलिए बुद्ध कहते हैं कि वह सिर्फ विसर्जित हो गई। वह वापस अपने तत्व को, अपने स्रोत को पहुँच गई।

वह सब कहीं है और कहीं भी नहीं। और ये दोनों ही बातें अर्थपूर्ण हैं। यदि तुम कहते हो कि वह सब कहीं है, तो इसका भी अर्थ यही होता है कि अब वह कहीं भी नहीं है। तुम उसे कहीं भी नहीं खोज सकते। अथवा तुम कह सकते हो कि वह कहीं भी नहीं है, क्योंकि उसे खोज पाना असंभव है।

हसन, एक सूफी फकीर अपने जीवन में कहता है कि मैं एक बार किसी गाँव से गुजर रहा था, और मैं इतना ज्ञान से भरा था कि मैं किसी को भी सिखाना चाहता था-किसी को भी जो भी मिल जाए। उसी को ज्ञान-देना चाहता था, किन्तु सारा दिन बिना सिखाये बीत गया।

यह एक गुरु की खुजली है, यह एक बीमारी है। सारा दिन बीत गया और हसन ने किसी को भी ज्ञान नहीं दिया। अतः उसने एक बच्चे को ही पकड़ा। बच्चा हाथ में एक दिया लेकर जा रहा था, जलता हुआ दिया लेकर मंदिर जा रहा था। शाम ढल रही थी, और बच्चा मंदिर में दिया रखने जा रहा था।

हसन ने उसे रोका और कहा, "क्या बेटा, क्या तुम मुझे एक प्रश्न का उत्तर दोगे? कि इस दिये में यह लौ कहाँ से आई?" वह एक बड़ा रहस्यवादी प्रश्न पूछ रहा था और उसे पक्का विश्वास था कि बच्चा उसके जाल में फंस जायेगा। लेकिन उस बच्चे ने कुछ और ही किया, और हसन उस घटना को अपने जीवन भर कभी भी नहीं भूल सका। लड़का हँसा और उसने उस दिये को बुझा दिया। और उसने कहा कि, "अब यह तुम्हारे सामने ही गायब हो गई है। मुझे बताओ कि वह कहाँ गई? यदि तुम मुझे यह बता सको कि वह कहाँ चली गई तो मैं तुम्हें बता दूँगा कि वह कहाँ से आई। और यह तो तुम्हारे सामने ही गई है।"

हसन तो उस लड़के के पाँवों पर गिर गया और बोला, मुझे क्षमा करो मुझे कुछ भी पता नहीं। मैं सिर्फ ज्ञान से भरा हुआ हूँ। मुझे यह भी पता नहीं कि वह लौ कहाँ चली गई है, अतः मुझे और क्या पता होगा? तुम मेरे गुरु हुए, तुमने मुझे बहुत कुछ सिखाया। तुमने मुझे मेरे अज्ञान को बता दिया।

जब हसन को ज्ञान उपलब्ध हुआ, तो सबसे पहले उसने इस लड़के को धन्यवाद दिया, इस अज्ञात लड़के के प्रति अनुग्रह का भाव व्यक्त किया। अतः उसके शिष्यों ने पूछा, "आप किसे धन्यवाद दे रहे हैं?" उसने जवाब दिया, "एक लड़का था-एक गाँव में जिसने कि मेरे अज्ञान को मेरे सामने उघाड़कर रख दिया। उसने जलते हुए दिये की लौ बुझा दी और पूछा कि बताओ वह कहाँ गई। वह पहला सच्चा गुरु था क्योंकि बाकी सब गुरुओं ने तो मुझे और-और ज्ञान दिया, लेकिन वह पहला और अकेला था जिसने कि मुझे मेरा अज्ञान बताया। और केवल उसी के कारण मुझे पता चला कि मेरा ज्ञान झूठा है। और जब तुम्हारा ज्ञान झूठा हो जाए और तुम्हें उसका पता चल जायें, केवल तभी तुम, सच्चे और प्रमाणिक ज्ञान की ओर अग्रसर हो सकते हो, जानने की ओर बढ़ सकते हो।"

यह सूत्र कहता है कि संतोष ही विसर्जन है। जब तुम पूरी तरह संतुष्ट हो, तो तुम जन्म के चक्कर से बाहर हो जाते हो। अब तुम पुनः जन्म नहीं लोगे क्योंकि इच्छा ही जन्म लेती है, न कि तुम, और इच्छा, वासना के कारण ही तुम उसका अनुकरण करते हो। तुम अपनी वासना की छाया हो जाते हो। वासनाएँ आगे बढ़ती हैं और तुम पीछे-पीछे जाते हो।

अब कोई वासना नहीं है और अब किसी गति की आवश्यकता नहीं हैं व्यक्ति जन्म के चक्र से मुक्त हुआ, संसार से छूटा। यही मोक्ष है, मुक्ति है।

स्वयं को विसर्जित करो। इस विसर्जन से तुम अपनी वासनाओं को विसर्जित करते हो। अपने स्वरूप के केंद्र कोप्राप्त करो संतोष से। संतोष ही स्वयं में केंद्रित होता है, और कोई उससे ही अडिग, निश्चल तथा शांत हो सकता है।

पंद्रहवां प्रवचन

विसर्जन : आकार-मुक्ति का उपाय

प्रश्न

1. पहले मूर्ति बनाकर उसे विसर्जित करने का क्या अर्थ है?
2. एक साधक अपने असंतोष के साथ कैसे तालमेल बिठाये?

भगवन्! कल रात्रि आपने एक हिन्दू-प्रथा के बारे में बताया जिसमें कि पहले एक मिट्टी की प्रतिमा बनाई जाती है और उसे फिर नदी या समुद्र में विसर्जित कर दिया जाता है। यह बात बाहर भौतिक तल पर होती है।

इस बाह्य क्रिया-काण्ड का मनोवैज्ञानिक तथा आंतरिक अर्थ क्या है? वह क्या है जिसे कि भीतर निर्मित करना ही चाहिये? और उसे कब विसर्जित करना चाहिये?

दूसरे, कृपया यह भी बतलायें कि क्या यह विसर्जन एक क्रमिक प्रक्रिया है अथवा कि एक अचानक होने वाली घटना। और क्या यह एक सजगता की क्रिया है अथवा मात्र छोड़ना है-लेट-गो?

जीवन सीखना भी है और अनसीखा करना भी है। किसी को भी बहुत-सी चीजें सीखनी पड़ती है और फिर उसे उन्हें अनसीखा भी करना पड़ता है और दोनों ही आवश्यक है। यदि तुम सीखो नहीं, तो तुम अनभिज्ञ रह जाओगे यदि तुम सीख लो और फिर उससे चिपक जाओ, तो तुम पंडित तो हो जाओगे लेकिन तुम अज्ञानी ही रह जाओगे। यदि जो भी तुमने सीख लिया है और यदि तुम उसे अनसीखा भी कर सको, तो तुम ज्ञानी हो पाते हो।

ज्ञान का गुण बचपने जैसा होता है। लेकिन वह सिर्फ बालवत होता है, ठीक बच्चों जैसा ही नहीं होता। बच्चा अज्ञानी है, और ज्ञानी जानता है। बच्चे को अभी जानना है और ज्ञानी उसके भी पार चला गया है। बच्चे को अभी कुछ भी पता नहीं है, और ज्ञानी के पास भी कोई ज्ञान नहीं है। किन्तु बच्चे में वह अभी नकारात्मक है, जबकि ज्ञानी में वह ज्ञान का अभाव विधायक है। वह पार चला गया है। वह अतिक्रमण कर गया है। अतः आध्यात्मिक विस्फोट के मूल सिद्धान्तों में से यह एक है कि जो कुछ भी सीख लिया गया उसे अनसीखा करना, अनसीखा करते ही चले जाना और यह बात आध्यात्मिक विकास के सभी तलों से संबंधि है।

हमने कल रात एक बड़े विचित्र हिन्दू क्रियाकाण्ड पर बात की। हिन्दू देवताओं की प्रतिमाएँ बनाते हैं : किसी खास क्रिया-कर्म के लिये, किसी खास पूजा के लिये तथा किन्हीं खास दिनों के लिये। तब फिर उसे मिट्टी की प्रतिमा की पूजा करते हैं और जब समय पूरा हो जाता है, जब क्रिया-कर्म पूरा हो जाता है वे उसे समुद्र में अथवा नदी में विसर्जित कर देते हैं। वही प्रतिमा जो कि निर्मित की थी, उसको विसर्जित कर देते हैं।

मैंने कहा कि पत्थर की प्रतिमाओं का आगमन जैनों तथा बौद्धों के साथ हुआ। हिन्दुओं ने कभी भी पत्थ्नर की प्रतिमाओं में विश्वास नहीं किया क्योंकि एक पत्थर स्थायित्व का एक झूठा आभास दे सकता है जबकि पूरा जीवन ही अस्थायी है। अतः आदमी के बनाये हुये देवता भी स्थायी नहीं हो सकते। जो भी आदमी बना सकता है वह अस्थायी ही रहेगा। वह आदमी के जैसा ही होगा। लेकिन हम कुछ चीजें इस तरह बना सकते हैं जो कि हमें ही स्थायी दिखाई पड़े अथवा झूठे ही स्थायित्व का ख्याल दें। एक झूठा स्थायित्व संभव है। धातु की

प्रतिमाओं के साथ, पत्थर, सीमेंट, कंक्रीट की प्रतिमाओं के साथ एक झूठे स्थायित्व का ख्याल निर्मित करना संभव है।

हिन्दुओं ने सदा से मिट्टी की प्रतिभाओं में विश्वास किया। उन्होंने उन्हें बनाया और फिर उनको मिटाया, इस बात को जानते हुये कि वे किसी खास कारण से किसी उपाय की भाँति बनाई गई थीं। जब उनका काम समाप्त हो गया तब उन्होंने उन्हें मिटा दिया। क्यों? क्योंकि यदि वे उनको मिटा नहीं देते हैं, तो उनके प्रति एक गहरी पकड़ की संभावना है और वह पकड़ ही एक बाधा बन जायेगी। अन्ततः आदमी को पूरी तरह सब पकड़ छोड़ने के अन्तिम बिन्दु को पहुँचना है। तभी कोई मुक्त होता है। यही अर्थ है मोक्ष का-मुक्ति का : कि कोई पकड़ नहीं, परमात्मा की भी नहीं। अतः अन्ततः प्रतिमाओं को ही नहीं गिरा देना है, बल्कि देवताओं को भी। सब प्रकार के सभी विषयों को गिरा देना है ताकि अन्त में सिर्फ निजता ही बस जाये, केवल चैतन्य ही बच जाये- बिना चैतन्य के किसी भी विषय के।

इसे इस भाँति देखो : जब कभी भी हम किसी वस्तु के प्रति सजग होते हैं जब हम अस्तित्व को दो में विभाजित कर देते हैं-विषय तथा विषयी। यदि मैं तुम्हें देखता हूँ तो मैंने अस्तित्व को दो में बांट दिया- देखनेवाला तथा दिखाई-देनेवाला। यदि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ फिर मैंने अस्तित्व को दो में बांट दिया-प्रेमी तथा प्रेमिका। कोई भी बोध की प्रतीति एक विभाजन है, वह द्वैत को जन्म देता है। फिर जब तुम मूच्र्छित हो जाते हो, तो कोई द्वैत नहीं बचता।

यदि तुम गहरे सोये हो, तो अस्तित्व एक है, कोई द्वैत नहीं है। किन्तु तब तुम होश में नहीं हो। जब तुम बेहोश होते हो, तो अस्तित्व एक हो जाता है किन्तु तुम्हें उसका पता नहीं रहता। जब तुम होश में होते हो, तो तुम होश की क्रिया के कारण ही बंट जाते हो और तुम्हें अस्तित्व का पता नहीं रहता। तुम उसे जानते हो जो कि तुम्हारी सजगता के द्वारा निर्मित किया गया है। और जब तुम तीसरे बिन्दु को पहुँचते हो, तुम होश में तो होते हो और विभाजन को नहीं जानते, पूरी तरह जागे हुये बिना किसी विषय के तब तुम उस आत्यन्तिक के जगत को पहुँचे।

एक आदमी जो कि सोया है वह बिल्कुल ज्ञानी की भाँति है, एक ज्ञानी एक सोये हुये आदमी की तरह से है, सिर्फ उसमें एक अंतर है कि वह आदमी जो कि सोया है नहीं जानता कि वह कहाँ है, वह क्या है? और एक ज्ञानी को पता है। लेकिन फिर भी वह सोए हुये आदमी जैसा है क्योंकि कोई विभाजन नहीं है। वह जानता है, फिर भी अस्तित्व में कोई विभाजन नहीं है। किसी को भी पहले अचतेन से चेतन और फिर अतिचेतन में जाना होता है। यही अर्थ है अज्ञान का सीखने का और फिर अनसीखा करने का।

हम इसे कई तरह से बाँट सकते हैं : पहला, जैसे कि एक नास्तिक होता है। वह कहता है कि परमात्मा नहीं है, बाकी सब कुछ है। यह पहली स्थिति है। दूसरी स्थिति है आस्तिक की जो कि कहता है कि परमात्मा है। और तीसरी स्थिति पुनः कि परमात्मा नहीं है। तीसरी ही अन्तिम उद्देश्य है जब कि आस्तिक फिर से नास्तिक हो जाता है।

जब वह कह रहा था कि परमात्मा है, तो वह यह भी कह रहा था कि परमात्मा नहीं है क्योंकि यह कहना भी कि परमात्मा है, द्वैत को निर्मित करता है। कौन है कहने वाला? कौन किस की घोषणा करे? बुद्धएक नास्तिक है। वे कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। यह आत्यंतिक लक्ष्य है। वे बिल्कुल नास्तिक जैसे ही हैं, लेकिन वास्तव में नास्तिक नहीं हैं। उनके मुकाबले या उनसे बड़ा आस्तिक संभव नहीं है। किन्तु तब द्वैत नहीं हो सकता, अतः वे नहीं कह सकते कि ईश्वर है। कौन कह सकता है कि ईश्वर है? अब केवल एक ही बचा है, अतः कुछ भी कहना

उस एक के प्रति हिंसा होंगी। इसलिए बुद्ध मौन रह जाते हैं, और यदि तुम ज्यादा ही जोर दो, तो वे कह देते हैं कि ईश्वर नहीं है।

वे सिर्फ इतना ही कह रहे है कि- "अब मैं अकेला हूँ। मेरे अलावा अब कोई और नहीं है। अब मेरा अस्तित्व ही एकमात्र अस्तित्व ही एकमात्र अस्तित्व है, सारा अस्तित्व ही अब मेरा अस्तित्व है।" किसी भी प्रकार का कथन अब द्वैत को पैदा करेगा।

अतः एक नास्तिक को पहले आस्तिक होना सीखना पड़ेगा और फिर से अनसीखा करना पड़ेगा। यदि तुम अपनी आस्तिकता को ही पकड़े रहे तो तुम लक्ष्य को नहीं पहुँचे। तो फिर तुम अभी सेतु पर ही खड़े हो, और तुम झूठ-मूठ ही सेतु को मंजिल समझ लिये हो। इसलिए भीतर से केवल प्रतिमाओं को ही विसर्जित नहीं कर देना, बल्कि जिसकी तुम प्रतिमाएँ गिरा देनी हैं, और अन्ततः फिर ईश्वर को भी विसर्जित कर देना है। तभी केवल तुम स्वयं ईश्वर बन सकोगे।

तभी कोई भक्त स्वयं ही भगवान बन पाता है। तब प्रेमी स्वयं ही प्रेमिका हो जाता है। तब साधक ही साध्य हो जाता है। तभी तुम सचमुच में पहुँचे हो क्योंकि अब कोई खोज नहीं है, अब कोई आगे की पूछताछ नहीं है। इसलिए भीतर हमें बहुत-सी प्रतिमाएँ बनानी पड़ती हैं-वैचारिक प्रतिमाएँ और फिर उन्हें विसर्जित भी कर देना पड़ता है।

मुझे एक झेन फकीर रिंझाई की स्मृति आती है। कोई उसके पास खोज कर रहा था, उसके पास ध्यान करता था-उसका शिष्य ही था। रिंझाई ने कहा, जब तक तुम पूरी तरह शून्य नहीं हो जाओगे, तब तक कुछ भी उपलब्ध नहीं होगा। उसका शिष्य बुद्ध का बड़ा प्रेमी था, बुद्ध का अनुयायी था, अतः वह सब कुछ छोड़ने को राजी था, किन्तु बुद्ध को छोड़ने को राजी नहीं था। उसने रिंझाई से कहा, "मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ, सारा संसार भी छोड़ सकता हूँ, स्वयं को भी छोड़ सकता हूँ। परन्तु बुद्ध को कैसे छोड़ूँ? यह असम्भव है।"

रिंझाई ने कहा कि बुद्ध भी बुद्ध इसीलिए हो सके क्योंकि उनके भीतर भी कोई बुद्ध नहीं था, क्योंकि भीतर कोई किसी बुद्ध को पकड़ नहीं थी। इसीलिए गौतम सिद्धार्थ बुद्ध हो सके। तुम वह कभी भी नहीं हो सकोगे। अपने बुद्ध को हटाओ। शिष्य भीतर गया अपने। यह बहुत कठिन बात थी, बड़ी मुश्किल, बड़ी कष्टप्रद। आखिर उसे सफलता मिली, और एक दिन वह दौड़ता हुआ आया। वह बड़ा प्रसन्न था, बड़ा आनंदित था-अपनी उपलब्धि पर। उसने कहा कि अब मैंने शून्य को पा लिया।

इस बात को सुनकर रिंझाई उदास हो गया और बोला, अब अपने इस शून्य को भी फेंक दो। यहाँ इस शून्य से भरकर भीतर मत आना क्योंकि यह शून्य भी एक प्रतिमा हो सकती है।

वह है। जब भी तुम शब्द का उपयोग करते हो, तो वह प्रतिमा बन जाती है। जबकि मैं कहता हूँ "शून्य"- एक प्रकार की प्रतिमा तुम्हारे मन में निर्मित हो जाती है। मैं कहता हूं रिक्तता शब्द से रिक्तता निर्मित नहीं हो सकती। "रिक्तता" शब्द भी एक समानान्तर प्रतिमा की रिक्तता तुम्हारे मन में पैदा कर देता है।

इसलिए रिंझाई ने कहा, "अब तुम जाओ और अपने इस शून्य को भी फेंको। मेरे निकट इस शून्य की बकवास लेकर मत आना।" शिष्य के तो कुछ समझ में न आया। उसने कहा कि आप ही तो मुझे समझाते रहे हैं कि शून्य उपलब्ध करना होता है, और अब जब मैंने उसे उपलब्ध कर लिया है, तो आप उनसे प्रसन्न नहीं दिखलाई पड़ते? रिंझाई ने कहा, "तुमने मेरी बात ही नहीं समझी, क्योंकि जब कोईशून्यता को उपलब्ध हो जाता है, तो वह यह नहीं कह सकता कि यह मेरी उपलब्धि है। वह यह नहीं कह सकता कि शून्यता अब मैंने उपलब्ध कर ली। वह तो स्वयं-ही-शून्य हो जाता है। दूसरों को इस बात का पता चलता है, लेकिन वह स्वयं

नहीं कह सकता। दूसरे को यह बात अनुभव में भी आयेगी लेकिन वह अब ऐसा नहीं कह सकता। क्योंकि जिस क्षण भी तुम उसे कहते हो, वह एक विचार बन जाता है, एक शब्द हो जाता है, एक प्रतिमा निर्मित हो जाती है।

भीतर से भी सब तरह की प्रतिमाओं को गिरा देना है। लेकिन तुम उन्हें कैसे गिराओगे यदि तुमने उन्हें निर्मित नहीं की है। जो तुम्हारे पास ही नहीं है, उसे तुम फेंकोगे भी कैसे? अतः इस बात को भी स्मरण रखो क्योंकि ये दो भ्रान्तियाँ हैं। साधक की राह में ये दो बड़ी बाधाएँ हैं : एक, कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, इसलिए तुम सोचते हो कि मैंने छोड़ दिया, त्याग कर दिया। तुम उसका त्याग कैसे कर सकते हो जो कि तुम्हारे पास है ही नहीं।

उदाहरण के लिये तुम कह सकते हो कि मैंने बुद्ध को छोड़ा, लेकिन तुमने बुद्ध को पाया ही नहीं है, तो तुम उसे छोड़ भी कैसे सकते हो? तुम कह सकते हो कि मैंने शून्य का त्याग किया लेकिन तुम उसे छोड़ भी कैसे सकते हो जब तक कि उसे पा न लो। यदि तुम्हारे भीतर कोई प्रतिमाएँ ही नहीं हैं और तुम सोचो कि मैं तो उस अल्टिमेट, उस अन्तिम के साथ एक हो गया हूँ, तो तुम अभी अज्ञान की पहली अवस्था में हो। तुम अभी बच्चे हो, न कि बच्चे की भाँति। तुम अभी अज्ञानी हो, तुम अभी ज्ञानी नहीं।

पहले निर्मित करो, तभी तुम उसे छोड़ भी सकते हो। लेकिन तब कोई पूछ सकता है कि फिर बनायें ही क्यों? जब किसी चीज को छोड़ देना है तो पहले उसको निर्मित ही क्यों करें? उसे निर्मित करने का प्रयास ही तुम्हें समृद्ध करता है। और फिर दूसरा कृत्य उसको विसर्जित करने का तुम्हें पहले से ज्यादा समृद्ध कर देता है।

इसे इस भाँति देखें : बुद्ध एक भिखारी हो गये, अतः कोई भी सड़क का भिखारी यह सोच सकता है कि मैं भी बुद्ध जैसा ही हूँ क्योंकि वे भी तो एक भिखारी ही थे। और वे थे। और एक बुद्ध तुम्हारे घर के द्वार पर खड़े हों और एक दूसरा भिखारी खड़ा हो, तो उनमें क्या अंतर है? दोनों ही भिखारी हैं। परन्तु बड़ा सूक्ष्म भेद है। बुद्ध अपने प्रयास से भिखारी हुए हैं। वह बड़ी से बड़ी उपलब्धि है जो कि संभव हो सकती है, जब कोई अपने ही प्रयास से भिखारी हो जाता है।

दूसरा भी भिखारी है, लेकिन उसके लिये उसने कोई प्रयास नहीं किया है। वह अपने प्रयत्नों के बावजूद भिखारी है। जब तुम अपनी मर्जी से, अपने ही प्रयत्नों से भिखारी हो जाते हो, तो तुम सम्राट हो जाते हो। बुद्ध भिखारी हो गये-धन की अर्थहीनता को जानकर। दूसरा भी भिखारी है लेकिन वह धन की अर्थहीनता को नहीं जानता। इसलिए दूसरा सोच सकता है कि वह एक भिखारी है, किन्तु बुद्ध कभी नहींसोच सकते कि वे एक भिखारी हैं। दूसरा इस बात को छिपायेगा कि वह भिखारी है और बुद्ध घोषणा करेंगे कि मैं सिर्फ एक भिखारी हूँ।

ये जीवन के विरोधाभास हैं, जीवन की विपरीततायें हैं। वह जो वस्तुतः भिखारी है, वह सदा छिपायेगा कि वह एक भिखारी है। वह एक मुखौटा लगायेगा कि वह भिखारी नहीं है। जब वह भीख भी मांग रहा है तो वह कोई भिखारी नहीं है, कि परिस्थिति ने ऐसा कुछ कर दिया है, कि एक विशेष परिस्थिति ने ऐसी घटना ला दी वरना वह कोई भिखारी नहीं है। भिखारी भिखारी है, अपने सारे प्रयत्नों के बावजूद इसीलिए वह इतना दुःखी है। यदि कोई सम्राट भी हो, तो उसकी सारी सम्पति के बावजूद दुःखी और अतृप्त होगा।

बुद्ध अपने को "भिक्षु" कहते हैं-एक भिखारी। इसमें वे तथ्य को जरा भी नहीं छिपाते, वे इसकी घोषणा करते हैं। क्यों? क्योंकि वे अपने भिखारीपन से जरा भी नहीं डरते। केवल एक सम्राट ही यह घोषणा कर सकता है कि वह भिखारी है। बुद्ध अपने भीख के पात्र को हाथ में लिये भी एक सम्राट हैं, वो एक राजाओं के राजा हैं।

सम्राट भी उनके समक्ष भिखारी है। उनके पास सब कुछ था और उन्होंने उस सब को छोड़ दिया। जब तक तुम्हारे पास हो ही नहीं, तुम छोड़ोगे भी कैसे? अतः इसे याद रखें : उन चीजों को मत छोड़ते जाना जो कि तुम्हारे पास हैं ही नहीं।

हममें से बहुत से ऐसा सोचते हैं कि हमने बहुत-सी चीजें़ छोड़ दी हैं। तब तुम अपने को धोखा दे रहे हो, और यह धोखा बड़ा महंगा है अन्तर्यात्रा में। उदाहरण के लिये कृष्णमूर्ति सदा कहते हैं कि मूर्तियों को त्याग दो, विचारों को, विश्वासों को छोड़ दो। तब बहुत से लोग जो कि उन्हें सुन रहे होते हैं, वे सोचते हैं कि यह ठीक है। क्योंकि हमारे पहले से ही कोई विश्वास आदि नहीं है, अतः हम पहले से ही उस अवस्था को उपलब्ध हैं जिसकी कि कृष्णमूर्ति बात कर रहे हैं। वे उस अवस्था में हैं नहीं। वे अपने को ही धोखा दे रहे हैं।

पहले तुम्हारे कुछ विश्वास होने चाहिये, तभी तुम उनको छोड़ भी सकते हो। यदि तुम्हारे कोई विश्वास आदि नहीं हैं, तो तुम उनको कैसे छोड़ोगे। यदि एक बच्चा मुझे सुनता है और मैं कहता हूँ कि ज्ञानी बच्चों जैसे होते हैं, वे अनसीखा करते हैं, तो वह बच्चा कह सकता है, तो फिर ठीक है, मैं पहले से ही ज्ञानी हूँ। मैं सीखूँगा ही नहीं। जब बाद में अनसीखा करना ही पड़े तो फिर इस सीखने के कष्ट को क्यों उठाना? मैं पहले से ही ज्ञानी हूँ।

जीसस ने कहा है कि तुम मेरे प्रभु के राज्य में तभी प्रवेश कर सकते हो जब तुम बच्चों जैसे हो जाओ। किन्तु "बच्चे जैसे" का अर्थ है-वह दूसरा बचपन, न कि पहला बचपन-दूसरा बचपन जो कि सीखने, जानने, अनुभव करने तथा उस सबको छोड़ने के बाद आता है।

तुम्हें अभी इस दूसरे बचपन का स्वाद नहीं आ सकता। "यह पहले वाले बचपन से बिल्कुल भिन्न है। किसी चीज का होना और फिर उसे छोड़ देना एक नया ही अनुभव है। इसलिए मैं सदा कहता हूँ कि एक गरीब आदमी इसलिये गरीब नहीं है क्योंकि अभी उसके पास धन नहीं है, बल्कि इसलिये गरीब है कि अभी वह कुछ भी नहीं छोड़ सकता। यही वास्तविक गरीबी है। वह कुछ भी नहीं त्याग सकता, वह किसी भी चीज़ के लिए "ना" नहीं कह सकता। वही उसकी असली गरीबी है। जब तुम कहते हो "ना" नहीं कह सकता। वह कैसे कह सकता है "ना"? उसका सारा अस्तित्व कह रहा है, हाँ, मुझे दे दें। उसका सारा होना ही एक भूख है। वह एक भूखी आत्मा है। वह कुछ भी नहीं छोड़ सकता, वह कुछ भी नहीं फेंक सकता, वह कुछ त्याग नहीं सकता। यही असली दरिद्रता है। आंतरिक रूप से, आध्यात्मिक रूप से यही रुग्णता है।

इसीलिए, एक गरीब देश में धर्म विकसित नहीं हो सकता। वह असंभव है। एक गरीब देश सिर्फ अपने कोदेखा दे सकता है कि वह एक धार्मिक देश है। एक गरीब देश में धर्म असंभव है। मैं यह नहीं कह रहा कि कोई गरीब व्यक्तिगत रूप से धार्मिक नहीं हो सकता। व्यक्तिगत रूप से वह संभव है। लेकिन समाज के रूप में, कोई भी दरिद्र समाज धार्मिक नहीं हो सकता क्योंकि कोई भी गरीब समाज छोड़ने, त्यागने की बात भी नहीं सोच सकता। जब कोई समाज समृद्ध होता है, तभी त्याग की बात भी महत्वपूर्ण होती है। इसलिए त्याग अन्तिम विलासिता है, जो कि संभव हो सकती है। अन्तिम विलासिता। जब तुम त्याग कर सकते हो, तो वह विलासिता का आखिरी शिखर है।

एक बुद्ध छोड़ सकते हैं, वे एक राजकुमार हैं। एक महावीर त्याग कर सकते हैं, वे एक राजकुमार हैं। जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के हैं, वे त्याग कर सकते हैं। कृष्ण और राम त्याग की भाषा में सोच सकते हैं, वे सम्राट हैं। लेकिन यदि एक गरीब आदमी ऐसा सोचने लगे कि यदि बुद्ध सड़कों पर भीख मांग सकते हैं तो मैं तो पहले से ही बुद्ध हूँ क्योंकि मैं तो पहले से ही भख मांग रहा हूँ, तब वह सारी बात को ही गलत समझा है।

और वही बात ज्ञान के लिये लागू होती है। तुम ज्ञान भी छोड़ सकते हो, लेकिन पहले सीखो। कितनी ही बार मैं ज्ञान की मूढ़ता पर बात करता हूँ। तब जो कुछ नहीं जानते वे सोचते हैं कि कितनी अच्छी बात है कि हम कुछ भी नहीं जानते। जब मैं ज्ञान की मूढ़ता पर बात करता हूँ तो मेरा मतलब अज्ञान से नहीं है, मैं मेरा मतलब ज्ञान का अतिक्रमण करने से है। ज्ञान मूढ़ता हो जाता है, जब वह तुम्हारे पास होता है। जब वह तुम्हारे पास नहीं होता, तो तुम उससे ऊपर नहीं होते। तुम ज्ञान से नीचे होते हो। इसलिए जब मैं कहता हूँ कि ज्ञान मूढ़ता है, तो मैं उसकी तुलना प्रज्ञा से कर रहा हूँ, न कि अज्ञान से। अन्यथा तुम ऐसा भी समझ सकते हो कि तुम्हारा अज्ञान ही आनन्द है।

किसी भी चीज़ को छोड़ने के पहले, पूरी तरह देख लो कि वह तुम्हारे पास है भी? तभी केवल तुम उसे छोड़ सकते हो। और जब तुम कुछ छोड़ सकते हो, तभी तुम उस छोड़ने से कुछ प्राप्त करते हो। और जो भी उससे पाया जाता है वह उससे बड़ा है जो कि छोड़ा गया है।

वह उससे श्रेष्ठतर है। इसीलिए निम्न को छोड़ दिया गया है। वरना उसे छोड़ना असंभव होता है। अब तुम ज्ञान को छोड़ सकते हो क्योंकि अब तुम्हें ऐसा लगता है कि प्रज्ञा उससे बड़ी बात है, उससे श्रेष्ठ है। और केवल श्रेष्ठ ही नहीं बल्कि तुम्हें ऐसा भी प्रतीत होता है कि ज्ञान उस श्रेष्ठ के लिये बाधा है। तुम ज्ञान पाने के लिये अज्ञान का कैसे त्याग कर सकते हो क्योंकि ज्ञान अज्ञान से ऊपर है। यदि अज्ञानी ही बने रहने के लिये, ज्ञान नहीं पाते, तो तुम सारी बात ही चूक गये।

यह सूत्र कहता है कि विसर्जित करो, लेकिन पहले निर्मित करो। पहले परमात्मा को बनाओं पहले उसकी प्रतिमा सर्जित करो। ईश्वर की प्रतिमा बनाने या ईश्वर का सर्जन करने से क्या मतलब? यह एक बहुत अर्थपूर्ण प्रयास है और यह तुम्हें रूपान्तरित करता है, यह तुम्हें बदलता है। यह इतना सरल नहीं जैसा कि हम सोचते हैं। उदाहरण के लिये जब तुम गणेश की एक मिट्टी की प्रतिमा बनाते हो, तो तुम जानते हो कि यह मिट्टी है। तुमने ही उसे आकार दे दिया है, बस इतनी ही बात है। फिर तुम उसकी पूजा करते हो-एक मिट्टी की प्रतिमा की जो कि तुमने ही बनाई है। फिर उसके आगे समर्पण करना, फिर उसके चरणों को स्पर्श करना जो कि तुमने ही बनाई है-यह एक बड़ा रूपान्तरण है।

यह एक कठिनतम बात है। यह सरल बात नहीं है, क्योंकि जिसे तुमने ही बनाया, उसकी पूजा कैसे कर सकते हो? जबकि तुम जानते हो कि यह सिर्फ मिट्टी है, कुछ और नहीं, तो तुम उसकी पूजा कैसे कर सकते हो? इसकी पूजा करने की प्रक्रिया ही तुम्हें रूपान्तरित कर देगी। और यदि तुम किसी ऐसी चीज की पूजा कर सको जो कि तुमने ही निर्मित की हो, तभी केवल तुम उसको जान सकते हो, उसकी पूजा को जान सकते हो जिसने कि तुम्हें बनाया है।

यह कठिन है, यह बहुत ही दुस्सह है। लेकिन यह वहीं से प्रारंभ होता है। तुम अपनी बनाई प्रतिमा के प्रति नम्र हो जाते हो। तुमने ही बनाई, घर में बनाई गयी, ईश्वर की प्रतिमा के आगे तुम समर्पण कर देते हो। यह तुम्हें एक गहरी नम्रता, एक गहनतम विनम्रता प्रदान करता है। और तब वह प्रतिमा खाली प्रतिमा ही नहीं रह जाती। वह रूपान्तरित हो गई होती है। तुमने अपना सारा हृदय उसमें उड़ेल दिया होता है।

सचमुच उस क्रान्ति को देखो जो कि इससे घटती है। तुम्हीं इस प्रतिमा के सर्जक हो और फिर तुम इस प्रतिमा की पूजा करते हो जैसे कि वह तुम्हारी सर्जक है। सारी बात ही बदल गई। तुम निर्मित होने वाली प्रतिमा हो गये और वह प्रतिमा तुम्हारी निर्मात्री हो गई। यह चेतना का समग्र रूपान्तरण है। अतः यह एक बहुत बड़ी बदलाहट है। यदि ऐसा हो जाये, तब उसे छोड़ दो। तभी तुम जान सकते हो कि विसर्जन क्या होता

है। यदि यह घट जाये तभी यह विसर्जन है, अन्यथा वह सिर्फ एक मिट्टी की प्रतिमा थी। बिना रूपान्तरित हुए, बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के तुमने उसकी पूजा की। वह एक मिट्टी की प्रतिमा थी, तुमने सिर्फ पूजा करने का अभिनय किया। तुम पहले से ही जानते थे कि यह सब कोरा औपचारिक कृत्य है।

विवेकानंद अमेरिका के एक शहर में बोल रहे थे। वे बाइबिल के किसी सिद्धान्त पर बोल रहे थे और वे कह रहे थे कि जीसस ने कहा कि श्रद्धा पर्वत को भी हटा सकती है। एक बूढ़ी और जो कि पहली ही पंक्ति में बैठी थी, बड़ी आनंदित हुई क्योंकि उसके घर के पास एक जो मिट्टी का टीला था उससे वह बड़ी परेशान थी। अतः उसने सोचा कि यदि श्रद्धा से पहाड़ भी हट सकते हैं, तो एक छोटा-सा पहाड़ी टीला क्यों नहीं हट जायेगा?

अतः वह भागी घर की ओर। उसने अन्तिम बार अपने घर की खिड़की से उस पहाड़ी टीले की ओर देखा क्योंकि अब वह मिट जाने वाला था। फिर उसने खिड़की बन्द कर दी और तीन बार कहा, "हे परमात्मा, मैं तुममें विश्वास करती हूँ। इस मिट्टी के टीले को यहाँ से हटा दो।" और तीन बार ऐसा कहने के बाद उसने खिड़की खोली और देखा कि वह पहाड़ी-टीला तो वहीं-का-वहीं था। अतः उसने कहा कि मैं तो पहले ही जानती थी कि इससे कुछ नहीं होने का। मैं पहले ही जानती थी कि वह सब बकवास है।

यदि तुम पहले से ही जानते हो कि यह सारी बकवास है, तब फिर श्रद्धा कुछ भी नहीं कर सकती। तब सभी कुछ पर्वत है क्योंकि श्रद्धा का अर्थ होता है कि तुम जानते हो कि पर्वत हट जाने वाला है। अतः सचमुच श्रद्धा पर्वतों को भी हटा सकती है यदि वह पहले तुम्हारे हृदय को हिला दे। अन्यथा यह असंभव है। तुम एक मिट्टी की मूरत है जो कि तुम बाजार से खरीद लाये हो। अतः यह एक खाली औपचारिकता है जो कि करनी पड़ती है। और फिर तुम जाते हो और उसको विसर्जित कर देते हो।

नहीं, जब वस्तुतः ही मिट्टी की मूरत परमात्मा का रूप हो जाती है, तभी तुम्हारा समग्र मन उसको पकड़ने लगता है। तब तुम सारे संसार को छोड़ सकते हो, लेकिन अब तुम इस प्रतिमा को नहीं छोड़ सकते। तब फिर आत्मघात करना भी सरल है बजाय इस मूर्ति को विसर्जित करने के। तब वह तुम्हारा प्राण है। वह तुम्हारा स्वरूप है। तभी हिन्दू कर्मकांड कहता है कि जाओ और अब इसे विसर्जित कर दो।

जबकि प्रतिमा दिव्य का स्वरूप हो जाती है तब वास्तविक पूजा घटित हो जाती है। तब उसको विसर्जित कर देना, बड़े-से-बड़ा आध्यात्मिक कृत्य है क्योंकि तुम आखिरी बाधा से अपनी पकड़ छुड़ा रहे हो। और जब कोई अपी इस पकड़ को दिव्य से भी छुड़ा लेता है, तब फिर कुछ भी उसको पकड़ नहीं सकता, कुछ भी नहीं।

लेकिन यह मुश्किल है। विसर्जन आसान है क्योंकि सारी बात सिर्फ एक औपचारिकता है। रामकृष्ण से अपनी काली की प्रतिमा को विसर्जित करने के लिये कहा। उनके लिये रूपान्तरण घटित हुआ था। जब उन्हें दक्षिणेश्वर का पुजारी बनाया गया था, तो उन्हें सिर्फ सोलह रुपये दिये जाते थे। अतः वे एक गरीब पुजारी थे- सर्वाधिक गरीब, क्योंकि दक्षिणेश्वर का मंदिरएक शूद्र रानी के द्वारा बनाया गया था। वहाँ पर कोई भी ऊँची जाति को ब्राह्मण पुजारी बनने के लिये तैयार नहीं था। कोई भी शूद्र रानी के द्वारा बनाये गए मंदिर में पुजारी का काम करने के लिये राजी नहीं था।

रामकृष्ण ने उसे स्वीकार कर लिया। बहुतों ने उनसे पूछा कि तुम क्यों कर रहे हो ऐसा? क्योंकि वे एक ऊँची जाति के ब्राह्मण थे। यहाँ तक कि उनके परिवार के लोग भी इसके विरुद्ध थे। किन्तु रामकृष्ण ने कहा कि मैं उस प्रतिमा के प्रेम में पड़ गया हूँ, इसलिए यह कोई नौकरी का सवाल नहीं है। नौकरी तो सिर्फ एक बहाना है ताकि मैं वहाँ रोजाना प्रवेश कर सकूँ। मैं उसके प्रेम में पड़ गया हूँ।

किन्तु जब कोई पुजारी किसी प्रतिमा के प्रेम में पड़ जाता है, तो उससे बहुत-सी समस्यायें पैदा होती हैं। एक पुजारी को चाहिये कि वह औपचारिक ही रहे। वह वहाँ कोई वास्तविक पूजा करने के लिये नहीं है। वह वहाँ ऊपरी दिखावे के लिये होता है। जब भी तुम किसी चीज़ के प्रेम में पड़ जाते हो तो उसमें कठिनाइयाँ पैदा होना अनिवार्य हो जाता है। प्रेम है ही ऐसी एक मुसीबत।

सात दिन में ही कमेटी के लोगों ने उन्हें बुला भेजा। प्रबंधक कमेटी के सदस्यों ने उनसे कहा कि, "हम तुम्हें निकाल देंगे। यह तुम क्या करते हो? कितनी ही बार हमसे शिकायत की गई है कि तुम मंदिर में बहुत-सी गड़बड़ी करते हो-कहा गया है कि काली के चरणों में पुष्प चढ़ाने के पहले ही तुम उन्हें सूंघ लेते हो। पहले से ही, इसके पहले कि तुम फूल चढ़ाओ काली के चरणों में, तुम उन्हें सूंघ लेते हो। और भोजन। भाग लगाने के प्रसाद को तुम भोग लगाने के पहले ही खा लेते हो। भोग लगाने के पहले ही। यह बात एक धार्मिक आदमी के लिये संभव नहीं। तुम यह क्या करते हो? क्यातुम पागल हो? भोग के बाद ही प्रसाद ग्रहण किया जा सकता है। यदि तुम पहले ही फूलों को सूंघ लो, तो वे अशुद्ध हो गये।"

रामकृष्ण ने जवाब दिया कि, "मैं अपनी नौकरी छोड़ता हूं क्योंकि मेरे लिये यह असंभव है कि मैं फूलों को न सूंघूं। यह असंभव है।"

"क्यों असंभव है?" कमेटी के सदस्यों ने पूछा। रामकृष्ण ने जवाब दिया, "मैं जानता हूं कि जब भी मेरी मां मेरे लिये कुछ भोजन बनाती है तो पहले वह उसे चख लेती है और उसके बाद वह मुझे देती है। इसलिये मैं भी काली माँ को बिना चखे भोजन नहीं दे सकता। क्या पता, खाने योग्य भी हो या नहीं और यदि प्रेम चीजों को अशुद्ध कर देता है, तो मैं यह नौकरी छोड़ता हूं।"

इस रामकृष्ण जैसे आदमी के लिये विसर्जन करना बहुत ही कठिन होगा यदि इस काली की प्रतिमा को विसर्जित करना पड़े, तो यह उनके लिये आत्मघाती होगा। वे उसके धक्के से ही मर सकते हैं। अतः इस बात को याद रखो-यदि तुमने सचमुच ही पूजा की है, तो यह विसर्जन अर्थपूर्ण है। और तब ईश्वर को विसर्जित करना एक बहुत बड़ी छलांग होगी। तब तुम आकार की दुनिया से निराकार के जगत में पहुँच गये क्योंकि एक प्रतिमा एक आकार है-सुन्दर, पवित्र लेकिन फिर भी एक आकार। जब तक कि तुम आकार के पार नहीं जाओ और निराकार में विस्फोटित न होओ, तब तक यात्रा पूरी नहीं हुई। अतः आंतरिक रूप से यही अर्थ है विसर्जन का।

भगवान, पूर्ण संतोष या पूर्ण तृप्ति निर्वासना क्षण-क्षण जीने, तथा चेतना के पूर्णरूप से विकसित होने के परिणामस्वरूप है। यह एक बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति की चेतनादशा है।

लेकिन एक अध्यात्म का खोजी, जो कि अभी बीज ही है, दिव्य की प्रसुप्त संभावना ही है, इस सारी आध्यात्मिक पीड़ा, प्यास तथा बेचैनी से गुजरता है जिसे कि आत्मा की काली रात भी कहा गया है। अतः एक साधक के लिये जरूरी है कि वह सतत एक आंतरिक अतृप्ति में होगा जब तक कि वह बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाये।

अतः कृपया बतायें कि एक साधक इस पूर्ण सन्तोष, पूर्ण तृप्ति के सिद्धान्त को, अपनी आंतरिक अतृप्ति के साथ किस तरह तालमेल बिठाये?

वस्तुतः ही हमारे मन वर्तुल में घूमते हैं। और वही-वही बात बार-बार कितने ही रूपों में प्रकट होती रहती है, कभी किन शब्दों में, कभी किस भाषा में, किन्तु तर्क वही होता है। उदाहरण के लिये, यह दूसरा प्रश्न।

मन की तीन अवस्थायें हैं। एक, कि जिसमें कोई असन्तोष, अतृप्ति नहीं होती। एक पशु बिना किसी अतृप्ति के होता है, एक बच्चा भी बिना किसी अतृप्ति के होता है। लेकिन यह तृप्ति नहीं है। यह सिर्फ अतृप्ति के बिना होना है। यह निषेधात्मक स्थिति है।

सुकरात ने कहा है कि यदि एक सूअर की भाँति तृप्त होना संभव भी हो, तो भी मैं उसे चुनने वाला नहीं। मैं एक अतृप्त सुकरात होना ज्यादा पसन्द करूँगा, बजाय एक तृप्त सुअर के। सूअर बड़े तृप्त होते है, तो इसका यह अर्थ नहीं हैं कि वह ज्ञानी है। वह सिर्फ एक सूअर हो सकता है। एक बिना अतृप्ति के जीवन होने का यह अर्थ नहीं है कि वह कोई आध्यात्मिक जीवन है। यह भी हो सकता है कि वह आदमी मूर्ख हो क्योंकि असन्तोष, अतृप्ति को अनुभव करने के लिये आदमी के पास बुद्धि चाहिये।

एक गाय की आँखों में देखो : कोई अतृप्ति का भाव नहीं है, लेकिन साथ ही कोई बुद्धि भी नहीं है। मूर्खों की आँखों में देखो, वे बिल्कुल गाय की तरह हैं। कोई अतृप्ति नहीं है। क्यों? क्योंकि अतृप्ति बुद्धि का हिस्सा है। जब तुम सोचते हो तो तुम चिन्तित भी होओगे। जब तुम सोचते हो तो तुम जरूर भविष्य के बारे में सोचोगे। जब तुम सोचते हो, तो बहुत से विकल्प सामने आयेंगे। उनमें से चुनाव करना पड़ता है, और चुनाव के साथ ही चिन्ता आती है, चुनाव के साथ ही पश्चात्ताप आता है, चुनाव के साथ भय आता है। जितने अधिक तुम बुद्धिमा होओगे, उतने ही अधिक तुम अतृप्त होओगे।

लेकिन यह सूत्र कहता है-पूर्ण सन्तोष, पूर्ण तृप्ति वह तीसरी अवस्था है। पहली है, बिना अतृप्ति के होना। दूसरी है, अतृप्ति का होना। तीसरी, फिर से बिना अतृप्ति के हो जाना है। लेकिन तीसरी का अर्थ होता है, सन्तोष, तृप्ति। यह विधायक है। यदि तुम बुद्धिमान हो, तो तुम उसके पार चले जाओगे। तुम उसका अतिक्रमण कर जाओगे। क्योंकि अन्ततः तुम्हारी बुद्धि तुम्हें रास्ता दिखला देगी, वह तुम्हें तथ्य पर लाकर खड़ा कर देगी। तुम अपनी बुद्धि के द्वारा तथ्य पर पहुँच जाओगे कि अतृप्ति व्यर्थ है, बेकार है। ऐसा नहीं है कि तुम असन्तुष्ट न हो सकोगे। तुम चाहो तो हो सकोगे। लेकिन यह अतृप्त होने की घटना ही व्यर्थ हो जाती है, और गिर जाती है। अतः समग्र तृप्ति का अर्थ इस तीसरी अवस्था से है।

इसे उदाहरण से समझो : बुद्ध एक तृप्त व्यक्ति नहीं हैं। एक तृप्त आदमी अपना महल छोड़कर नहीं जायेगा, वह अपनी पत्नी को छोड़कर नहीं चला जाएगा, वह कुछ भी नहीं छोड़ेगा। बुद्ध के पास जो भी था, वह सब उन्होंने छोड़ दिया। बाहरी वस्तुए ही नहीं, भीतरी भी छोड़ दी। वे छः वर्ष तक लगातार एक गुरु से दूसरे गुरु के पास भटकते रहे। एक गुरु के पास जाते और फिर वहाँ से आगे चल देते। हर गुरु के पास भटकते रहे। एक गुरु के पास वे जाते और फिर वहाँ से आगे चल देते। हर गुरु के पास जो भी कुछ सीखने को होता, उसे सीखकर, वे और की मांग करते।

और तब गुरु कहता है, "कृपया मुझे माफ करो। मैं तुम्हें और कुछ नहीं सिखा सकता। मेरे पास सिखाने को जो कुछ भी था, तुम वह सब पा चुके।"

लेकिन बुद्ध कहते, "मेरी अभी संतुष्टि नहीं हुई। मेरी आग अभी भी धधक रही है, मेरी बेचैनी ज्यों-की-त्यों है, मेरी अभीप्सा अभी शांत नहीं हुई। आपने जो कुछ कहा, उसका मैंने पूरा का पूरा पालन किया है, लेकिन कुछ भी तो हुआ नहीं। तो मुझे बताइए, यदि और कुछ सीखने को बाकी रह गया हो तो?"

तब वह गुरु कहता है, "अब तुम आगे बढ़ो, किसी और के पास जाओ। और यदि इससे अधिक तुम कुछ पा सको तो कृपया मुझे भी बताना न भूलना।"

तो छः वर्ष तक लगातार वे एक गुरु से दूसरे गुरु के पास भटकते रहे। उन्होंने कोई कसर न छोड़ी। जाने-अनजाने सभी गुरुओं के पास वे गए, और फिर "गुरुविहीन" हो गए। बहुत समय तक गुरुओं से सीखा और फिर गुरुविहीन हो गए। फिर उन्होंने कहा, "अब मैं उस बिंदु पर पहुँच गया हूँ जहाँ वह सब सीख लिया गया है जो कि दूसरों से सीखा जा सकता है, लेकिन अतृप्ति अभी तक बनी है। तो अब मैं खुद ही अपना गुरु बनूँगा, और कोई भी उपाय नहीं है।"

तुम अपने खुद के गुरु तभी बन सकते हो जब तुम बहुत-बहुत गुरुओं से मिल चुके, उनका अनुसरण कर चुक। केवल मिलने भर से काम न चलेगा। जब तुमने उन गुरुओं का अनुसरण किया और फिर भी अतृप्ति बनी रही, केवल तभी। वरना कृष्णमूर्ति को सुनकर तुम सोचते हो, "ठीक! किसी गुरु की जरूरत नहीं है। मैं गुरु हूँ ही। तुम धोखा दे रहे हो। एक क्षण आता है जब कोई गुरु मदद नहीं कर सकता, लेकिन वह गुरुओं की एक लंबी कतार के बाद आता है-और वह भी केवल उनको मिलने या सुनने से नहीं, उनका अनुसरण करने के बाद आता है।

तब बुद्ध ने कहा, "अब कोई मेरी मदद नहीं कर सकता। मैं असहाय हूँ, सो मैं खुद ही प्रयास करूँगा।" और उन्होंने प्रयास किया, और लंबा प्रयास था वह। वह अज्ञात में किया गया प्रयास था, इसलिए वहाँ सब कुछ अनजाना था, न कोई मार्गदर्शक था, न कोई गुरु था। जो भी उनके मस्तिष्क में आता, वे प्रयत्न करते। उन्होंने लम्बे उपवास किये। वे सिर्फ हड्डियाँ का एक ढाँचा रह गये। वे मौत की कगार पर खड़े थे जब उनको लगा कि यह मैं क्या कर रहा हूँ। मैं सिर्फ अपने को ही मार रहा हूँ।

निरंजना नदी में स्नान करने के बाद वे किनारे की तरफ लौट रहे थे। लेकिन वे इतने कमजोर हो गये थे, और धारा इतनी तेज़ थी कि वे धारा में बह गये। उस धारा में बह गये। उस धारा में बहकर, एक वृक्ष की जड़ को पकड़कर उन्होंने सोचा कि मैं इतना कमजोर हो गया हूं और इतना असहाय हो गया हूँ अपने को भूखा मार मार कर। और जब मैं इतनी छोटी-सी नदी भी पार नहीं कर सकता, तो फिर अस्तित्व की इतनी विराट सरिता को कैसे पार कर पाऊँगा। एक दिन वे उस बिन्दु पर पहुँच गये जहाँ कि गुरु की जरूरत नहीं होती। फिर वे उस जगह पहुँचे जहाँ कोई प्रयास भी सहायक नहीं होता। उन्होंने सोचा कि मैं कुछ भी नहीं कर सकता।

उसी रात्रि उन्हें निर्वाण उपलब्ध हो गया। शाम को वे एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने को लेट गये। अब कुछ भी करने के लिये शेष नहीं था। कुछ भी तो नहीं। दूसरों के दिमाग व्यर्थ हो चुके थे, अब उनका स्वयं मस्तिष्क भी व्यर्थ सिद्ध हो चुका था। अब क्या करें? अब कहाँ जायें? सब गति रुक गई। अब कुछ भी करने के लिये नहीं बचा था, अतः वे उस वृक्ष के नीचे पूर्ण विश्राम में लेट गये।

पहली बार इतने, इतने वर्षों के बाद वे सोये। क्योंकि यदि कोई भी इच्छा बाकी है तो नींद संभव नहीं है। तुम सपने देख सकते हो, लेकिन तुम सो नहीं सकते। अतः हम सिर्फ सपने देख रहे है, सो नहीं रहे हैं। नींद तो एक गहरी प्रक्रिया है। या तो पशु सोते हैं या फिर ज्ञानी। आदमी के लिये वह नहीं है आदमी सिर्फ सपने देखता है।

बुद्ध पहली बार सोये, क्योंकि अब कुछ भी करने के लिये नहीं था। कोई भविष्य नहीं था, कोई वासना, कोई लक्ष्य, कोई किसी प्रकार की संभावना नहीं थी।

उस शाम सब कुछ गिर गया। केवल शुद्ध चेतना मात्र बची बालवत। बचकानी नहीं, बच्चे जैसी। सरल, किन्तु लम्बे प्रशिक्षण तथा श्रम के बाद उपलब्ध की गई चेतना।

वह आराम से सो गये। उन्होंने कहा कि उस रात की नींद एक चमत्कार थी। वे वृक्षों से, नदी से, रात्रि से एक हो गये थे, क्योंकि जब कोई सपना नहीं बचा हो, तो फिर कोई विभाजन भी नहीं बचता। फिर तुम्हारे और वृक्ष के बीच में कौन-सा विभाजन है जबकि तुम कोई सपना नहीं देख रहे हो? तब कोई परिधि नहीं है, कोई सीमा नहीं है। सबेरे पाँच बजे आखिरी तारा डूब रहा था, और उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। वे आँखें अवश्य ही कमल की भाँति होंगी।

जब तुम सबेरे अपनी आँखें खोलते हो, तो वे बोझिल होती हैं। रात के सपनों से बोझिल। वे थक गई होती हैं। क्या तुम्हें पता है कि आँखों को रात नींद में ज्यादा काम करना पड़ता है जितना कि उन्हें दिन में भी नहीं करना पड़ता। जब तुम एक फिल्म देख रहे होते हो, तो तुम्हारी आँखें फिल्म के साथ लगातार गति कर रही होती हैं। इसीलिए तीन घंटे फिल्म देखने के बाद तुम्हारी आँखें बुरी तरह से थक जाती हैं। तुम पलक भी नहींझपकते, तुम झपकना भी भूल जाते हो। तुम बहुत उत्तेजित हो जाते हो और तुम्हें बहुत तेजी से गति करना पड़ता है। और यदि कुछ भी चूकना नहीं चाहते हो, तो तुम पलक भी नहींझपक सकते। इसलिए तुम फिल्म देखते समय पलक भी नहींझपक सकते। तुम्हारी आँखें पागल की तरह दौड़ती रहती हैं। यही बात रात को और भी अधिक गहरे तल पर घटित होती है। सारी रात तुम सपने देखते हो। तुम्हारी आँखें दौड़ती रहती हैं।

अभी मनोवैज्ञानिक आँखों की गति का बाहर से भाषान्तर कर सकते हैं। वे उसे "रेपिड आई मूवमेन्ट"-(त्म्ड) कहते हैं-आँखों की तेज गति। वे तुम्हारी आँखों की गति को अनुभव कर सकते हैं और बता सकते हैं कि तुम किस प्रकार का सपना देख रहे हो। यदि वह सेक्स-संबंधी सपना है तो आँखें बहुत तेजी से गति करती हैं जितनी कि दूसरे प्रकार के सपने में नहीं करतीं। इसलिए अब सपने भी निजी बात नहीं रहे। तुम्हारी पत्नी तुम्हारी आँखों पर उँगलियाँ रख सकती हैं और अनुभव कर सकती हैं कि तुम किस तरह का सपना देख रहे हो। क्या सपने में तुम किसी स्त्री को देख रहे हो? तुम्हारी आँखें तेज-तीव्र गति दर्शाती हैं।

बुद्ध सोये। किन्तु हम तो सपने देखते हैं। सबेरे हमारी आँखें थकी हुई होती हैं। इसीलिए तो मैंने कहा, कमलवत। एक कमल अपने को कभी भी खोलता नहीं। वह बस खुल जाता है। सूर्य उगा है और कमल खिल जाता है। इसीलिए हम बुद्ध की आँखों को कमल की तरह कहते हैं। आँखें खुल गई क्योंकि रात्रि जा चुकी थी, वे फिर नये होकर, शक्ति से भरकर भीतर के स्रोत से बाहर आ रहे थे, बिना स्वप्नों के पहली बार।

यदि तुम्हारी नींद बिना सपने के हो, तो वह ध्यान हो जाती है। वह बिल्कुल समाधि की तरह होती है। अतः वे गहरी समाधि से बाहर आ रहे थे, एक गहरे भीतरी आनंद में डूबकर आ रहे थे। उन्होंने आखिरी तारे को डूबते हुए देखा। और उस आखिरी तारे के डूबने के साथ-साथ इस जगत का और सब भी विलीन हो गया। वे बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये। फिर बाद में, उनसे पूछा गया कि आपने किस प्रयास से उपलब्ध किया? उन्होंने कहा कि किसी भी प्रयास से नहीं। लेकिन तब गलतफहमी हो जाने की बहुत संभावना है। उन्होंने इस स्थिति को अप्रयास से उपलब्ध किया। यह बिल्कुल सच है। उन्होंने इस अप्रयास की स्थिति को किस तरह पाया? लम्बे प्रयास से। इसे कभी नहीं भूलना चाहिये।

उन्होंने कहा कि मैंने उस "अन्तिम" को तब पाया जबकि उस अन्तिम को पाने की इच्छा भी शेष नहीं थी। लेकिन उन्होंने इस "अनिच्छा" को कैसे पाया? लम्बी असन्तोष की प्रक्रिया के बाद? कितने ही जीवनों की अतृप्ति के बाद। बुद्ध ने कहा, "मैंने कितने ही जन्म श्रम किया, संघर्ष किया, किन्तु उस संघर्ष से कुछ भी हाथ नहीं आया"। लेकिन यह भी कोई छोटी बात नहीं है। यह अनुभूति कि "श्रम से कुछ भी नहीं पाया जाता", यह

भी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, क्योंकि अब ही बिना श्रम के कुछ पाना संभव होता है। अब ही केवल सन्तोष से, तृप्ति से कुछ पाना संभव हो सकता है।

अतः पहली स्थिति बिना असन्तोष की है : वह पशु की स्थिति है। उसमें व्यक्ति उन सब समस्याओं के प्रति मूच्र्छित रहता है जो कि जीवन पैदा करता है, कि जीवन भी है और उसकी समस्याएँ भी हैं-उनके प्रति आनन्दपूर्ण रूप से बेहोश होता है-किन्तु यह एक बहुत गहरी मूर्च्छा है। उसके बाद दूसरी अवस्था आती है : असन्तोष फूट पड़ता है। जो कुछ भी मूच्र्छित अवस्था में आनंदपूर्ण था, वह सब खो जाता है। हर चीज एक समस्या तथा एक पहेली बन जाती है, और हर बात एक संघर्ष का रूप ले लेती है। एक द्वंद्व निर्मित हो जाता है। और हर चीज को श्रम से पाना पड़ता है-लम्बे श्रम से। और फिर भी कुछ पक्का नहीं होता कि तुम उसे पा ही लोगे। तब चिन्ताओं का एक संसार तुम्हें घेर लेता है। तुम चिन्ता में जीते हो, तुम एक संताप हो जाते हो।

किर्कगार्ड ने कहा है कि आदमी एक चिन्ता है। वह है। पशु किसी चिन्ता में नहीं है किन्तु आदमी एक चिन्ता है। एक बुद्ध की अथवा लाओत्से जैसा ज्ञानी फिर से अचिन्ता में हैं। ये दो-अचिंताएँ-बुद्ध की तथा पशु की, ये दोबिल्कुल अलग बातें हैं। इनके गुण-धर्म भिन्न हैं। किसी को भी पहले चिन्ता से गुजर कर ही पुनः अ-चिन्ता की स्थिति को पहुँचना पड़ता है।

अतः असन्तोष को मना नहीं किया गया है, अतृप्ति की निन्दा नहीं की गई है। लेकिन असन्तोष आत्यंतिक स्थिति भी नहीं है। असन्तोष लक्ष्य नहीं है।

अतः इस सूत्र का अर्थ है असन्तोष के पार जाना। उसको पकड़ मत लेना। वह तो सिर्फ रास्ता है, उस पर से होकर गुजरना होता है। लेकिन गुजर जाना चाहिये, किसी को वहाँ रुकना नहीं चाहिये। इसे सदैव याद रखो। क्योंकि तुम्हारे मन में बहुत से सवाल उठेंगे।

तुम सोचते हो कि ये सवाल अलग हैं। च्वांगत्सु ने कहीं पर कहा है कि भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछना बहुत ही कठिन है। हम उसी-उसी प्रश्न को बार-बार पूछते रहते हैं, बिना यह जाने कि यह सवाल वही है। वही सवाल फिर रूप ले लेता है। केवल रूप दूसरा होता है, शब्द दूसरे होते हैं। लेकिन ऐसा क्यों होता है? यह इसलिये होता है क्योंकि प्रश्न पूछनेवाला वही-का-वही बना रहता है। यदि तुम एक प्रश्न का जवाब दे दो, तो वह दूसरा प्रश्न खड़ा करेगा, लेकिन सवाल वही होगा, क्योंकि सवाल पूछनेवाला वही का वही है। वह उसी बात को दूसरे कोण से पूछेगा। कोण में जरा-सा परिवर्तन, और वह सोचेगा कि अब यह दूसरा प्रश्न है।

यह नया प्रश्न नहीं है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। वह मन जो कि पूछता है, वह महत्वपूर्ण है। तो क्यों पूछता है?

मैंने एक आदमी के बारे मेंसुना है, जिसने कि अपनी पसंद की लड़की से शादी की थी। उसे उससे बड़ा प्रेम था और फिर छःमाह में ही प्रेम विदा हो गया और जीवन एक नर्क बन गया। अतः उसने सोचा कि मैंने एक गलत स्त्री से विवाह कर लिया। हर आदमी यह सोचेगा। इसी भाँति मन काम करता है। उसने यह नहीं सोचा कि मैं एक गलत चुनाव करने वाला हूँ-कि मैंने ही इस स्त्री को चुना है, किसी और ने नहीं। यह कोई नियोजित विवाह नहीं था। जब विवाह नियोजित किया जाता है, तब तुम्हें यह सांत्वना होती है कि तुम चुनाव करने वाले नहीं थे। तुम्हारे पिताजी ने यह गलती की अथवा तुम्हारी माँ ने अथवा किसी और ने-किसी ज्योतिषी ने। लेकिन जब तुम्हीं चुनाव करने वाले होते हो, तभी असली कठिनाई खड़ी होती है।

अमेरिका इस कठिनाई का सामना कर रहा है। कोई दोषी नहीं है। तुमने ही चुना है। तब मन एक तरकीब करने लगता है। वह कहता है कि वह स्त्री गलत थी। उसने धोखा दिया। वह उसका असली चेहरा नहीं था। उसका असली चेहरा तो अब प्रकट हुआ है।

अतः इस आदमी ने तलाक दे दिया। उसने फिर विवाह किया, और तीन महीने में ही वही बात फिर उपस्थित हो गई। स्त्री दूसरी थी, किन्तु गहरे में तो वह वही थी क्योंकि चुनाव करने वाला वही था। उसने आठ शादियाँ की और आठ बार लगातार तलाक दिया, तब जाकर उसे यह बात ख्याल में आने लगी कि हर बार वही स्त्री आ जाती है। वही कि वही स्त्री। क्यों? क्योंकि चुननेवाला तो वही-का-वही है। तुम भिन्न कैसे चुन सकते हो। पसन्द तो वही की वही है।

तुम उसी जाल में फिर से पड़ जाते हो। क्योंकि यदि तुम्हें एक प्रकार की आँखें पसन्द हैं तो वैसी ही आँखें तुम फिर चुन लोगे। और उस प्रकार की आँखें एक खास प्रकार के व्यक्ति की होती है। और यदि तुम्हें कोई खास ढंग पसन्द है, तो वह ढंग किसी खास प्रकार के व्यक्ति का ही होता है। जैसे कि एक खास प्रकार की हँसी होती है, वैसी हँसी हर कोई नहीं हँस सकता। वैसे होंठ, वैसा ढंग वैसी आँखें, वैसी हँसी एक खास प्रकार के मन की होती है। तुम फिर वही आदमी चुन लोगे।

अतः तुम सिर्फ नाम पलटते रहते हो, और फिर-फिर वही का वही व्यक्ति तुम्हारे पास आ जाता है क्योंकि तुम वही के वही हो। इसलिए जब तक तुम अपने को ही तलाक नहीं दो, तब तक कोई तलाक संभव नहीं है। और कोई भी व्यक्ति स्वयं को तलाक देने को राजी नहं है। जब कोई अपने को ही तलाक देने की सोचता है, तभी अध्यात्म की शुरुआत होती है। अतः प्रश्न वही का वही है।

मन की तीन स्थितियाँ सदैव स्मरण रखनी हैं। पहली और अन्तिम एक-सी प्रतीत होती हैं। यदि तुम पहली और दूसरी के बारे में सोचते रहे हो, तो फिर दूसरी चुनने योग्य है। तब पहली को छोड़ो। बचपन को छोड़ो, अज्ञान को त्यागो। अज्ञानपूर्ण सन्तोष की मूर्च्छा को हटाओ। असन्तोष ही चुनो। प्रौढ़ बनो, संघर्ष को चुनो।

लेकिन जब मैं कहता हूँ, "चुनो", तो यह एक सापेक्ष कथन है पहली स्थिति के विरुद्ध। जब मैं कहा हूँ कि दूसरी को छोड़ो, तो मेरा मतलब तीसरी के लिये है। इसलिए मैं कहता हूँ कि सीढ़ी को ऊपर चढ़ने के काम में लो, और सीढ़ी को छोड़ते जाओ। लेकिन हमारा तथाकथित मन कहता है कि यदि सीढ़ी को छोड़ना ही है तो फिर तकीफ ही क्यों उठायें। ऊपर चढ़ो ही मत, उस पर चढ़ो ही मत जहाँ हो वहीं रहो। यात्रा ही क्यों करनी? जब छोड़ना ही है तो पकड़ना ही क्यों? लेकिन यदि उसी मन को धकेला जाये, जबरदस्ती की जाये, तो वह जायेगा। तब मैं कहूँगा कि अब सीढ़ी को छोड़ दो। लेकिन मन कहेगा, क्यों?

ऊँची स्थिति को पहुँचने के लिये तुम्हें रास्तों से गुजरना पड़ता है और उन्हें छोड़ना भी पड़ता है। सीढ़ी का उपयोग करो और फिर उसे छोड़ दो। और हर सीढ़ी, सीढ़ी तभी बनती है जब तुम पहले उससे कदम उठाते हो और फिर पीछे छोड़ देते हो। यदि किसी सीढ़ी को तुम पकड़ लो, तो फिर वह सीढ़ी नहीं है। वह तो पत्थर हो गया-रास्ते का रोड़ा हो गया। इसलिए यह तुम पर निर्भर है। तुम रास्तों, रोड़ों को सीढ़ियाँ बना सकते हो और तुम चाहो तो सीढ़ियों को रोड़े बना सकते हो। यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम किस तरह व्यवहार करते हो।

इसे स्मरण रखो : जो कुछ भी उपयोग में लो, उसे छोड़ना भी पड़ेगा। जो भी उपयोग में लिया जाता है, वह एक उपाय मात्र है, उसे छोड़ना ही पड़ेगा। किन्तु उपयोग करने की प्रक्रिया में ही उससे लगाव पैदा हो जाता है। यह ऐसे ही होता है जैसे कि तुम बीमार हो और तुम कोई दवा लो। बीमारी चली जाये, लेकिन दवा

एक समस्या खड़ी कर दे। तब दवा को छोड़ना मुश्किल है। अतः दवा और भी ज्यादा बीमारी साबित हो सकती है, और भी बड़ी बीमारी बन सकती है क्योंकि आदमी उसका आदी हो जाता है। और तब कोई सोचने लगता है कि इस दवा ने मुझे बीमारी के पार जाने में मदद की, अतः यह तो मित्र है। जरूरत के समय जो काम आये वही दोस्त है, अतः इस दोस्त को कैसे छोड़ा जा सकता है।

अब तुम अपने एक मित्र को शत्रु में बदल रहे हो। अब यह दवा एक रोग हो जायेगी। तुम्हें दूसरी दवा की आवश्यकता पड़ेगी-दवा के विरुद्ध दवा की, एंटीडोज़ की। लेकिन तब यह दुष्टचक्र है।

तुम दूसरी चीजों से राग में पड़ते जाते हो। मन वर्तुल में काम करता है और उसी-उसी जगह घूमता चला जाता है। उसे याद रखें। यदि तुम्हारे पैर में कांटा लग गया है तो उसे ूसरे कांटे से निकाला जा सकता है। लेकिन उस दूसरे कांटे को घाव में नहीं रख लेना है कि यह मित्र है, क्योंकि इसने सहायता पहुँचाई।

लेकिन हम यह करते चले जाते हैं। हम दूसरे कांटे को पकड़ लेते हैं बिना यह जाने कि दूसरा कांटा भी उतना ही कंटीला है जितना कि पहला था। वह उससे भी ज्यादा मजबूत होसकता है। इसी कारण वह पहले कांटे को बाहर निकाल सका। अतः वह उससे भी ज्यादा घातक सिद्ध हो सकता है। एक को दूसरे के स्थान पर मत रखो। जब एक बात पूरी हो जाये, तो उसे पूरी हो जाने दो। जंजीर निर्मित मत करो।

यह कठिन है। यह बड़ा मुश्किल है, लेकिन असंभव नहीं है। सजगता से यह सरल हो जाता है। मन पर बहुत विश्वास मत करो। लेकिन स्मरण रहे कि पहले तुम्हें मन ही होना है। पहले मन को निर्मित करो, लेकिन उसमें बहुत विश्वास मत करो। तर्कपूर्ण होओ, लेकिन खुले रहो। जीवन को तर्क की आवश्यकता है, लेकिन जीवन खाली तर्क नहीं है। वह उसके भी पार जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक घर में काम करता था। एक धनवान व्यक्ति के घर में काम करता था। लेकिन नसरुद्दीन एक मुश्किल आदमी था-बहुत तर्कयुक्त। और तर्कयुक्त लोग बड़े कठिन लोग होते हैं। मालिक ने एक दिन कहा कि-"नसरुद्दीन, यह तो बहुत ज्यादा हो गया। मुझे नहीं लगता कि तीन अण्डों े लिये तीन बार बाजार जाने की आवश्यकता है। तुम बड़े गणितज्ञ, बड़े तर्कनिष्ठहो और मैं तुम्हें नहीं समझा सकता। लेकिन फिर भी तीन अण्डों के लिये तीन बार बाजार जाने की जरूरत नहीं है। तुम तीनों को एक साथ भी ला सकते हो। एक बार जाना काफी है।"

नसरुद्दीन ने अपने को सुधारने का आश्वासन दिया। जब मालिक बीमार पड़ा तो उसने नसरुद्दीन को कहा कि-"जाओ और डॉक्टर को बुला लाओ।" नसरुद्दीन गया और एक बड़ी भीड़ को बुला लाया। मालिक ने पूछा कि डॉक्टर कहाँ है? नसरुद्दीन ने जवाब दिया कि मैं डॉक्टर को बुला लाया हूँ और बाकी और लोगों को भी बुला लाया हूँ। मालिक ने पूछा कि ये दूसरे लोग कौन हैं? अतः नसरुद्दीन ने कहा कि यह एलोपेथ है, अंग्रेजी दवाओं का डॉक्टर है। यदि यह असफल हो जाये, तो दूसरे अन्य चिकित्सकों को भी बुला लाया हूँ। और यदि ये सारे लोग भी असफल हो जायें, तो ये आखिरी चार आदमी हैं। और यह आदमी हैं-अन्तिम संस्कार करनेवाले जो कि तुम्हें घर से बाहर ले जायेंगे। ऐसा मन तर्कयुक्त है, कानूनगत है, लेकिन फिर भी मूर्ख है।

मुल्ला नसरुद्दीन अकेला आदमी था अपने गाँव में जो कि पढ़-लिख सकता था। एक दिन एक गाँव का आदमी आया और उसने मुल्ला से एक खत लिखने को कहा। अतः उसने एक पत्र लिख दिया और जब पत्र पूरा हो गया, तो उस आदमी ने मुल्ला से कहा कि अब इसे पढ़कर सुना दो ताकि मुझे पता हो जाये कि कुछ भी नहीं छूट गया है। यह बड़ी कठिन बात थी क्योंकि मुल्ला खुद अपना लिखा नहीं पढ़ सकता था, और उसे पढ़ सकना एक बहुत बड़ी बात थी। अतः मुल्ला ने कहा कि अब तुम एक समस्या खड़ी कर रहे हो।

खैर, उसने कोशिश की, उसने उन टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों की ओर देखा और वह सिर्फ इतना ही पढ़ पाया, मेरे प्यारे भाई। फिर वह बोला कि अब सब गड़बड़ हो गया है। अतः उस आदमी ने कहा, यह तो बड़ी भयानक बात है नसरुद्दीन, क्योंकि जब तुम्हीं इसे नहीं पढ़ सकते तो दूसरा इसे कैसे पढ़ पायेगा? नसरुद्दीन ने कहा, यह हमारा काम नहीं है। हमारा काम है लिखना। अब यह उनका काम है कि इसे पढ़ें। इसके अलावा यह पत्र मुझे नहीं लिखा गया है, फिर मैं कैसे पढ़ सका हूँ? यह कानून के खिलाफ है।

तर्क, कानून-उनकी अपनी मूर्खताएँ हैं। वे अज्ञान से अच्छी हैं, लेकिन श्रेष्ठतर की तुलना में-वे मूर्खताएँ हैं। जब मूर्खताएँ प्रकट हों तो वे खतरनाक नहीं होतीं। जब वे प्रकट नहीं होतीं तब वे खतरनाक होती हैं।

इसे स्मरण रखें। मन तुम्हें अपने पार जाने में मदद नहीं करता। वह तुम्हें अज्ञान के पार जाने में मदद करता है। वह स्वयं अपने पार जाने में सहायता नहीं देता। और जब तक उसके भी पार नहीं जाओ, तब तक कोई प्रज्ञा नहीं है।

आज इतना ही।

सोलहवां प्रवचन

दो ध्रुवों का मिलन

प्रश्न

1. क्या विज्ञान और धर्म की ध्रुवतायें मिल सकती हैं?

2. क्या पश्चिम प्रज्ञा को उपलब्ध होने के लिये तैयार है? और पूर्व किस तरह से ऐण्टी-फिलोसोफिक है, यानी तर्क-विरोधी है?

भगवन्। हम ऐसा समाज क्यों नहीं बना सके जो कि दोनों ध्रुवों को मिलाता हो-दार्शनिकता तथा काव्य को, और विज्ञान तथा धर्म को?

क्या इन ध्रुवताओं की समग्ररूप से मिलन की कोई संभावना है? इस मिलन के लिये कौन-सी भूमि अधिक उपजाऊ है-पूरब या पश्चिम?

क्या यह मिलन सिर्फ व्यक्तिगत ही संभव है, अथवा क्या यह साथ ही समाज में भी संभव है?

किस भांति "ध्यान" इस मिलन के लिये उपयोगी हो सकता है?

वे कौन-कौन सी आवश्यक बातें हैं जो मनुष्य को विज्ञान तथा धर्म इन दोनों आयामों में विकसित होने में सहयोगी हो सकती हैं?

अब तक यह असंभव था कि ऐसा समाज निर्मित किया जा सके जो कि विज्ञान तथा धर्म, तर्क तथा काव्य की ध्रुवताओं का समन्वय कर सके। यह बात असंभव थी क्योंकि ऐसा समन्वय तभी संभव है, जब दोनों विकल्प अकेले-अकेले लेने पर असफल सिद्ध हों। अभी मानव चेतना के इतिहास में पहली बार हम ऐसी जगह पहुँचे हैं जहाँ कि दोनों विकल्प असफल हो गये हैं। अकेले-अकेले लेने पर असफल सिद्ध हों। अभी मानव चेतना के इतिहास में पहली बार हम ऐसी जगह पहुँचे हैं जहाँ कि दोनों विकल्प असफल हो गये हैं। अकेले-अकेले चुनने पर, अकेले-अकेले लिये जाने पर, प्रत्येक असफल सिद्ध हुआ है। इसलिए यह युग एक बहुत ही गहन महत्त्व का है क्योंकि अब मानव-मन पुराने द्वंद्व तथा पुरानी ध्रुवताओं के पार जा सकेगा।

पूर्व ने एक विकल्प के साथ प्रयास किया-उसने विज्ञान की कीमत पर धर्म को चुना। पश्चिम ने ठीक इसके विपरीत किया-उसने धर्म की कीमत पर विज्ञान को चुना। केवल कुछ लोगां को आंतरिक केन्द्र तक पहुँचाने में पूरब सफल हुआ। पश्चिम भी सफल हुआ एक भरा-पूरा समाज उपलब्ध करने में। आर्थिक रूप से तथा तकनीक में पूरब असफल हुआ। वह दरिद्र रहा। पश्चिम आध्यात्मिक अर्थों में असफल हुआ। वह आंतरिक रूप से खाली रहा। इसलिए एक समन्वय होना प्रारंभ हुआ।

पूर्व तथा पश्चिम में कुछ लोग इस बात को अनुभव भी करने लगे। वे भविष्य में झाँके और उन्हें युगद्रष्टा के नाम से पुकारा गया क्योंकि वे जान सकते हैं, वे भविष्य की गहराई में गहरे छानबीन कर सकते हैं। किन्तु युगद्रष्टाओं पर कभी विश्वास नहीं किया गया, जब तक कि वे जीवित थे। क्योंकि वे बहुत आगे चले जाते हैं। हम उनको नहीं समझ सकते और हम यह नहीं देख पाते कि उनकी अंतर्दृष्टि किस भाँति काम करती है। अतः उनका कभी विश्वास नहीं किया जाता, उनको कभी समझा नहीं जाता। केवल बहुत बाद में ही हम जान पाते हैं कि वे लोग सही थे।

कई बार ऐसा समन्वय प्रस्तुत किया गया। उदाहरण के लिये, कृष्ण ने इसे प्रस्तुत किया था। उनके द्वारा किया गया प्रयास एक ही बहुत ही गहरा समन्वय का प्रयास था। गीता को पढ़ा जाता है, उसकी पूजा की जाती है, किन्तु उनको किसी ने भी नहीं सुना। सचमुच, पैगम्बर अपने समय से पहले पैदा होते हैं। इसलिए जो लोग उन्हें समझ सकते हैं, वे उस समय नहीं होते और जो होते हैं, वे उन्हें समझ नहीं पाते। एक अन्तराल पड़ जाता है।

केवल कुछ ही व्यक्तिगत लोगों में यह समन्वय उपलब्ध किया जा सका है। केवल कुछ ही लोग ऐसे हुए हैं जो कि दोनों थे-धार्मिक और वैज्ञानिक, तर्कयुक्त तथा काव्यपूर्ण। किन्तु वह एक बहुत ही सूक्ष्म सन्तुलन है और अतीत में केवल बहुत प्रबुद्ध पुरुष ही, जीनियस ही उसे उपलब्ध कर सके। उदाहरण के लिये, माइकिल एन्जेलो या गेटे, अथवा हमारे समय में एल्बर्ट आइन्सटीन। वे व्यक्तिगत रूप से इस समन्वय को उपलब्ध कर सके। किन्तु, तब वे हमारे लिये बेबूझ हो गये क्योंकि वे दोनों ध्रुवों में इतनी आसानी से आ-जा सकते थे कि वे हमें बड़े असंगत प्रतीत हुए।

संगति तभी हो सकती है जब तुम एक ही छोर को पकड़े रहो। यदि कोई दोनों छोरों में गति करता रहता है, यदि कोई वैज्ञानिक एक कवि भी है तो फिर उसके दो व्यक्तित्व हैं। वह दोनों में घूमता रहता है। जब वह अपनी प्रयोगशाला में जाता है, तो वह कविता बिल्कुल भूल जाता है। वह अपना व्यक्तित्व एक कवि से एक वैज्ञानिक में बदल लेता है। वह बिल्कुल दूसरे ही ढंग से सोचने लगता है। जब वह अपनी प्रयोगशाला से बाहर आता है, तो वह फिर दूसरे ही रूप में बदल जाता है। यह दूसरा रूप गणित का नहीं है, प्रायोगिक नहीं है। यह किसी वैज्ञानिक प्रयोग के बजाय, स्वप्न जैसा ज्यादा है।

यह बात बहुत ही कठिन है। लेकिन कभी-कभी किन्हीं व्यक्तियों के साथ यह घटना घटती है। माइकिल एन्जेलो एक गणितज्ञ था और साथ ही एक महान कलाकार भी। गेटे एक कवि था और साथ ही एक गहरा तार्किक व चिंतनशीलव्यक्ति भी। आइन्सटीन वास्तव में तो एक गणितज्ञ था, एक भौतिकशास्त्री था, और फिर भी वह अपने चारों ओर घिरे हुए गहरे रहस्य के प्रति सजग था। किन्तु यह बात सिर्फ कुछ ही व्यक्तियों के लिये संभव हो सकी। इसे बहुत लोगों के लिये सींव होना चाहिये। अब समय परिपक्व हुआ है। और अब यह क्षण जल्दी ही आयेगा जब समाज को विपरीत की भाषा में सोचने की जरूरत नहीं पड़ेगी। वरन्, उसे परिपूरक की भाषा में सोचना पड़ेगा।

वस्तुतः दो विपरीत, दो शत्रु नहीं हैं। वे एक-दूसरे को सहारा देने वाले है। दोनों में से कोई भी दूसरे के बिना नहीं हो सकता। नीचे गहरे में वे दोनों जुड़े हैं। हम उन्हें कह सकते हैं-निकट शत्रु। वे दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। उनमें से कोई भी दूसरे के बिना नहीं हो सकता, और फिर भी वे विरोधी हैं, विपरीत हैं। ये विपरीत एक तनाव पैदा करते हैं, एक विशेष ऊर्जा, जो कि उनके होने के लिये सहायक है।

लेकिन यह बात अतीत में संभव नहीं थी। बहुतों ने सिर्फ एक ही विकल्प चुना क्योंकि एक के साथ प्रयत्न करना सरल है। तुम आसानी से धार्मिक हो सकते हो, तुम आसानी से वैज्ञानिक हो सकते हो। किन्तु दोनों होना, उसके लिये एक बहुत ही नाजुक सन्तुलन की जरूरत है। और तब तुम्हें बहुत ही विकसित मास्तिष्क वाला होना चाहिये जो कि एक-समूह में से दूसरे समूह में आसानी से आ-जा सके।

अपने मन की ओर देखो। जब तुम अपने घर से दफ्तर चले जाते हो तब भी तुम्हारा मन घर पर ही होता है। जब तुम अपने दफ्तर से घर चले जाते हो, तब ऐसा नहीं होता कि तुम्हारे दफ्तर छोड़ देने से तुम्हारा मन भी दफ्तर छोड़ देता है। वह दफ्तर में लगा रहता है। शारीरिक गति सरल है, मानसिक गति मुश्किल है। और

घर तथा दफ्तर में ऐसी कोई विपरीतता भी नहीं है। किन्तु जब कोई गणित की भाषा में सोचता है, तब वह जीवन के प्रति देखने का एक बिल्कुल अलग ढंग है। जब कोई काव्यात्मक ढंग से सोचने लगता है, तो वह बिल्कुल अलग ढंग है। जब कोई काव्यात्मक ढंग से सोचने लगता है, तो वह बिल्कुल अलग बात है। यह ऐसा ही है जैसे तुम एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर चले गये, और दूसरे की कोई आवाज वहाँ नही आ सकती। इसलिए एक बहुत ही गहन संयम तथा समन्वय की आवश्यकता है, वरना मन सदा एक ही ढाँचे में चलता है। और एक ही ढाँचे में चलना आसान है। इसीलिए समाजो के लिये चुनाव करना आसान है।

पूर्व ने एक विकल्प के साथ प्रयोग किया और पश्चिम ने दूसरे विकल्प के साथ। दोनों ही असफल हो गये। मानव का सारा इतिहास दो असफलताओं का इतिहास है-पूर्वी तथा पश्चिमी। अब इन दोनों असफलताओं का अध्ययन किया जा सकता है। अब हम इतिहास की भूलों के प्रति सजग हो सकते हैं और अनुभव के द्वारा प्राप्त बिन्दुओं की गलतियों के प्रति जाग सकते हैं। अब तुम्हें यह प्रतीत हो सकता है कि एक नया जगत एक नये ही दृष्टिकोण के साथ सींव है-एक समन्वय का दृष्टिकोण।

स्पष्ट है कि संसार पूर्वी या पश्चिमी नहीं हो सकता। इसलिए यह बात मत पूछो कि कौन-सी भूमि ज्यादा उपजाऊ है क्योंकि अब सारा जगत ही क संसार हो जायेगा। वास्तव में, यदि अभी भी तुम इस भाषा में सोचते हो कि कौन-सी भूमि ज्यादा उपजाऊ है तो तुम अभी भी पुराने ढंग से सोचने की कोशिश कर रहे हो। यदि पूर्व और पश्चिम होने की सारी बकवास को छोड़ दिया जाये। अब सिर्फ एक मनुष्यता पैदा होनी है। वह न तो पूर्वी है और न पश्चिमी। वह सिर्फ मानव है और पृथ्वी का यह ग्रह एक छोटा-सा गाँव है।

एक अखंड पृथ्वी का निर्माण सींव है, किन्तु यह पृथ्वी अब तक एक नहीं रही है। अब पहली बार सीमायें टूट रही हैं। इन पुरानी सीमाओं को तोड़ते रहना पड़ेगा। अचेतन रूप से यह काम काफी लम्बा समय लेगा। चेतन रूप से इसे आसानी से किया जा सकता है और बिना किसी तकलीफ तथा कष्ट के। अब आदमी को किसी खास भूमि का-किसी एक संस्कृति, किसी एक सभ्यता, किसी एक मर्म का-होने की आवश्यकता नहीं है। अब पहली बार मनुष्य को सारी पृथ्वी का होना चाहिये।

पूर्वी और पश्चिमी, इस तरह से सोचने का सारा आधार अतीत का है। भविष्य के लिये ऐसा सोचना मूर्खता ही नहीं है बल्कि गहन रूप से हानिप्रद भी है। लकिन इसे संभव कैसे बनाया जाये? इसे तीन प्रकार से संभव बनाया जा सकता है। एक, मन का प्रशिक्षण किसी एक दिशा में नहीं होना चाहिये। मन को एक साथ दोनों दृष्टिकोणों से प्रशिक्षित किया जाना चाहिये। एक बच्चे को सिर्फ तर्क, संशय तथा विज्ञान में ही प्रशिक्षित नहीं किया जाना चाहिये। एक बच्चे को सिर्फ तर्क, संशय तथा विज्ञान में ही प्रशिक्षित नहीं किया जाना चाहिये। धार्मिक संवेदना के लिये भी उसे तैयार किया जाना चाहिये। और ये दोनों प्रशिक्षण साथ-साथ दिये जाने चाहिये।

उदाहरण के लिये, यदि कोई व्यक्ति दूसरी भाषा बोलने वाले समूह में विवाह करता है-जैसे कि एक जर्मन एक भारतीय से शादी करता है, तो बच्चे प्रारंभ से ही द्वि-भाषी हो जायेंगे। यदि तुम एक ही भाषा वाले ग्रुप में से विवाह करते हो, तो तुम एक ही भाषा सीखते हो, तुम्हारी मातृ-भाषा के रूप में। तब बाद में तुम दूसरी भाषा सीख सकते हो लेकिन दूसरी भाषा दूसरी भाषा ही होगी। वह पहलीपर थोपी जायेगी, और पहली भाषा उसे हमेशा रंग देती रहेगी। भीतर गहरे अचतेन में वह जो बुनियादी भाषा है वह रहेगी और केवल चेतन में ही दूसरी भाषा होगी।

मेरा एक मित्र बीस वर्षों तक जर्मनी में था। यह इतना लम्बा समय था कि वह कई बार काफी समय के लिये मूर्च्छित हो जाता (बीमारी कुछ ऐसी थी कि वह कई बार काफी समय के लिये मूर्च्छत हो जाता था) तो वह मराठी बोलता था। तब वह जर्मन बिल्कुल नहीं समझ पाता था।

गहरा अचेतन पहली भाषा ही जानता है, दूसरी तो आरोपित है। लेकिन एक द्वि-भाषीय बच्चे के लिये जो कि दो भाषाओं के बीच पैदा हुआ है, दोनों मातृ-भाषायें हैं। उसके लिये दोनों भाषाओं में बोलने-चालने में कोई कठिनाई नहीं होगी। सचमुच उसे एक भाषा से दूसरी भाषा में जाने में कोई मुश्किल नहीं होगी। सत्य की ओर जाने के लिये विज्ञान एक भाषा है और धर्म दूसरी भाषा है। विज्ञान एक तटस्थ भाषा और धर्म एक घनिष्टता की भाषा है। उन दोनां को ही एक साथ सिखाया जाना चाहिये। वे दोनों एक ही हो जानी चाहिये। बच्चे को पता भी नहीं चलना चाहिये कि उन दोनों में चुनाव करना है। मन को सन्देह के लिये प्रशिक्षित करना चाहिये और मन को श्रद्धा के लिये भी प्रशिक्षण देना चाहिये-जीवन के प्रति श्रद्धा के लिये।

हमारे लिये वे दोनों विपरीत हैं क्योंकि हमें उस तरह कभी भी प्रशिक्षित नहीं किया गया। वही एक मात्र बात है। हमारे लिये श्रद्धा और सन्देह दो विरोधी बातें हैं। हम कहते हैं कि मुझे श्रद्धा है तो फिर मैं सन्देह कैसे करूँ? और यदि मैं सन्देहशील व्यक्ति हूँ, यदि मैं सन्देह कर सकता हूँ तो फिर मैं विश्वास कैसे कर सकता हूँ? वस्तुतः यह विभाजन ही मूर्खतापूर्ण है क्योंकि उनके आयाम ही अलग हैं। श्रद्धा है धर्म के लिये, श्रद्धा है सत्य में गहरे उतरने के लिये, श्रद्धा है प्रेम के लिये, श्रद्धा है जीवन के लिये। यह दूसरा ही मार्ग है। सन्देह की आवश्यकता नहीं है। सन्ेदह है वैज्ञानिक खोज के लिये। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिये, तथ्य के लिये-मृत तथ्यों के लिये, निरीक्षण करने के लिये।

बाहरी संसार के लिये सन्देह एक बुनियादी साधन है। आंतरिक जगत के लिये, श्रद्धा आधारभूत साधन है। और इन दोनों में द्वन्द्व में है क्योंकि हमें एक ही बात के लिये प्रशिक्षण दिया गया है, और हम एक से दूसरे में नहीं जा सकते। यह जो एक से दूसरे में जाने में हमें कठिनाई होती है, यह हमारे सारे गलत प्रशिक्षण के कारण है। वरना, जब तुम एक गणित की समस्या को हल कर रहे हो, तब गणित का प्रयोग करो। लेकिन जब तुम एक फूल की ओर देख रहे हो, तब तुम्हारे गणित को जरूरत नहीं है- पूर्णिमा की रात के लिये गणित की आवश्यकता नहीं है। भूली गणित को। अपने स्वरूप का तब दूसरा ही द्वार खोलो।

जीसस ने कहा है कि मेरे पिता के घर में बहुत से कक्ष हैं, बहुत से आयाम हैं। तुम भी एक द्वार वाले घर नहीं हो। तुम्हें जरूरत भी नहीं है ऐसा होने की। यदि तुम ऐसे हो, तो उसका इतना ही अर्थ होता है कि सिर्फ एक ही दरवाजा खोला गया है। दूसरे दरवाजे भी हैं। और यदि उन्हें खोला जाये, तो तुम उनके कारण अधिक समृद्ध हो जाओगे। यदि तुम दूसरे द्वारों का भी उपयोग कर सको, तब तुम्हारा व्यक्तित्व रुका हुआ नहीं होगा, बल्कि एक सरिता की तरह होगा। तब तुम मरे हुए कम होओगे, और जीवन्त ज्यादा होओगे।

गति ही जीवन है। और जितनी सूक्ष्म गति होती है, उतना ही तुम्हारा जीवन समृद्ध होता जाता है। अतः सन्देह का साधन की तरह उपयोग करो, श्रद्धा का भी साधन की तरह उपयोग करो।

यह कैसे संभव हो सकता है? दूसरी बातः यह तभी संभव है जब कि तुमने अपना तादात्म्य-सम्बंध न श्रद्धा से जोड़ा हो, न सन्देह से। यदि तुम सन्देह से एक हो गये हो, तो तुम फिर गति नहीं कर सकते। तब तुम्हारा मन ही सन्देह है, अतः तुम कैसे श्रद्धा में जा सकते हो? यदि तुम श्रद्धा के साथ तादात्म्य बनाये हो तो तुम सन्देह में नहीं जा सकते।

अतः दरवाजों से तादात्म्य मत बनाओ। तुम भिन्न हो, द्वार तुमसे अलग हैं। जब तुम और द्वार अलग-अलग हो तो फिर कोई कठिनाई नहीं है। अतः ऐसा मत सोचो कि सन्देह ही तुम्हारा स्वरूप है अथवा श्रद्धा ही तुम्हारा स्वरूप है। श्रद्धा भी एक द्वार है, सन्देह भी एक द्वार है। तुम दोनों से आ-जा सकते हो। एक से दूसरे में जा सकते हो। यदि तुम तादात्म्य जोड़े हो, तो फिर कोई चुनाव नहीं है।

लेकिन हम सब तादात्म्य बनाये हैं, हम कहते चले जाते हैं, मैं विश्वास नहीं कर सकता, मैं श्रद्धा नहीं कर सकता, क्योंकि मैं सन्देहवान व्यक्ति हूँ। अथवा कोई कहता है, मैं सन्देह नहीं कर सकता क्योंकि मैं एक धार्मिक व्यक्ति हूँ। यह बात बतलाती है कि तुम्हारी चेतना स्थिर हो गई है-पत्थर की तरह। वह सरिता की तरह नहीं है, बहती हुई, गतिमान। बहो, गतिमान होओ। अतः दूसरी बात : मन को प्रशिक्षित करना है कि वह साधनों से तादात्म्य न करे। तभी तुम उनका उपयोग कर सकते हो। तुम एक तलवार का उपयोग कर सकते हो। लेकिन यदि तुम उससे इतने एक हो गये हो कि तुम्हारा हाथ ही तलवार हो गया है, तब तुम एक गुलाब के फूल को हाथ में कैसे लोगे? तब तुम कहोगे कि यह असम्भव है? कैसे मैं एक गुलाब के फूल को हाथ में ले सकता हूँ? मेरा हाथ तो तलवार है।

और तलवार और फूल में कोई संबंध नहीं है। तुम तलवार को भी ले सकते हो और फूल कोभी। यदि तुम्हारा हाथ तादात्म्य से मुक्त है तभी यह संभव हो सकता है। अतः दूसरी बात कि तादात्म्य न जोड़ो। भविष्य में हमें शिक्षा की ऐसी प्रणाली बनानी पड़ेगी जिसमें जो साधनों से अ-तादात्म्य सिखाती हो। तब बात सरल हो जायेगी, बहुत सरल, होगी।

तीसरी बात, इसे स्मरण रखो : जगत का अस्तित्व है विपरीत ध्रुवताओं की तरह। अतः यदि तुम एक को चुनो तो जगत दरिद्र हो जायेगा। यदि तुम कहते हो कि मैं यह करूँगा और वह नहीं करूँगा, तुम आधे जगत के ही हो सकोगे। तुम आधे ही जीवित रहोगे। याद रहे, अस्तित्व विपरीत पर खड़ा है, अतः यदि तुम्हें इस सारे अस्तित्व से एक होना है, तो गतिमान होने की सामर्थ्य जुटाओ।

हम सोचते हैं कि कोई आदमी बड़ा प्रेमी है, अतः हमें आश्चर्य होता है कि वह घृणा कैसे कर सकता है? कोई आदमी बड़ा घृणापूर्ण है, अतः वह प्रेम कैसे कर सकता है? किन्तु यदि तुम्हारा प्रेम ऐसा है कि तुम घृणा नहीं कर सकते हो तो फिर तुम्हारा प्रेम कुछ भी नहीं है। उसमें कोई उष्मा, कोई जीवन नहीं होगा। तुम्हारा प्रेम नपुंसक होगा। यदि तुम घृणा नहीं कर सकते तो फिर तुम्हारा प्रेम कुछ भी नहीं है। उसमें कोई उष्मा, कोई जीवन नहीं होगा। तुम्हारा प्रेम नपुंसक होगा। यदि तुम घृणा नहीं कर सकते तो फिर तुम्हारा प्रेम जीवन्त नहीं हो सकता। और यही बात दूसरे छोर की भी है। यदि तुम सिर्फ घृणा ही कर सकते हो और प्रेम नहीं कर सकते, तो तुम्हारी घृणा भी थोथी होगी।

वह जो विपरीत है, वह जीवन प्रदान करता है। यदि तुम घृणा भी कर सकते हो, तो तुम्हारा प्रेम समृद्ध होगा। घृणा करने की जरूरत नहीं हैं, किन्तु तुम घृणा कर सकते हो, यदि वैसी तुम्हारी सामर्थ्य है, यदि तुम घृणा भी कर सकने में समर्थ हो, तो तुम्हारे प्रेम में एक अलग ही प्रकार की गुणवत्ता होगी-एक गहरी गुणवत्ता होगी।

प्रत्येक चीज़ जो कि विपरीत दिखाई पड़ती है, वह मूल में जुड़ी हुई है, और वह विपरीत ही शक्ति देता है। किन्तु हमें एक ही जगह स्थिर होने का प्रशिक्षण दिया गया है। हमें प्रक्रियाओं की तरह प्रशिक्षित नहीं किया गया है, किन्तु पूरी हो चुकी घटनाओं की तरह, खत्म हो गई चीजों की तरह प्रशिक्षित किया गया है। इसलिए हम कहते हैं कि कोई आदमी ऐसा है जो कि दयालु है, कोई आदमी क्रोध करने वाला है। परनतु यदि जो व्यक्ति

सिर्फ दयालु ही हो और यह यदि क्रोध नहीं कर सकता हो, तो उसकी दयालुता उथली होगी। उसकी दयालुता सिर्फ ऊपर का आवरण होगी। यदि वह क्रोध भी कर सके, तभी उसकी दयालुता में भी गहराई होगी।

क्रोध करने की जरूरत नहीं है, उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु सामर्थ्य तो होनी चाहिये। यह जो सामर्थ्य है जो विरोधी ध्रुवों को भी मिला लेती है, इसके लिये एक अलग ही प्रशिक्षण की आवश्यकता है। एक दूसरे ही प्रकार का मन संसार में लाया जाना चाहिये।

इसे स्मरण रखें : जो भी ज्ञानी हुए, जो भी अहिंसा को लाये, वे सभी क्षत्रिय थे। वे सब के सब योद्धा-जाति के थे। महावीर, बुद्ध, जैनों के चौबीस तीर्थंकर, वे सब के सब क्षत्रिय थे। वे सब लड़ने वाली जाति के थे।

यह बात बड़ी अजीब लगती है। अच्छा होता यदि ब्राह्मणों ने अहिंसा की शिक्षा दी होती। परन्तु किसी भी ब्राह्मण ने अहिंसा का पाठ नहीं पढ़ाया। आज तक किसी ब्राह्मण ने अहिंसा की शिक्षा नहीं दी। केवल क्षत्रियों ने उसकी शिक्षा दी। क्यों? और क्यों महावीर और बुद्ध के पास अहिंसा की इतनी गहराई है? क्योंकि वे गहरी हिंसा के लिये समर्थ थे। वे उसमें जा सकते थे। वे वस्तुतः हिंसक वर्ग से संबंधित थे, एक हिंसक चित से जुड़े थे। वे उसी में पैदा हुये थे, और तब वे दूसरे ध्रुव को चले गये। उनमें गहराई थी।

यह बात बड़ी विचित्र है। यदि तुम जाओ और महावीर तथा बुद्ध का विपरीत खोजो तो तुम परशुराम को पाओगे-एक ब्राह्मण, जिसने कि लाखों क्षत्रियों का संहार किया। ऐसा कहा जाता है कि वे कितनी ही बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली करने के लिये निकले थे। यह एक बहुत ही हिंसक चित्त था, किन्तु यह एक बहुत अहिंसक जाति से आया था। वे ब्राह्मण थे।

क्यों? किसी भी क्षत्रिय की तुलना परशुराम से नहीं की जा सकती। वे बेजोड़ हैं। जगत ने उन जैसा फिर पैदा ही नहीं किया। महावीर और बुद्ध क्षत्रिय थे। यह बात बहुत अर्थपूर्ण है, बहुत काम की है। भिन्न होने की क्षमता एक प्रकार की शक्ति देती है।

दूसरा उदाहरण : तुमने कितने ही महान पुरुषों की कितनी घटनाओं के बारे में सुना होगा कि कभी-कभी वे कितनी मूर्खता की बात करते हैं। कोई भी मूर्ख ऐसी बात नहीं करेगा। हम हँसते हैं, हम कहते हैं कि वे भुलक्कड़ किस्म के लोग हैं।

इमैनुअल काण्ट के बारे में कहा जाता है कि एक रात जब वह घूमकर घर लौटा, अपने छाते के साथ, तो वह भूल गया कि कौन-कौन था। उसने अपना छाता बिस्तर पर लिटाया, उसे कम्बल से ढका और फिर वह स्वयं कोने में खड़ा हो गया यह सोचकर कि वह स्वयं अपना छाता है। और यह बात उसे तब पता चली जबकि सवेरे नौकर ने दरवाजा खटखटाया। तब उसे गलती का पता चला। सारी रात वह खड़ा रहा। वह सो रहा था, वह खड़ा नहीं था। जब नौकर ने दरवाजा खटखटाया, तो उसने बिस्तर की तरफ देखा और सोचने लगा कि मैं दरवाजा खोलने क्यों नहीं जा रहा हूं? और तब अचानक उसे पता चला कि उससे गलती हो गयी है।

हम इमैनुअल पर हँस सकते है। हम जानते हैं कि ऐसे महान पुरुष कभी-कभी बड़े भुलक्कड़ होते हैं। किन्तु क्यों? तुम ऐसी मूर्खता की बात नहीं कर सकते क्योंकि तुम दूसरे छोर पर नहीं जा सकते। इमैनुअल काण्ट ही ऐसी गलती कर सकता है। वह बुद्धि का एक छोर स्पर्श करता है, इसलिए फिर दूसरा छोर भी सींव हो जाता है। अतः कभी भी मूर्ख लोगों के बारे में नहीं सुना गया कि उन्होंने ऐसी मूर्खता की बात की जैसी कि इन तथाकथित ज्ञानियों ने बुद्धिशाली लोगों ने की है।

कभी-कभी इसके उलटा भी होता है। एक महामूर्ख आदमी भी कभी-कभी ऐसी सलाह दे सकता है कि कोई महाविद्वान आदमी भी नहीं दे सकता। और ऐसा सदा से इतिहास में होता आया है, और इसीलिए प्रत्येक

सम्राट के दरबार में बहुत-से विद्वान लोग होते थे, किन्तु एक मूर्ख को दरबार में रखा जाता था दरबारी विदूषक।

और ऐसा कई बार होता था कि जब विद्वान लोग कोई सलाह देने में असमर्थ होते, तो वह दरबारी मूर्ख सलाह देता था। क्यों? क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि विद्वजन इतने विद्वान हो जाते हैं कि वे अव्यवावहारिक हो जाते हैं। उनकी बुद्धिमानी ही बाधा बन जाती है। और वह दरबारी मूर्ख निडर होता है। वह मूर्ख होने से नहीं डरता, इसलिए वह कुछ भी कह सकता है। और बहुत बार तुम यदि निडर हो, तभी तुम्हारी सलाह कुछ काम की होती है।

क्यों? क्योंकि यदि तुम बेवकूफ नहीं हो, तो तुम जीवन का आनंद नहीं ले सकते। तुम तब एक उदास, गंभीर और मुर्दा आदमी हो जाते हो। जो भी जीवन में सुन्दर हैं उसका आनन्द तभी लिया जा सकता है जब तुम बेवकूफी का खेल खेलने को राजी हो, मूर्ख बनने को तैयार हो। वरना यह असंभव है। अतः जितने ज्यादा तुम बुद्धिमान होओगे, उतने ही तुम मूर्ख होओगे जहाँ तक जीवन का सवाल है। हम धर्म और विज्ञान के बीच समन्वय की बात सोच सकते हैं लेकिन हम एक विद्वान तथा मूर्ख के बीच समन्वय की कल्पना भी नहीं कर सकते क्योंकि इसमें समस्या और भी गहरे चली जाती है।

और जब तक वैज्ञानिक चित्त और धार्मिक मन के बीच समन्वय की बात सोचते हैं, तो यह कोई हमारी समस्या नहीं है। यह हमसे बहुत दूर है। इस बात से हमारा कुछ लेना-देना नहीं हैं। किन्तु जब मैं कहता हूँ कि बुद्धिमानी और मूढ़ता में एक बहुत गहरे समन्वय की आवश्यकता है तो फिर इस बात से तुम्हारी सीधा संबंध है। तब तुम कुछ बेचैन होने लगते हो। तब मन कहेगा कि बुद्धिमानी को चुना, े मूढ़ता को मत चुना। किन्तु मूढ़ता की इतनी निंदा करने की क्या जरूरत है? और बच्चे इतने सुन्दर हैं क्योंक वे मर्ख हैं। और पशु इतने भोले-भाले हैं क्योंकि वे मूर्ख हैं।

और पंडितों की ओर देखो : वे इतने बुद्धिमान हैं, इतने गंभीर हैं, इतने उदास हैं कि सचमुच के रुग्ण हैं, पैथोलोजिकल हैं। यह जो गहरा समन्वय है सब विरोधों के बीच, यह एक प्रशिक्षण बन सकता है, और भविष्य के मन के लिये यही प्रशिक्षण होनेवाला है। यदि धार्मिक आदमी हँस नहीं सके और नाच नहीं सके, तो वह समग्र नहीं है। और जो समग्र नहीं है वह पवित्र भी नहीं हो सकता। समग्रता ही पवित्रता है।

इस रूप से झेन बौद्धों ने एक गहरे समन्वय को उपलब्ध किया है। झेन फकीर तथा ज्ञानी बड़े मजे से मूर्खता की बात कर सकते हैं। और वही उनकी प्रज्ञा का द्योतक है, यदि तुम कभी-कभी मूर्खता की बात नहीं कर सको, तो इससे तुम अभी भी ज्ञानी नहीं हो। एक ज्ञानी एक से दूसरे में आ-जा सकता है। मैं मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में इतनी बात करता हूँ क्योंकि वह दोनों है, एक गहरा समन्वय है। वह मूर्खता की बात कर सकता है, और फिर भी ऐसा बुद्धिमान आदमी खोजना मुश्किल है।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन के गाँव के लोगों ने उसे भाषण देने के लिये बुलाया। कोई त्यौहार का दिन था और वे चाहते थे कि कोई आदमी धार्मिक प्रवचन दे। अतः नसरुद्दीन ने कहा अच्छी बात है, मैं आता हूँ। अतः वे उसे लेने आये। वह अपने गधे पर उलटा बैठा हुआ अपने घर से बाहर आ रहा था। उसका चेहरा गधे के पीछे की ओर था और उसकी पीठ गधे के मुँह की तरफ थी।

वह सारे के सारे लोग जो कि उसे लेने आये थे वह उसके पीछे-पीछे चलने लगे, किन्तु वे लोग बहुत बेचैन हो गये क्योंकि गाँव के लोग घूर-घूर कर देख रहे थे। उन्होंने सोचा कि यह मुल्ला तो बेवकूफ है, और जो लोग उसके पीछे चल रहे हैं और जो उसकी बात सुनने वाले लोग हैं वे और भी ज्यादा मूर्ख हैं। गधे पर इस तरह

बैठना कभी देखा-सुना है किसी ने? लेकिन फिर भी उसके पीछे चलने वाले लोग डटे रहे। उन्होंने मुल्ला से कहा, अच्छा हो कि आप अपनी स्थिति बदल लें। सारा गाँव हँस रहा था।

मुल्ला नसरुद्दीन ने बड़ी गंभीतरता से कहा, यदि आप मेरी बात सुनने को राज हैं, यदि आप मेरी बात समझने को तैयार है, तो सबसे पहला सिद्धान्त याद रखें कि आप दूसरों की बात पर ज्यादा ध्यान दे रहे हैं, और इस बात पर कोई ध्यान नहीं दे रहे हैं कि हम क्या कर रहे हैं। जो कुछ भी हम कर रहे हैं, उसकी ओर अधिक ध्यान दें। और अब मैं तुम्हें समझाता हूँ। मुल्ला ने कहा कि "मैं तुम्हें बात बतलाता हूँ। यदि मैं साधारण ढंग से बैठता, तो मेरी पीठ तुम्हारी तरफ होती और इससे तुम्हारा अपमान होता। और यदि मैं तुम्हें अपने आगे-आगे चलने देता तो वह मेरा अपमान होता। अतः यही एकमात्र मानवीय ढंग हो सकता है। यही एक मात्र तरीका है जो कि अपनाया जा सकता है जिससे कि किसी का भी अपमान न हो।"

मुल्ला मूर्ख मालूम पड़ता है किन्तु वह बुद्धिमान है। किन्तु उसकी विद्वता को पाना जरा कठिन है क्योंकि वह मूर्खतापूर्ण कार्यों से ढकी है। केवल एक बुद्धिमान आदमी ही उसके भीतर प्रवेश कर सकता है।

जब तुम किसी का सम्मान करते हो, तो तब तुम क्या करते हो? जब तुम अपनी उम्र के कारण सम्मान की अपेक्षा करते हो, तो तुम क्या करते हो? जब तुम आदर देते हो, तो तुम इस भाँति नहीं बैठना चाहते कि तुम जिस व्यक्ति को आदर दे रहे हो, उसकी तरफ पीठ करके बैठो। फिर मुल्ला पर हँसने की क्या जरूरत है? वह भी उसी तरह व्यवहार कर रहा है जिस तरह मनुष्य का मन व्यवहार करता है। केवल इतनी ही तो बात है कि वह तर्क के आखिरी किनारे तक चला जाता है और कहता है-यही एकमात्र तरीका संभव है जो कि अपनाया जा सकता है।

वास्तव में, वह तुम्हारे तथाकथित आदर-सम्मान आदि पर हँस रहा है। यदि तुम भी उस पर हँस सकते हो तो सारी मनुष्यता की मूर्खता पर हँसो। यदि तुम एक कुर्सी पर बैठे हो और तुम्हारे पिता उस कमरे में आ जाते हैं, तो तुम क्या करोगे? यदि तुम खड़े नहीं होओ तो वे समझेंगे कि उनका अपमान कर रहे हो। लेकिन यह भी कैसी मूर्खता की बात है। खड़े होते हो या कि बैठे रहते हो इस बात से क्या अन्तर पड़ता है? अतः असली बात यह नहीं है कि तुम खड़े हो या कि बैठे हो। असली बात यह है कि हर आदमी अहंकारी है और हर आदमी ऐसा कुछ हावभाव चाहता है जिससे कि उसका अहंकार भरता रहे।

एक महान शिक्षक हुआ, ए.एस. नील। एक दिन वह अपनी कक्षा में पढ़ा रहा था और विद्यार्थी जैसा उनकी मौज में आये-बैइे थे। एक भारतीय शिक्षक उनकी कक्षा देखने गये और वह तो देखकर हैरान रह गये। उनकी समझ में ही न आया कि यह किस प्रकार की क्लास थी। एक विद्यार्थी सिगरेट पी रहा था, एक फर्श पर लेटा हुआ था आँखें बन्द करके और कक्षा चल रही थी और ए.एस. नील पढ़ा रहा था। अतः उस भारतीय शिक्षक ने कहा, यह तो अनुशासनहीनता है। आप क्या कर रहे हैं रुकें, पहले इन्हें ठीक से बैठ जाने दें, शिक्षक को आदर मिलना चाहिये।

नील ने कहा, आपको पता नहीं कि यहाँ पर क्या हो रहा है। ये लोग मुझे इतना प्रेम करते हैं कि ये लोग मेरे साथ आराम से बैठ सकते हैं। और यही आदर प्रेम के विरुद्ध जाता हो, तो प्रेम ही चुनना ठीक होगा। प्रेम से ज्यादा मेरे लिए आदरपूर्ण क्या होगा? इन्हें ऐसा लग रहा है कि वे लोग घर पर ही हैं, और फिर मैं यहाँ इन्हें पढ़ाने के लिये हूँ, न कि ठीक ढंग से बैठाने के लिये। यदि एक लड़के को ऐसा लगता है कि वह फर्श पर लेटकर, आँखें बन्द कर, ज्यादा अच्छी तरह से समझ सकता है, तो ठीक है। यदि मैं उन्हें जबरदस्ती ठीक ढंग से बैठाऊँ और उसी कारण वे समझ नहीं सकें तो मैं अपना शिक्षक का कर्तव्य पूरा नहीं कर रहा हूँ।

अतः नील मुल्ला नसरुद्दीन की घटना को समझ सकता है। जीवन बहुआयामी है और एक बहुत विरोधाभासी घटना है। तुम्हें दोनों ध्रुवों में आ-जा सकने में समर्थ होना चाहिये और फिर भी उनके पार रहना चाहिये। और जब तुम दोनों के पार हो, तभी तुम दोनों में आ-जा सकते हो।

गुरजिएफ के लिये ऐसा कहा जाता है, उसके बहुत से शिष्यों ने कहा है कि अचानक, किसी भी क्षण वह बड़ी मूर्खता की बात करता। वह ऐसी स्थिति पैदा कर देता कि उसके शिष्य बड़ी मुश्किल में पड़ जाते। क्यों? वह महानतम बुद्धिमान लोगों में से एक था। क्यों? क्योंकि बुद्धिमानी की बात करते रहना अहंकार का ही हिस्सा है।

एक दिन एक अखबार का संवाददाता उससे वार्तालाप करने आया। वह वहां बैठा था। कुछ शिष्य भी बैठे थे और वह उनके प्रश्नों का जवाब दे रहा था। संवाददाता वहाँ आया, और चूंकि वह एक बहुत बड़े अखबार का प्रेस रिपोर्टर था, वह अहंकार से भरा था, अपने को बहुत महत्वपूर्ण समझता था। गुरजिएफ ने उसे अपने पास ही एक तरफ बैठा लिया। और फिर अचानक दूसरी तरफ बैठी एक महिला से कहा, आज क्या दिन है? उस महिला ने जवाब दिया, आज शनिवार है। गुरजिएफ ने कहा, यह कैसे संभव हो सकता है? कल तो शुक्रवार था, फिर आज शनिवार कैसे हो सकता है? और कल तुमने कहा था कि कल शुक्रवार था।

संवाददाता खड़ा हो गया और उसने कहा कि बस ठीक है, मैं जाता हूँ। जब वह संवाददाता चला गया तो गुरजिएफ हँसने लगा। लेकिन सारे शिष्यों को बड़ी बेचैनी हो गयी, क्योंकि उन्होंने ही तो इस भेंटवार्ता का प्रबंध किया था और वह संवाददाता जाकर खबर छपवाएगा कि वह एक मूर्ख शिक्षक के शिष्य हैं और वे एक बेवकूफ की बातों पर चल रहे हैं।

लेकिन एक गुरजिएफ ही ऐसा कर सकता है। उसने ऐसा करके क्या किया? उसने अपने शिष्यों को बता दिया कि चाहे तुम्हें इस बात का पता हो, चाहे नहीं हो, लेकिन तुम गुरजिएफ के द्वारा भी अपने अहंकार को ही मजबूत कर रहे हो। लेकिन शिष्यों ने जोर दिया, कि वह समझेगा कि आप मूर्ख हैं। अतः गुरजिएफ ने कहा, समझने दो उसे। इससे क्या होता है? दूसरे क्या सोचते हैं, यह बात असंगत है।

सचमुच ही एक विनम्र आदमी है, क्योंकि यदि तुम इस बात की परवाह करो कि दूसरे तुम्हारे बारे में क्या सोचे हैं, तो तुम झूठे मुखौटे लगाओगे। तुम सुन्दर, बुद्धिमान दिखलाई पड़ने की कोशिश करोगे क्योंकि तुम्हारा इस बात से कहाँ संबंध है कि तुम क्या हो। तुम्हें इस बात की ज्यादा चिन्ता है कि दूसरे क्या सोचते हैं। और यही अहंकार की मूर्खता है।

इसलिए हमें हमारे मन को इस तरह से प्रशिक्षित करना चाहिये कि वह द्वैत के पार जाने में समर्थ हो और कहीं भी जा सके, आनंद ले सके, प्रफुल्लित हो और गंभीर भी, और कोई भी काम कर सके। ऐसी तरलता अब संभव है। ऐसा पहले संभव नहीं था।

और चूँकि अब दोनों विकल्प असफल हो गये हैं, तीसरी संभावना खुलती है। ध्यान बहुत सहायता कर सकता है। वस्तुतः ध्यान ही एक ऐसी बात है जो कि सहायता कर सकती है। यदि ध्यान तुम्हें एकांगी बनाये तो फिर वह ध्यान नीं है। यदि ध्यान तुम्हें ज्यादा सन्तुलित जीवन प्रदान करे, एक ज्यादा सन्तुलित चेतना दे तो ही वह वास्तविक है। अतः यदि ध्यान तुम्हें जीवन से हट जाने के लिये कहे तो फिर वह ध्यान नहीं है।

यदि ध्यान तुम्हें इस संसार में रहते हुये संसार से बाहर रहने में मदद करे, यदि ध्यान तुम्हें संसार में रहने में सहायक हो और संसार को तुम्हारे भीतर नहीं रहने दे, तो ही तुमने समन्वय उपलब्ध किया। जनक एक

समन्वय है; कृष्ण एक समन्वय हैं। जीवन को उसके विरोधों में नहीं लिया गया। किसी एक ध्रुव में आसक्त न होकर दोनों ध्रुवों के बीच जीना संभव हो सकता है।

भगवन्! कल रात्रि आपने कहा कि पश्चिम ने तर्क, बुद्धि तथा दर्शनशास्त्र को विकसित किया और पूर्व ने कला, रहस्य तथा धर्म को?

एक बार आपने कहा था कि मनुष्य का मन तीन चरणों में विकसित होता है : अज्ञान, ज्ञान तथा ज्ञान का अतिक्रमण यानी प्रज्ञा?

तब क्या यह सही नहीं है कि पश्चिम अज्ञान से ज्ञान में प्रगति कर चुका है, और अब वह तीसरे क्षेत्र में यानी प्रज्ञान में प्रवेश कर सकता है?

दूसरी बात, क्या यह भी सच नहीं है कि पूर्व ने ही छः दर्शन-शास्त्रों को जन्म दिया है? फिर आप किन अर्थों में पूर्व को दर्शन-विरोधी कहते हैं?

तीन स्थितियाँ हैं : अज्ञान, ज्ञान और ज्ञान का अतिक्रमण, यानी ज्ञानातीत स्थितप्रज्ञ। ये तीन स्थितियाँ सभी आयामों में आधारभूत हैं-चाहे विज्ञान, चाहे धर्म। एक धार्मिक आदमी अज्ञानी है। वह पहली स्थिति में है। उसे शरीर से ऊपर कुछ भी पता नहीं, संसार से ऊपर कुछ भी पता नहीं है। यह एक बच्चे की तरह जीता है।

तब फिर दूसरी स्थिति है-ज्ञान की। वह सोचने लगता है, वह ज्ञान इकट्ठा करता है, सूचनायें इकट्ठी करता है वह तथाकथित ज्ञानी हो जाता है। किन्तु यह ज्ञान उधार है, यह उसका अपना नहीं है। उसने उसे जाना नहीं है।

फिर वह उसे भी फेंक देता है। जो कुछ भी उधार था, वह फेंक दिया जाता है। अब वह अपने भीतर छलांग लगाता है, अपने स्वरूप के अन्तिम स्रोत पर पहुँच जाता है। तब वह प्रज्ञावान बनता है। वह अज्ञान, ज्ञान, फिर से अज्ञान इनसे गुजरकर प्रज्ञावान बनता है।

यही बात विज्ञान के साथ भी है। पहली स्थिति है अज्ञान की। फिर कोई वैज्ञानिक बनता है। यह जानना बाहर के जगत का है। यह जानना भी उधार है। यह ज्ञान भी तकनीकी है। यदि कोई इसे जानने में अटका रह जाये तो वह दूसरी स्थिति में बना रहता है। परन्तु यदि वह वैज्ञानिक ज्ञान को फेंक दे और अस्तित्व में ही छलांग लगा जाये, अज्ञात अस्तित्व में कूद जाये, तो वह प्रज्ञावान बनता है। अतः कोई भी आयाम क्यों न हो, ये तीन स्थितियाँ संगत होंगी।

जो भी तुम दूसरे के मार्फत जानते हो, दूसरों से जानते हो, परंपरा से, शास्त्रों से, किसी और से, जो कुछ भी तत्काल नीं है-बिना किसी माध्यम के नहीं है, जो भी सीधा नहीं जाना गया है-सब ज्ञान है। जो भी तुमने सीधे जाना है, तत्क्षण जाना है वह प्रज्ञा है। अतएव चाहे धर्म हो, और चाहे विज्ञान हो इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। जो भी सीखा गया उसे अनसीखा करना ही पड़ता है, तभी छलांग लगती है। चाहे कोई कहीं भी क्यों न खड़ा हो, छलांग लगा सकता है और कहीं से भी।

चाहे वह कला ही हो, कला के ज्ञान से भी छलांग लगानी ही पड़ेगी। केवल तभी प्रज्ञा के फूल खिलते हैं। झेन में, ध्यान के लिये कई चीजों के द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है-कला, धनुर्विद्या, फूलों को सजाना आदि। बुनियादी सिद्धान्त यही होता है।

बोकुजू अपने गुरु के पास सीख रहा था। वह एक बहुत बड़ा चित्रकार बन गया था-महानतम चित्रकारबन गया था-महानतम चित्रकार जैसा कि कभी जाना गया हो। और तब एक दिन, उसके गुरु ने कहा कि अब पेंटिग करना बन्द करो। जब वह उसके शिखर पर था, चरम सीमा पर था, जब उसका नाम दूर-दूर तक पहुँच रहा था,

जब सम्राट भी उसमें रस लेने लगे थे, जब सब लोग उसकी चित्रकला का गुणगान कर रहे थे, इस गुरु ने कहा, अब तुम यह चित्रकला बन्द करो। बारह साल तक चित्रकला को भूल ही जाओ। फेंक दो इसे।

कितना कठिन था यह। वह अपने शिखर पर था। बोकुजू ने अपने गुरु के कथनानुसार ही किया। वह अपने गुरु के बाग में एक साधारण-सा माली हो गया। बारह साल तक कोई चित्रकारी नहीं हुई कोई चित्रकला की बात भी न हुई। और एक दिन गुरु ने कहा, अब तुम पुनः चित्र बना सकते हो। बोकुजू ने कहा, "अब मैं जानता हूँ। उस समय मैंने आप पर विश्वास किया। अब मैं जानता हूँ कि अब मैं जो भी बनाऊँगा वह मेरा होगा।"

यह हुआ सीखना और अनसीखा करना। उसने कहा अब मैं एक बच्चे की तरह चित्रकारी कर सकता हूँ, जो चित्रकला के बारे में कुछ भी जानता न हो मैं सब कुछ भूल गया हूँ, अब मैं एक बच्चे की भाँति चित्रकारी कर सकता हूँ। और तब ऐसा कहा जाता है कि बोकुलू बच्चे की भाँति चित्रकारी कर सकता हूँ। और तब ऐसा कहा जाता है कि बोकुजू बच्चे की भाँति चित्र बनाता था। अब ये चित्र दूसरे ही जगत के थे। वे इस जगत के थे ही नहीं। उन्हें चित्रित भी नहीं किया गया था। वह ऐसा ही था जैसे की एक बच्चा खेल रहा हो चित्र बनाते हुए। तब उसके गुरु ने कहा, अब तुम प्रज्ञावान हुए। अब कोई प्रयास नहीं है, कोई प्रशिक्षण, कोई कला, कोई ज्ञान नहीं है। अब तुम निर्दोष हुए हो। अब तुम पुराने ढंग से चित्र नहीं बना सकते।

पहले सीखना पड़ता है और फिर उसे अनसीखा करना पड़ता है। जब कला विस्मृत हो जाती है, तभी कलाकार का जन्म होता है। यदि तुम जानते हो कि तुम उसमें समग्रता से नहीं हो सकते, तो तुम्हारा ज्ञान तुम्हें बाधा देता रहेगा।

मैं तुम्हें एक दूसरी कहानी सुनाता हूँ। थाई लैण्ड में एक मंदिर बनाया जा रहा था। और उसके द्वार को चित्रत करने के लिये महानतम चित्रकार बुलाया गया था। सम्राट ने कहा था कि "यह द्वार, यह मंदिर सारी दुनिया में अपूर्व होना चाहिये। इसकी कोई तुलना नहीं होनी चाहिये, अतः खूब श्रमपूर्वक काम करो।" यह चित्रकार एक साधु था। उसने कड़ी मेहनत की। यह उसकी आदत थी कि जब भी वह कुछ बनाता था, तो वह अपने साथ रहनेवाले परम शिष्य से पूछता था कि क्या यह ठीक है? तुम क्या कहते हो?

यदि शिष्य ने कहा कि ठीक है तो ही वह आगे जाता था, वरना वह उसे फेंक देता था। उसने कई सौ चित्र रंग कर तैयार किये और फिर वह शिष्य की तरफ देखता और शिष्य अपनी गरदन हिला देता था कि "नहीं" तो वह उन्हें फेंक देता था। तीन महीने बीत गये और सम्राट बार-बार पूछता कि कब... ? किन्तु शिक्षक कहता है कि मुझे पता नहीं। जब तक मेरा शिष्य "हां" नहीं कह देता है।

एक दिन जब वह चित्र बना रहा था तो स्याही खतम हो गई। वह बीच में ही था, अतः उसने शिष्य से और स्याही बनाने के लिये कहा। शिष्य स्याही बनाने के लिये बाहर चला गया। तब बिना स्याही के ही, सिर्फ पेन्सिल से उसने एक चित्र बनाया। जब शिष्य आया तो उसने कहा, क्या? आपने तो काम पूरा कर दिया। यही तो वह चीज है। परन्तु आपने किया कैसे? आपने तीन महीने इतना परिश्रम किया।

शिक्षक हँसने लगा और बोला, तुम उपस्थित रहते थ, इसलिए मैं स्वयं के प्रति सजग हो जाता था। वही एकमात्र भूल सका, इसीलिए यह चीज बनी है। जब तुम यहाँ रहते थे तो मैं अपने को भूल ही नहीं पाता था। तब यहाँ एक निर्णायक सदैव मौजूद रहता था और मैं हर क्षण डरा रहता था कि तुम "हां" कहोगे कि "ना"। और वह प्रयास ही बाधा थी। तुम यहाँ मौजूद नहीं थे, अतः मैं विश्राम में था-और चीज बन गई।

कोई भी चीज तभी बनती है जब तुम इतने विश्राम में होते हो, कि तुम होते ही नहीं। परनतु एक तथाकथित ज्ञानी कभी विश्राम में नहीं होता। ज्ञान ही बोझ है, तनाव है। अतः चाहे कोई भी आयाम हो-कला,

धर्म, दर्शन शास्त्र चाहे कुछ भी, ये ही तीन स्थितियाँ हैं-अज्ञान, ज्ञान का सीखना, और फिर उस ज्ञान को अनसीखा करना। तब तुम प्रज्ञा को उपलब्ध होते हो।

और दूसरी बात, यह भी पूछा गया है कि क्या ऐसा नहीं है कि पूर्व ने छः दर्शन-शास्त्रों को जन्म दिया है, तब आप किस भाँति पूर्व को दर्शन-विरोधी कहते हैं? बहुत से कारण हैं : पहला, भारतीय दर्शन प्रणालियाँ पश्चिम के अर्थों में दर्शन नहीं हैं। पश्चिमी दर्शन उन्हें "धार्मिक प्रणालियाँ" कहता है। वह उन्हें कहता है, धार्मिक प्रणालियाँ रिलीजियस फिलोसोफिस। वे अरस्तु, प्लेटो, काण्ट, अथवा हीगल के अर्थों में दर्शनशास्त्र नहीं है। उनका अन्तिम प्रमाण है स्वानुभव।

पश्चिमी दर्शन में अन्तिम प्रमाण है तर्क न कि अनुभूति। यदि मैं कोई चीज तर्क से सिद्ध कर दूँ, तो बस ठीक है। परन्तु भारतीय मनीषा बिल्कुल भिन्न है। भारतीय मनीषा कहती है कि यदि तु एक बात को तर्क से सिद्ध कर दो, तो भी जरूरी नहीं है कि वह सत्य हो ही। और ऐसा भी हो सकता है कि किसी चीज़ को तर्क से सिद्ध नहीं भी कर सकूँ, तो भी वह सत्य हो।

उदाहरण के लिये, तुम कहते हो कि तुम प्रेम में हो। अब सिद्ध करो कि तुम प्रेम में हो। क्या है सबूत? कैसे करोगे इसे सिद्ध? इसे सिद्ध तो नहीं किया जा सकता। और यदि इसे सिद्ध करने गये, तो तुम स्वयं शक में पड़ जाओगे कि वाकई तुम प्रेम में हो या नहीं? क्योंकि बहुत से सवाल उठाये जा सकते हैं जिनका कोई जवाब नहीं होगा। और फिर भी तुम जानते हो कि तुम प्रेम मं हो।

अदालत में मुल्ला नसरुद्दीन के विरुद्ध एक मुकद्दमा था। उसके पास से कोई चीज़ बरामद हुई थी जो कि उसके पड़ोसी के यहाँ से चुराई गयी थी। इसलिए उस पर शक था। परन्तु उसके वकील ने बहस की। कोई सबूत नहीं था। उसे घर के भीतर जाते भी नहीं देखा गया था, और न ही किसी ने उसे घर से बाहर आते देखा था बस उसके पास वह चीज मिली थी। वकील ने जिरह इतनी सुन्दरता से की कि मुल्ला मुकद्दमा जीत गया।

जब वह लोग कोई से बाहर आ रहे थे, तो वकील ने मुल्ला से पूछा, "अब मुझे तो बताओ कि क्या सचमुच ही इस मामले में तुम्हारा कुछ हाथ था?" नसरुद्दीन ने कहा, "पहले तो मैं भी समझता था कि मेरा इसमें हाथ है, परन्तु आपने इतने तार्किक ढंग से जिरह की कि अब तो ुझे भी सन्देह होने लगा है। आपने तो मुझे भी ठीक से समझा दिया।"

भारतीय दर्शन के लिये तार्किक विश्वास कोई कसौटी नहीं है, यही अंतर है। अनुभव ही अंतिम प्रमाण है। भारतीय धार्मिक दर्शनशास्त्र तर्कसंगत बात करता है। महावीर, बुद्ध, कपिल, वे सब तर्कसंगत बात करते हैं, प्रत्येक भारतीय-पद्धति तर्क-संगत है, किन्तु वे तर्क पर निर्भर नहीं हैं। वे दो बातें कहती हैं। पहली, हमारी अभिव्यक्ति तर्कसंगत है ताकि तुम समझ सको। परन्तु जो भी हम प्रस्तावित कर रहे हैं वह तर्क से नहीं निकला है। वह हमें अनुभव से मिला है।

उदाहरणार्थ, मैं कुछ अनुभव करता हूँ। फिर मैं उसे तुम्हें सुनाता है और तुम उसके बारे में बहस करने लग जाते हो, अतः मैं भी उसके बारे में बहस करता हूं। परन्तु वह अनुभव बहस से नहीं आया है। बल्कि सारी बहस उस अनुभव से आयी है, यही अन्तर है। पश्चिम में, वे कहते हैं कि यदि तर्क ठीक है और उसे तोड़ा नहीं जा सकता, तो फिर निष्पत्ति ठीक है। भारत में, वे कहते हैं कि चाहे उसे तोड़ा जा सके या नहीं, यदि उसे अनुभव किया गया है, तो ही वह सही है। इसलिए उसकी सत्यता अनुभव पर आधारित है, न कि विवाद पर।

अतः मैं भी अनुभव की हिन्दू पद्धति को दर्शनशास्त्र कहना पसन्द नहीं करता। वे दर्शनशास्त्र नहीं हैं। और मैं उन्हें दर्शन-विरोधी क्यों कहता हूँ? क्योंकि वे दार्शनिक रुख के खिलाफ हैं। वे कहते हैं कि सत्य को तार्किक

अन्वेषण से नहीं पाया जा सकता। वे कहते हैं कि सत्य को वाद-विवाद तर्क आदि सब सिर्फ अभिव्यक्ति के ढंग हैं-उससे ज्यादा कुछ भी नहीं। बुनियादी रूप से, सत्य तो सिर्फ अनुभव ही रहता है, इसलिए वे एंटी फिलोसोफिक है, दर्शन-विरोधी है।

बुद्ध से कोई सवाल पूछो और उन्हें ऐसा प्रतीत हो कि तुम सिर्फ पूछने के खातिर ही पूछ रहे हो, तो वे जवाब देने वाले नहीं हैं। वे उत्तर न देंगे। वे उत्तर तभी देंगे जबकि उन्हें लगे कि पूछने वाला वस्तुतः ही जिज्ञासु है, कि वह एक प्रामाणिक खोजी है, मतलब यह अनुभव में उतरने के लिये तैयार है, अन्यथा बुद्ध को कोई रस नहीं हैं।

पश्चिमी दर्शन कहता है, विशेषतः यूनानी दर्शन, का प्रारंभ होता है विस्मय से। ऐसा भारत में कभी भी नहीं कहा गया। हिन्दू पद्धतियाँ यह कहती है कि चिन्तन शुरू होता है दुःख में न कि विस्मय में। अतः इस गहन बुनियादी अन्तर को नोट कर लो। पश्चिम कहता है कि दर्शन का प्रारंभ होता है कुतूहल से।

एक बच्चा पूछता है कि यह सारा संसार कहाँ से आया? एक दार्शनिक भी यही बात पूछ रहा है। यदि तुम एक बुद्ध से यह बात पूछो कि यह संसार कहाँ से आया, तो वे कहेंगे कि यह बहुत बचकानी बात है, तुम्हारा इस बात से लेना-देना क्या है? और चाहे जो भी कारण हो, यह बात ही असंगत है। वे कहते हैं, यदि तुम बीमार हो, तो दया के लिये पूछो। बुद्ध कहते हैं कि हम सब दुःखी हैं, जीवन दुःख है, अतः प्रश्न यह है कि कैसे उस दुःख के पार जाया जाये?

यही अन्तर है। सत्य की पूछताछ गलती के खिलाफ है, मुक्ति की खोज दुःख के विरुद्ध है। भारतीय मन मनोवैज्ञानिक अधिक है, चिन्तनशील कम है- वह मनुष्य के वास्तविक रूपान्तरण से अधिक संबंधित है, और व्यर्थ की उत्सुकता में उसका बहुत कम रस है। और वह दर्शन-विरोधी है।

किन्तु हमने नौ पद्धतियाँ निर्मित की हैं-छः हिन्दू पद्धतियाँ है और तीन अ-हिन्दू पद्धतियाँ हैं। ये नौ पद्धतियाँ कोई दार्शनिक पद्धतियाँ नहीं हैं, किन्तु आंतरिक अनुभवों के दार्शनिक कथन है इसलिए उन्हें पद्धतियाँ कहते हैं।

वस्तुतः पद्धति ठीक शब्द नहीं हैं। संस्कृत में उन्हें संप्रदाय कहते हैं-न कि पद्धतियाँ हैं। या प्रणालियाँ। एक संप्रदाय अथवा स्कूल एक दूसरी ही बात है, और एक पद्धति, एक दूसरी बात है। एक सिस्टम का अर्थ होता है कि वह दार्शनिक है, और एक स्कूल का अर्थ होता है एक प्रशिक्षण का स्थान। एक स्कूल का अर्थ होता है कि तुम्हें किसी विशेष अनुभव के लिये प्रशिक्षित किया जा रहा है। ये सारे नौ दर्शन एक प्रकार से प्रशिक्षण हैं-मोक्ष के अन्तिम लक्ष्य की ओर जाने के लिये प्रशिक्षण। इसीलिए मैं उन्हें ऐंटी-फिलोसोफिकल, दर्शन-विरोधी कहता हूँ।

और चूँकि हम उसके बारे में दर्शन-शास्त्र की तरह सोचते हैं, हम बहुत कुछ चूक रहे हैं। यह पश्चिमी मन की सिर्फ नकल है। जिस तरह से वे दर्शन-शास्त्र पढ़ाते हैं और पढ़ते हैं पश्चिम में, उस तरह पूर्व में कभी भी पढ़ते-पढ़ाते नहीं थे, किन्तु आजकल हमारे विश्वविद्यालय भी पश्चिम की ही नकल हैं।

नालंदा एक बिल्कुल ही भिन्न चीज थी। तक्षशिला एक अलग ही बात थी। वे पूर्वीय विश्वविद्यालय थे-जो कि बिल्कुल ही भिन्न थे-मौलिक रूप से भिन्न। नालंदा में सिर्फ बौद्ध दर्शन पढ़ाया जाता था। और वहाँ क्या था प्रशिक्षण? वहाँ प्रशिक्षण सिर्फ मौखिक, सिर्फ शास्त्र-संबंधी, सिर्फ मात्र जानना ही नहीं था कि बौद्ध दर्शन क्या है। वहाँ प्रशिक्षण बौद्ध योग का था। शिष्य पहले मौखिक शिक्षा का पालन करता था और तब साथ-साथ ध्यान

में गहरे, और गहरे, और गहरे जाता था। जब तक ध्यान और मौखिक शिक्षा साथ-साथ न चले, तब तक सब व्यर्थ है।

एक कहानी सुनाई जाती है जबकि हुएनसांग नालंदा आया था। वह मुख्य द्वार से प्रवेश कर रहा था। उस समय नालंदा भारत का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था। वहाँ पर अलग-अलग देशों के दस हजार विद्यार्थी अध्ययन करते थे। कहते हैं कि जीसस भी वहाँ के एक विद्यार्थीरह चुके थे।

जब हुएनसांग मुख्य द्वार पर गया तो उसे एक भिक्षु मिला, संन्यासी मिला। वह उससे विश्वविद्यालय के बारे में प्रश्न पूछने लगा कि वहाँ क्या शिक्षा दी जाती है, और क्या प्रशिक्षण-आदि? वह आदमी उसके सवालों के जवाब देता रहा। हुएनसांग उस आदमी से बहुत प्रभावित हुआ, और वह उस समय का चीन का सबसे महान विद्वान था कि उसने सोचा कि शायद वह वहाँ उपकुलपति हो। किन्तु वह सिर्फ एक द्वारपाल था। वह अपने संस्मरणों में लिखता है कि वह सिर्फ एक द्वारपाल था, परन्तु वह दर्शनशास्त्र के बारे में सब कुछ जानता था।

अतः हुएनसांग उस विश्वविद्यालय में तीन वर्ष रहा। जब वह वापस लौट रहा था, तो वह फिर उसी द्वार से गुजारा और उसने उस आदमी से पूछा, "तुम अभी भी द्वारपाल ही क्यों बने हुए हो? तुम इतना सब कुछ जानते हो?" उस आदमी ने कहा "क्योंकि मैं सिर्फ जानता हूँ। मैं अनुभव करने में असफल रहा हूँ। मैं सिर्फ जानता हूँ इसलिए मैं विफल हूँ। मैं भी उतना ही जानता हूँ जितना कि उपकुलपति जानता है। जहाँ तक ज्ञान का सवाल है उसमें कोई अंतर नहीं है। परन्तु मैं विफल हूँ क्योंकि मैं अनुभव में नहीं बढ़ सका, इसीलिए मैं सिर्फ द्वारपाल ही हूँ।"

इसलिए शास्त्र के ज्ञानी सिर्फ द्वारपाल ही है। भारतीय रुख अनुभव की ओर है। कभी कोई कबीर भी शिखर छू लेते हैं बिना किसी ज्ञान के-बिना किसी तथाकथित ज्ञान के। अनुभव असली चीज है, इसीलिए पूर्व दर्शन-विरोधी है।

आज इतना ही।

सत्रहवां प्रवचन

अनुभव : हिन्दू मन का सार

सत्रहवाँ सूत्र

सर्व निरामय परिपूर्णोऽहमस्मीति मुमुक्षणां मोक्षैक सिर्द्धिभवति इत्युपनिषद्।

"मैं ही वह परिपूर्ण शुद्ध ब्रह्म हूँ"-ऐसा जान लेना ही मोक्षोपलब्धि है।

अस्तित्व दो में बँटा है। अस्तित्व जैसा कि हम देखते हैं, द्वैत है। जैविकरूप से मनुष्य दो में विभाजित है : पुरुष तथा स्त्री। ओण्टोलोजिकली, शुद्ध स्वरूप के सिद्धान्त के आधार पर भी, अस्तित्व दो में बँटा है-मन तथा पदार्थ। चीनियों ने इसे यिन तथा यांग कहा है।

यह द्वैत अस्तित्व के हर क्षेत्र में प्रवेश कर गया है। हम कह सकते हैं कि सेक्स (यौन) अस्तित्व की हर परत में प्रवेश कर गया है। द्वैत सब जगह मौजूद है। यह द्वैत मन के भीतर भी घुस गया है। मन भी दो प्रकार के होते हैं-दो प्रकार की मनोवृत्तियाँ होती हैं : पुरुषगत तथा स्त्रीगत। तुम दूसरे नाम भी दे सकते हो : पश्चिमी तथा पूर्वी। और भी ज्यादा विशेषरूप से कह सकते हो-ग्राक तथा हिन्दू। इससे भी अधिक वैचारिक तौर से कह सकते हैं कि यह विभाजन दार्शनिक तथा धार्मिक है।

पहले हम ग्रीक तथा हिन्दू मन पर विचार करें क्योंकि उपनिषद हिन्दू मन के शिखर हैं यानी पूर्वी मनोवृत्ति के, अथवा धार्मिक ढंग से अस्तित्व को देखने में उन्होंने ऊँचाइयाँ छुई हैं। यूनानी मन की तुलना में हिन्दू मन को समझना सरल होगा, और ये ही दो बुनियादी मन हैं।

जब मैं कहता हूँ "ग्रीक माइंड"-युनानी मन", तो उससे मेरा क्या मतलब है? मन के द्वैत का यूनानी मन एक पहलू है। यूनानी मत सोचता है, विचार करता है। उसकी पहुँच बौद्धिक है, शाब्दिक है, तार्किक है। हिन्दू मन इसके ठीक उलटा है। वह सोचने में विश्वास नहीं करता। वह अनुभव में विश्वास करता है। वह तर्क में श्रद्धा नहीं करता। वह स्वरूप के भीतर छलांग लगाने में श्रद्धा करता है। ग्रीक मन बाहर खड़े होकर सोचता है-वह एक दर्शक की तरह, एक तमाशबीन की भाँति। ग्रीक माइंड उसमें डूबता नहीं। वह कहता है कि यदि तुम उसमें डूबे, तो फिर तुम वैज्ञानिक ढंग से विचार नहीं कर सकते, तब तुम्हारा अवलोक न्यायपूर्ण नहीं हो सकता, वह पक्षपात पूर्ण होगा। अतः जब कोई सोचता है, तो उसे दर्शक होना चाहिये।

हिन्दू मन कहता है कि अगर तुम बाहर खड़े हो, तो तुम सोच ही नहीं सकते। तब तुम जो भी सोचोगे, जो भी विचार करने का प्रयत्न करोगे वह सब परिधि के बारे में होगा, तब तुम केन्द्र के बारे में कुछ भी न जान सकोगे। तुम तो बाहर खड़े हो। भीतर प्रवेश करो। इतने भीतर प्रवेश करने की आवश्यकता है कि तुम केन्द्र के साथ एक हो जाओ, तभी तुम सही प्रकार से जान सकते हो, अन्यथा बाकी सब सिर्फ परिचय होगा, ज्ञान नहीं होगा।

ग्रीक मन विश्लेषण करता है, उसके लिये विश्लेषण ही साधन है किसी भी चीज के बारे में जानने का। हिन्दू मन संश्लेषण करता है, उसके लिये विश्लेषण विधि नहीं है। टकड़ों में नहीं बाँटना है वरन टुकड़ों में सर्व को ही

ढूंढ़ना है। हिन्दू मन टुकड़ों में भी सर्व को खोज रहा है। ग्रीक मन, डेमोक्राइटस में, एटम पर, अणु पर पहुँच जाता है। क्योंकि अगर तुम टुकड़ों को बाँटते ही जाओ, तो आखिर में अणु ही एक वास्तविकता हो जाता है और विभाजित नहीं किया जा सकता। वह आखिरी कण है। हिन्दू मन ब्रह्म की खोज करता है-परम की। यदि तुम संश्लेषण करते ही जाओ तो अन्त में तुम सर्व को, निरपेक्ष को पहुँच जाते हो। यदि तुम बाँटते ही जाओ, तो वह जो आखिरी विभाजन है कण का, वह अणु है। यदि तुम जोड़ते ही चले जाओ, तो फिर वह ब्रह्म है, अन्तिम है, परम है।

यूनानी मन वैज्ञानिक मन में विकसित हो सकता है क्योंकि उसके लिये विश्लेषण सहायक है। हिन्दू मन कभी भी एक वैज्ञानिक मन में विकसित नहीं हो सका क्योंकि संश्लेषण कभी विज्ञान तक नहीं पहुँच सकता। यह धर्म की ओर यात्रा कर सकता है, लेकिन विज्ञान की ओर नहीं। पश्चिमी मन यूनानी बीज से विकसित हुआ है, इसलिए तर्क विचार, तार्किक विश्लेषण-ये सब पश्चिम के लिये आधारभूत हैं।

अनुभव, न कि विचार आधारभूत है-भारतीय मनीषा के लिये। इसलिए मैं कहना चाहूँगा कि हिन्दू मनीषा बुनियादी रूप से अदार्शनिक है-अदार्शनिक नहीं, बल्कि वस्तुतः दर्शनशास्त्र के विरुद्ध-ऐण्टा फिलोसोफिकल। उसका विश्वास विचार में नहीं है, उसका विश्वास अनुभव में है।

तुम प्रेम के बारे में चिन्तन कर सकते हो, तुम उस घटना का विश्लेषण कर सकते हो। तुम एक परिकल्पना भी निर्मित कर सकते हो-उसे समझाने के लिये। तुम एक सिस्टम भी बना सकते हो, उसके बारे में। यह सब करने के लिये तुम्हें स्वयं प्रेम में पड़ने की जरूरत नहीं है। तुम एक बाहरी आदमी रह सकते हो, तुम प्रेम का निरीक्षण कर सकते हो। और तब तुम एक प्रेम की प्रणाली निर्मित कर सकते हो, एक दर्शन। और यूनानियों का कहना है कि यदि तुम स्वयं प्रेम में डूबे, तो तुम्हारा दिमाग गड़बड़ा जायेगा, तुम ठीक से सोच नहीं सकोगे। तब तुम पक्षपात रहित न रह सकोगे। तब तुम्हारा व्यक्तित्व भी तुम्हारे सिद्धान्त में सम्मिलित हो जायेगा, और वह उसके लिये विनाशकारी होगा।

इसलिए तुम्हें ऐसे होना है जैसे तुम नहीं हो। तुम्हें उससे बिल्कुल बाहर ही रहना है। तुम्हें उसमें डूबना नहीं है। प्रेम के बारे में जानने के लिये जरूरी नहीं है कि प्रेम में हुआ जाये। तथ्यों का निरीक्षण करो, सारी रूपरेखा इकट्ठी करो, दूसरों पर प्रयोग करो। तुम्हें सदैव उससे बाहर ही रहना चाहिये, तभी तुम्हारा निरीक्षण तथ्यगत होगा। यदि तुम स्वयं प्रेम में हो तो तुम्हारा निरीक्षण तथ्यगत नहीं होगा। तब तो तुम भी शामिल हो गये, तुम उसके हिस्से हो गये, तुम पक्षपातपूर्ण हो गये।

लेकिन हिन्दू मनीषा कहती है कि जब तक तुम प्रेम में नहीं पड़ोगे, तब तक तुम प्रेम को जानोगे कैसे? तुम दूसरों को प्रेम करते हुए देख सकते हो, लेकिन तब तुम क्या देख रहे हो? केवल प्रेम में पड़े हुए दो आदमियों का व्यवहार। तुम प्रेम को नहीं देख रहे हो, तुम सिर्फ दो प्रेमियों का व्यवहार देख रहे हो। हो सकता है कि वे सिर्फ अभिनय कर रहे हों। तुम नहीं कह सकते कि वे वास्तव में प्रेम में डूबे हैं या सिर्फ अभिनय कर रहे हैं। हो सकता है कि वे अपना असली हृदय छिपा रहे हों। तुम सिर्फ उनके चेहरे देख सकते हो, तुम केवल उनके शब्दों को सुन सकते हो, तुम उनके कृत्यों का अवलोकन कर सकते हो लेकिन तुम उनके हृदय में कैसे प्रवेश कर सकते हो? और यदि तुम उनके हृदय में प्रवेश नहीं कर सकते, तो फिर तुम प्रेम को कैसे जान सकते हो?

कभी-कभी प्रेम बिल्कुल मौन हाता है और कभी-कभी प्रेम की अभिव्यक्ति बड़ी मुखर होती है। अतः तुम हजारों-हजारों प्रेमियों को देख सकते हो, लेकिन फिर भी तुम प्रेम की उस घटना में प्रवेश नहीं कर सकते जब तक तुम स्वयं ही प्रेम में नहीं गिरो।

अतः हिन्दू मनीषा कहती है कि अनुभूति ही एकमात्र मार्ग है, न कि चिन्तन। चिन्तन शब्दिक है, तुम अपनी कुर्सी में बैठे भी चिन्तन कर सकते हो। तुम्हें किसी भी घटनाचक्र में पड़ने की आवश्यकता नहीं। जब मैं कहता हूं कि चिन्तन शब्दिक है तो मेरा मतलब है कि तुम चाहो तो शब्दों से खेल सकते हो। और शब्दों की एक खूबी है कि वे और अधिक शब्दों को निर्मित कर सकते हैं। और शब्दों को एक ढाँचे में रखा जा सकता है, उनसे एक प्रणाली बनाई जा सकती है। जिस तरह कि तुम ताश के पत्तों का एक घर बना सकते हो, उसी तरह तुम शब्दों से एक प्रणाली, एक सिस्टम बना सकते हो। लेकिन तुम उसमें रह नहीं सकते, वह सिर्फ ताश के पत्तों का घर है। तुम अनुभव नहीं कर सकते, यह सिर्फ शब्दों की एक प्रणाली है-केवल शब्दों की प्रणाली।

जयां पाल सार्त्र ने अपनी आत्मकथा लिखी है, और उसने अपनी आत्मकथा को जो नाम दिया है वह बड़ा अर्थपूर्ण है, बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उसने अपनी आत्मकथा को कहा है, "शब्द"-वर्डस। वह सिर्फ उसकी आत्मकथा ही नहीं है, बल्कि यह सारे पश्चिमी चिन्तन की आत्मकथा है-"वर्डस"-"शब्द"।

हिन्दू मनीषा मौन में विश्वास करती है, न कि शब्दों में। यदि हिन्दू मनीषा बात भी करती है तो वह बात भी मौन के बारे में ही करती है। यदि शब्दों का उपयोग भी किया जाता है, तो वह भी शब्दों के विरुद्ध ही किया जाता है। जब तुम शब्दों के द्वारा किसी प्रणाली संगत होनी चाहिये। जब तुम अपने शब्दों में संगत होते हो, तभी तुम अपनी प्रणाली में तार्किक हो सकते हो।

अतः बहुत-सी प्रणालियाँ बनाई जा सकती हैं, और प्रत्येक दार्शनिक अपनी अलग दर्शन-प्रणाली निर्मित करता है-वह अपने शब्दों का जगत बनाता है। और यदि तुम उसकी अवधारणाओं को मान लो, तो तुम उसका विरोध नहीं कर सकते क्योंकि वह सिर्फ एक खेल है-शब्दों का खेल। यदि तुम उसकी सीमाओं को स्वीकार कर लो, तो फिर तुम्हें उसकी पूरी प्रणाली ठीक प्रतीत होगी। उसकी प्रणाली के भीतर एक आंतरिक संगति है।

किन्तु जीवन की कोई प्रणाली नहीं है। इसलिए हिन्दू मनीषा का जोर शाब्दिक प्रणाली पर नहीं है, वरन वास्तविक अनुभव पर है, वास्तविक जानने पर है। इसलिए बुद्ध भी उसी अनुभव पर पहुँचते हैं, वे सब उसी अनुभव पर पहुँचते हैं। उनके शब्दों में अन्तर है, किन्तु उनका अनुव एक ही है।

अतः वे कहते हैं कि चाहे हम कुछ भी कहें और वह दूसरों के वक्तव्य से कितना ही विरोधात्मक हो, जब भी कोई उस अनुभव को प्राप्त होता है, तो वह समान होता है। अभिव्यक्ति भिन्न होती है, न कि अनुभूति। किन्तु यदि तुम्हारा कोई भी अनुभव नहीं है तो फिर कोई मिलन-बिन्दु नहीं हो सकता। मेरा और तुम्हारा अनुभव कहीं पर मिल सकता है क्योंकि अनुभव द्वैत है, किन्तु सत्य एक है।

इसलिए यदि में भी प्रेम का अनुभव करता हूँ और तुम भी प्रेम का अनुभव करते हो, तो मिलन होगा। कहीं-न-कहीं हम एक होंगे। किन्तु मैं बिना प्रेम को जाने प्रेम की चर्चा करूं, तब फिर मैं अपना निजी शब्दों का जाल खड़ा करता हूँ। यदि तुम बिना प्रेम को जाने प्रेम की बात करो तो तुम अपने शब्दों की प्रणाली बनाओगे। ये दो प्रणालियों कहीं भी मिलने वाली नहीं हैं क्योंकि शब्द सपने हैं, सत्य नहीं।

इसे स्मरण रखो : सत्य एक है, सपने एक नहीं हैं। प्रत्येक आदमी की सपने देखने की अपनी क्षमता होती है। सपने बड़े निजी होते हैं। तुम्हारे सपने तुम्हारे हैं, मेरे सपने मेरे हैं। क्या तुम यह कल्पना कर सकते हो कि मैं तुम्हारे सपने देखूँ और तुम मेरे सपने देखो? क्या तुम हम दोनों को सपने में मिलते हुए देख सकते हो? क्या दो आदमी एक ही सपना देख सकते हैं? यह असंभव है। हमारे अनुभव एक हो सकते हैं, लेकिन हम एक ही सपना नहीं देख सकते। और शब्द क्या हैं, शब्द सपने हैं।

इसलिए दर्शनशास्त्र एक दूसरे को काटते रहते हैं, अपने-अपने सिस्टम बनाते रहते हैं, और वे कभी किसी नतीजे पर नहीं पहुँचते। यूनानी मन ने भावात्मक शब्दों में बात सिखाने की चेष्टा की, और हिन्दू मनीषा ने स्पष्ट अनुभव की भाषा में बात की। दोनों के अपने-अपने फायदे और नुकसान हैं क्योंकि यदि तुम अनुभव पर जोर देते हो, तो विज्ञान नहीं हो सकता। यदि तुम तर्क, प्रणाली कारण आदि पर जोर देते हो, तो धर्म असंभव हो जाता है।

यूनानी मन विकसित होकर वैज्ञानिक जगत का दृष्टिकोण हो गया, और हिन्दू मन विकसित होकर धार्मिक हो, तो तुम एक कलाकार के अस्तित्व में झाँक रहे हो। यदि तुम एक दार्शनिक हो, तो तुम एक वैज्ञानिक के जगत में देख रहे हो। एक वैज्ञानिक एक अवलोकनकर्ता है, एक कलाकार एक आंतरिक द्रष्टा है। इसीलिए धर्म और कला एक-दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण हैं, और विज्ञान तथा दर्शन एक दूसरे के प्रति सहानुभूति से भरे हैं। यदि विज्ञान का बहुत विकास हो जाये, तो दार्शनिकता धीरे-धीरे विज्ञान में परिणत हो जायेगी और खो जायेगी।

अब पश्चिम में दर्शन खो गया है, मर चुका है। अब वह केवल धन्धे के रूप में है। वे कहते हैं कि अब केवल प्रोफेसर ही फिलोसोफी की बात करते हैं दूसरे प्रोफेसरों से, अन्यथा फिलोसोफी का अन्त हो गया। वह अब एक मरी हुई चीज़ है-अतीत का हिस्सा है, इतिहास की बात हो गई, अवशेष रह गई। उसमें थोड़ी-सी दिलचस्पी बची है और वह भी केवल ऐतिहासिक रूप से, क्योंकि विज्ञान ने उसकी जगह ले ली है। विज्ञान उसकी संतान है। फिलोसोफी की हेरिटेज है-वंशावली है। विज्ञान उसकी उत्पत्ति है। अब विज्ञान पैदा हो गया और दर्शन का अन्त हो गया।

पश्चिम में धर्म की कोई जड़ें नहीं हैं। काव्य भी मर रहा है क्योंकि वह जिन्दा ही धर्म के साथ रह सकता है। ये जो दो प्रकार के मन हैं, ये दोबिल्कुल अलग ही आयामों में विकसित होते हैं।

जब मैं कहता हूँ कि धर्म काव्य को जन्म देता है, तो मेरा मतलब है कि वह तुम्हें सौन्दर्य का गुण प्रदान करता है। एक ऐसा गुण जिससे जीवन की मूल्यतायें जानी जाती हैं-तथ्य नहीं वरन मूल्य, वह नहीं जो कि हैं, बल्कि वह जो कि होने चाहिये, वह नहीं जो अभी तुम्हारे सामने हैं, बल्कि वह जो कि छुपा हुआ है। यदि तुम ऐसा अतार्किक ढंग, ऐसा सौन्दर्यपूर्ण रुख अपना सको, यदि तुम अपने इस तार्किक मन को फेंककर अस्तित्व में सीधी एक छलांग लगा सको, यदि तुम इस अस्तित्व के सागर के साथ एक हो सको, यदि तुम सागर-रूप हो सको, तभी तुम उसे जानने लगोगे जो कि दिव्य है, डिवाइन है।

विज्ञान तुम्हें तथ्य देता है-मुर्दा तथ्य। धर्म तुम्हें जीवन देता है। वह मुर्दा नहीं है, वह जीवित है। किन्तु वह कोई तथ्य नहीं है, वह एक रहस्य है। तथ्य सदैव मरे हुए होते हैं और जो भी जीवित होता है, वह सदा रहस्यपूर्ण होता है। तुम उसे जानते हो, और नहीं भी जानते हो। वस्तुतः तुम ऐसा अनुभव करते हो। इस अनुभव पर जोर, इस अनुभूति पर जोर, ऐसा जान लेने पर जोर, यही इस उपनिषद का अन्तिम सूत्र है।

यह उपनिषद कहता है, "मैं ही वह परिपूर्ण शुद्ध ब्रह्म हूँ, ऐसा जान लेना ही मोक्ष की उपलब्धि है।" इसके पहले कि हम इस सूत्र में गहरे उतरें, एक बात और समझ लें। तुम्हारे पास तार्किक मन है, पश्चिमी ढंग है-सोचने का, यूनानी रुख है और तब खोज है सत्य की-खो है कि क्या सत्य है। तर्क सत्य की खोज करता है, कि सत्य क्या है।

हिन्दूओं ने सत्य की कभी इतनी चिन्ता नहीं की। कभी भी नहीं। मोक्ष के लिये आतुर रहे। उन्होंने बार-बारयही पूछा कि मोक्ष क्या है। मुक्ति क्या है? न कि सत्य क्या है। और वे कहते हैं कि यदि कोई सत्य की खोज भी कर रहा है, तो वह भी मुक्ति के लिये ही, तब वह भी साधन की तरह है। परन्तु खोज सत्य के लिये नहीं है।

हिन्दू कहते हैं कि जिससे मुक्ति हो, वही पाने योग्य है। यदि वह सत्य है, तोवह ठीक है। किन्तु बुनियादी रूप से खोज मोक्ष के लिये ही है। तुम इस तरह की खोज यूनानी दर्शन में नहीं पा सकते। उसमें किसी का रस नहीं है-न प्लेटो का और न ही अरस्तु का, कोई भी मोक्ष में उत्सुक नहीं है। उनका रस इस बात के जान लेने में है कि सत्य क्या है?

बुद्ध से पूछें, महावीर से पूछें, कृष्ण से पूछें, वस्तुतः वे सत्य में उत्सुक नहीं हैं, उनका संबंध मुक्ति से है-कि मनुष्य चेतना किस तरह पूर्ण मुक्ति को प्राप्त हो जाये। यह फर्क मन के आधारभूत भेद के कारण ह। यदि तुम निरीक्षक हो, तो बाहर के संसार में ज्यादा उत्सुक होओगे और स्वयं में कम, क्योंकि स्वयं के तुम अवलोकनकर्ता नहीं हो सकते। मैं वृक्षों को देख सकता हूँ, मैं इन पत्थरों को देख सकता हूँ, मैं दूसरे लोगों को देख सकता हूँ किन्तु मैं अपने को ही नहीं देख सकता क्योंकि मैं अपने से जुड़ा हूँ। एक अन्तराल, एक गैप नहीं है।

इसलिए पश्चिमी मन स्वयं से उत्सुक नहीं रहा। वह दूसरों में उत्सुक रहा, जब तुम दूसरों में उत्सुक होते हो तब विज्ञान विकसित होता है। यदि तुम वृक्षों में उत्सुक हो, तो तुम उनके बारे में एक विज्ञान निर्मित कर लोगे। यदि तुम्हारा रस पदार्थ में है, तो तुम भौतिक-विज्ञान को पैदा कर लोगे। यदि तुम्हारी उत्सुकता किसी और चीज में है, तो तुम्हारी उस खोज से एक नये विज्ञान का जन्म होगा। यदि तुम स्वयं में उत्सुक हो, तभी केवल धर्म का जन्म होता है। किन्तु स्वयं के साथ एक बुनियादी समस्या खड़ी होती है : कि तुम अपने से अलग देखने वाले नहीं हो सकते क्योंकि देने वाले भी तुम्हीं हो और जिसे देखा जाने वाला है, वह भी तुम्ही हो। इसलिए वह वैज्ञानिक तटस्थता, वह दूरी नहीं रखी जा सकती। वहाँ तुम अकेले हो। और जो भी तुम करते हो, वह विषयीगत है, तुम्हारे भीतर है, विषयगत नहीं है।

जब वह विषयगत नहीं है, तो ग्रीक माइंड एक यूनानी मन डरता है क्योंकि तब तुम रहस्य में यात्रा करते हो। कुछ विषयगत होना चाहिये ताकि जब मैं कुछ कहूँ तो दूसरे उसको देख सकें। बुद्ध अपने जानने को टेबुल पर एक वस्तु की तरह नहीं रख सकते। उसे चीरा-फाड़ा नहीं जा सकता। तुम स्वयं के साथ कुछ भी नहीं कर सकते। तुम्हें बुद्ध के कथन को एक श्रद्धा की भाँति लेना होगा। वे तुमसे कुछ कहते हैं, किन्तु अरस्तु कहेगा कि हो सकता है कि उन्हें कोई भ्रांति हो गई हो। इसका मापदण्ड क्या है? इस बात को कैसे जाना जाये कि उन्हें भ्रान्ति नहीं हुई है? शायद वे धोखा दे रहे हों। कैसे जानें कि वे धोखा नहीं दे रहे हैं? वे सपना देख रहे हों। कैसे जानें कि वे एक वास्तविकता को जान गये हैं, और सपना नहीं देख रहे हैं? वास्तविकता, विषयगत होनी चाहिये।

इसी कारण विज्ञान एक है और इतने सारे धर्म हैं। यदि कोई बात सच है तो विज्ञान में दो सिद्धान्त, दो थ्योरीज़ एक साथ नहीं हो सकतीं। आगे-पीछे एक सिद्धान्त को गिराना पड़ेगा। चूँकि जगत विषयगत है, तुम यह तय कर सकते हो कि कौन-सा सिद्धान्त सही है। दूसरे उस पर प्रयोग कर सकते हैं, और तुम अपने-अपने निष्कर्ष मिला सकते हो।

इतने धर्म हो सके क्योंकि उसका जगत विषयीगत है, एक आंतरिक जगत है। कोई विषयगत जाँच-पड़ताल संभव नहीं है। बुद्ध के सबूत स्वयं बुद्ध ही हैं। वे जो भी कह रहे हैं, उसके साक्षी वे स्वयं ही हैं। इसीलिए विज्ञान के जगत में संदेह उपयोगी है, धर्म के जगत में वही बाधा बन जाता है। धर्म श्रद्धा की बात है, क्योंकि कोई बाहरी सबूत संभव नहीं है।

बुद्ध कुछ कहते हैं, यदि तुम उसमें भरोसा करते हो, तो ठीक है, अन्यथा उनसे कोई संवाद नहीं हो सकता, कोई मिलन संभव नहीं हो सकता। केवल एक ही संभावना है वह यह है : यदि तुम बुद्ध का भरोसा करते हो, तो तुम उसी पथ पर चल सकते हो, तुम उसी अनुभव पर पहुँच सकते हो। लेकिन फिर वह वैयक्तिक तथा निजी हो जाता है, फिर तुम ही तुम्हारे गवाह रहते हो। तुम इतना भी नहीं कह सकते कि मैंने वही उपलब्ध कर लिया है जो कि बुद्ध ने पाया था, क्योंकि तुलना कैसे की जाये?

इसे इस भाँति सोचो : मैं किसी को प्रेम करता हूँ, तुम भी किसी को प्रेम करते हो। हम कह सकते हैं कि हम दोनों प्रेम करते हैं। लेकिन मुझे कैसे पता चले कि मेरे प्रेम का अनुभव तुम्हारे प्रेम के अनुभव के जैसा ही है? उनकी तुलना कैसे करें, उनको कैसे तोलें? यह कठिन है। प्रेम एक जटिल बात है। उससे भी ज्यादा सरल चीजें हैं, वे भी कठिन हैं। जैसे, मैं एक वृक्ष को देखता हूँ, और मैं उसे हरा कहता हूँ। तुम भी उसे हरा बतलाते हो, लेकिन मेरा हरा और तुम्हारा हरा एक जैसे नहीं हो सकते हैं

क्योंकि मेरी आँखें भिन्न हैं, रुख भिन्न है, मन का भाव भिन्न है।

जब एक चित्रकार एक वृक्ष को देखता है, तो वह वैसा ही हरा नहीं होता जैसा कि तुम देखते हो क्योंकि एक कलाकार की आँख तुमसे ज्यादा संवेदनशील है। जब तुम देखते हो, तो एक ही हरा-रंग होता है। लेकिन जब कोई कलाकार उस वृक्ष को देखता है, तो वह एक साथ कितनेही हरे रंग देखता है-हरे रंग की बहुत सी छायायें-शेड्स होते हैं। जब एक वानगॉग एक बृक्ष को देखता है तो वह वही वृक्ष नहीं होता जो कि तुम देखते हो। अब इस बात की तुलना कैसे करें कि मैं भी वही हरा रंग देख रहा हूँ जो कि आप देख रहे हैं? यह बहुत कठिन है। एक तरह से असंभव है। तो फिर बुद्ध के निवार्ण की, महावीर के मोक्ष की और कृष्ण के ब्रह्म की तुलना कैसे करें? उन्हें कैसे तौलें?

हम जितने गहरे जाते हैं, उतनी ही चीजें वैयक्तिक हो जाती हैं। जितने गहरे हम जाते हैं उतनी ही जाँच करने की संभावना कम होती है। और अन्त में कोई इतना ही कह सकता है कि मैं ही एकमात्र मेरे स्वयं का गवाह हूँ। यूनानी मन डरता है। यह खतरनाक जगह है। तब तुम धोखे में पड़ सकते हो, तब तुम धोखा देने वालों के शिकार हो सकते हो। इसीलिए वे विषय पर जोर देते चले जाते हैं। "सत्य क्या है" यही उनकी खोज है। इसलिए विषयगतता पर ही पहुँचना अनिवार्य है।

हिन्दू मन कहता है कि हम सत्य में उत्सुक नहीं हैं। हम मनुष्य की मुक्ति में उत्सुक हैं। हमारी उत्सुकता तो उस आंतरिक मुक्ति में हैं जहाँ कि कोई बंधन नहीं होता, कोई सीमा नहीं होती, जहाँ कि चेतना असीम हो जाती है। जब तक मैं ही सर्व नहीं हो जाऊँ, मैं मुक्त नहीं हो सकता। जो भी मैं नहीं हूँ, वही मेरे लिये रुकावट हो जायेगी। इसलिए जब तक कि कोई ब्रह्म ही न हो जाये, तब तक वह मुक्त नहीं हो सकता।

यह पूर्वीय खोज है। इसका भी चिंतन कि जा सकता है। तुम इसके बारे में विचार कर सकते हो, तुम इस पर विचार-दर्शन आदि की बातें कर सकते हो।

यह सूत्र कहता है, "मैं ही वह परिपूर्ण ब्रह्म हूँ"-"ऐसा जानना" न कि इस पर "विचार करना, चिंतन करना"। क्योंकि तुम चाहो, तो विचार कर सकते हो और तु बड़ी सुन्दरता से विचार कर सकते हो, और तुम अपने ही विचार के शिकार भी हो सकते हो। सोचने विचारने की बात नहीं है, बल्कि ऐसा :जानना" ही मुक्ति की उपलब्धि है। विचार करने तथा जानने के अन्तर को ठीक से समझ लेना।

साधारणतः प्रत्येक चीज उलझी हुई है और हमारे मस्तिष्क साफ नहीं है। एक आदमी परमात्मा के बारे में सोचता है, इसलिए वह सोचता है कि वह धार्मिक है। वह धार्मिक नहीं है। तुम जन्मों तक सोचते रह सकते हो

किन्तु तुम धार्मिक नहीं हो सकते, क्योंकि सोचना दिमाग का हिस्सा है, बौद्धिक है। वह शब्दों से होता है। जीवन अस्पर्शित रह जाता है। इसलिए तुम पश्चिम में आदमी को देखो, वह जीवन के ऊँचे मूल्यों के बारे में सोच सकता है, और फिर भी वह जीवन के निम्नतम स्तर पर रह सकता है। वह प्रेम के बारे में सोच सकता है, प्रेम के सिद्धान्त बना सकता है, और उसके जीवन में देखो तो प्रेम का कोई पता नहीं। शायद यही कारण हो सकता है, चूँकि उसके जीवन में कोई प्रेम नहीं, वह उसे सिद्धान्तों से तथा सोच-विचार से पूरा करता जाता है।

इसी कारण पूर्व का जोर है कि चाहे तुम कुछ भी सोचो, जब तक कि तुम उसे जिओ नहीं, वह बेकार है। अन्ततः जीवन अर्थपूर्ण है, और चिन्तन उसके लिये परिपूरक नहीं हो सकता। लेकिन तुम जाओ, चारों ओर धार्मिक लोगों कोबल्कि धार्मिक संतों को देखो। वे केवल सोच रहे हैं। चूँकि वे ब्रह्म के बारे में विचार करते रहते हैं, ब्रह्म की चर्चा करते रहते हैं, वे सोचते हैं कि वे धार्मिक लोग हैं

धर्म इतना सस्ता नहीं है। तुम चाहो तो चौबीस घंटे विचार कर सकते हो, उससे तुम धार्मिक नहीं हो जाओगे। जब मन थक जाये और जीवन उसकी जगह ले ले, जब तक कि वह विचार नहीं वरन तुम्हारा जीवन ही न हो जाये-तुम्हारी हृदय की धड़कन ही न बन जाये, जब तुम्हारा दिल भी उसके साथ धड़कने लगे, तभी वह जानना है। और ऐसा जान लेना ही मोक्ष की उपलब्धि है, मुक्ति है। जब तक कि यह अनुभव कर लेता है कि मैं ही वह परिपूर्ण ब्रह्म हूँ, (अनुभव शब्द को याद रखें), जबकि कोई परिपूर्ण ब्रह्म के साथ एक हो जाता है, तो यह केवल उसके मस्तिष्क में केवल धारणा ही नहीं होती। अब वह स्वयं वही है, तभी वह मुक्त है। तब मोक्ष की, मुक्ति की उपलब्धि होती है।

क्या करना चाहिये? कैसे उसे जियें? यह सारा उपनिषद इस अन्तिम लक्ष्य को कितने ही कोणों से पहुँचने के लिये एक प्रयास था। अब यह आखिरी सूत्र है।

यह आखिरी सूत्र कहता है कि तुम सारे उपनिषद को पढ़ गये किन्तु यदियह सिर्फ तुम्हारा विचार ही रहा, यदि तुम केवल इसके बारे में विचार ही करते रहे, तो चाहे यह कितना भी सुन्दर रहा हो, जब तक कि तुम इसे अनुभव न कर लो, जान ही न लो, तब तक यह असंगत है।

यदि तुम एक ही बात को बार-बार दोहराते हो, तो मन तुम्हें धोखा दे सकता है। तुम्हें ऐसा लगने लगता है कि तुमने उसे पा लिया। यदि तुम सुबह से शाम तक यही दोहराते रहो कि सब जगह ब्रह्म है, मैं ही ब्रह्म हूँ-अहं ब्रह्मास्मि, मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ब्रह्म से एक हूँ। यदि तुम इसे दोहराते ही जाओ, तो इस दोहराने से एक प्रकार का आत्म-सम्मोहन पैदा हो जायेगा। तुम्हें ऐसा महसूस होने लगेगा-बल्कि तुम ऐसा सोचने लगोगे कि तुम्हें प्रतीत हो रहा है कि तुम ब्रह्म हो।

यह वंचना है, इससे कुछ भी न होगा। अतः क्या करें? सोचने से न होगा। तो फिर कैसे जिये? कहाँ से शुरू करें? कुछ बिन्दु : पहली बात यह स्मरण रखें कि यदि कोई बात तुम्हें तर्क से ठीक लगे, तो यह जरूरी नहीं है कि वह सही है। यदि मैं तम्हें तर्क से कोई बात कनविन्स कर दूँ, तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह बात ठीक है। तर्क अंधेरे में टटोलना हे, जड़ों का पता नहीं है। तर्क तुम्हें जड़ों के स्थान पर परिपूरक दे देता है।

एक रात, ठीक आधी रात के समय दो आदमी मुल्ला नसरुद्दीन के घर सामने लड़ रहे थे। वे कुछ शोर-शराबा मचा रहे थे, और मुल्ला को नींद आनी कठिन हो गयी थी। रात सर्द थी। वह इंतजार करता रहा लेकिन सब बेकार गया। शोर चालू रहा, अतः मुल्ला अपने एक कम्बल समेत ही निकलकर बाहर गया। उसने उसे ठीक से अपने चारों ओर लपेटा और बाहर निकला और उसने उन्हें समझाने की कोशिश की। तब दोनों में से एक ने मुल्ला का कम्बल पकड़कर खींचा और वे दोनों भाग गये।

मुल्ला वापस लौट आया। उसकी बीवी ने पूछा कि मुल्ला, झगड़ा किस बात पर हो रहा था? किस बात पर इतनी लड़ाई हो रही थी? नसरुद्दीन ने कहा, "मुझे सोचना पड़ेगा, मुझे इस पर विचार करना पड़ेगा। यह मामला बड़ा जटिल है।" अतः जब वह सोचने लगा, तो उसकी बीवी ने फिर पूछा, "बताओ भी। तुम इतनी देर से सोच रहे हो। एक घंटा बीत गया, मुझे बताओ कि मामला क्या था, ताकि मैं सो जाऊँ?"मुल्ला ने कहा, "ऐसा लगता है कि कम्बल के विषय में बात थी, क्योंकि जब उन्हें कम्बल मिल गया, तोझगड़ा बन्द हो गया। लगता है, मेरा कम्बल उनकी बहस का विषय था, क्योंकि जैसे ही उन्हें कम्बल मिला, उनकी लड़ाई खत्म हो गई और वे भाग गये।"

सारा तर्क अंधेरे में काम कर रहा है। तुम्हें कुछ भी पता नहीं कि क्या हुआ, क्यों हुआ है। फिर भी हम सोचते रहते हैं और तब मन को एक बेचैनी लगती है जब तक कि वह कारण नहीं जान लेता है। अतः जब भी तुम्हें लगे कि कारण तुम्ळारे पास है मन शान्त हो जाता है। तब मुल्ला नसरुद्दीन को आराम से नींद आ गई।

सारा जीवन एक रहस्य है, सब कुछ अज्ञात है। किन्तु हम उसे ज्ञात बना लेते हैं। उस तरह वह ज्ञात तो नहीं बन जाता है किन्तु हम उस पर लेबल लगाते जाते हैं, और तब हम आराम से हो जाते हैं। तब हमने एक ज्ञात जगत बना लिया, तब हमने एक ज्ञात जगत का द्वीप निर्मित कर लिया, इस बड़े अज्ञात रहस्य के बीच यह लेबल लगा हुआ संसार हमें बड़ा आराम देता है, इसमें हमें सुरक्षा लगती है। चीजों को लेबल देने के अलावा ज्ञान है भी क्या?

तुम्हारा छोटा बच्चा पूछता है कि यह क्या है? तुम कहते हो कि यह एक कुत्ता है। अतः वह दोहराता है कि यह कुत्ता है। फिर यह लेबल, यह नाम उसके मन में जम जाता है। अब उसे लगने लगता है कि वह कुत्तों को जानता है। यह तो सिर्फ नाम है। जब कोई लेबल नहीं था तो बच्चा सोचता था कि वह कुछ अज्ञात चीज है। अब एक लेबल लगा दिया गया, "कुत्ता"। अतः बच्चा दोहराता चला जाता है, "कुत्ता, कुत्ता।" अब जैसे ही वह इस प्रकार के जानवर को देखता है वैसे ही उसके मन में शब्द आ जाता है-कुत्ता। तब उसे लगता है कि वह जानता है।

क्या किया तुमने? तुमने सिर्फ एक अज्ञात वस्तु को नाम दे दिया। और यही हमारा सारा ज्ञान है। जो तथा कथित बौद्धिक ज्ञान है वह सिर्फ लेबलिंग है, नामकरण है। क्या जानते हो तुम? तुम किसी खास चीज को कहते हो प्रेम और फिर तुम सोचने लगते हो कि तुमने उसे जान लिया। हम सिर्फ लेबल लगाते जाते हैं। किसी भी चीज पर लेबल लगाओ, और तुम आराम से हो जाते हो। किन्तु थोड़ा गहरे जाओ, थोड़े गहरे प्रवेश करो, लेबल के पार और वहाँ अज्ञात खड़ा है। तुम अज्ञात से घिरे हो।

तुम किसी व्यक्ति को अपनी पत्नी कहते हो, अपना पति कहते हो, अपना बेटा कहते हो। तुमने लेबल लगा दिया, अब कोई तकलीफ नहीं है। लेकिन फिर से तुम्हारी पत्नी का चेहरा देखो, लेबल को हटाओ, लेबल के पार प्रवेश करो, और वहाँ अज्ञात छुपा है। और अज्ञात हर क्षण प्रवेश करता रहता है, लेकिन तुम उसे हटाते जाते हो, धक्के देते रहते हो। तुम कहते हो कि लेबल के अनुसार व्यवहार करो।

और हर एक आदमी ही लेबल के अनुसार व्यवहार कर रहा है। हमारा सारा समाज एक लेबल का संसार है-हमारा परिवार, हमारा ज्ञान। इससे काम नहीं चलेगा। एक धार्मिक चित्त जानना चाहता है, अनुभव करना चाहता है। लेबल का कुछ उपयोग नहीं है। अतः अपने चारों ओर अज्ञात को अनुभव करो, लेबल को छोड़ो। यही अर्थ है अनसीखा करने का कि जो भी तुमने सीख लिया है, उसको भूल जाओ। तुम फिर से अपनी पत्नी की ओर

देखो तो ऐसे देखना कि जैसे किसी अज्ञात की ओर देख रहे हो। लेबल को हटाकर देखना। तब तुम्हें बड़ा विचित्र अनुभव होगा।

एक वृक्ष की ओर देखो। जिसके पास से कि तुम रोजाना गुजरे हो। वहाँ एक क्षण के लिये रुको, वृक्ष की ओर देखो। वृक्ष का नाम भी भूल जाओ, उसे अलग रख दो। उसे सीधा ही देखो, और अचानक तुम्हें एक विचित्र अनुभव होगा। हम अज्ञात सागर के बीच रह रहे हैं। कुछ भी ज्ञान नहीं है, केवल लेबल लगे हैं। यदि तुम अज्ञात को अनुभव करने लगो, तभी केवल जानना, बोध सींव है। तुम ज्ञान को फेंको, केवल तभी जानना हो सकता है। तुम अपने-अपने ज्ञान को मत पकड़ो, क्योंकि उसे पकड़ने का अर्थ होता है, अपने मन को पकड़ना, दर्शनशास्त्र को पकड़ना। सब लेबलों को फेंको। सारे नामों, लेबलों को नष्ट कर दो।

मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम अराजकता पैदा कर दो। मेरा यह अर्थ नहीं है कि तुम पागल हो जाओ। लेकिन इस बात को भली-भाँति जान लो कि यह जो नामों का संसार है, यह आदमी का बनाया गया एक झूठा संसार है, मन का निर्माण है। अतः उसका उपयोग करो। यह एक उपाय है, अतः अच्छा है कि उसका उपयोग करो। इसकी उपयोगिता है। लेकिन उसके ही द्वारा पकड़ मत लिये जाओ। उससे बाहर भी कभी-कभी निकलो। कभी-कभी अपने ज्ञान की सीमा के बाहर भी यात्रा करो। चीजों को मन के बिना अनुभव करो। क्या तुमने कभी किसी भी चीज को अपने मन के बिना अनुभव किया है, बिना मन के भीतर महसूस किया है? हमने कुछ भी ऐसा अनुभव नहीं किया है।

एक दिन किसी ने मुल्ला नसरुद्दीन को कुछ मांस दे दिया। मुल्ला के एक मित्र ने उसे थोड़ा मांस दिया और उसे पकाने के लिये एक किताब दे दी। मुल्ला तो बड़े मजे में घर आ रहा था। तभी एक चील ने मांस पर झपट्टा मारा और लेकर उड़ गई, किन्तु मुल्ला चील पर हँसा और बोला-कोई बात नहीं, ठीक है। अपे को बहुत बुद्धिमान समझने की जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम इस मांस का करोगी क्या? पकाने की किताब तो मेरे पास है। पकाने के शास्त्र की किताब ज्यादा महत्वपूर्ण है-बजाय मांस के। तब तुम मांस का क्या करोगी? ओ मूर्ख। पकाने की किताब तो अभी भी मेरे पास है।

हम सबके पास अपना पाक शास्त्र है, वही हमारा ज्ञान है। मन ही हमारा पाक-शास्त्र है, वह सदैव हमारे साथ है। और सारा जीवन हमसे छीन लिया गया है, केवल पाकशास्त्र ही बचा है।

तुम एक वृक्ष के पास जाते हो। तुम कहते हो ठीक है, यह एक आम का वृक्ष है। बस बात खत्म हो गई। आम का वृक्ष तुम्हारे लेबल लगाने के साथ ही समाप्त हुआ। अब तुम्हें उसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं। एक आम का वृक्ष एक विराट अस्तित्व है। उसका अपना जीवन है, उसकी अपनी प्रेम-लीला है, अपना काव्य है। उसके अपने अनुभव हैं। उसने बहुत-सी सुबह और बहुत-सी सुबह और बहुत-सी शामें देखी हैं। बहुत सी रातें जीयी हैं। उसके इर्द-गिर्द बहुत कुछ घटा है और उस पर अपने हस्ताक्षर छोड़े हैं। उसकी अपनी प्रज्ञा है। उसकी पृथ्वी में जड़ें गहरी गई हैं। उसने तुमसे ज्यादा पृथ्वी का अनुभव किया है।

और फिर सूरज उगता है... ! किन्तु तुम्हारे लिये उसका कुछ भी अर्थ नहीं क्योंकि वो भी एक लेबल लगी चीज है। लेकिन एक आम के वृक्ष के लिये यह सिर्फ सूरज का उगना ही नहीं है। उसमें भी कुछ उगता है। आम का वृक्ष जीवन्त हो जाता है। उसका खून तीव्र गति से दौड़ने लगता है।

हर पत्ता जिन्दा हो जाता है। वह प्रस्फुटित होने लगता है। हम भी हवाओं को जानते हैं, किन्तु हम अपने घरों में सुरक्षित रहते हैं। यह वृक्ष तो खुले में है। उसने हवाओं को दूसरे ही ढंग से जाना है। इसने उनकी

आत्यंतिक संभावनाओं को छुआ है। किन्तु हमारे लिये यह सिर्फ एक आम का वृक्ष है। बस, इतने में यह समाप्त हो गया। हमने इस पर लेबल लगा दिया ताकि हम आगे बढ़ सकें।

उसके पास थोड़ी देर रुको। भूल जाओ कि यह आम का वृक्ष है क्योंकि "आम का वृक्ष" तो खाली एक शब्द है। इससे कुछ भी अभिव्यक्त नहीं होता। भूलो शब्द को। भूलो, जो भी तुमने किताब में अब तक पढ़ लिया है। भूलो अपने पाकशास्त्र को। इस वृक्ष के साथ थोड़ी देर रहो, और यह तुम्हें किसी भी मंदिर से अधिक धार्मिक अनुभव प्रदान करेगा। क्योंकि मंदिर, कोई भी मंदिर अन्ततः आदमी का बनाया हुआ है। वह एक मुर्दा चीज है। इसे स्वयं अस्तित्व ने निर्मित किया है। अभी भी यह एक ऐसी चीज है जो कि अस्तित्व के साथ एक है। इसके द्वारा अस्तित्व हरा हुआ है, खिला है और फलों से लदा है।

इसके साथ रहो, इसके साथ जीयो। वह ध्यान होगा, वृक्ष भी नहीं होगा। सिर्फ अस्तित्व होगा। और जब यह होता है कि वृक्ष आम का वृक्ष भी नहीं होगा। सिर्फ अस्तित्व होगा। और जब यह होता है कि वृक्ष आम का वृक्ष नहीं होगा। सिर्फ अस्तित्व होगा। और जब यह होता है कि वृक्ष आम का वृक्ष नहीं रह जाता, यहाँ तक कि वृक्ष भी नहीं रहता, बल्कि सिर्फ एक "होना" रह जाता है, एक अस्तित्व हो जाओगे। और केवल दो अस्तित्व ही मिल सकते हैं। और तब गहरे में मिलन होता है। तब तुम मुक्ति का अनुभव करते हो। अब तुम मार्ग जानते हो। अब तुम्हें गुप्त मार्ग का पता चल गया कि अस्तित्व से एक कैसे हुआ जाता है।

अतः इस सूत्र को पुनरुक्त करके कि "अहं ब्रह्मास्मि"-कि "मैं ही ब्रह्म हूँ" इससे कुछ भी न होगा। इसे समझो कि यह शाब्दिक अर्थ है। इस अस्तित्व के भांति हो जाओ। अपनी संस्कृति, अपनी शिक्षा, अपने शास्त्र, अपना धार्मिक दर्शन लेकर इसके निकट न जाओ। इसके निकट तो एक नग्न बच्चे की भाँति जाओ, जिसे कुछ भी पता नहीं। तब यह तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है, तब तुम इसमें प्रवेश करते हो। तभी मिलन होता है और वह मिलन ही समाधि है।

और एक बार सारा अस्तित्व तुम्हारी नसों के अनुभव में आ जाये, तब तुम इस सारे अस्तित्व पर फैल जाओ, तब यह सूत्र कहता है कि "यही मोक्ष की उपलब्धि है"। इसे जानना, इसके बारे में चिंतन मत करना।

अतः यह जानना ही एक गहरा मिलन है, एक कम्यूनियन है, एक होना है। क्या है कठिनाई? हम क्यों इस अस्तित्व से बाहर छूट जाते हैं? यह अहंकार क्यों दे रहे हैं? मेरा एक लक्ष्य है और वह है परमात्मा। प्रेम मेरे लिये नहीं है, यह सारा जगत मेरे लिये नहीं है।"

रामानुज ने कहा, "तब यह असम्भव है, क्योंकि तुम अभी पिघलना ही नहीं जानते। और तुम्हारे लिये परमात्मा के पास पहुँचना बहुत कठिन होगा। यदि तुमने प्रेम जाना है, चाहे जरा-सा ही जाना हो, तो तुमने बाधा तोड़ दी, तो तुमने दीवार गिरा दी। तब तुमने पार देखा। वह चाहे एक झलक ही क्यों न हो, लेकिन तब उसमें कुछ जोड़ा जा सकता है और वह एक झलक भी दर्शन बन सकती है। किन्तु तुम कहते हो कि तुम प्रेम को जरा भी नहीं जानते। तुम उसका पूर्णतया निषेध करते हो। तब मुझे पता नहीं कि तुम्हारी सहायता कैसे करूँ कि तुम परमात्मा की ओर जा सको क्योंकि यह तो मामला ही प्रेम का है।"

और सचमुच, यही होता है। यदि तुम एक व्यक्ति को प्रेम करो, तो उस प्रेम के क्षण में वह व्यक्ति तो खो जाता है और उसकी जगह परमात्मा आ जाता है। उसे नहीं जानना असंभव बात है। मैं अपनी भाषा में कहूँ-यदि तुमने प्रेम को जाना हो, तो परमात्मा को न जानना असंभव हो जाता है। क्योंकि प्रेम के क्षण में तुम मानव बिल्कुल नहीं रह जाते। तुम पिघल गये, और उस पिघलने में ही दूसरा भी मानव की भाँति खो गया। वह परमात्मा का ही बढ़ा हुआ हाथ हो गया। किन्तु यदि तुमने प्रेम को नहीं जाना, तो फिर दो व्यक्तियों की सर्द

मुलाकात होती है : पिघलना नहीं होता, सिर्फ एक ठंडी मृत मुलाकात होती है, बजाय मिलन के एक सर्द तार्किक मुलाकात, द्वन्द्व। मिलन नहीं, बस आमना-सामना।

अतः प्रेम की भाषा सीखो और तर्क की भाषा को अनसीखा करो। तुम्हें कोई भी सिखा नहीं सकता क्योंकि प्रेम सिखाया ही नहीं जा सकता। यदि तुम अपने मन से ऊब गये हो, यदि वह काफी हो गया है, तो उसे फेंको, अपने को हलका करो और अचानक तुम जीवन में गति करने लगते हो। मन का होना भी जरूरी है और फिर उसे फेंक भी देना पड़ता है। यदि मन को फेंक दो, तभी केवल तुम जानोगे कि "मैं ही वह परिपूर्ण शुद्ध ब्रह्म हूँ"। क्योंकि मन ही है एकमात्र बाधा। मन के कारण ही तुम सीमित हो, सीमा में हो।

यह इस प्रकार से है : तुमने रंगीन चश्मा पहना है, तो यह सारा संसार नीला दिखलाई पड़ता है। यह नीला है नहीं, यह सिर्फ तुम्हारा चश्मा नीला है। तब मैं कहता हूँ, "यह संसार नीला नहीं है, अतः अपने चश्मे को फेंको और पुनः संसार को देखो। किन्तु तुम्हें तुम्हारी आँखों में और चश्मे में अन्तर मालूम नहीं पड़ता। तुम चश्मा पहने हुए ही पैदा हुये थे, इसलिए तुम्हें पता ही नहीं चलता कि कहाँ तुम्हारा चश्मा खत्म होता है और "मैं" शुरू होता है।"

तुम सदा सोचते रहे कि तुम्हारे चश्मे ही तुम्हारी आँखें हैं। यही एकमात्र समस्या है कि तुम्हारे विचार ही तुम्हारी जिन्दगी हैं। यही समस्या है-तादात्म्य की समस्या। तुम्हारा विचार ही तुम्हारी जिन्दगी हैं। यही समस्या है। मन चश्मे की तरह है। इसी कारण एक हिन्दू, संसार की ओर एक दूसरी दृष्टि से देखता है और एक मुसलमान दूसरी दृष्टि से देखता है, और एक ईसाई और भी दूसरी तरह से देखता है क्योंकि उनके चश्मे भिन्न-भिन्न है। अपने चश्में फेंक दो, और तब पहली बार तुम्हें अपनी आँखें फिर से मिलेंगी। भारत में हमने इसे दर्शन कहा। यह आँखों को पुनः पा जाना है।

हमारे पास आँखें हैं, किन्तु ढकी हैं। हम उसी तरह से संसार में चल रहे हैं, जैसे तांगे के आगे लगे हुये घोड़े चलते हैं। उनकी आँखों के दोनों तरफ परदा लगा दिया जाता है। उन्हें सिर्फ सामने ही देखना चाहिये क्योंकि यदि घोड़े ने चारों ओर इधर-उधर देखना शुरू किया तो चालक के लिये कठिनाई खड़ी हो जायेगी। तब वह इधर-उधर कहीं भी दौड़ने लगेगा। इसलिए घोड़े को सिर्फ सामने ही देखने दिया जाता है ताकि उसका संसार सीधी रेखा में हो। इससे उसका संसार तीन आयामी नहीं रहता है, वह सब ओर नहीं देख सकता। सारा अस्तित्व खो जाता है सिवा बाजार के। और वह एक मृत बाजार है क्योंकि बाजार जिन्दा नहीं हो सकते। वह सिर्फ एक मुर्दा बाजार है, मुर्दा सड़क है।

घोड़े सिर्फ सड़क देख सकते हैं, यह उपयोगिता की बात है। आदमी ने भी अपने को ऐसे ही ढाल दिया है, उपयोगिता के मार्ग पर निर्मित कर लिया है। मन के साथ जीना एक उपयोगिता की बात है न कि जीवन के साथ जीना, क्योंकि जीवन बहु-आयामी है। कोई नहीं जानता कि वह तुम्हें कहाँ ले जायेगा। अतः एक पक्की सड़क बनाओ। अपनी आँखों को बन्द कर लो, पक्के चश्मे चढ़ा लो और फिर सड़क पर चलो। लेकिन तुम जा कहाँ रहे हो? यह सड़क सदैव मृत्यु की ओर ले जाती है, और तो यह कहीं भी नहीं जाती। यह मौत का रास्ता है। ऐसा कहा जाता है कि हर एक सड़क रोम जाती है, लेकिन यह सत्य तभी हो सकता है यदि रोम का अर्थ मृत्यु होता हो, वरना यह सत्य नहीं हो सकता।

हर एक सड़क मृत्यु को पहुँचाती है। यदि तुम्हें जीवन चाहिये, तो फिर जीवन के लिये कोई सड़क तय नहीं है। जीवन तो यहीं और अभी है, बहु-आयामी, चारों तरफ फैला। यदि तुम्हें जीवन में गति करना है, तो अपने चश्मे उतार फेंको, अपनी धारणाओं को छोड़ो। अपने विधि-विधानों, अपने विचारों, अपने मन को

त्यागो। जीवन में जन्म लो अभी और यहीं, इस बहु-आयामी जीवन में, जो कि चारों ओर फैला है, तब तुम केन्द्र बनोगे और सारा जीवन तुम्हारा होगा, न कि एक खास सड़क। तब यह सारा जीवन तुम्हारा होगा। जो भी इसमें होगा, वह सब तुम्हारा ही होगा।

यही जानना है, बोध है : कि मैं ही वह परिपूर्ण शुद्ध ब्रह्म हूँ। तुम किसी और सड़क से उस ब्रह्म को नहीं पहुँच सकते। वह मार्ग, मार्ग-विहीन है। यदि तुम एक मार्ग का अनुगमन करो, तो तुम किसी चीज़ पर पहुँचोगे किन्तु वह सब कुछ नहीं होगा। कैसे एक मार्ग तुम्हें सर्व पर पहुँचा देगा? एक मार्ग तुम्हें किसी एक चीज़ पर पहुँचायेगा, किन्तु सर्व पर नहीं। यदि तुम्हें सब कुछ चाहिये, तो सारे मार्गों को छोड़ो, अपनी आँखें खोलो, और चारों ओर देखो। सर्व यहाँ उपस्थित है। इसे देखो और इसमें पिघलो क्योंकि पिघलना ही तुम्हें एकमात्र ज्ञान, बोध प्रदान करेगा। पिघलो उसमें, डूबो उसमें।

इस तरह यह आत्मपूजा उपनिषद समाप्त होता है। यह आखिरी सूत्र था, उपनिषद यहाँ पूरा होता है। यह बहुत छोटा उपनिषद था, सबसे छोटा संभवतया। तुम इसे एक पोस्टकार्ड पर भी छाप सकते हो, उसके एक ही तरफ। केवल सत्रह सूत्र, किन्तु सारा जीवन इन सत्रह सूत्रों में समा गया है। प्रत्येक सूत्र विस्फोट का काम कर सकता है। प्रत्येक सूत्र तुम्हारे जीवन को रूपान्तरित कर सकता है, लेकिन उसे तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता है। सूत्र अपने आप कुछ भी नहीं कर सकता, उपनिषद भी स्वयं कुछ नहीं कर सकता। तुम कर सकते हो।

बुद्ध ने कहा है कि गुरु तुम्हें सिर्फ मार्ग बता सकता है, लेकिन चलना तो तुम्हें पड़ेगा। और सचमुच गुरु तुम्हें सिर्फ मार्ग बता सकता है यदि तुम उस पर चलने के लिये तैयार हो। अन्ततः, गुरु तभी गुरु है जब तुम शिष्य हो। यदि तुम सीखने को राजी हो, तभी कोई गुरु तुम्हें मार्ग बता सकता है। लेकिन वह तुम्हें जबरदस्ती नहीं कर सकता, वह तुम्हें आगे धक्का नहीं दे सकता। वह असम्भव है।

रिंझाई अपने गुरु के पास रहता था। गुरु को छोड़ना कठिन हो गया, किन्तु गुरु ने कहा, "अब तुम मुझे छोड़ने के लिये तैयार हो चुके हो। अब जाओ, कहीं भी जाओ और जो कुछ भी मैंने तुम्हें सिखाया है, लोगों को सिखाओ। अब अपने आप में ही गुरु रहो। अब जाओ।" किनतु रिंझाई को बड़ा दुःख हो रहा था। यह बहुत कठिन था, अतः वह टालता रहा। तब फिर शाम ढल गई और गुरु ने कहा, "अब जाओ। क्योंकि रात निकट ही है और रात बहुत अन्धकारपूर्ण होनेवाली है।" किन्तु फिर भी रिंझाई रुका रहा। आधी रात को गुरु ने कहा, "अब तुम यहाँ नहीं ठहर सकते। तुम जाओ।" किन्तु रिंझाई ने बहाना बनाते हुए कहा, "किनतु रात बहुत अन्धेरी है, मैं सबेरे चला जाऊगा।"

गुरु ने कहा, "मैं तुम्हें एक दिया दे देता हूँ। तुम यह दिया लो और जाओ। मेरा काम समाप्त हुआ। एक क्षण भी यहाँ बर्बाद मत करो। जाओ और लोगों को सिखाओ। जो भी तुमने सीखा है वह लोगों को भी सिखाओ और उन्हें मार्ग दिखलाओ।"

अतः गुरु ने उसे एक छोटा-सा दिया दे दिया। रिंझाई ने वह दीया अपने हाथ में लिया। बहुत उदास मन से वह उस झोंपड़ी से बाहर सीढ़ियाँ उतरने लगा। आखिरी सीढ़ी पर गुरु हँसा और उसे दीया बुझा दिया। अचानक सब कुछ अंधकारपूर्ण हो गया और रिंझाई ने कहा, "यह आपने क्या किया? आपने मुझे दीया भी दिया और उसे बुझा भी दिया।" गुरु ने कहा, "यह दीया इस अँधेरे में तुम्हारी क्या सहायता कर सकता है? मेरा दिया इस अंधेरे में तुम्हारी क्या मदद कर सकता है? सिर्फ तुम्हारा अपना प्रकाश ही तुम्हारी मदद कर सकता है। अब इस अंधेरे में अपने ही प्रकाश से आगे बढ़ो, मेरा काम अब समाप्त हुआ।" फिर गुरु ने कहा, "और यह ठीक भी

नहीं है कि तुम्हें प्रकाश दिया जाये। यह मित्रतापूर्ण न होगा। अब तुम अपने ही प्रकाश के साथ आगे जाओ। तुम्हारे पास काफी प्रकाश है।"

उपनिषद तुम्हें प्रकाश दे सकते हैं। किन्तु वह प्रकाश वस्तुतः काम का नहीं होगा। जब तक कि तुम स्वयं अपना प्रकाश पैदा नहीं करते, जब तक कि अपने आंतरितक रूपान्तरण का कार्य शुरू नहीं करते, उपनिषद बेकार हैं। वे खतरनाक भी हो सकते हैं, नुकसान भी पहुँचा सकते हैं, क्योंकि तुम उन्हें याद कर सकते हो। तुम आसानी से तोते हो सकते हो। और तोते धार्मिक हो जाते हैं। तुम्हें जो भी कहा गया है, उसे जान सकते हो, तुम उसे दोहरा सकते हो। उससे कुछ भी न होगा। उसे भूल जाओ। मुझे दिया बुझा देने दो। जो भी हम यहाँ बात कर रहे थे। उसे भूल जाओ। उसे पकड़ो मत। नये सिरे से शुरू करो, तब तुम किसी दिन जो भी कहा गया है, उसे जानोगे।

जब तुम स्वयं बोध को उपलब्ध हो जाओ, तभी शास्त्र सहायता कर सकते हैं। तभी केवल तुम वह जानोगे जो कहा गया है, जो मतलब था, और जो अभिप्राय था। जब तुम सुनते हो, जब तुम बुद्धिगत समझते हो, तो कुछ भी नहीं समझा जाता। अतः यह तभी सहायक हो सकता है यदि यह प्यास बन जाये, एक गहरी जिज्ञासा, एक खोज बन जाये।

उपनिषद तो पूरा होता है, अब तुम जाओ आगे और यात्रा पर निकलो। अचानक किसी दिन, जो कहा गया है, तुम उसे जानोगे और उसे भी जो कि नहीं कहा गया है। एक दिन तुम जानोगे उसे जो कि अभिव्यक्त किया गया है, और उसे भी जो अभिव्यक्त नहीं किया गया क्योंकि उसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

एक दिन बुद्ध एक जंगल से गुजर रहे थे अपने शिरूं के साथ। आनंद ने पूछा, "भगवान, क्या आपने वह सब कह दिया है जो कि आप जानते हैं? अतः बुद्ध जमीन पर पड़ी कुछ सूखी पत्तियाँ हाथ में लेते हैं और कहते हैं, "जो भी मैंने कहा है वह इन थोड़ी-सी पत्तियों के समान है, और जो भी मैंने नहीं कहा है और बिना कहा छोड़ दिया है वह जंगल की इन सारी पत्तियों के समान है। किन्तु यदि तुम अमल करो तो तुम इन पत्तियों से सारे जंगल को पहुँच जाओगे।"

यह उपनिषद तो समाप्त होता है, लेकिन तुम अपनी यात्रा पर रवाना होओ-गहरे, भीतर की ओर। यह एक लम्बा और कठिन प्रयास है। स्वयं कोरूपान्तरित करना बड़े से बड़ा प्रयास है-सर्वाधिक उपलब्धि देने वाला। यह उपनिषद एक गहन और निकटतम उपदेश है। यह रासायनिक परिवर्तन करनेवाला है। यह तुम्हारे आंतरिक रूपान्तरण के लिये है। तुम्हारी निम्न धातु सोना हो सकती है। इसकी प्रक्रिया से गुजरकर तुम्हारी आत्यंतिक संभावना वास्तविक हो सकती है।

किन्तु कोई और तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। गुरु सिर्फ तुम्हें मार्ग बतलाता है। चलना तुम्हीं को पड़ता है। अतः सोचते ही मत बैठे रहो। कहीं से जीना प्रारंभ करो। एक छोटा-सा भी जीवन्त प्रयास बड़े-से-बड़े, दार्शनिक संग्रह से अच्छा है। धार्मिक बनो, दर्शनशास्त्र सब बेकार हैं।

आज इतना ही।

अठारहवां प्रवचन

साधना-पथ का सहज विकास

प्रश्न

1. ग्रीक, वैज्ञानिक खोज सत्य के लिए है, तथा पूर्वीय, धार्मिक खोज मोक्ष के लिए है।

2. ध्यान में प्रगति की ओर इंगित करने वाले कौन-कौन से लक्षण हैं?

3. क्या किसी संसारी व्यक्ति को भक्ति का मार्ग चुनना चाहिए और योग का मार्ग त्यागियों के लिए छोड़ देना चाहिए?

भगवन्! साधारणतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि धर्म सत्य की खोज के लिए है। किन्तु एक रात्रि प्रवचन में आपने कहा कि यूनानी मन, वैज्ञानिकता की ओर झुका हुआ न, सत्य की खोज करता है और पूर्वीय धार्मिक मन के लिए मोक्ष यानी मुक्ति खोज की वस्तु है। परन्तु आपने पीछे यह भी कहा है क सत्य ही केवल मुक्त करता है?

क्या आप कृपा कर इस विरोधाभास को समझायेंगे?

दर्शनशास्त्र, फिलोसोफी सत्य की खोज के लिए है, न कि धर्म। धर्म तो मुक्ति की खोज है, आत्यंतिक मुक्ति की। दोनों में क्या अंतर है? जब तुम सत्य की खोज कर रहे हो, तो जोर अधिकाधिक बुद्धिगत मानसिक होता है। जब तुम मुक्ति की खोज कर रहे हो, तो फिर यह कोई सिर्फ बुद्धि का प्रश्न नहीं है, किन्तु तब यह तुम्हारे पूरे अस्तित्व का प्रश्न है।

जिस क्षण भी कोई "सत्य" शब्द का उच्चारण करता है तो तुम्हारी बुद्धि पर असर होता है। तुम्हारे भाव अप्रभावित रह जाते हैं, तुम्हारा शरीर अछूता रह जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य का संबंध सिर्फ सिर से है। सत्य का तुम्हारे पैर के अंगूठे से क्या लेना-देना? सत्य का तुम्हारे रक्त, तुम्हारी हड्डी, मांस, मज्जा से क्या संबंध? लेकिन जैसे ही तुम "मुक्ति" शब्द का उच्चारण करते हो, तो उसका संबंध तुम्हारी पूरी समग्रता से है। तब तुम उसमें पूरे-के-पूरे ही संलग्न हो जाते हो। यह पहला अंतर है। धर्म कोई बुद्धिगत मामला नहीं उसमें सिर्फ एक हिस्से की तरह संलग्न होती है, परन्तु तुम्हारा सारा अस्तित्व उसमें लगा होता है। मुक्ति तुम्हारे समग्र बीइंग के लिए है।

दूसरी बात, जब भी कोई सत्य के बारे में सोचता है तो उसमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि सत्य को कहीं और खोजना है। तुम सिर्फ खोज करने वाले हो, सत्य कहीं और किसी वस्तु की भाँति रखा है जिसे कि खोजना है। परन्तु जब तुम मुक्ति की खोज में हो, तो मुक्ति को कहीं और किसी वस्तु की तरह नहीं खोजना है। तुम्हें ही रूपान्तरित होना है-उसे पाने के लिए। क्योंकि मुक्ति का अर्थ होता है-अपनी दासता को गिरा देना। सत्य हमें थिर प्रतीत होता है, जैसे कि कोई वस्तु हो। मुक्ति एक प्रक्रिया है, जीवन्त। इसीलिए मैं कहता हूँ कि धर्म बुनियादी रूप से मुक्ति की खोज है-आत्यंतिक, समग्र-मुक्ति की।

यह भी सही है कि मैंने कई बार कहा है कि सत्य मुक्त करता है। इसमें कुछ भी विरोधाभास नहीं है। धर्म की खोज मुक्ति के लिए है, सत्य सिर्फ साधनरूप है। यदि तुम सत्य को पा लेते हो, तो तुम्हें मुक्त होने में मदद करता है। सत्य मुक्त करता है, किन्तु मुक्ति ही अन्तिम बात है।

सचमुच, ज्यादा अच्छा हागा कि हम उसे दूसरी तरह से परिभाषित करें। जो मुक्त करे वह सत्य है, और जब तक वह तुम्हें मुक्त न करे, वह सत्य नहीं है। लेकिन मुक्ति अन्तिम-लक्ष्य है-धर्म के लिये। यह जोर कुछ छोटा-मोटा भेद नहीं है। यह एक बड़ा भेद है, क्योंकि जब भी मन खोजने निकलता है, सत्य की खोज करता है, तो सारी बात ही बदल जाती है। तब तुम उसके लिए सोचने लगते हो, तुम उसके लिए तर्क करने लगते हो, तुम उसे बौद्धिकता का रूप दे देते हो। तो बात मनसंगत हो जाती है।

सत्य अर्थपूर्ण है लेकिन सिर्फ मुक्ति की ओर साधन की भांति। अतः धर्म सत्य की खोज के विरुद्ध नहीं है। धर्म मुक्ति के लिए है, सत्य उसकी मदद करता है। किन्तु सत्य तब गौण, द्वितीय हो जाता है। वह प्राथमिक नहीं रहता, वह बुनियादी नहीं रहता। वह सिर्फ साधन है, मुक्ति लक्ष्य है। इसीलिए सारे हिन्दू-चिंतन के लिए "मोक्ष" अंतिम लक्ष्य है, सारी हिन्दू खोज के लिए "मुक्ति" अंतिम बात है।

सत्य सहायता करता है मुक्त होने में, इसलिए सत्य को खोजो, किन्तु सिर्फ मुक्ति की बड़ी खोज के एक हिस्से की भांति। सत्य को लक्ष्य मत बनाओ। यदि तुम सत्य को लक्ष्य बनाओगे, तो फिर तुम्हारी खोज धार्मिक नहीं है, तब वह दार्शनिक है। इसीलिए ग्रीक (यूनानी) मन और हिन्दू मन में अंतर है।

अरस्तु अथवा प्लेटो अथवा सुकरात के लिये सत्य ही आखिरी लक्ष्य है-सत्य को कैसे खोजें? तब तर्क साधन हो जाता है। हिन्दू मन के लिये "मुक्ति" लक्ष्य है। मुक्ति कैसे।

यदि किसी को मुक्त होना है, तो उसे अपनी सारी दासतायें गिरा देनी पड़ेंगी। दासता की जंजीरों को कैसे काटें? तुम्हें उन्हें काटने के लिये एक विज्ञान की जरूरत है। वह विज्ञान है-योग। तब तुम्हारी खोज एक दूसरा ही मार्ग ले लेती है : तुम गुलाम क्यों हो? तुम बन्धन में क्यों पड़े हो? तुम बन्धन में पड़े ही कैसे? तुम दुःख में क्यों हो? क्यों? यह "क्यों तुम्हारी खोज की सारी यात्रा को बदल देगा। बन्धन का पता चलाना होगा, और तब उसे तोड़ना पड़ेगा। तभी तुम मुक्त होओगे।

यदि सत्य ही खोज है तो फिर आदमी गलती में क्यों है? तब समस्या यह है कि इस गलती से कैसे बचा जाये। तब यह बात मूलभूत हो जाती है। तर्क गलत से बचने में मदद करेगा, तब तर्क-वितर्क, दार्शनिक चिंतन ही साधन है। इसीलिए यूनानी मन योग जैसी किसी बात के बारे में नहीं सोच सका। योग मौलिक रूप से पूर्वीय है। यूनानी मन तर्क को विकसित करेगा। वही यूनानी देन है-सारे संसार के विचार को। उन्होंने उसे इतना विकसित किया, आखिरी शिखर तक, कि वस्तुतः इन दो हजार वर्षों में उसमें कुछ भी जोड़ा नहीं जा सका। अरस्तु में तर्क अपने अंतिम शिखर पर पहुँचा। ऐसा कभी-कभी ही होता है कि एक आदमी किसी भी विज्ञान को उसकी पूर्णता तक विकसित कर दे। अरस्तु ने यह किया, परन्तु योग का कोई ख्याल वहाँ नहीं है।

भारत में योग आधारभूत है। हमने भी तर्क प्रणालियाँ विकसित की हैं, किन्तु सिर्फ उन सत्यों की उन अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए जो कि भाषा के पार चले जाते हैं। अतः हमने तर्क विकसित किया-एक साधन की भाँति-किसी चीज़ को अभिव्यक्त करने के लिये, न कि किसी चीज़ तक पहुँचने के लिये।

यूनानी तर्क का अर्थ है सत्य तक पहुँचने की एक प्रक्रिया। हिन्दू तर्क का अर्थ है कि सत्य तो उपलब्ध हो गया, मुक्ति पा ली गई किसी और साधन से। अब जबकि तुमने अनुभव उपलब्ध कर लिया उसे अभिव्यक्त करने के लिये तर्क की आवश्यकता पड़ेगी। इस भेद को स्पष्ट करने के लिये मैंने कहा कि हिन्दू मन धार्मिक है, और ग्रीक मन दार्शनिक है। धार्मिक मन अधिक-अधिक प्रायोगिक है।

मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ। बुद्ध यह कहानी बहुत बार सुनाते थे। एक आदमी मर रहा था। बुद्ध एक जंगल से गुजर रहे थे और उस आदमी के शरीर में एक तीर लगा था-किसी शिकारी का तीर। वह आदमी मर

रहा था। वह एक दार्शनिक था। बुद्ध उस आदमी से कहते हैं कि इस तीर को निकाला जा सकता है। मुझे इसे बाहर निकाल लेने दो।

वह आदमी कहता है, "नहीं, पहले मुझे यह बताओ कि यह तीर किसने मारा? मेरा शत्रु कौन है? यह तीर मेरे शरीर में क्यां लगा? मेरे किन कर्मों का यह फल है? क्या तीर विष-बुझा है, या नहीं है?" बुद्ध कहते है, "यह सारी बात तुम बाद में पूछ लेना। पहले मुझे तीर खींच लेने दो, क्योंकि तुम मरने ही वाले हो। यदि तुम सोचते हो कि नहीं पहले इन सब बातों का पता चल जाये और फिर तीर को खींचा जाये, तो तुम बचने वाले नहीं हो।"

यह कहानी उन्होंने बहुत बार सुनाई थी। उनका इस कहानी से क्या मतलब था? उनका अर्थ था कि हम सब मृत्यु के किनारे ही खड़े हैं। मृत्यु का तीर पहले ही तुम्हारी छाती में चुभा हुआ है। तुम्हें इसका पता हो या नहीं हो। मृत्यु का तीर तुमको पहले से ही लग चुका है। इसीलिए तुम दुःख में हो। तीर चाहे दिखाई नहीं पड़ता हो, किन्तु पीड़ा तो है। तुम्हारी पीड़ा कहती है कि मृत्यु का तीर तुम्हारे भीतर प्रवेश कर चुका है। मत पूछो इस तरह के सवाल कि इस जगत को किसने बनाया और मैं क्यों बना गया, कि जीवन बहुत है कि एक ही जीवन है, क्या मैं मृत्यु के बाद भी बचूँगा या नहीं।

बुद्ध कहते हैं, ये बातें बाद में पूछ लेना। पहले इस दुःख के तीर को खींच लेने दो। तब बुद्ध हँसते हैं और कहते हैं कि फिर बाद में मैंने किसी को पूछते हुए नहीं पाया, इसलिए बाद में सारी पूछताछ कर लेना।

यह योग है, इसका तुम्हारी स्थिति से ज्यादा संबंध है-तुम्हारी पीड़ा की वास्तविक स्थिति से और कैसे उससे पार हुआ जाये। इसका ज्यादा संबंध है तुम्हारी दासता से, तुम्हारे कारागृह से। और कैसे इसका अतिक्रमण किया जाये, कैसे मुक्त हुआ जाये? इसलिए "मोक्ष" लक्ष्य है, अंतिम लक्ष्य, वास्तविक लक्ष्य। यह कोई सैद्धान्तिक सत्य नहीं है।

हमने बहुत-से सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं, लेकिन वे सिर्फ उपाय हैं। हमारे पास नौ प्रणलियाँ हैं और बहुत बड़ा साहित्य है। सर्वाधिक समृद्ध साहित्यों में से एक परन्तु हमारे सारे सिद्धान्त अर्थपूर्ण नहीं हैं। हमने बहुत से विचित्र सिद्धान्तों को निर्मित किया है। लेकिन बुद्ध तथा महावीर कहते हैं कि यदि कोई सिद्धान्त बन्धन से पार जाने में मदद करते हैं, तो वे ठीक हैं।

किसी भी सिद्धान्त के बारे में चिंतित होने की जरूरत नहीं है कि वह सही है या गलत है, उसके तर्क-वितर्क पर भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। उसका उपयोग करो और पार चले जाओ। नाव के बारे में सोचना-विचारना कैसा? यदि वह तुम्हें नदी पार करने में सहायता करे, तो नदी के पार चले जाओ। पार जाना अर्थपूर्ण है, नाव तो अर्थ हीन है। अतः कोई भी नाव काम दे देगी। इसीलिए हिन्दुओं ने एक अगूठा सहिष्णु मन विकसित किया, वह एक मात्र सहिष्णु मन है। एक ईसाई सहिष्णु नहीं हो सकता। असहिष्णुता वहाँ होगी। एक मुसलमान सहिष्णु नहीं हो सकता। असहिष्णुता वहाँ भी होगी ही।

इसमें उसका दोष नहीं है। यह इसलिए है क्योंकि उसके लिये नाव बहुत महत्वपूर्ण है। वह कहता है कि तुम केवल इसी नाव से नदी के पार जा सकते हो। दूसरी नावें "नाव" नहीं हैं, वे सब नहीं हैं। दूसरा किनारा इतना महत्वपूर्ण नहीं है। इस किनारे की यह नाव ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसलिए यदि तुमने गलत नाव चुनी तो तुम उस किनारे नहीं पहुँच सकोगे। परन्तु हिन्दू मन कहता है कि कोई भी नाव काम दे देगी। नाव असंगत है।

सब सिद्धान्त नावें हैं। यदि तुम ठीक से दूसरे किनारे पर दृष्टि लगाये हो, यदि तुम्हारी आँख दूसरे किनारे पर लगी हुई है, यदि तुम्हारा मन दूसरे छोर का ध्यान कर रहा है, तो फिर कोई भी नाव काम दे देगी। और यदि तुम्हारे पास कोई नाव नहीं है, तो तुम तैरो।

प्रत्येक व्यक्ति पार जासकता है, किसी भी संगठित नाव की आवश्यकता नहीं है। तैरो और यदि तुम हवा के रुख को जानते तो तुम्हें तैरने की भी जरूरत नहीं है। तब सिर्फ बहो। यदि तुम हवा के रुख को ठीक दिशा में हवा को बहने दो। फिर सिर्फ गिर पड़ना और छोड़ देना, और हवायें स्वयं तुम्हें उसे पार ले जायेंगी।

किसी नाव ने कोई ठेका नहीं ले लिया है। बिना नाव के भी कोई तैर सकता है। और यदि कोई आदमी बुद्धिमान है तो तैरने की भी जरूरत नहीं है, वह भी व्यर्थ है। यह आखिरी बात है जो कि बुद्धि से समझ में नहीं आयेगी। वे कहते हैं कि यदि तुम समग्र रूप से छोड़ दो, और विश्राम में आ जाओ तो यह किनारा ही वह किनारा है। तब कहीं जाना नहीं हैं। यदि तुम पूर्णरूप से विश्राम में हो, और पूर्णरूप से समर्पित हो, तो फिर यह किनारा ही वह किनारा है।

ऐसे हिन्दू मन के लिये, सिद्धांत, दर्शन, प्रणालियाँ आदि सब खेल है, उपाय हैं, सहायक हैं। किन्तु यदि तुम उनसे बहुत ज्यादा जुड़ जाओ तो वे हानिप्रद भी हो सकती हैं, यदि कोई आदमी किसी नाव से बहुत ज्यादा जुड़ जाये तो वे हानिप्रद भी हो सकती हैं, यदि कोई आदमी किसी नाव से बहुत ज्यादा जुड़ जाये तो फिर वह उस नाव से पार नहीं जा सकेगा क्यांकि अन्ततः वह नाव ही उसके लिये बाधा बन जायेगी। नाव तुम्हें उस पार ले जाये तो भी तुम नाव से उतरोगे ही नहीं। यह नाव की पकड़ ही बाधा बन जायेगी। ऐसा जो रुख है कि सिद्धान्त और प्रणालियाँ उपाय हैं, यह अदार्शनिक रुख है। दर्शन जीता है सिद्धान्तों में, जबकि धर्म अधिक प्रायोगिक है।

मुल्ला नसरुद्दीन कहा करता था कि सिर्फ प्रायोगिक विधियाँ ही धार्मिक विधियाँ है। एक दिन वह अपनी छत पर काम कर रहा था। वर्षा आने वाली थी और वह छप्पर पर काम कर रहा था। एक फकीर, एक भिखारी ने सड़क पर से मुल्ला को पुकारा, उसने उसे नीचे आने के लिये कहा। नीचे आना जरा कठिन था, किन्तु फिर भी मुल्ला नीचे उतरकर आया और उसने पूछा, "क्या मामला है? तुमने मुझे वहीं से क्यों नहीं बताया? मैं तुम्हारी बात सुन लेता।" फकीर ने कहा, "मैं कुछ भीख मांगने आया हूँ, और मुझे जोर से पुकार कर मांगने में लज्जा आ रही थी।" मुल्ला ने कहा कि "झूठे अहंकार में मत रहो। मेरे साथ ऊपर आओ, फकीर उसके पीछे-पीछे गया।"

फकीर जरा मोटा आदमी था। उसके लिये घर की छत पर चढ़कर जाना कठिन था। जब वह वहाँ पहुँचा तो नसरुद्दीन ने अपना काम वापस शुरू कर दिया। फकीर ने कहा कि, "मेरा क्या?" नसरुद्दीन ने कहा, "मेरे पास कुछ भी देने को नहीं है, माफ करना।" फकीर ने कहा, "यह क्या बेवकूफी की बात है? तुमने मुझे नीचे सड़क पर ही क्यों न कहा दिया?" नसरुद्दीन ने कहा, "प्रायोगिक विधियाँ अधिक उपयोगी हैं। अब तुम्हें पता चल जायेगा।"

धर्म प्रायोगिक है, दर्शन अप्रायोगिक है। क्या अर्थ है मेरा? यदि तुम पूछो कि क्या ईश्वर है? तो मैं तुम्हारा प्रश्न दो प्रकार से ले सकता हूँ-दार्शनिक अथवा धार्मिक। यदि तुम पूछो, ईश्वर क्या है? अथवा, क्या ईश्वर है? और मैं यदि इसे दार्शनिक तरह से लेता हूँ तो फिर किसी यात्रा की कोई जरूरत नहीं। मैं तुम्हें यही उत्तर दे दूंगा। मेरा जो भी विश्वास है, वह मैं तुम्हें कह दूँगा। मैं तर्क दूँगा। मैं और तर्क दूँगा और प्रमाण जुटाऊँगा, लेकिन यह सभी यहीं हो जायेगा। इसके लिये प्रायोगिक यात्रा की जरूरत नहीं है।

सत्य तभी अर्थपूर्ण है जबकि ऐसा प्रतीत हो कि बिना सत्य के तुम मुक्त नहीं हो सकते। लेकिन तब सत्य का साधन की तरह मूल्य है, यही फर्क है। और इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। मैं कहता हूँ कि सत्य मुक्त करता है, किन्तु क्योंकि वह मुक्त करता है इसीलिए वह सत्य है। मुक्ति अंतिम लक्ष्य होना चाहिये, तब तुम सत्य का भी उपयोग कर सकते हो।

यदि तुम इस प्रश्न को एक धार्मिक प्रश्न की भाँति पूछो तो फिर फर्क को समझो। यदि तुम कहो कि यह धार्मिक सवाल है तब फिर मैं तुम्हें कोई सिद्धान्त नहीं दे सकता। तब मैं तुम्हें यह नहीं कह सकता कि ईश्वर है या नहीं, तब वैसा कहना व्यर्थ है। तब मैं तुम्हें एक विधि दूंगा और मैं तुम्हें उसका अभ्यास करने के लिये कहूँगा और तब तुम उसे जानोगे। तब तुम्हें लम्बी यात्रा पर जाना पड़ेगा। और जब तुम चेतना की एक विशेष स्थिति पर पहुँच जाओगे, तभी तुम्हें उत्तर उपलब्ध होगा।

दार्शनिक खोज के लिये किसी व्यक्तिगत रूपान्तरण की आवश्यकता नहीं है। तुम पूछो और मैं तुम्हें उत्तर दूँगा-यहाँ और अभी। तुम्हारे मन को बदलने की जरूरत नहीं है। यदि तुम धार्मिक प्रश्न पूछो तो चाहे प्रश्न वहीं हो, लेकिन यदि तुम कहते हो कि यह धार्मिक है, तो इसका अर्थ है कि किसी विशेष परिवर्तन की आवश्यकता है।

एक अंधा आदमी आता है और पूछता है कि क्या प्रकाश है? यदि वह एक दार्शनिक प्रश्न पूछ रहा है तो मैं एक सिद्धान्त प्रस्तुत कर सकता हूँ। इस बात से कोई संबंध नहीं है कि वह अंधा है, या वह अंधा नहीं है। सिद्धान्त तो अंधे के द्वारा भी समझे जा सकते हैं-प्रकाश के सिद्धान्त तो समझ ही सकता है, वह एक बौद्धिक मामला है। और वस्तुतः हो सकता है कि वह तुमसे भी ज्यादा सिद्धान्त को समझने में समर्थ होक्योंकि उसे प्रकाश के बारे में बात करो जिसके पास आँखें हैं, तो उसके अपने अनुभव हैं प्रकाश के बारे में कोई चिन्ता नहीं है।

यदि तुम एक आदमी से प्रकाश के बारे में बात करो जिसके पास आँखें हैं, तो उसके अपने अनुभव हैं प्रकाश के बारे में। तुम्हारे सिद्धान्त उसके अनुभवसे मेल खायें और न भी खायें, किन्त वह तर्क ज्यादा करेगा। जब कि एक अंधे आदमी को कोई भी सिद्धान्त चलेगा। सिर्फ एक ही कसौटी होगी कि उसे तर्क के द्वारा साबित किया जा सके। यदि तुम उसे तर्क के कथन की तरह से साबित कर सको, तो अंधा आदमी उस पर विश्वास कर लेगा। लेकिन यदि वह अंधा आदमी धार्मिक रूप से पूछे तो फिर उसकी दृष्टि के साथ कुछ करना पड़ेगा कि उसकी दृष्टि वापस आ जाये। सिद्धान्तों से उसे कुछ न होगा। कोई शल्य-चिकित्सा की जरूरत है, किसी ऑपरेशन की आवश्यकता है, सिद्धांतों से काम न चलेगा। किसी विधि की जरूरत है, ताकि वो अंधा आदमी देख सके। और जब तक वह देख नहीं लेता है, तब तक उसके लिये कोई प्रकाश नहीं है।

अब एक बहुत कठिन बात समझने के लिये है। यहाँ प्रकाश है। तुम अपनी आँखें बन्द कर लेते हो, क्या तुम सोचते हो कि जब तुमने आँखे बन्द कर लीं हैं तब भी प्रकाश है? वस्तुतः तर्क की दृष्टि से या ऊपर से आँखें बन्द कर लेने से प्रकाश नहीं मिट जाता है, प्रकाश तो वहाँ है। जब मैं अपनी आँख खोलता हूँ तो प्रकाश वहाँ है, जब मैं अपनी आँख बन्द कर लेता हूँ तब भी प्रकाश वहाँ है। मेरे आँख बन्द कर लेने से प्रकाश का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है। यह एक सामान्य ज्ञान है।

लेकिन भौतिक शास्त्र कुछ और बात कहता है वह कहता है कि प्रकाश एक ऐसी घटना है जिसमें तुम्हारी आँखों का भी योगदान है। तुम्हरी आँखों के बिना प्रकाश नहीं हो सकता। प्रकाश का स्रोत रह सकता है लेकिन प्रकाश नहीं हो सकता। प्रकाश तुम्हारी व्याख्या है, तुम्हारा दिया गया अर्थ है। कुछ अ, ब, स, है जिसे कि मेरी आँखें प्रकाश की तरह अर्थ देती हैं। यदि मेरी आँखें बन्द हो जाएं, तो फिर अर्थ देने वाला कोई भी नहीं बचा, प्रकाश विलीन हो गया।

एक दूसरा सरल उदाहरण लो। हम यहाँ बैठे हैं। इतने सारे रंग हैं, इतने सारे कपड़े हैं, किन्तु रंग को तुम्हारी आँखों की जरूरत है अन्यथा वह नहीं हो सकता। तुम आकाश में एक इन्द्रधनुष देखते हो। अपनी आँखें

बन्द कर लो और इन्द्रधनुष विलीन हो गया। सिर्फ तुम्हारे लिये ही नहीं बल्कि वह वस्तुतः विलन हो गया है, उ क्योंकि एक इन्द्रधनुष को होने के लिये तीन चीजों की जरूरत हैः पानी की लटकती हुई बूंदें, उनके पार जाती हुई सूरज की किरणें और एक आंख उसकी ओर देखती हुई। इन तीनों चीजों की आवश्यकता है एक इन्द्रधनुष को होने के लिये। यदि एक भी तत्व कम हो तो इन्द्रधनुष नहीं हो सकता।

यदि पृथ्वी पर कोई भी मनुष्य नहीं हो तो फिर कोई इन्द्रधनुष भी नहीं होंगे। यदि जमीन पर कोई आंख नहीं हो, तो कोई रंग न होंगे। मैं यह क्यों कह रहा हूँ? अंधे के लिये प्रकाश नहीं होता। आध्यात्मिक अंधे के लिये कोई परमात्मा नहीं होता। स्रोत वहाँ है, किन्तु स्रोत परमात्मा नहीं है। स्रोत का अनुभव होने पर परमात्मा तो उसकी की गई एक व्याख्या है। स्रोत का अनुभव होने पर परमात्मा तो उसकी की गई एक व्याख्या है। स्रोत वहाँ है, तुम यहां अंधे हो। इसलिए कोईईश्वर नहीं है। जब स्रोत और तुम्हारी आंखें मिलती हैं तो परमात्मा की घटना घटती है, वह मिलना ही परमात्मा है।

धर्म एक प्रायोगिक विज्ञान है-तुम्हारी आंख को खोलने के लिये, अथवा तुम्हारी आँख जो कि काम नहीं कर रही है, उसे क्रियाशील बनाने के लिये किस कोण से देखने पर तुम्हारी आँखें परमात्मा का अनुभव करने में समर्थ हो जायें। वह कोई सैद्धान्तिक बात नहीं है। और परम स्वतन्त्रता, मुक्ति अंतिम लक्ष्य है, क्योंकि बन्धन ही दुःख में, अपनी पीड़ा में, अपने बन्धन में। अतः अन्ततः तुम्हारा रस है तुम्हारे अपने आनन्द में, तुम्हारी मुक्ति में न कि सत्य में।

सत्य तभी अर्थपूर्ण है जबकि ऐसा प्रतीत हो कि बिना सत्य के तुम मुक्त नहीं हो सकते। लेकिन तब सत्य का साधनकी तरह मूल्य है, यही फर्क है। और इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। मैं कहता हूँ कि सत्य मुक्त करता है, किन्तु क्योंकि वह मुक्त करता है इसीलिए वह सत्य है। मुक्ति अंतिम लक्ष्य होना चाहिये, तब तुम सत्य का भी उपयोग कर सकते हो।

सत्य लक्ष्य नहीं होना चाहिये, वरना तुम्हारी दिशा गलत हो जायेगी। तब तुम अस्तित्व के पास बुद्धि के द्वारा पहुंचने का प्रयत्न करोगे। और हर कदम अगले कदम पर ले जाता है, और प्रत्येक कदम एक श्रृंखला निर्मित करता है। एक जरा-सा भेद तुम्हारे प्रश्न में, एक बहुत छोटा-सा परिवर्तन और तुम्हारा सारा मार्ग दूसरा हो जायेगा।

कोई बुद्ध के पास आता है और कहता है-क्या मृत्यु के पार भी जीवन है? बुद्ध उससे पूछते हैं, क्या तुम सचमुच जानना चाहते हो? वह आदमी कहता है, हाँ, सचमुच। लेकिन वह जरा बेचैन हो जाता है। वह उत्सुक था, लेकिन उसका कोई रस नहीं था। वह उत्सुकतावश जानना चाहता था कि क्या मृत्यु के बाद भी जीवन होता है? क्या जीवन बचता है मृत्यु के पार भी? बुद्ध उससे पूछते हैं, क्या तुम्हारा सचमुच ही रस है? और उनकी आँखें उस गरीब आदमी के भीतर चली जाती हैं और इसलिए वह आदमी बेचैन हो उठता है, और कहता है, "हाँ, सचमुच।"

तब बुद्ध कहते हैं कि तुम दो बार विचार करो। यदि वस्तुतः ही तुम्हारा रस हो, तो मैं तुम्हें रास्ता बता सकता हूँ कि मरा कैसे जाये और तब तुम देख लेना कि जीवन बचता है या नहीं। तुम्हारे लिये कोई दूसरा कैसे मर सकता है, और कौन जान सकता है? तुम्हें ही इसमें से गुजरना पड़ेगा। यदि मैं कहूँ भी कि हाँ, जीवन होता है मृत्यु के बाद भी, तो भी तुम इस पर विश्वास कैसे कर सकते हो? तब कोई दूसरा कहेगा कि "नहीं"। अतः फिर तुम किस भाँति निर्णय करोगे? लेकिन यदि सिर्फ उत्सुकता ही है, तो फिर तुम सिद्धान्तवादियों के पास चले जाओ, किसी दार्शनिक के पास चले जाओ। मैं कोई दार्शनिक नहीं हूँ।

बुद्ध कहा करते थे कि मैं एक वैद्य हूँ, एक चिकित्सक हूँ, अतः यदि तुम वाकई बीमार हो, तो मेरे पास आओ। मेरे पास कोई सिद्धान्त नहीं है, किन्तु मेरे पास तुम्हें ठीक करने की विधि है। मैं एक चिकित्सक हूँ।

धर्म एक औषधि है, दर्शनशास्त्र एक सिद्धान्त है।

भगवान, ध्यान के पथ पर बहुत से साधक यह जानने में बड़ी कठिनाई अनुभव करते हैं कि क्या वे कुछ प्रगति कर रहे हैं या नहीं, अथवा कि वे बीच में ही लटके हुए हैं और फिर-फिर पुनरूक्ति ही कर रहे हैं?

क्या आप कृपा कर यह बतायेंगे कि वे कौन-से-लक्षण हैं जो कि ध्यानी की सतत प्रगति को दर्शाते हैं?

ध्यान करते हुए, अपने पर काम करते हुए यदि तुम्हें यह पता न चलता हो कि तुम प्रगति कर रहे हो या नहीं तो यह बात ठीक से समझ लेना कि तुम प्रगति नहीं कर रहे हो। क्योंकि जब प्रगति होती है तो तुम उसे जानते हो। क्यों? यह ठीक ऐसे ही है जैसे कि बीमार होते हो और दया ले रहे होते हो, तो क्या तुम्हें यह अनुभव नहीं होगा कि तुम स्वस्थ हो रहे हो या नहीं? यदि तुम्हें स्वास्थ्य का अनुभव नहीं हो रहा हो और फिर भी यह प्रश्न उठता हो कि तुम ठीक हो रहे हो या नहीं, तो यह बात ठीक से जान लेना कि तुम ठीक नहीं हो रहे हो। स्वस्थ होना एक ऐसा अनुभव है कि जब तुम स्वस्थ होते हो, तो तुम उसे जानते ही हो।

लेकिन यह सवाल क्यों उठता है? यह सवाल कई कारणों से उठता है। एक कि तुम वस्तुतः श्रम नहीं कर रहे हो। तुम सिर्फ अपने को धोखा दे रहे हो। तुम अपने साथ चालबाजी कर रहे हो। तब तुम क्या कर रहे हो इसकी तुम्हें परवाह कम है और इस बात की ज्यादा है कि क्या घट रहा है। यदि तुम वस्तुतः उसे कर रहे हो, तो तुम परिणाम को परमात्मा पर छोड़ सकते हो। लेकिन हमारा मन कुछ ऐसा है कि हमें कारण की परवाह कम है और हमें परिणाम की परवाह ज्यादा है-लोभ के कारण।

लोभ बिना कुछ भी किये पाना चाहता है। इसलिए लोभी मन आगे चलता है। तब लोभी चित्त पूछता है कि क्या घट रहा है? कुछ हो भी रहा है या नहीं? जो तुम लोभी चित्त पूछता है कि क्या घट रहा है? कुछ हो भी रहा है या नहीं? जो तुम कर रहे हो केवल उसकी ही चिन्ता करो, और जब कुछ होगा तो तुम उसे जानोगे। वह होगा ही तुम्हें। उसे पूछने किसी और के पास नहीं जाना पड़ेगा।

दूसरा कारण इस बात को पूछने का यह है क्योंकि हम सोचते हैं कि कुछ चिन्ह, कुछ प्रतीक, कुछ रास्ते के पत्थर होने चाहिए जिनसे कि पता चले कि मैं पहुँच रहा हूँ, कि मैं यहाँ तक पहुँच गया, मैं अब वहाँ तक पहुँच गया अंतिम लक्ष्य पर पहुँचने के पहले हम हिसाब-किताब लगाना चाहते हैं। हम आश्वस्त होना चाहते हैं कि हम आगे बढ़ रहे हैं।

लेकिन वस्तुतः रास्ते के कोई पत्थर नहीं हैं क्योंकि कोई पटा-पटाया एक रास्ता नहीं है। और प्रत्येक अलग-अलग रास्ते पर हैं, हम सब एक ही सड़क पर नहीं चल रहे हैं। यहाँ तक कि जब तुम एक ही ध्यान की विधि का प्रयोग कर रहे हो, तब भी तुम उसी रास्ते पर नहीं हो। तुम हो नहीं सकते। कोई आम रास्ता नहीं है। हर रास्ता, हर मार्ग व्यक्तिगत है, निजी है। इसलिए किसी और का अनुभव तुम्हें इस मार्ग पर मदद नहीं करेगा। बल्कि, वह हानिप्रद भी हो सकता है।

किसी को अपने मार्ग पर कुछ चीज दिखलाई पड़ सकती है। यदि वह कहता है कि यह प्रगति का चिन्ह है तो हो सकता है कि वह चीज तुम्हें दिखलाई न पड़े। वे ही वृक्ष तुम्हारे मार्ग में नहीं भी हो सकते, वे ही पत्थर तुम्हारे मार्ग में नहीं भी मिल सकते हैं। अतः इस प्रकार की बकवास के शिकार होने की जरूरत नहीं है। केवल कुछ आंतरिक अनुभूतियाँ ही संगत हैं। उदाहरण के लिये, यदि तुम प्रगति कर रहे हो, तो कुछ बातें युगपथ होने लगेंगी। एक, तुम्हें अधिकाधिक सन्तोष का अनुभव होगा।

जब ध्यान पूरा होता है तो कोई इतना तृप्त अनुभव करता है कि वह ध्यान करना भी भूल जाता है। क्योंकि ध्यान करना भी एक प्रयास है, एक असंतोष है। यदि किसी दिन तुम ध्यान करना भी भूल जाओ और तुम्हें उसकी कोई तलब न लगे, तुम्हें कोई अन्तराल महसूस नहीं हो, तुम्हें भरा-पूरापन लगे, तब जानो कि यह अच्छा चिन्ह है। बहुत से लोग हैं जो कि ध्यान करते हैं और यदि वे नहीं करते हैं वो उनके साथ एक अजीब घटना घटती है। यदि वे कहते हैं तो उन्हें कुछ भी अनुभव नहीं होता। यदि वे नहीं करते हैं तो उन्हें लगता है कि जैसे वे कुछ चूक रहे हैं।

यह एक प्रकार की आदत है, जैसे कि सिगरेट पीना, शराब पीना, या कोई भी, यह सिर्फ एक आदत है। ध्यान को एक आदत मत बनाओ, उसे जीवन्त रहने दो तब असन्तोष धीरे-धीरे खो जायेगा। तुम्हें सन्तोष का, तृप्ति का अनुभव होगा। और जब तुम ध्यान करते हो, तभी यदि कुछ घटित होता है, जब तुम ध्यान करते हो केवल तभी घटता है तो फिर वह झूठा है, वह सम्मोहन है। वह कुछ अच्छा करता है, लेकिन गहरा जाने वाला नहींहै। वह सिर्फ तुलना में अच्छा है। यदि कुछ भी नहीं हो रहा है, कोई ध्यान नहीं हो रहा है, कोई आनंद का क्षण नहीं आ रहा है, तो उसकी चिन्ता मत करो। यदि कुछ हो रहा है तो उसे पकड़ो भी मत। यदि ध्यान ठीक जा रहा है, गहरा हो रहा है तो तुम सारे दिन रूपान्तरित अनुभव करोगे। एक सूक्ष्म तृप्ति, एक सन्तोष हर क्षण मौजूद रहेगा। जो भी तुम कर रहे होओगे, तुम्हारे भीतर तुम्हें एक शीतल केन्द्र का अनुभव होगा-एक सन्तोष, एक तृप्ति की अनुभूति होगी।

निश्चित ही परिणाम भी होंगे। क्रोध कम-और कम संभव होता जायेगा। वह विलीन होने लगेगा। क्यों? क्योंकि क्रोध एक अ-ध्यानी चित्त की दशा है, एक ऐसे मन की जो कि अपने साथ चैन से नहीं है। इसीलिए तुम दूसरों पर क्रोध करते हो। मूलतः तुम अपने पर ही क्रोधित हो। चूंकि तुम अपने पर क्रोधित हो, तुम दूसरों पर क्रोध करते चले जाते हो।

क्या तुमने कभी यह देखा कि तुम उन्हीं पर सबसे ज्यादा क्रोधित होते हो जो कि तुम्हारे निकटतम होते हैं? जितनी ज्यादा निकटता होती है, उतना ही ज्यादा क्रोध होता है। क्यों? जितनी ज्यादा निकटता होती है, उतना ही ज्यादा क्रोध होता है। क्यों? जितनी ज्यादा दूरी होगी दूसरे व्यक्ति से उतना ही क्रोध कम होगा उसके प्रति। तुम अजनबी आदमी पर क्रोध नहीं करते। तुम अपनी पत्नी, अपने पति, अपने बेटे, अपनी बेटी, अपनी मां पर ज्यादा क्रोध करते हो। क्यों? क्यों तुम उन लोगों के प्रति ज्यादा क्रोधित होते हो जो कि तुम्हारे अधिक निकट हैं?

उसका कारण यह है कि तुम अपने पर ही क्रोधित हो। जितना ज्यादा कोई आदमी तुम्हारे निकट होगा, उतना ही वह तुमसे ज्यादा एक हो जायेगा। तुम अपने पर क्रोधि हो, अतः जब भी कोई तुम्हारे निकट होगा, तुम उस पर अपना क्रोध फेंक सकते हो। वह अब तुम्हारा हिस्सा हो गया। ध्यान के साथ तुम अधिकाधिक अपने से प्रसन्न रहने लगोगे-स्मरण रहे, अपने से।

कोई व्यक्ति अपने से प्रसन्न रहे, यह चमत्कार है। हमारे लिये, या तो हम किसी के साथ प्रसन्न हैं या किसी पर क्रोधित हैं। जब कोई अपने ही साथ प्रसन्न होता है, तो यह वस्तुतः स्वयं के ही प्रेम में पड़ जाता और जब तुम अपने ही प्रेम में पड़े होते हो तो क्रोध करना कठिन हो जाता है। सारी बात ही अर्थहीन लगती है। तब क्रोध कम होने लगेगा, प्रेम बढ़ता, जायेगा करुणा बढ़ती जायेगी। ये चिन्ह होंगे, सामान्य चिन्ह होंगे।

अतः यदि प्रकाश का अनुभव हो रहा हो, तो यह मत सोचो कि तुम्हें कुछ उपलब्धि हो रही है, कि कुछ रंग दिखाई पड़ रहे हैं। वे ठीक हैं, परन्तु सन्तुष्ट होने की जरूरत नहीं है जब तक कि मानसिक परिवर्तन नहीं होते हैं-कम क्रोध, अधिक प्रेम, कम हिंसा, अधिक करुणा।

जब तक यह नहीं होता तब तक तुम्हारा प्रकाश रंगां को देखना बच्चों का खेल है। वे सन्दर हैं, बहुत सुन्दर हैं। उनके साथ रहना अच्छा है। लेकिन वे ध्यान का उद्देश्य नहीं हैं। वे मार्ग पर घटित होते हैं, वे सिर्फ सह-उत्पत्ति हैं। लेकिन उनमें मत उलझना।

मेरे पास बहुत लोग आते हैं और वे कहते हैं कि अब मुझे नीला प्रकाश दिखलाई पड़ रहा है, तो इस चिन्ह का क्या अर्थ है? मैं कितने आगे बढ़ा? नीले प्रकाश से कुछ भी न होगा क्योंकि तुम्हारा क्रोध लाल रोशनी प्रकट कर रहा है। मूलभूत मनोवैज्ञानिक परिवर्तन अर्थपूर्ण है। अतः खिलौनों से राजी मत हो जाना। ये सिर्फ खिलौने हैं-आध्यात्मिक खिलौने। तुम्हें नीला प्रकाश दिखाई पड़े तो तुम कोई परमहंस नहीं हो जाओगे।

ये सब चीजें साध्य नहीं हैं। संबंधों में देखें कि क्या हो रहा है। अब तुम अपनी पत्नी के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हो? इसे देखो। क्या उसमें कुछ परिवर्तन आया? वह परिवर्तन ही अर्थपूर्ण है। तुम अपने नौकर के साथ कैसा बर्ताव करते हो? क्या उसमें बदलाहट हुई? वह बदलाहट ही महत्वपूर्ण है। यदि उसमें कोई परिवर्तन नहीं है, तो फेंको अपने नीले प्रकाश को। उससे कुछ भी न होगा। तुम धोखा दे रहे हो, और तुम धोखा देते रह सकते हो। इन चालाकियों को तो आसानी से पाया जा सकता है।

इसीलिए तथाकथित धार्मिक आदमी अपने को धार्मिक समझने लगता है। क्योंकि अब वह यह और वह देखने लगता है, और वह स्वयं जैसा था वैसा ही रहता है। यहाँ तक कि वह पहले से भी बुरा हो जाता है। तुम्हारी प्रगति को तुम्हारे संबंधों में देखना चाहिये। संबंध ही दर्पण हैं। वह उसमें तुम अपना चेहरा देखो। सदैव स्मरण रखो कि संबंध ही दर्पण है। यदि तुम्हारा ध्यान गहरा जा रहा है तो तुम्हारे संबंध भिन्न हो जायेंगे-समग्ररूप से भिन्न हो जायेंगे। प्रेम तुम्हारे संबंधों का आधार हो जायेगा, न कि हिंसा। अभी जैसे भी तुम हो, हिंसा ही आधारभूत स्वर है। यहाँ तक कि जब तुम किसी की ओर देखोगे भी तो तुम्हारा देखना भी हिंसा के ढंग से होगा। लेकिन वह हमारी आदत हो गई है।

ध्यान मेरे लिये बच्चों का खेल नहीं है। वह एक गहरा रूपान्तरण है। इस रूपान्तरण को कैसे जाना जाये? उसकी झलक हर क्षण तुम्हें अपने संबंधों में मिलेगी। क्या तुम किसी के मालिक बनना चाहते हो? तो फिर तुम हिंसक हो। कैसे कोई किसी का मालिक बन सकता है? क्या तुम किसी पर शासन करना चाहते हो? तो तुम हिंसक हो। कैसे कोई किसी पर शासन कर सकता है? प्रेम शासन नहीं कर सकता, प्रेम किसी का मालिक बनना नहीं चाहता।

इसलिए जो भी तुम कर रहे हो, सजग रहो, देखो उसे और ध्यान करते चले जाओ। जल्दी ही तुम्हें परिवर्तन का पता चल जायेगा। अब संबंधों में मालकियत नहीं होगी। धीरे-धीरे मालकियत खो जायेगी। और जब मालकियत नहीं रहती तो संबंध का अपना ही एक सौंदर्य होता है। जब मालकियत का भाव होता है, तो हर चीज गंदी हो जाती है, कुरूप तथा अमानवीय हो जाती है। लेकिन हम इतने धोखेबाज हैं कि हम अपने संबंधों के दर्पण में अपने को नीं देखेंगे क्योंकि वहां हमारा असली चेहरा दिखाई पड़ जायेगा। अतः हम अपने संबंधों की तरफ से आँखें बंद कर लेते हैं और सोचते रहते हैं कि कुछ भीतर दिखाई पड़नेवाला है।

तुम भीतर कुछ भी नहीं देख सकते। सबसे प्रथम, तुम अपना भीतरी रूपान्तरण अपने संबंधों में देखोगे, और तब तुम गहरे जाओगे। केवल तभी तुम्हें भीतर का अनुभव होगा। लेकिन हमारे अपने को देखने का निश्चित ढंग है। हम अपने संबंधों में बिल्कुलझांकना नहीं चाहते क्योंकि तब नग्न चेहरा ऊपर आ जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की शादी उसके पिताजी तय कर रहे थे। वह तय की हुई शादी थी, अतः मुल्ला अपनी होनेवाली पत्नी का चेहरा नहीं देख सकता था। तब विवाह के दिन जब विवाह संपन्न हो गया तो उसकी पत्नी ने चेहरे पर से पर्दा उठाया। वह भयानक रूप से कुरूप थी। और जब मुल्ला उस गहरे आघात से पीड़ित था तो उसकी पत्नी ने पूछा, "अब बोलो, मेरे प्यारे, तुम्हारा क्या हुक्म है?"यह एक मुसलमानों की रीत है। पहली बात जो पत्नी पूछती है वह यह है कि हे मेरे प्यारे, बताओ तुम्हारा क्या हुक्म है? मैं किससे पर्दा करूं, और मैं किसको अपना मुंह दिखाऊँ? बोला, मुल्ला कराहते हुए कहा-"तुम जिसे चाहो अपना मुंह दिखा सकती हो बस, तुम मुझे अपना चेहरा न दिखाओ"। यह एक अनुबंध है।"

जब भी किसी चीज की इच्छा विलीन हो जाती है तो तुम अज्ञात में प्रवेश करते हो। ध्यान अपने अन्तिम लक्ष्य को पहुंच गया। तब संसार ही मोक्ष है। तब यह संसार ही मुक्ति है। तब यह किनारा ही वह किनारा है।

किन्तु बचकाने लक्षणों के पीछे न जाओ। जरा भी नहीं। उन्हें निर्मित कर सकते हो।

मेरा यह मतलब नहीं है कि उन लक्षणों के सारे अनुभव ही कल्पना हैं, लेकिन यदि तुम उस तरह से सोचो, तो तुम उनकी कल्पना कर सकते हो। यदि तुम यह विचार करते हो कि एक खास स्थिति में नीले प्रकाश का अनुभव होता है तो तुम बिना उस स्थिति को पहुंचे ही उसे निर्मित कर सकते हो। यह बहुत आसान है, उस स्थिति को पहुंचना बहुत कठिन है। इस नीचे प्रकाश को निर्मित करना बहुत सरल है। अपनी आंखें बंद करो और उस पर ध्यान केंद्रित करो और थोड़े ही दिनों में उसका अनुभव होने लगेगा। तब तुम्हारा अहंकार मजबूत होने लगेगा। अब तुम आध्यात्मिक मार्ग पर हो। कुण्डलिनी का विचार करो और तुम उसे अपने रीढ़ से चढ़ते हुए पाओगे। यह सब कल्पना है। यह आसान है, कठिन नहीं है। लेकिन तब तुम अपने को गलत मार्ग पर ले जा रहे हो।

मैं यह नहीं कहता कि इस तरह का कोई भी अनुभव कल्पना है, लेकिन यदि तुम उसके बारे में विचार करते हो, तो वह कल्पना हो जायेगा। उसे पूरी तरह भूल जाओ। केवल ध्यान में उत्सुकता रहे, तुम्हारे बदलते हुए संबंधों पर ही ध्यान रहे, तुम्हारे मौन पर तुम्हारे संतोष पर, तुम्हारे प्रेम पर ही ध्यान रे। इन पर ही तुम्हारा ध्यान केंद्रित रहे और कभी अचानक रीढ़ में ऊर्जा का प्रादुर्भाव होगा।

लेकिन उसके बारे में विचार मत करो। इस बात के प्रति सचेत होओ और भूल जाओ। अचानक तुम्हें कोई विशेष प्रकाश दिखाई पड़ेगा, उसे देखो और भूल जाओ। अचानक कोई चक्र चलने लगेगा, उसे जानो और भूल जाओ। उससे कोई मतलब मत रखो। उनकी चिंता ही हानिप्रद है। तुम्हारा मतलब तो सिर्फ संतोष, शांति, मौन, प्रेम, करुणा, ध्यान आदि से हो।

ये सब बातें होती रहेंगी। तभी वे प्रमाणिक हैं। जब तुम्हारा उनसे कुछ भी लेना-देना नहीं और फिर भी वे होती हैं, तभी वे वास्तविक हैं। और वे बहुत बातें इंगित करती हैं लेकिन तुम्हें इसकी चिंता करने की जरूरत नहीं क्योंकि जब वे होती हैं तो तुम जानते हो कि वे क्या दर्शा रही हैं। जैसा कि आदमी का मन मूढ़ है, यदि मैं तुम्हें यह कहूं कि वे क्या दर्शाती हैं तो तुम्हारा संबंध प्रेम, मौन तथा करुणा से कम होगा। ये बातें बड़ी कठिन हैं। नीला प्रकाश पैदा करना बड़ा सरल है और यह भी अनुभव करना बड़ा आसान है कि तुम्हारी रीढ़ में सर्प ऊपर उठ रहा है। यह बहुत आन है, इसमें कोई भी कठिनाई नहीं है।

इसलिए याद रहे कि दो प्रकार के आंतरिक अनुभव हैं। एक वे, जो कि सर्प ऊपर उठ रहा है। यह बहुत आसान है, इसमें कोई भी कठिनाई नहीं है।

इसलिए याद रहे कि दो प्रकार के आंतरिक अनुभव हैं। एक वे, जो कि तुम्हारी कल्पना द्वारा निर्मित किये जाते हैं और दूसरे वे जो कि घटित होते हैं। लेकिन घटित होने वाले अनुभवों के लिए तुम्हारी जरूरत नहीं है, कल्पना के लिए तुम्हारी जरूरत है। कल्पना के साथ मत खेलो। यह एक खतरनाक खेल है। कोई कुछ भी कल्पना कर सकता है तुम चाहे जो कल्पना कर सकते हो, लेकिन उससे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। और मन कुछ ऐसा है कि वह कुछ भी झूठी चीजें पाने की कोशिश करता रहता है, क्योंकि झूठे परिपूरक बड़े सस्ते हैं।

यदि तुम्हें अपने बगीचे में असली गुलाब उगाना हो तो उसमें समय लगता है। उसके लिए धैर्य की, प्रयास की जरूरत है और फिर भी पक्का नहीं है कि उगेगा ही। गुलाब निकले, न भी निकले। सरल है कि एक गुलाब खरीद लिया जाए, लेकिन तब वह तुम्हारा नहीं है। वह ऐसा लगता है जैसे तुम्हारे बगीचे में ही उगा है, लेकिन वास्तव में वह नहीं उगा है। जब तुम एक गुलाब का फूल खरीदते हो तो उसकी जड़ें तुम्हारे भीतर नहीं होतीं, वह सिर्फ तुम्हारे हाथ में होता है। वह तुम्हारे अस्तित्व का हिस्सा नहीं हुआ। तुमने उसकी कभी प्रतीक्षा नहीं की है, तुमने उसके लिए कभी धैर्य नहीं रखा है। वह बच्चा नहीं है। वह तुम्हारा बच्चा नहीं है। तुमने उसे खरीदा है। वह वहाँ है लेकिन एक विदेशी की तरह-न कि तुम्हारे आंतरिक विकास की तरह।

लेकिन कुछ चालाक लोग हैं जो कि असली फूल भी नहीं खरीदेंगे, वे लोग कागज के या पलास्टिक के फूल खरीद लेंगे क्योंकि वे ज्यादा स्थायी हैं। एक असली फूल तो मुरझा जाएगा। शाम तक वह खो जायेगा। इसलिए प्लास्टिक का फूल खरीद लो, वह सस्ता पड़ेगा, कम कष्टप्रद होगा और स्थायी होगा। लेकिन तब तुम धोखा दे रहे हो। असली विकास के लिए समय चाहिए, धैर्य चाहिए, श्रम चाहिए। काल्पनिक विकास तो नकली है इस भेद को सदा याद रखो।

एक बात और : जो भी तुम कर रहे हो, ऐसा मत सोचो कि परिणाम भविष्य में आयेगा। यदि तुम कुछ वास्तविक बात कर रहे हो, तो परिणाम अभी और यहीं होगा। भीतर के कार्यक्षेत्र में यदि तुमने आज ध्यान किया है, तो उसका नतीजा कल नहीं आयेगा। यदि तुमने आज ध्यान किया है, तो उसकी सुगंध, चाहे थोड़ी-सी हो, आज ही होगी। यदि तुम संवेदनशील हो, तो तुम उसे अनुभव कर सकते हो। जब भी कुछ वास्तविक किया जाता है, तो उसका प्रभाव तुम पर पड़ता है-अभी और यहीं।

इसलिए ऐसा मत सोचो कि कुछ भविष्य में होगा। जो भी तुम कर रहे हो वह तुम्हें अभी ही परिवर्तित नहीं करनेवाला है। समय से कुछ भी न होगा। समय अकेला उसमें सहायता न देगा। समय उसको गहरा करेगा, लेकिन अकेले समय से कुछ भी न होगा।

लेकिन हो सकता है कि तुम संवेदनशील नहीं हो। जो तुम कर रहे हो, तुम उसके प्रति संवेदनशील नहीं भी हो सकते हो। हमारी संवेदना खो गई है, क्योंकि असंवेदनशीलता में कुछ सुरक्षा है। यदि तुम्हें ज्यादा कुछ महसूस नहीं होता है तो तुम कम दुःखी होते हो। जो आदमी ज्यादा महसूस करता है, वह ज्यादा दुःख पाता है। इस कारण हमने अपने आप को असंवेदनशील बना लिया है। इसलिए जब कुछ इतना तीव्र होता है कि उसे ध्यान से हटाना असंभव हो, तभी हम उसके प्रति सजग होते हैं। अन्यथा हम मरे हुए रहते हैं, नींद में सोये हुए चलते रहते हैं।

यह संवेदनशीलता का अभाव समस्याएँ पैदा करेगा। जब तुम ध्यान करोगे तो ध्यान में जो भी होगा उसके प्रति भी संवेदनशील नहीं होओगे। अतः अधिकाधिक संवेदनशील बनो। और तुम एक ही आयाम में

संवेदनशील नहीं रह सकते। या तो कोई सभी आयामों में संवेदनशील होगा, या फिर एक भी आयाम में संवेदनशील नहीं होगा। संवेदनशीलता तुम्हारे समग्र अस्तित्व से संबंध रखती है। अतः ज्यादा-से-ज्यादा संवेदनशील बनो, तब जो हो रहा है वह तुम्हें रोज-रोज प्रतीत होगा।

उदाहरण के लिए, तुम धूम में चल रहे हो। तब किरणों को अपने चेहरे पर अनुभव करो, संवेदनशील रहो। वे तुम पर चोट कर रही हैं। यदि तुम उन्हें अनुभव कर सको तो तुम्ळें भीतर के प्रकाश का भी अनुभव होगा जब वह तुम्हें चोट करेगा। अन्यथा, तुम अनुभव न कर सकोगे।

बाहर से ही प्रारंभ करो क्योंकि वह सरल है। और यदि तुम बाहर का भी अनुभव नहीं कर सकते, तो तुम भीतर का अनुभव भी नहीं कर सकते। जीवन में ज्यादा काव्यात्मक बनो व्यावसायिक नहीं। और कभी-कभी संवेदनशील होने में कुछ लगता भी नहीं है। तुम स्नान कर रहे हो, क्या तुमने कभी पानी का अनुभव किया? तुम रोजमर्रा के काम की तरह स्नान कर रहे हो, क्या तुमने कभी पानी का अनुभव किया? तुम रोजमर्रा के काम की तरह स्नान कर लेते हो, और बाहर निकल जाते हो। कुछ मिनट के लिए उसे अनुभव करो। पानी के फव्वारे के नीचे कुछ देर खड़े रहो और पानी के स्पर्श को अनुभव करो। उसे अपने ऊपर बहते हुए अनुभव करो। वह एक गहरा अनुभव हो सकता है, क्योंकि पानी जीवन है। तुम नब्बे प्रतिशत पानी हो। यदि तुम पानी को अपने ऊपर पड़ते हुए अनुभव नहीं कर सकते, तो तुम अपने भीतर के पानी के ज्वार को अनुभव नहीं कर सकोगे।

जीवन समुद्र में पैदा हुआ था। और तुम्हारे भीतर भी कुछ पानी है जो कि नमक की कुछ मात्रा लिए हुए है। समुद्र में तैरो और पानी को बाहर अनुभव करो। जल्दी ही तुम्हें पता चलेगा कि तुम भी समुद्र के हिस्से हो, और तुम्हारा भीतरी भाग समुद्र में उसके प्रति संवेदन में ज्वार उठा होगा तो तुम्हारा शरीर भी लहरें लेने लगेगा। वह लहरें लेता है, लेकिन तुम उसे अनुभव नहीं कर पाते हो। इसलिए यदि तुम इतनी स्थूल चीजें भी अनुभव नहीं कर सकते, तो फिर तुम्हारे लिए ध्यान जैसी सूक्ष्म चीज को अनुभव करना कठिन है।

फिर तुम प्रेम को अनुभव कैसे करोगे? हर आदमी दुःखी है, पीड़ित है। मैंने हजारों-हजारों लोगों को गहरे दर्द में डूबा हुआ देखा है। वह सारा दुःख प्रेम के लिए है। वे प्रेम करना चाहते हैं, और वे चाहते हैं कि कोई उन्हें प्रेम करे, लेकिन समस्या यह है कि यदि कभी तुम प्रेम भी करो, तो वे उसे अनुभव नहीं कर पाते। वे पूछते ही रहेंगे, क्या तुम मुझे प्रेम करते हो? अतः क्या किया जाये? यदि तुम कहो कि "नहीं" तो उन्हें पीड़ा होगी।

यदि तुम्हें सूरज की किरणों का भी अनुभव नहीं होता है, यदि तुम्हें वर्षा की भी प्रतीति नहीं होती है, यदि तुम्हें प्रेम, करुणा आदि गहरी बातों का पता नहीं चलेगा। यह बड़ा कठिन है। तुम्हें क्रोध का, हिंसा का, उदासीनता का पता चलता है क्योंकि वे इतने स्थूल हैं। भीतर जानेवाला मार्ग तो बहुत सूक्ष्म है। और जितना ज्यादा सूक्ष्म तुम्हारा ध्यान होता जाता है, उतनी ही ज्यादा सूक्ष्म तुम्हारी प्रतीति हो जायेगी। लेकिन तब तुम्हें तैयार रहना पड़ेगा।

इसलिए ध्यान कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे कि तुम एक घंटा करो और फिर भूल जाओ। वस्तुतः सारा जीवन ही ध्यानपूर्ण होना चाहिए। तभी केवल तुम चीजों को अनुभव कर सकोगे। और जब मैं कहता हूँ कि सारा जीवन ही ध्यानयुक्त होना चाहिए, तो मेरा यह मतलब नहीं है कि तुम चौबीस घंटे आँखें बंद करके बैठ जाओ और ध्यान करो। नहीं जहां भी तुम होओ, वहीं तुम संवेदनशील बने रह सकते हो। वह संवेदनशीलता उपयोगी है। तब तुम्हें यह पूछने की जरूरत नहीं पड़ेगी कि मैं ध्यान में प्रगति कर रहा हूँ या नहीं।

तुम एक अंधे आदमी की भांति हो। तुम रास्ते को महसूस नहीं कर सकते क्योंकि तुमने कभी कोई चीज अनुभव नहीं की है। और जिस तरीके से हमें शिक्षित किया गया है, सुसंस्कृत किया गया है वह सब

असंवेदनशीलता के लिए है। एक बच्चा रो रहा है। सारा घर उसके विरुद्ध है : रोओ मत। मेहमान आनेवाले हैं। मेहमान ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, और बच्चे का रोना कतई महत्वपूर्ण नहीं है। अब तुम उसे जीवन भर के लिए दबा रहे हो।

वह अपना रोना बंद कर देगा, लेकिन रोना बंद करना एक बड़ी गंभीर बात है। उससे उसके शरीर का सारा गुण धर्म बदल जाएगा। रोने को रोकने के लिए उसे तनावपूर्ण होना पड़ेगा, वह विश्राम में नहीं जा सकता। जो ऊपर आ रहा है उसे उसको भीतर दबाना पड़ेगा, उसे अपने श्वास को बदलना पड़ेगा। वास्तव में उसे अपना श्वास रोकना पड़ेगा, क्योंकि अगर श्वास आसानी से चलती रहे तो रोना भी चलता रहेगा। उसे अपना पेट खींचना पड़ेगा, उसके शरीर में सब कुछ गड़बड़ हो जायेगा। तब वह नहीं रो सकता, लेकिन तब वह हंस नहीं सकता। तब तुम उसे उसके सारे जीवन भर के लिए पंगु बना रहे हो।

हर व्यक्ति लंगड़ा हो गया है और उसे लकवा मार गया है। हम एक पक्षापात से भरे संसार में रह रहे हैं। अब सतत दमन होता रहेगा। यह बच्चा अब हंस नहीं सकता, वह रो नहीं सकता, वह नाच नहीं सकता, वह कूद नहीं सकता। जो भी उसका शरीर करना चाहेगा, वह नहीं कर सकता। जब भी शरीर कुछ करना चाहेगा, वह उसे नहीं करने देगा। और जब तुम उसको खेलने के लिए कहते हो तो वह भी स्वत-स्फूर्त नहीं है। उसका खेलना भी झूठा हो गया है। तुम कहते हो कि अब तुम खेल सकते हो। जब उसका समस्त अस्तित्व खेलना चाह रहा था उसे खेलने नहीं दिया गया और अब तुम उसे खेलने के लिए कहते हो। लेकिन अब वह खेलने का प्रयास करता है। और अब वह भी एक काम है।

अन्ततः हम एक ऐसा आदमी निर्मित करते हैं जो कि ज्यादा-से-ज्यादा एक यंत्र है। क्या तुम रो सकते हो? क्या तुम स्वत-स्फूर्त हंस सकते हो? क्या तुम अपने से नाच सकते हो? क्या तुम अपने से प्रेम कर सकते हो? यदि तुम नहीं कर सकते तो तुम ध्यान कैसे कर सकते हो? क्या तुम खेल सकते हो? यह मुश्किल है।

हर बात मुश्किल हो गई है। आदमी असंवेदनशील हो गया है। अपनी संवेदनशीलता को लौटाओ। उसे वापस प्राप्त करो। थोड़ा खेलो। खेलपूर्ण होना ही धार्मिक होना है। हंसो, रोओ, गाओ, कुछ अपने आप करो अपने पूरे दिल से। अपने शरीर को शिथिल छोड़ दो, अपनी श्वास कोढीला छोड़ दो और इस तरह घूमो जैसे कि तुम फिर से बच्चे हो गये। तब जब तुम ध्यान करोगे, तो तुम नहीं पूछोगे कि क्या मुझे कुछ हो रहा है? क्या मैं आगे बढ़ रहा हूं या नहीं, अथवा कि मैं सिर्फ एक वर्तुल में ही घूम रहा हूँ? तुम स्वयं जान जाओगे।

मैं तुम्हारी मुश्किल भी समझता हूँ। तुम अभी अनुभव नहीं कर पाते, क्योंकि तुम्हारी अनुभूति खो गई है। अपनी अनुभूति को पुनः प्राप्त करो। कम विचार, अधिक अनुभव, ज्यादा हृदय से जिओ, और सिर से कम जिओ। कभी-कभी समग्ररूप से शरीर में जिओ, क्योंकि यदि तुम अपने शरीर को भी अनुभव नहीं कर सकते, तो तुम अपनी आत्मा को अनुभव नहीं कर सकते। इसे स्मरण रखो। वापस शरीर में आ जाओ।

हम सचमुच शरीर के चारो ओर घूम रहे हैं, हम शरीर में नहींहैं। हर आदमी शरीर में रहने से डरा हुआ है। समाज ने डर पैदा कर दिया है, और वह बहुत गहरा है। वापस शरीर में लौटो, फिर से शरीर में जाओ। एक निर्दोष पशु की भांति हो जाओ।

पशुओं की ओर देखो-उन्हें कूदते, दौड़ते हुए। कभी-कभी उनकी तरह से दौड़ो और कूदो। तब तुम वापस शरीर में लौट आओगे। तब तुम अपने शरीर को अनुभव कर सको। सूरज की किरणों को, वर्षा को और बहती हुई हवाओं को अनुभव कर पाओगे। चारों ओर जो भी हो रहा है। उसको देखने की इस सामर्थ्य के साथ तुम भीतर जो भी हो रहा है, उसको अनुभव करने की सामर्थ्य जुआ पाओगे।

भगवन्! दोनों मार्गों में यानी भक्ति तथा योग दोनों में योग अति कठिन है, उसके लिए कठिन तपस्या कीर जरूरत है। एक संसारी आदमी के लिए वह अति कठिन है। जिन्होंने भी "ब्रह्म" या "मोक्ष" को उपलब्ध किया योग के द्वारा, उन्होंने संसार को त्याग दिया दूसरी और नरसी मेहता और मीराबाई के दृष्टांत हैं जो कि ये दर्शाते हैं कि एक सामान्य आदमी भक्ति के द्वारा भी परम ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है।

इसलिए क्या यह सही नहीं होगा कि सामान्य आदमी भक्ति के मार्ग को अपनाये?

सामान्य आदमी जैसा कोई आदमी नहीं है। प्रत्येक आदमी असाधारण है। चाहे तुम्हें पता हो, चाहे न हो, लेकिन कोई भी आदमी साधारण नहीं है। यह पहली बात है।

दूसरी बातः मीरा, नरसी मेहत्ता अथवा चैतन्य आदि ने कोई आसानी से अपने लक्ष्य को नहीं नहीं पा लिया। यह धारणा बिल्कुल गलत है। बल्कि इसके विपरीत, मीरा ने और भी ज्यादा कठिन मार्ग की यात्रा की है। इसीलिए तुम बहुत से योगियों का नाम गिना सकते हो, लेकिन तुम हजारों मीराओं का नाम नहीं गिना सकते। यदि तुम भक्तों की गिनती करने जाओ, जो कि मीरा के बराबर क्षमता रखते हों तो तुम्हारे हाथ की दो अंगुलियाँ काफी होंगी।

फिर योगियों की गणना करो, वे अनगिनत हैं। क्यों? यदि योग का मार्ग कठिन है और भक्ति का मार्ग, प्रेम का मार्ग सुगम है, सीधा सरल है, तो फिर यह असमानता क्यों? क्योंकि वह सरल नहीं है। लेकिन तब क्या मेरा यह अर्थ है कि भक्ति का मार्ग योग के मार्ग से ज्यादा कठिन है? नहीं। यह तुम पर निर्भर करता है।

यदि तुम्हारा मन एक विशेष ढंग का हो तो एक विशेष मार्ग तुम्हारे लिए सरल होगा। यदि तुम भक्त के ढंग के पुरुष या स्त्री हो तो तुम्हारे लिए भक्ति सरल होगी, और योग कठिन होगा। लेकिन यह तुम पर निर्भर करता है। मार्गों की तुलना नहीं की जाती है। यदि मैं भक्ति-भाव से भरा आदमी नहीं हूँ, तो मेरे लिए योग सरल होगा और भक्ति कठिन होगी। इसलिए यह साधक पर निर्भर है, न कि मार्ग पर। कोई भी मार्ग सरल नहीं है, और कोई भी मार्ग मुश्किल नहीं है।

लेकिन तब अधिक योगी क्यों हुए और भक्त इतने कम क्यों हुए? इसके बहुत से कारण हैं। पहला : कि यह भ्रान्तिपूर्ण विचार कि भक्ति का मार्ग सरल है, इसने बहुत-सी गड़बड़ पैदा कर दी। इसके कारण जिनके लिए, भक्ति का मार्ग नहीं है वे उस मार्ग पर जाते हैं। लेकिन तब वे मीरा और चैतन्य की भांति नहीं हो पाते, वह उनके लिए नहीं।

वह मार्ग उनके लिए नहीं है। उन्होंने अपने अनुसार उसे नहीं चुना। उन्होंने झूठी धारणा के कारण, जो कि प्रचलित है, उसके कारण चुना।

वास्तव में, जो लोग भक्ति का मार्ग चुनते हैं, वे सचमुच उस पर चलने के लिए उसे नहीं चुनते। वे सोचते हैं कि इस मार्ग पर चलना तो कुछ भी नहीं है और पा सब लेना है। ऐसा समझा जाता है कि तुम्हें भक्ति मार्ग पर कुछ भी नहीं करना है, और तुम सब कुछ पा लेते हो, सब केवल "नाम स्मरण" से सब हो जाएगा। और खासकर कलियुग में, कलि के युग में।

वस्तुतः जो लोग कुछ भी नहीं करना चाहते हैं वे भक्ति को चुनते हैं। और भक्ति कोई दावा नहीं है कि तुम बिना कुछ भी किए सब कुछ पा लोगे। भक्ति तुम्हारी समग्रता को मांगती है। वह कोई खाली "नाम स्मरण" नहीं है। तुम्हें अपने को समग्ररूप से समर्पण करना होता है। किन्तु समग्र समर्पण एक बड़ी कठिन बात है। इस झूठे विश्वास के कारण बहुत से तथाकथित भक्त हो गये हैं, किन्तु वे अपने को धोखा दे रहे हैं।

दूसरी बात यह धारणा कि योग का मार्ग अति कठिन है इस बात ने भी बहुत-सी समस्याएँ पैदा की हैं। क्योंकि जो लोग अहंकारी हैं वे इस मार्ग की ओर आकर्षित होते हैं। अहंकार चाहता है कुछ कठिन काम करना। यदि कोई बात सरल है तो वह अहंकार को तृप्त नहीं करती।

यदि कोई एवरेस्ट पहाड़ हो या गौरीशंकर हो, तो अहंकार को रस आता है। यदि मैं पहुँच जाऊँ तो मैं कह सकता हूँ कि केवल मैं ही पहुंचा हूँ। यह इतना कठिन है। कोई दूसरा नहीं पहुंचा। यदि वह कोई छोटी-सी पहाड़ी है, और कोई बच्चा भी चढ़ सकता है तो फिर अहंकार को उसमें कोई रस नहीं आता। अतः इस धारणा के कारण ही कि योग का मार्ग अति कठिन है, दुरुह है, असंभव है, बहुत-से अहंकारी उसके तरफ आकर्षित हुए हैं। और अहंकार ही तो बाधा है।

जो लोग कुछ भी करना नहीं चाहते हैं, वे भक्ति की ओर आकर्षित हो जाते हैं, और भक्ति में बहुत कुछ करना होता है, वह कोई न करना नहीं है। जो लोग अहंकारी होते हैं वे योग की ओर आकर्षित हो जाते हैं, लेकिन वे अहंकार के कारण ही आकर्षित होते हैं। वे अधिकाधिक अहंकारी हो जाते हैं। यदि तुम्हें पूरी तरह से अहंकारी देखने हों, तो तुम्हें कहीं और जाने की जरूरत नहीं, तथाकथित योगियों के पास चले जाओ, तब तुम्हें पूर्णरूपेण अहंकारी मिल जायेंगे। वह सर्वाधिक कठिन काम कर रहा है जगत में।

दोनों ही धारणाएँ गलत हैं। स्वयं के अनुसार चुनाव करो, सर्वप्रथम अपने प्रति जागो। वस्तुतः यदि तुम स्वयं के प्रति सजग हुए, तो तुम्हें चुनने की भी जरूरत नहीं रहेगी। तुम उसी मार्ग की तरफ जाते जाओगे जो कि तुम्हारे लिए उचित है। केवल अपने प्रति सजग रहो। स्वयं को अधिकाधिक अनुभव करो, ध्यान करो और अधिकाधिक अपने को अनुभव करो। फिर अपने चुनाव की भी चिंता मत करो।

मीरा ने कभी चुनाव नहीं किया। वह घटित हुआ। न ही महावीर ने कोई चुनाव किया। वह भी घटा। यदि तुम अपने को जानते हो, यदि तुम स्वयं को अनुभव करते होऔर ध्यान करते हो, तो धीरे-धीरे तुम उस मार्ग की तरफ जाने लगोगे जो कि तुम्हारे लिए है। तुम अपनी नियति की ओर मुड़ने लगोगे। यदि तुम चुनाव करोगे तो तुम चीजों को गड़बड़ कर दोगे-क्योंकि तुम्हारा चुनाव आखिर तुम्हारा ही चुनाव है। कैसे तुम अपनी नियति का चुनाव कर सकते हो? तुम सिर्फ उसे होने दे सकते हो, तुम उसे चुन नहीं सकते।

यदि तुम चुनाव करोगे तो तुम एक गहरी गलीत धारणा में पड़ जाओगे। तुम गलत हो, अतः तुम गलत ही चुन लोगे। तब बहुत-सा श्रम व्यर्थ चला जाएगा। और तुम तर्क बिठाते रहोगे कि मैं इतना सब कर रहा हूँ, और ऐसा ऐसा नहीं हो रहा है। और यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो उसके कारण होने चाहिए। मेरे पुराने कर्म बाधा बन रहे हैं। अथवा, मुझे और भी ज्यादा प्रयास करना चाहिए, या मुझे ज्यादा समय लगेगा। अथवा मैंने बहुत देर से शुरू किया, इसलिए अगले जन्म में जल्दी प्रारंभ करूँगा।

मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में एक घटना, और फिर हम बात पूरी करेंगे। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक गधा खरीदा। गधे के मालिक ने मुल्ला को कहा कि गधे को कितना खाना रोजाना देना होगा? मुल्ला ने सोचा कि यह तो बहुत ज्यादा होगा, अतः उसने कहा, ठीक है। धीरे-धीरे मैं गधे की खुराक कम कर दूंगा और इसकी कम राशन की आदत डाल दूंगा। अतः वह धीरे-धीरे रोजाना उसका खाना कम करता गया।

अन्ततः खाना बिल्कुल भी नहीं पर आ गया-बिल्कुल नहीं पर। तो गधा गिर कर मर गया। मुल्ला बोला, कैसी दुर्भाग्य की बात है। यदि मुझे थोड़ा समय और मिलता तो मैं इस गधे को बिना खुराक पर भी रहने की आदत डाल देता। प्रयोग पूरा ही होने वाला था, लेकिन बड़े दुःख की बात है कि गधा मर गया।

आदमी रेशनलाइज करता चला जाता है, तर्क बिठाता रहता है। तर्क बिठाने से कुछ भी न होगा। चुनाव करने की कोशिश मत करो। होने दो। चुनाव मत करो, अपने स्वभाव को पहचानो। अपनी आत्यतिंक संभावना से संवेदनशील बनो, ध्यान करो और चुनाव करने का प्रयत्न मत करो। धीरे-धीरे तुम किसी एक दिशा में बढ़ते जाओगे। वह गति, वह बढ़ना अपने आप होने लगेगा। वह कोई चुना हुआ प्रयत्न नहीं होगा। वह तुम्हारे साथ घटित होगा, वह तुम्हारे भीतर विकसित होगा, और तुम उस तरफ बढ़ने लगोगे।

और तब तुम एक दिन जानोगे कि भक्ति तुम्हारा मार्ग है या योग तुम्हारा मार्ग है या योग तुम्हारा मार्ग है। जो दिशा तुम्हारे भीतर घटित होगी, प्रकृतिगत वह तुम्हारी होगी। जो दिशा चुनी जायेगी और जबरदस्ती थोपी जाएगी वह तुम्हारे लिए नहीं है। चुना हुआ मार्ग कठिन होगा, दुर्गम होगा, और अन्ततः व्यर्थ जायेगा। एक बिना-चुना मार्ग, एक दिशा जो कि तुम्हारे सामने अपने आप खुल गई है, वही सरल होगी, प्रकृतिगत होगी, "सहज" होगी।

आज इतना ही।